प्रकाशक—
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

पहली बार : २०००
जून, सन् १९३८
मूल्य
एक रुपया

मुद्रक—
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नई दिल्ली

प्रकाशक की ओर से

स्वर्गीय श्री रामदासजी गौड़ की यह दूसरी रचना हिन्दी जगत् के सामने रखते हुए हमें हर्ष होरहा है। गौड़जी की पहली रचना, जो कि इस ग्रंथ का एक प्रकार से पहला खण्ड है, मण्डल से 'लोक साहित्य माला' में 'हमारे गाँवों की कहानी' के नाम से हम प्रकाशित कर चुके हैं।

इस पुस्तक के पीछे एक लम्बा इतिहास है। सन् १९२९-३० के दिनों में स्व० गौड़जी से 'मण्डल' ने यह ग्रन्थ लिखाया था। सन् १९३०-३१ में गौड़जी ने उसे लिखकर अपने मित्र और 'मण्डल' के संचालक-मण्डल के प्रमुख सदस्य श्री महावीरप्रसाद पोद्दार को देखने के लिए कलकत्ते भेज दिया। ग्रन्थ बहुत बड़ा होगया था और उनकी तथा 'मण्डल' की यह राय हुई कि गौड़जी इसको कुछ छोटा करदें और इसे देखने के लिए गुजरात-विद्यापीठ के आचार्य श्री काका कालेलकर और महामात्र श्री नरहरि परीख को भेजदें। इसके मुताबिक़ गौड़जी ने इस ग्रंथ को काका सा० को, सन् १९३१ के सितंबर महीनें में जबकि वह काशी-विद्यापीठ के समावर्तन-संस्कार के निमित्त काशी गये थे, देदिया। काका सा० और नरहरिभाई ने ग्रन्थ को देखा-न-देखा कि सन् १९३२ का आन्दोलन शुरू होगया, गुजरात-विद्यापीठ पर सरकार का कब्ज़ा होगया और काका सा० और नरहरिभाई जेल चले गये। सन् १९३३ में जब विद्यापीठ पर से प्रतिबंध उठा तब 'मण्डल' के मंत्री ने उस ग्रन्थ के बारे में वहाँ पूछताछ की। लेकिन मालूम हुआ कि ग्रन्थ कहीं खोगया है। इतने बड़े और इतनी मेहनत से लिखे गये ग्रंथ के खो जाने से हम सबको बड़ा दुःख हुआ।

लेकिन सन् १९३४ में जब मण्डल दिल्ली आचुका था, तब उत्साही राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता श्री बलबीरसिंह हमें मिले और गौड़जी की

की इस पुस्तक के बारे में पूछने लगे कि वह प्रकाशित हुई है या नहीं ? तब हमने उसके खो जाने की सारी कहानी उनको सुनाई। इसपर उन्होंने कहा कि उसकी एक नक़ल तो मेरे पास है, अगर आप चाहें तो मैं आपको दे दूँ। हमें यह सुनकर आनन्द हुआ और आश्चर्य भी। पूछने पर उन्होंने बताया कि जब यह पुस्तक श्री महावीरप्रसाद पोद्दार के पास कलकत्ता गई थी तब वह उनके साथ शुद्ध खादी भण्डार में काम करते थे। वहाँ इस पुस्तक को उन्होंने पढ़ा, और पढ़ने पर उनको यह इतनी अच्छी लगी कि रात-रातभर जागकर चुपके से इसकी नक़ल करली। इसका न तो पोद्दारजी को पता था और न गौड़जी को ही।

श्री बलवीरसिंहजी ने ग्रन्थ 'मण्डल' को देदिया। 'मण्डल' ने फिर गौड़जी को भेजा कि इसको अगर कुछ घटादें और अद्यवत् (Up to date) बनादें तो इसे प्रकाशित किया जाय। लेकिन वह दूसरे ग्रन्थों के लेखन आदि में इतने व्यस्त रहे कि इसका संपादन न कर सके और अन्त में पिछले वर्ष भगवान् के घर जा रहे। उसके बाद यह ग्रन्थ फिर गौड़जी के मित्र श्री कृष्णचन्द्रजी (सबजज, काशी) की मारफ़त श्री पोद्दारजी के पास गया। उन्होंने इसे शुरू से अन्त तक पढ़ा और मण्डल को सलाह दी कि इसको अब जैसा-का-तैसा ही प्रकाशित करना चाहिए। इसी निश्चय के फलस्वरूप यह ग्रन्थ आपके हाथ में है।

इस प्रकार श्री बलवीरसिंहजी के परिश्रम से गौड़जी का यह ग्रन्थ बचगया, इसके लिए वह हमारे और पाठकों के बहुत धन्यवाद के पात्र हैं।

'मण्डल' ने इस ग्रंथ पर स्व० गौड़जी के परिवार को रॉयल्टी देना तय किया है। पहले तो यह ग्रंथ ही इतना उपयोगी और उत्तम है कि प्रत्येक ग्रामसेवक और लोकसेवक के लिए इसको अपने पास अपने मार्ग-दर्शन के लिए रखना बहुत जरूरी है। दूसरे जितना ही इसका अधिक

प्रचार होगा उतना ही स्व० गौड़जी के दुखी परिवार को आर्थिक सहायता होगी और होती रहेगी। इसलिए आशा है, प्रत्येक साहित्यिक और लोकसेवक इसे अवश्य खरीदेगा और लाभ उठावेगा।

—मंत्री

सस्ता साहित्य मण्डल

प्रस्तावना

हमारा शरीर अत्यन्त सूक्ष्म, अत्यन्त बारीक मांस के कणों का बना हुआ है। प्रत्येक कण अपने अंग-अंग की दृष्टि से पूर्ण है। प्रत्येक का जीवन स्वतन्त्र है, फिर भी एक-दूसरे से मिला हुआ है, एक-दूसरे की पूरी सहायता करता है। हरेक अपना भोजन आप ही खोजकर लेता है, आप ही पचाता है। हरेक अपने सुख की सामग्री आप ही इकट्ठी करता है। अपनी कमी आप ही पूरी करता है। हरेक में जीवन की भीतरी सामग्री पूरी है, परन्तु कण समाज की सामूहिक व्यवस्था में, सबके इकट्ठे जीवन में, अपनेसे बाहरी सामग्री के इकट्ठे करने में और उसे जहाँ जितनी जरूरत हो उतनी बाँटने में, सब-के-सब बड़ी तत्परता से, पूरी मुस्तैदी से सहायता करते हैं, एक-दूसरे का हाथ बँटाते हैं। एक कण जब रोगी होता है, जब उसमें किसी तरह की कमी आती है, तब दूसरे कण उसके रोग के निवारण के लिए उपाय करने में कोई बात उठा नहीं रखते। परन्तु कभी-कभी कणों के समूह-के-समूह रोगी होजाते है। कभी तो इन कणों से बना हुआ सारा शरीर भी रोगी होजाता है। इसका अर्थ यही होता है कि शरीर के सभी कण रोगी होगये हैं। ऐसी दशा में सबसे चतुर और सबसे कुशल इलाज करनेवाला वही समझा जाता है जो हरेक रोगी कण की खबर लेता है, जो हरेक की चिकित्सा करता है, जो दवा की ऐसी नपी-तुली सूक्ष्म खूराक देता है जो हरेक कण को भला-चंगा करदे। कभी-कभी चतुर वैद्य इन कणों में से गये-बीतों को मृत्यु के मुख से बचा नहीं सकता। तब कण-समाज उस कण की कमी को आप पूरा करता है। हाँ, जब सभी कण रोगी होजाते हैं, सबमें से जीने की शक्ति का क्षय होने लगता है, जब सभी जवाब देदेते

हैं, तब कोई दवा काम नहीं करती और इन सब कणों से बना हुआ शरीर नष्ट होजाता है। परन्तु कभी-कभी जब रोग पुराना होजाता है, जब देह अत्यन्त दुबली होजाती है, जब रोगी निराश-सा होने लगता है, किसी रसायन के सेवन से, किसी चमत्कारिक चिकित्सा से, एकाएक कण-समूह में कुछ ऐसा रद्दोबदल होने लगता है, कुछ ऐसा परिवर्तन होजाता है कि फिर से कणों का संगठन होजाता है, बुझते दीये में तेल पड़ जाता है। शरीर फिर भला-चंगा होजाता है।

हमारे देश का समाज भी भारतवर्ष की देह है। इसके मांसकण हमारे सात लाख के लगभग गाँव हैं। जब हमारा समाज-शरीर नीरोग था, उसके हरेक कण स्वतंत्र, समृद्ध, सुखी और सहकारी थे। परन्तु आज, चाहे जैसे ही कारणों से क्यों न हो, न तो हमारे गाँव स्वतन्त्र हैं, न समृद्ध हैं, न सुखी हैं, और न उनमें परस्पर सहकारिता है। समाज विश्रृंखल होरहा है। हर आदमी को बेकारी सताती है, अनेक ऐसे हैं जिनका अपना काम छिन गया है, दूसरों का काम करते हैं, पर उससे भी पूरा नहीं पड़ता। कुछ ऐसे हैं जो औरों की कमाई पर देश के इस संकट में गुलछर्रे उड़ाते हैं और अपने निकम्मेपन से दुःख उठाते हैं। इस समाजरूपी शरीर के खून चूसनेवाले जूँ, चीलर, किलनी, खटमल आदि स्थूल और कीटाणु और जीवाणु आदि सूक्ष्म अनेक पराये जन्तुओं ने बरबस अपना अधिकार जमा रक्खा है। समाज के पोपण की सामग्री मौजूद रहते हुए भी उसे नहीं मिल सकती। उसे बेकारी का रोग सता रहा है। वह आलसी और अकर्मण्य होगया है। शरीर में जितना चाहिए उतना रक्त नहीं रह गया। जो दशा सारे समाज-शरीर की है वही उसके एक-एक कण—एक-एक गाँव की है। वास्तव में गाँव-गाँव में वही दोप आगये हैं, इसीलिए सारा शरीर बिगड़ गया है। यदि हर गाँव

सब तरह से रंजापुंजा, भलाचंगा, सुखी-समृद्ध और आदर्श होजाय तो सारा शरीर फिर से सुधर जाय। सारा समाज फिर से भला चंगा हो-जाय। भारतवर्ष में फिरसे सतजुग आजाय। अगर हरेक कुल अपने को ठीक करले और हरेक गांव अपनेको सुधारले, अगर हरेक गांव अपनेको स्वावलम्बी बनाले, अगर हर गांव अपना स्वराज्य स्थापित करले, किसी और का मुंह न देखे, बल्कि इतना पक्का-पोढ़ा कर्मोद्यम करले कि दूसरे को भी उठाकर खड़ा करने की हिम्मत रक्खे, तब तो सात लाख गाँव स्वराज्य पा जायें, इतना ही नहीं, सारा भारत स्वराज्य पा जाय।

यहाँ यह पूछा जा सकता है कि शहरों का क्या होगा? क्या शहरों के स्वराज्य पाये बिना गाँव भारत में स्वराज्य करा सकेंगे?

शहर वितरण, व्यवस्था, केन्द्र आदि की दृष्टि से अपना महत्व अवश्य रखता है, परन्तु वह अपने पालन-पोषण के लिए तो गाँवों का ही सहारा ढूँढ़ता है। वह गाँवों के द्वार पर जाकर रोटी माँगता है तब जीता है; कपड़े माँगता है तब तन ढकता है। शहर गांव का वह बिसाती है जो कुछ जरूरी चीजों के साथ ही साथ शौक और ऐश-आराम की चीजें वेचकर गाँव को अधिकांश ठगता रहता है। शहरों से लाभ कम है, हानि अधिक, क्योंकि परसत्वभोजियों का यही विहारस्थल हैं। यह अन्न-धन बाँटता है सही, पर इससे आज वे लोग अधिक लाभ उठाते हैं जिनका हक धन पर कम है। इसीलिए शहर स्वावलम्बी अगर कभी हो भी सकता है तो स्वयं गाँव बनकर या गाँवों के ही सहारे। अर्थात् शहर शहर की हैसियत से सच्चा स्वावलम्बी नहीं होसकता। भारत के समाज-शरीर में शहर का हिस्सा अवश्य कम है, अतः गाँवों में स्वराज्य होजाना सारे भारत में स्वराज्य होजाना है।

इसलिए भारत-समाज के रोगी शरीर का इलाज होना जरूरी है कि वह खाट से उठकर चलने-फिरने लगे, काम-धंधा करने लगे, भरपूर भोजन करने और पचाने लगे। उसकी मरी भूख जी उठे, जग जाय। वह आन के भरोसे न रहे, वल्कि औरों को सहारा देने लायक वन जाय। दवा जल्दी देनी चाहिए, क्योंकि अभी तड़का है, अभी रोगी अंगडाइयाँ ले रहा है, सवेरे निहार मुँह की दवा जल्दी लाभ पहुँचाती है। हमारे वड़े भाग्यों से हमें एक उत्तम चिकित्सक मिल गया है। हमें इस अवसर को खोना न चाहिए। उसने नाड़ी देखी है, रोग का निदान किया है, चिकित्सा सोच ली है, दवा ठीक करली है। वह दवा है **ग्राम-संगठन**। उसने जैसे इस दवा का सेवन वतलाया है, उसीमें देश का कल्याण है। यह दवा समय लेगी, रोगी धीरे-धीरे भला-चंगा होजायगा। इसके लिए धीरज से उपचार करना होगा। जव भला-चंगा हो जायगा तव ठोस स्वराज्य मिलेगा। राजनैतिक स्वराज्य चाहे कल ही मिल जाय, परन्तु विना इस ठोस स्वराज्य के राजनैतिक स्वराज्य ठहर नहीं सकेगा। विना नींव के भीत वहुत दिनों तक खड़ी नहीं रह सकती। वुद्धिमान घर वनानेवाला पहले नींव दृढ़ करता है तव भीत उठाता है। स्वराज्य की भीत तो तभी उठेगी, जव ग्राम-संगठन की नींव पोढ़ी पड़ जायगी। कुराज्य और पर-राज्य की भीत ढहाने का काम आज जल्दी भले ही होजाय, परन्तु इस नींव के काम में तो देर अवश्य लगेगी।

किसी वड़े भारी और महत्व के घर की स्वराज्य के पवित्र मंदिर की नींव देने का काम कोई पवित्र और भारी महिमावाला मनुष्य ही करता है। सो हमारे स्वराज्य-मन्दिर के लिए उसकी दृढ़ भीत की नींव वनाने के लिए उसकी आधार-शिला उसी महात्मा ने रक्खी है

और उसने दवा तजवीज करदी है। रोगी की सेवा, उपचार, पथ्य का देना, समय-समय पर दवा पिलाना शुश्रूषकों का काम है। इन रोगों के सेवकों के लाभ के लिए, इन उपायों के तैयार करनेवाले सज्जनों की सहायता के लिए, इन पन्नों में **ग्राम-संगठन** पर सरसरी विचार किया जायगा। गांव पहले कैसे थे, आज कैसे हैं, कैसे होने चाहिएं, और उन्हें वैसा बनाने के लिए क्या-क्या करना चाहिए, इन्हीं बातों पर विचार करना इस पोथी का उद्देश्य है।

भगवान करें यह पोथी पढ़नेवालों और उसपर चलनेवालों के काम में सहायक और लाभदायक सिद्ध हो।

रामदास गौड़

अनुक्रम

हमारे गाँवों का

सुधार और संगठन

: १ :

बेकारी का इलाज

१. बेकारी की भयानकता

नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥
— गीता ३–५

एक क्षण भी कोई बिना कोई कर्म किये नहीं रह सकता । हरेक को प्रकृति के गुणों से बाध्य होकर कोई-न-कोई कर्म करना ही पड़ता है । जब प्रकृति ऐसी जबर्दस्त है कि कोई बिना कर्म किये रही नहीं सकता, तो जिन लोगों का रोजगार छीन लिया जायगा वे अपने बेकारी के समय में भला या बुरा कोई-न-कोई काम जरूर करेंगे । भारतवर्ष की किसानों और मजदूरों की इतनी भारी आबादी में जहाँ शिक्षा के सुभीते बिलकुल नहीं हैं, यह आशा करना व्यर्थ की कल्पना है कि बेकार जनता अपने बेकारी के समय को अच्छे कामों में लगायेगी । साधारण जन-समुदाय अपने बचे हुए समय को संसार के किसी भाग में कहीं भी अच्छे कामों में नहीं लगाता । यह बिलकुल स्वाभाविक बात है । भारत की जनता इसका अपवाद नहीं हो सकती । जब उसके पास कोई काम नहीं है और वह भूखों मर रही है तब उससे कोई बात अकरनी नहीं है । इस बेकारी का हमारे देश पर भयानक परिणाम हुआ है । संसार के अन्य सभ्य देशों में जब कभी बेकारों की गिनती हजारों और लाखों में पहुँचती है तो उसी समय देश-भर में उथल-पुथल मच जाती है, सरकारें बदल

जाती है, क्रान्ति हो जाती है। परन्तु भारतवर्ष की बेकारी हजारों और लाखों की गिनती की नहीं है। यहाँ की मर्दुमशुमारी बताती है कि बहुत काल से भारतवर्ष में भिखमंगों की संख्या पचास लाख से ऊपर है। देश में दस-दस बरस पर जो मर्दुमशुमारी होती ह, उसमें बेकारों या अर्ध-बेकारों की गिनती नहीं कराई जाती। तब भी मर्दुमशुमारी की रिपोर्टों से ही हमने यह औसत निकाला है कि साल में छः महीने के लगभग हमारे किसान बिलकुल बेकार रहते हैं और इस बेकारी से उनकी भारी आर्थिक हानि होती है। दरिद्र किसान कर्जे से लद गये हैं, भूख के विकराल गाल में पिस रहे हैं, नशे से अपना विनाश कर रहे हैं, और मुदक़मेबाजी से अपनेको बरबाद कर रहे हैं। यह पूर्व-संस्कार का प्रसाद समझना चाहिए कि वे ऐसे मजबूत हैं कि इतनी विपत्तियों को झेलकर भी अबतक उनके प्राण बाकी हैं।

भारतवर्ष की जितनी बड़ी बरबादी हो चुकी है उसका प्रकट रूप उसका कंगाल होना है, और उसके कंगाल होने का सबसे बड़ा कारण उसकी भयानक बेकारी है। इस महारोग का इलाज तुरंत ही होना चाहिए, क्योंकि इससे भारत की मज़बूत आबादी भी धीरे-धीरे घट रही है, या कम-से-कम उस दर से नहीं बढ़ रही है जिस दर से कि जीते-जागते मनुष्यों को बढ़ना चाहिए।

२. बेकारी दूर करने के उपाय

इस बकारी को मिटाने के लिए देश के अनेक हितैषियों ने तरह-तरह के उपाय सोचे और सुझाये हैं। उनमें से पहले हम उन उपायों पर विचार करेंगे जो कताई-बुनाई के अतिरिक्त हैं।

बम्बई की प्रान्तीय सहकारी-संस्था के सम्मान्य मन्त्री रावबहादुर तालमाकी साहब ने सन् १९२८ में किसानों के लिए 'खेती के होते

और रोज़गार' नाम की एक पोथी प्रकाशित कराई थी। उन्होंने इस सम्बन्ध में बहुत उपयोगी विचार दिये हैं। उनका यह कहना बिल्कुल ठीक है कि इस बेकारी का इलाज ऐसे ही कामों से ठीक रीति से हो सकता है जो मौसिमों के फेरफार से स्वतंत्र और खेती के कारबार से बिल्कुल अलग हों। संसार में कहीं भी केवल खेती के कारबार से पूरे ३६५ दिनों के लिए काम नहीं मिल सकता। संसार के सभी किसान कोई-न-कोई रोजगार जरूर करते हैं। भारत के किसान भी पहले तरह-तरह के रोज़गार करते थे। वे सारे रोजगार ऐसे होते थे कि गाँव छोड़-कर कहीं बाहर नहीं जाना पड़ता था। यह ठीक भी है। क्योंकि ऐसा रोजगार भी किसान के लिए बिल्कुल बेकार है जिसमें उसे घर छोड़-कर कहीं बाहर जाना पड़े। खेती का काम ऐसा है कि किसी दिन उसे आधे ही दिन खेतों पर रहना पड़ता है, कभी उसका खेत का काम दो-चार घण्टे में ही पूरा होजाता है, कभी उसे दो-चार दिन की छुट्टी मिल जाती है और कभी कई महीनों की। इसलिए उसके पास ऐसा काम चाहिए जिसे वह जिस घड़ी चाहे शुरू करदे या करते-करते छोड़ दे। कल-कारखानों की मजूरी या शहरों में कुली का काम इस तरह का नहीं हो सकता। काम ऐसे होने चाहिएँ जिनसे उपजा हुआ माल खपाने के लिए बहुत दूर के बाजारों में न जाना पड़े। तालमाकी साहब ने जो-जो काम अपनी पोथी में सुझाये हैं वे सब भारत के गाँवों में बहुत जगहों पर थोड़े-बहुत होते ही हैं। कुछ काम ऐसे जरूर हैं जो केवल शहरों के पास हो सकते हैं। कुछ इस तरह के भी हैं जो बड़े पैमाने पर संगठन करके विदेशी व्यापार के काम में आसकते हैं। डेनमार्कवाले दूध, मक्खन, सुअर का मांस और अंडों का बहुत बड़ा रोजगार करते हैं। यह भी सच है कि हमारे देश में हिन्दुओं की एक बहुत बड़ी संख्या को छोड़-

कर बाकी लोगों को इस तरह के रोजगारों में कोई धार्मिक रुकावट नहीं हो सकती और रोजगारों के बढ़ने पर देश के एक बहुत अच्छे भाग को लाभ पहुँच सकता है। परन्तु ये बातें उस समय सोचने की है जब हमारे देश में ऐसे काम का पूरा प्रचार हो जाय जो बिना जात-पांत, धर्म, समाज और व्यक्ति के बंधन के हरेक आदमी कर सके. और फिर देश को दूसरे देशों से व्यापार करके नफा पहुँचाने का सवाल उठे। अभी तो हमारे सामने अपनी रक्षा का सवाल है।

हमारे देश में हिन्दुओं की अनेक जातियाँ मुर्गियाँ और सुअर पालती है, और जितने की समाज में जरूरत है इन रोजगारों में उतनी उपज होती ही रहती है। मुसलमानों और ईसाईयों में मुसलमान और ईसाई दोनों मुर्गियाँ जरूर पालते है और जो लोग अंडे खाते है उनके लिए कभी बाजार मे अंडो की कमी की शिकायत पैदा नहीं हुई। अधिकांश हिन्दू और सभी मुसलमान सुअर से परहेज करते हैं। परन्तु पासी सुअर पालते हैं और जिन्हे सूअर के मास, चर्बी आदि की आवश्यकता होती है, हमारा विश्वास है कि, उन्हें वह पर्याप्त परिणाम में मिल भी जाता है। बड़े पैमाने पर सुअर का मास, चर्बी और मुर्गियों या बतखों के अंडे हमारे देश में विदेशों से नहीं आते। इसलिए हमें कोई विशेष चिन्ता नहीं है कि हमारे देश के इन रोजगारों पर विदेशियों की विशेष रूप में चढ़ाई है। भारत अहिंसक देश है। यहां इस तरह के रोजगार कभी सार्वजनिक नहीं हो सकते और न होने चाहिएँ।

फल और तरकारियों की खेती भारतवर्ष के बहुत अनुकूल है। पर फल और तरकारियों की जितनी मांग इस देश में है उतनी यहां उनकी उपज भी होती है। विदेशों से जो मुरब्बे और सुरक्षित फल आदि आते हैं, उनका परिमाण बहुत बड़ा नहीं है और उनकी

खपत बहुत धनवान श्रेणी में भी बहुत थोड़ी मात्रा में होती है। अगर कोशिश करके इनकी उपज बढ़ाई जाय तो यह रोजगार कुछ अधिक लाभ करा सकता है। परन्तु इस उपाय से, फिर भी, हम भारत के कंगालों की एक बहुत भारी संख्या अछूती छोड़ देंगे और बहुत थोड़े लोगों का रोजगार बढ़ सकेगा। सच तो यह है कि इस रोजगार को भी खेती में ही सम्मिलित समझना चाहिए। यह खेती से अलग नहीं हो सकता। यह इस तरह का रोजगार नहीं है जिसे जब चाहे शुरू करे और जब चाहे इसे छोड़कर दूसरे काम में लग जाय।

दूध-घी का रोजगार या गोपालन हमारे देश के लिए सबसे अच्छा रोजगार है। किसान के लिए गोपालन कामधेनु है। लेकिन बहुत मुद्दत से बड़ी संख्या में गोवध होते रहने के कारण हमारे यहां का यह सनातन रोजगार आज बड़ी बुरी दशा में है। इसके ऊपर देश में बहुत काल से गोरक्षा का आन्दोलन भी चल रहा है। गोवंश के सुधार के लिए मुद्दत से पुकार हो रही है।[1] मगर अलग-अलग पैवन्द लगाने से वास्तविक गोरक्षा संभव नहीं है। मुसलमान और हिन्दुओं के गोहत्या-सम्बन्धी झगड़े तो असल में झगड़े ही हैं। गोवंश के नाश का असली कारण तो कुछ और ही है, जिसे जबतक दूर न किया जायगा तबतक सारे सुधार बेकार हैं। यह सब जानते हैं कि हजारों गायें नित्य अंग्रेजी फौज के लिए कटती हैं, और अंग्रेजी सेना की जरूरत ब्रिटिश सरकार को इसलिए है कि हमारे देश को ब्रिटेन अपने कब्जे में रक्खे। इस तरह भारतवर्ष को गुलामी की जंजीरों में जकड़े रखने के लिए

१. इस सम्बन्ध में दीक्षितपुरा, जबलपुर के पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री मुद्दत से स्तुत्य प्रयत्न कर रहे हैं। गो-साहित्य पर उनकी लिखी छोटी-छोटी पोथियां और लेख पढ़ने योग्य हैं।

गोवंश का नाश जरूरी हो जाता है। इसलिए भारतवर्ष जबतक स्वाधीन न होगा तबतक गोवंश की वास्तविक रक्षा नहीं हो सकती। बेकारों की बेकारी गोपालन के द्वारा दूर करना अभी सम्भव नहीं है। क्योंकि गोचर-भूमि जोत-जोतकर खेत कर दिये गये हैं। ब्रिटिश राज्य के आरम्भ में ही लाट-के-लाट गोचर भूमि का नीलाम करके एक तरफ से मालगुजारी खड़ी की गई और दूसरी तरफ से गोपालन का रोजगार नष्ट कर दिया गया। अब जिन किसानों को एक बार पेट भर भोजन नहीं मिलता वे बेचारे गाय को खिलाने के लिए चारा कहाँ से लायेंगे ? जिनके पास खेती के एकमात्र आधार बैल हैं, उनकी दशा भी शोचनीय है। भूखे, दुबले, हाड़, चाम-मात्र रखनेवाले बैल भरपेट चारा न पाने के कारण आधे से भी कम काम कर सकते हैं। जिनके पास गायें हैं, उनकी भी दशा अच्छी नहीं है। चारा कम मिलने से गायें दूध कम देती हैं और जल्दी सूख जाती हैं। इस प्रकार यह तो दरिद्रता का रोग है, जिसका मुख्य कारण है बेकारी। इसी बेकारी को दूर करने के लिए गोपालन को उपाय बताना ठीक नहीं है।

बकरी और भेड़ का पालन हमारे यहां के कुछ किसानों का रोजगार है। जैसे गोपालन का बहुत बड़ा रोजगार लेकर समाज में अहीरों और ग्वालों की सृष्टि हुई, वैसे ही भेड़-बकरी के रोजगार से हिन्दुओं के समाज में गड़रियों की एक बड़ी भारी जाति मौजूद है। यह रोजगार आवश्यकता के अनुसार चल ही रहा है। भेड़ बकरी पालने में किसान को कोई रुकावट नहीं है, इसलिए जिनसे होसकता है वे इस काम में पीछे नहीं रहते। यह रोजगार भी देश की आवश्यकताओं पर निर्भर है। भेड़-बकरी की बहुत बढ़न्ती की जरूरत नहीं है। यह ऐसा रोजगार भी नहीं है कि आदमी बरस में छः महीना इसमें लगा रह सके। इस-

लिए इसमें भी बेकारी का वह इलाज नहीं है जिसकी हमें खोज है।

मधुमक्खी पालने और शहद निकालने का रोजगार भी बहुत अच्छा है। इस काम की भी कुछ शिक्षा चाहिए। बिना शिक्षा के, बिना पाली हुई मधुमक्खियों से मधु निकालने का काम किसान लोग अब भी करते हैं। आवश्यकतानुसार मधु निकाला जाता है। कुछ खर्च करके यह रोजगार भी बढ़ाया जा सकता है। इससे देश का कुछ लाभ भी हो सकता है, परन्तु इसमें भी साल में छः महीने की बेकारी दूर करने का उपाय नहीं है।

तेली का काम, कुम्हार का काम, चमार का काम, लोहार का काम, बढ़ई का काम गाँवों में होता है और जरूरी है। ये सब रोजगारी किसान भी हैं और अपना रोजगार भी करते हैं। देश को इनकी सेवाओं की जितनी जरूरत है उतनी ये करते हैं। इनका काम बढ़ाने से मांग नहीं बढ़ जायगी। इसलिए इन रोजगारों का कोई असर देश की बेकारी पर नहीं पड़ सकता। इनमें से प्रायः सभी रोजगार ऐसे हैं जो किसान को थोड़ा-सा काम देते हैं। प्रायःसब में इसी तरह का काम है कि लगातार छः महीने तक कोई रोजगारी नहीं कर सकता। बढ़ई, लोहार आदि का काम बच्चे और स्त्रियाँ नहीं कर सकते। कुम्हार का काम बरसात के दिनों में नहीं हो सकता। इनके सिवा रस्सी बंटने, टोकरी बनाने और चटाई बुनने के भी रोजगार हैं, जो हमारे देश में बराबर जारी हैं। इस बारे में हमारी जितनी जरूरतें हैं वे प्राय. सब अपने देश से ही पूरी होती हैं। हम इनके लिए विदेशों के मोहताज नहीं हैं। हमारे देश में इन रोजगारों के बढ़ने से बेकारी का रोग दूर नहीं हो सकता, बल्कि थोड़े से गरीबों का जो रोजगार पालन कर रहा है उसीमें चढ़ा-ऊपरी बढ़ जाने से इन रोजगारियों का नुक़सान है।

जंगल से बहुत-से लोग लाख और औपधियाँ संग्रह करके लाते थे, और बस्तियों में बेचा करते थे। लकड़हारे लकड़ियाँ काटकर लाते थे, और बेचकर अपनी रोटी चलाते थे: परन्तु जंगलों का इजारा सरकार ने ले लिया, इससे लाखों ग़रीबों का रोज़गार मारा गया और जानवरों को चराने के लिए कोई उपाय नहीं रह गया। इस तरह की जो बेकारी हो गई है वह तभी मिट सकती है जब कि जंगल किसीकी मिल्कियत न रह जाय।

मुग़ल राज्य के अन्त तक नमक पर महसूल ज़रूर था, परन्तु वह था बहुत थोड़ा। नमक बनाने का काम उस समय तक नोनिया जाति वाले लोग किया करते थे। भारतीय समाज में जैसे हर रोज़गारी की पंचायत थी, जात-पाँत बनी हुई थी, वैसे ही नमक के रोजगारियों की भी जाति अलग थी। नोनिये भारत के सभी प्रान्तों में आजतक पाये जाते हैं। ये नमक बनाकर बेचा करते थे। कौटिल्य-अर्थशास्त्र से पता लगता है कि चन्द्रगुप्त के समय में नमक बनाने और बेचने का रोज़गार नोनियों के सिवाय ब्रह्मचारी, वनाश्रमी और श्रोत्रिय ब्राह्मण भी करते होंगे। बेरोज़गारों के लिए यह बड़ा अच्छा रोजगार था, पर वर्त्तमान सरकार ने इसे हमसे छीन लिया। यह सरकारी इजारा जब प्रजा सरकार के हाथ से लेलेगी, तो उन नोनियों और ग़रीब किसानों को कुछ थोड़ा-सा काम ज़रूर मिल जायगा जो समुद्र-तट पर या ऐसी जगह रहते हैं जहाँ नमक के खेत, झील, ताल या पहाड़ हैं। परन्तु भारत के सात लाख गाँवों के रहनेवाले सब तरह के किसानों के लिए छः महीने की बेकारी दूर करनेवाला काम यह नहीं है।

समुद्र, नदी, ताल पोखरे आदि से मछली निकालकर रोज़गार करने-वाले कभी नष्ट नहीं हुए। समुद्र के किनारे रहनेवालों का जहाज

बनाने और चराने का रोज़गार ज़रूर माना गया, परन्तु ऐसे कारीगरों और माझियों की बेरोज़गारी हमारे देश की आंशिक बेकारी है। यह बेकार किसानों की बहुत बड़ी गिनती में छांट दी जा सकती है, पर इस बेरोज़गारी को दूर करने के लिए तबतक कोई उपाय नहीं हो सकता जबतक कि इस सम्बन्ध में विदेशों की गुलामी से छुटकारा न मिले।

रेशम और अंडी का रोज़गार भी हमारे देश में चल रहा है। विदेशों में व्यापार करने के लिए इन्हें बढ़ाया भी जा सकता है, परन्तु इन कामों में शिक्षा की भारी ज़रूरत है, और इनसे जितना चाहिए उतना लाभ होने में भी सन्देह है। फिर यह रोज़गार बढ़ाने से इनकी खपत उसी परिमाण में बढ़ जाय इसमें बहुत कुछ शुबहा है। इसके सिवा यह वह रोज़गार नहीं है जिसपर विदेशियों का इजारा है। हमारे देश के उन रोज़गारों में भी यह नहीं है जो हमारे यहां फैले थे और अब बरबाद होगये हैं। इसलिए यह भी इतनी भारी बेकारी को दूर करने का काफ़ी इलाज नहीं है।

खंडसालें हमारे देश की पुरानी चीजें हैं। पर विदेशियों की कृपा से यहां की बेगिनती खंडसालें नष्ट हो गई। आज भी जो चल रही हैं उनकी दशा अच्छी नहीं है। अतः खंडसालों को बढ़ाने की ज़रूरत है। परन्तु इस रोज़गार से किसान को तीन-चार महीने से अधिक काम नहीं मिलता, और यह काम भी निश्चित मौसिम में करना पड़ता है, ऐसा नहीं है कि जब बेकार रहे तब कर लिया और जब खेती पर काम हुआ तब छोड़ दिया। ऐसे मौसिमों में यह काम होता है जबकि खेती का काम किसान के पास बहुत ज्यादा होता है, इसलिए यह कोई सुभीते का घरेलू धन्धा नहीं हो सकता।

सरकार ने भारत के लाखों रुपये खर्च करके शाही कमीशन के द्वारा

जाँच का पहाड़ खुदवाया, जिसने बड़े परिश्रम से तीन चूहे खोद निकाले। उसकी राय में :—

१—कल-कारख़ानों से किसानों को प्रत्यक्ष लाभ हो सकता है।

२—गाँव के व्यवसाय और घरेलू धन्धे बढ़ाये जा सकते हैं।

३—भारत में किसान लोग ऐसी जगहों पर जाकर बस सकते हैं जहाँ खेती के लायक़ ज़मीन है।

यही तीन बातें हैं जो खेती के शाही कमीशन को सूझीं। इतनी भारी रिपोर्ट में चरखे के बारे में कमीशन ने कोई चरचा नहीं की। जितने रोज़गार कमीशन ने सुझाये हैं उन रोज़गारों पर हम विचार कर चुके। जो रोज़गार ऐसे हैं जिनमें विलायती मशीनों का खर्च है उनको हमने जान-बूझकर छोड़ दिया है। भारत काफ़ी लुट चुका, और मशीनें मंगाने के लिए उसके पास पैसे नहीं हैं। मशीनों वाले रोज़गार हमारे दरिद्र किसानों के लिए नहीं हैं। कल-कारख़ानों से ज्यादा फ़ायदा विदेशियों को है। यह बात इतनी ज़ाहिर है कि इसपर बहस करने की ज़रूरत नहीं। भारत के भीतर एक जगह से दूसरी जगह जाकर बसने के सुभीते लोग समझते हैं, और इस तरह के फेरफार हो रहे हैं, पर इनसे भयानक बेकारी नहीं मिटती। विदेशों में जाकर हम इज्ज़त के साथ उसी दिन बस सकेंगे जिस दिन हमको यह अधिकार हो जायगा कि हम अपने देश में किसी विदेशी को बसने दें या न बसने दें। अभी हम अपने घर में गुलाम हैं, विदेशों में जाकर अपनी और बेइज्ज़ती नहीं करानी है। इसलिए कमीशन की तीनों सिफ़ारिशें हमारे किसी काम की नहीं हैं।

३. बेकारी का सच्चा इलाज

दरिद्र भारत के लाखों रुपये खर्च कराकर खेती के शाही कमीशन को जो बातें सूझीं वे सब प्रायः विलायत के मशीन बनाने वालों के

फ़ायदे की थी। भारतवर्ष में सूर्य के समान चमकते हुए चरखा-आन्दोलन की तरफ कमीशन की निगाह भी न उठ सकी, वह फिर भी अंधेरे में ही रहा और जान-बूझकर कोई ऐसा सहायक काम भारत के बेकार किसानों के लिए न खोज सका जिससे सारा भारत सहज में लाभ उठा सके। पर कमीशन चरखे की सिफ़ारिश करता ही क्यों? चरखे की बरबादी का कारण जो हुकूमत हो वही चरखा चलाने की सिफ़ारिश भी करे, यह कैसे हो सकता है?

हमने अच्छी तरह सब तरह के कामों पर विचार किया है। जितने तरह के काम अब तक सुझाये गये हैं हम उन्हें बिल्कुल नापसन्द नहीं करते। इनमें से कितने ही ऐसे काम हैं जिन्हें भारत के लोग मुद्दत से करते आये हैं। कुम्हार, बढ़ई, लोहार, धोबी, चमार, पासी, तेली, रंगरेज़, धरकार, दबगर, सोनार, माली, केवट, दरज़ी, जुलाहे आदि सब तरह के पेशेवर भारत में अबतक मौजूद हैं, जो अपने-अपने पेशे करते हैं। कुछ सुधारकों की यह राय है कि दरिद्र किसान इन पेशों में से कोई-कोई पेशे अख्तियार करलें, परन्तु यह प्रस्ताव हमारे किसी लाभ का नहीं है। हमारे देश में ये सब पेशेवाले देश की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। प्रायः उतने ही पेशेवाले हैं जितनों की ज़रूरत है न कम हैं न ज्यादा। समाज में इन कामों में छीना-झपटी करना दरिद्रता को दूर करने का कोई उपाय नहीं है। हाँ, मुद्दत से स्थापित समाज-साम्य को विचलित कर देने के प्रस्ताव अवश्य हैं। इसका फल यही हो सकता है कि भारत के लोगों में आपस में ही रोटी की चढ़ा-ऊपरी का कड़ुवापन और भी ज्यादा बढ़ जाय। हम लोगों को अपने समाज के पिछले इतिहास से शिक्षा लेनी चाहिए। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अत्याचारों से पीड़ित होकर देश के कोरी, कोष्टी, जुलाहे, ढेढ़ और ताँती

लोगों ने जब देखा कि हमारा कपड़े की बुनाई का रोज़गार नहीं चल सकता तो उन्होंने और पेशे अख्तियार कर लिये। उनका सबसे अधिक भार खेती के ऊपर पड़ा। इस तरह किसानों की गिनती बढ़ गई, और खेती जब इतना भारी बोझ सम्हाल न सकी तो दरिद्रता के सताये हुए लोग गिरमिट की गुलामी में नाम लिखा-लिखाकर अपना घर-बार छोड़ दूर देशों में गुलाम बन गये। आपस की चढ़ा-ऊपरी का कितना भयानक नतीजा हुआ! नहीं, हम ऐसा काम नहीं चाहते जिससे देश बरबाद हो। हाँ, हम यह ज़रूर चाहते हैं कि जिन रोज़गारियों के रोज़गार छिन गये उन्हें वे वापस मिलें। समाज का कल्याण इसीमें है। कोरी, कोष्ठी, ताँती, ढेड़, जुलाहे आदि बुनाई करनेवाली जितनी जातियाँ अपने काम को नहीं तो नाम को ढो रही है। उन्हें उनका काम वापस मिले, उनके करघे फिर से चलने लगें, उनका रोज़गार फिर से हरा हो जाय। बहुत-से लोग तो किसानों में ऐसे मिल गये हैं कि वे पहचाने नहीं जाते कि पहले कभी ताँती थे। कपड़े की बुनाई के रोज़गार में इतनी गुंजाइश है कि इस कला को सीख लेनेवाले किसान अगर ताँती हो जायँ और भारत में इतना खद्दर तैयार होने लगे कि हमारी खपत से उपज बहुत बढ़ जाय, तो हम फिर संसार के बाज़ारों में अपना सुन्दर खद्दर बेचने लग जायँ। इस उपाय से खेती पर चढ़ा हुआ बोझ ज़रूर हलका हो सकता है। इसी तरह नोनियों का रोज़गार भी फिर से चल निकलना चाहिए। इस वक्त नोनियों की बहुत बड़ी संख्या मजूरी और बेलदारी के काम में लगी हुई है। अनेक नोनिये और-और काम कर रहे हैं। नमक का क़ानून रद हो जाय तो नोनियों का रोज़गार फिर से शुरु हो जायगा और नमक के क्षेत्रों के आसपास के दरिद्र किसान भी उसे अपना सकेंगे।

और शुभ समझे जाते हैं। पिसा हुआ आटा, दूध, दही, मट्ठा ये सब चीजें नित्य के खाने के काम में आनेवाली हैं। चरखे से कता हुआ सूत इकट्ठा किया जाता है और उसके कपड़े बनते हैं। पहले तो किसान के परिवार के लिए ही कपड़ा चाहिए, फिर परिवार से बचा तो देश में कपड़े पहननेवालों की क्या कमी है? मनुष्य की तीन भारी आवश्यकतायें हैं। खाना, कपड़ा और रहने के लिए घर। चरखे का सूत इन तीन में से एक बड़ी आवश्यकता को पूरा करता है। भारत में आज सूत कातने और कपड़े बुनने की बड़ी भारी ज़रूरत भी है। यह ज़रूरत कम-से-कम साठ करोड़ रूपये सालाना की है, क्योंकि इसीके लगभग दाम का विदेशी कपड़ा हमारे देश में हर साल आता है, और उसके बदले उन्हीं दामों का अनाज खिचकर चला जाता है। हमें इतिहास बताता है कि हमारा घर-घर का घरेलू धन्धा विदेशी कपड़े के व्यापारियों के प्रसाद से छिन गया।[१] जिन दिनों चरखा चलता था उन दिनों किसानों में इतनी बेकारी न थी, और वे रोजगारी की घड़ियों में काम करने के लिए और सब धंधों के सिवाय चरखा भी एक व्यापक धंधा था।

चरखे चलाने में जितने सुभीते हैं उतने किसी एक घरेलू धंधे में नहीं पाये जाते। वे सुभीते हम नीचे एक-एक करके दिखलाते हैं:—

१. और जितने काम हैं उनमें बल और परिश्रम इतना लगता है कि निर्बल और रोगी उन्हें नहीं कर सकते। लेकिन चरखा कातना ऐसा सुगम काम है कि उसे बच्चे, बूढ़े, निर्बल और रोगी सभी सुभीते से कर सकते हैं। किसीको इस काम में कड़ी मेहनत का कष्ट नहीं होता। यह काम मनबहलाव-सा लगता है। इसमें अगर थकान भी मालूम होती है तो वह बहुत देर तक बैठने की थकान होती है।

१. "हाथ की कताई-बुनाई": सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली। मू०॥=)

२. चरखा कातने का सामान सस्ता और सुलभ होता है। हर गांव में आसानी के साथ बन जा सकता है। घर के भीतर यह बिलकुल थोड़ी जगह लेता है। इसकी रचना इतनी सीधी-सादी है कि इसकी मामूली मरम्मत के लिए किसी खास कारीगर की खोज नहीं करनी होती। ज्यादा-से-ज्यादा गांव के बढ़ई और लोहार का काम पड़ता है।

३. इसके लिए कच्चा माल हर किसान के बस की चीज है। किसान चाहे तो उत्तम से उत्तम कपास उपजा सकता है, और छोटे पैमाने पर हर कातनेवाला अपने हाथ से ओट कर और धुन कर पूनयां बना सकता है। इन बातों में किसी दूसरे की मदद की जरूरत नहीं पड़ती।

४. इस धंधे का कच्चा माल बरसों तक रक्खा जा सकता है, खराब नहीं होता। किसान चाहे तो साल भर के काम के लिए कच्चा-माल इकट्ठा रख सकता है। इसके लिए किसी गोदाम की जरूरत नहीं है।

५. इस घरेलू कारबार के लिए किसी पूंजी की खोज नहीं होती, साहूकार से उधार लेने की भी ज़रूरत नहीं है। गाँव में लकड़ी सस्ती होती है, मजूरी भी कम देनी पड़ती है, सब काम थोड़े में होजाता है। और जितने घरेलू रोजगार हैं उनमें ये सुभीते नहीं हैं।

६. और जितने कारबार हैं इन सबमें कच्चा माल प्रायः जितना खर्च किया जाता है उसीके हिसाब से तैयार माल उपजता है और उसके दाम चढ़ते हैं, परन्तु सूत कातने की कला ऐसी सुन्दर और मनोमोहक है कि जितना ही बारीक और बढ़िया सूत काता जाय उतना ही कम कच्चा माल लगता है और उतना ही क़ीमती सूत तैयार होता है। इस तरह कला में जितनी बढ़ती होती है, कच्चे माल की ज़रूरत में उतनी ही कमी होती जाती है।

७. सूत की कताई एक उत्तम प्रकार की कला होने के कारण

किसान का इस काम में खूब मन लगता है, उसके परिवार भर को कम-से-कम एक उत्तम कला की शिक्षा मिलती है, साथ ही अपने जीवन की एक बहुत बड़ी जरूरत भी पूरी होती है।

८. अगर सूत अपने परिवार की ज़रूरत-भर कता तो साल-भर के कपड़े के खर्च में किसान को बड़ी किफ़ायत होती है। अगर सूत अपनी ज़रूरत से ज्यादा कत गया तो उससे लाभ उठानेवाले ग्राहक उसे अपने ही गाँव में बहुत मिल जाते हैं, उससे भी अधिक सूत तैयार हो तो किसी पास की सूत मंडी, सूत बाजार या हफ्तावारी पेंठ में सूत की बिक्री सहज में हो जा सकती है, और कातनेवाले किसान के लिए आमदनी का एक द्वार खुल जाता है।

९. सूत की कताई बहुत कम मिलती है। तीन-चार घंटे की मेहनत में अगर तीन-चार पैसे मिल गये तो बहुत समझना चाहिए।[१] देखने में तो यह रक़म बहुत कम मालूम होती है, परन्तु परिवार में जो चार प्राणी हों और हरेक दो पैसे रोज की कताई करें, तो परिवार की आमदनी चार रुपये मासिक या अड़तालीस रुपये साल बढ़ जाती है। आदमी पीछे औसत-आमदनी किसान के लिए नौ पैसे रोज़ हो जाय, या आठ ही पैसे रोज़ होजाय तो दरिद्र किसान के लिए यह अच्छी वृद्धि है। जो सौ रुपये महीने कमाता है उसका वेतन सवा सौ हो जाय तो उसे उतनी तृप्ति और उतना सुख पचीस रुपया मासिक बढ़जाने पर नहीं होगा जितना सुख और तृप्ति सात पैसे रोज़ की आमदनीवाले को एक या दो पैसा रोज़ बढ़ जाने पर हो सकती है।

१. महात्माजी के आदेश पर अब सूत-कताई की मजूरी में काफ़ी वृद्धि होगई है और महात्माजी उसे आठ आने रोज़ पर ले आने का इरादा रखते हैं। —सम्पादक

१०. गांव में ही किसी दूसरे के यहां जाकर कोई काम करके इतनी ही या इससे ज्यादा आमदनी हो तब भी वह सुभीते का काम नहीं हो सकता, क्योंकि दूसरों के यहाँ काम करने में समय का निश्चय करना जरूरी होगा और उसकी मरजी पर काम करना होगा। अपने घर के चरखे में आदमी को आजादी है। वह अपनी मरजी से काम करेगा। स्वतंत्र होकर काम करने के लिए चरखा एक नमूना है। घरेलू धंधे के रूप में चरखा आर्थिक स्वराज्य की मूर्ति है, और हर आदमी के छुटकारे और संयम की निशानी है।

११. दिन-रात में जब कभी फुरसत हुई चरखा कातने लग गये। जब कभी काम पड़ा, चरखा छोड़कर दूसरा काम करने लगे। इस तरह बीच-बीच में काम रोक देने से कताई में रत्ती-भर भी नुकसान नहीं है। और रोजगारों में इतनी उलझन है कि आदमी एकाएकी काम छोड़कर कहीं जा नहीं सकता।

१२. हमारे देश के किसान छः महीने के लगभग खेत के काम से खाली रहते हैं। इस अध्याय में हम और सुधारकों के सुझाये हुए जितने कामों की चर्चा कर आये हैं उनमें इस सुभीते के साथ किसान अपना खेत से बचा हुआ सारा समय काम में नहीं लगा सकता। परन्तु सबसे ज्यादा सुभीते की बात यह है कि मुख्य तौर से किसान अपनी खेती का काम करे। खेती के काम से जितना वक्त उसे बचे और वह सुभीते से लगा सके तो ऐसे धंधों में लगावे जिनमें अच्छी मजूरी खड़ी हो सके। जैसे एक कुम्हार खेती से बचे समय में मिट्टी के बरतन बनावे, पकावे और बेच भी ले। इसपर भी उसे समय बच जायगा, जिसमें उसके पास कोई काम न रहेगा। साल में चार-पांच महीने जब बरसात के पड़ते हैं तब वह मिट्टी के बर-तनों का काम नहीं कर सकता। इन दिनों वह सुभीते के साथ चरखा

कात सकता है। इस तरह हर किसान खेती के सिवाय ज्यादा मजूरी देनेवाले और धंधे करके भी बहुत-सा फालतू समय रखता है। इस फालतू समय को उसे चरखा कातने में जरूर लगाना चाहिए। मानलो कि साल में तीन महीना ऐसा फालतू समय किसान को मिलता है कि वह घर बैठे आठ-नौ घंटे चरखा रोज कात सकता है। इस तरह उसकी साल-भर की आमदनी में कम-से-कम दस-बारह रुपये बढ़ जाते हैं। जिन लोगों को साल में तीन महीने इस तरह से बचते हैं, ऐसे नर-नारी, बूढ़े, जवान, बच्चे सब मिलकर पन्द्रह करोड़ से कम न होंगे। अगर हम मान लें कि औसत आदमी पीछे दस रुपये साल की आमदनी हुई, तो इन पंद्रह करोड़ प्राणियों की आमदनी साल में डेढ़ अरब के लगभग हो जाती है। यह तो हुई केवल कताई की मजूरी। एक रुपय के खद्दर में साढ़े चार आना कातनेवाले को मिलता है। हिसाब के सुभीते के लिए अगर हम मानलें कि खद्दर की लागत में चौथाई हिस्सा कताई है तो इस तरह छः अरब रुपयों का खद्दर साल में तैयार हो सकता है। हमारे देश में इतने खद्दर में केवल दो अरब का खद्दर खप जायगा, बाकी चार अरब का खद्दर हम विदेशों में बेचने के लिए लाचार होंगे। इससे यह प्रकट है कि कि असल में पन्द्रह करोड़ प्राणियों को तीन महीने तक आठ-नौ घंटे रोज काम करने की भी जरूरत नहीं है। केवल पाँच करोड़ प्राणी छः महीने चार-पाँच घंटे रोज अगर चरखा कातें तो इतना खद्दर तैयार हो सकता है कि बम्बई, अहमदाबाद आदि के मिलों की ज़रूरत बिलकुल न रह जाय और जो भारी पूंजी और मुनाफा आरामतलब सेठों और रईसों के पास उनके भोग-विलास के लिए इकट्ठा होता है वह सब दरिद्रों में थोड़ा थोड़ा करके बट जाय, और बँटाई में व्यर्थ का कोई खर्च न हो। मानलो कि सोलह करोड़ ऐसे आदमियों में हर आदमी को दो-दो आना मजूरी रोज

वट न पड़ें और जिसमें उसे खेती-बाड़ी से ज्यादा मजूरी मिले। परन्तु इस सहायक धंधे से भी उसकी बेकारी का पूरा नहीं पड़ सकता। वह अपना बाकी समय चरखा कातने में लगाकर देश का और अपना उद्धार करे। जिस किसान को चरखे से ज्यादा मजूरी देनेवाला कोई सहायक काम न मिले वह चरखा कातना ही अपना कर्तव्य समझें। किसी किसान को यह न भूलना चाहिए कि चरखा कातने में कपास की खेती, कपास की ओटाई और धुनाई भी शामिल है। इन सब की भी अलग-अलग मजूरी होती है। एक रुपये के खद्दर में रुई उपजाने के लिए तीन आना बिनौला साफ करने के लिए दो पैसे, धुनने के लिए सात पैसे, और कातने के लिए साढ़े चार आने मिलते हैं। इस तरह एक रुपये के खद्दर में पौने दस आने किसान के पास पहुँच सकते हैं। खद्दर की लगभग दो-तिहाई कीमत अपनी मेहनत से किसान ले सकता है। दरिद्र किसान के लिए खद्दर का यह काम उसकी दरिद्रता दूर करने का सबसे सहज, सुलभ और सुकर साधन है।

का नाम लेकर अगर दिनरात की अपनी बची घड़ियों में चरखे की अनन्य उपासना में लग जायँ तो उनका आधा संकट दूर होजाय। बेकारी के पंजे से जब छुटकारा मिल जाय, तब वे समझें और सोचें कि और कौन-कौन से उपाय करने चाहिएँ, जिनसे किसान की सुख-समृद्धि और दरिद्रता मिटे। यह पक्की तौर से समझ लेना चाहिए कि पराधीनता रोग के निवारण के महा-यज्ञ में चरखा पहला संकल्प है। इस विधान को ठीक रीति से पूरा करके ही हम आगे बढ़ सकते हैं। सिवाय बेकारी रोग के और बाकी जितने सुधार हैं वे सब-के-सब ब्रिटेन की फ़ौलादी मुट्ठी में ऐसे कसे हुए हैं कि जबतक इस फौलादी मुट्ठी को अपने दृढ़ संकल्प की भयानक आंच में पिघलाकर हम बहा न देंगे तबतक एक भी साधन हम काम में नहीं ला सकते।

इस तरह का सबसे पहला प्रश्न भूमि के अधिकार का है। ब्रिटिश राज्य ने अपना सिद्धान्त यह रक्खा है कि भूमि की असली मालिक सरकार है। इसी नाते वह अपनेको आधे मुनाफ़े की हक़दार समझती है, और प्रायः सभी दशाओं में आधे से ज्यादा मुनाफ़ा प्रजा को चूस-चूसकर वसूल कर लेती है। लेकिन अनादिकाल से भारत में भूमि प्रजा की मिल्कियत चली आई है और राजा का अधिकार इतना ही है कि प्रजा की मिल्कियत की रक्षा के लिए राजा भूमि की उपज के दसवें हिस्से से छठे हिस्से तक कर के रूप में ले। इस कर की वसूली भी जबरदस्ती कभी नहीं हुआ करती थी। प्रजा से माँगकर यह कर लिया जाता था, और प्रजा उसे खुशी से अदा करती थी, क्योंकि स्वयं प्रजा ने ही मनु को रक्षार्थ कर देने की रज़ामन्दी ज़ाहिर की थी।

आजकल जिन-जिन प्रान्तों में रैयतवारी प्रथा है, उनमें सरकार से सीधा सम्बन्ध है। सरकार मालिक और किसान आसामी हैं। जहाँ
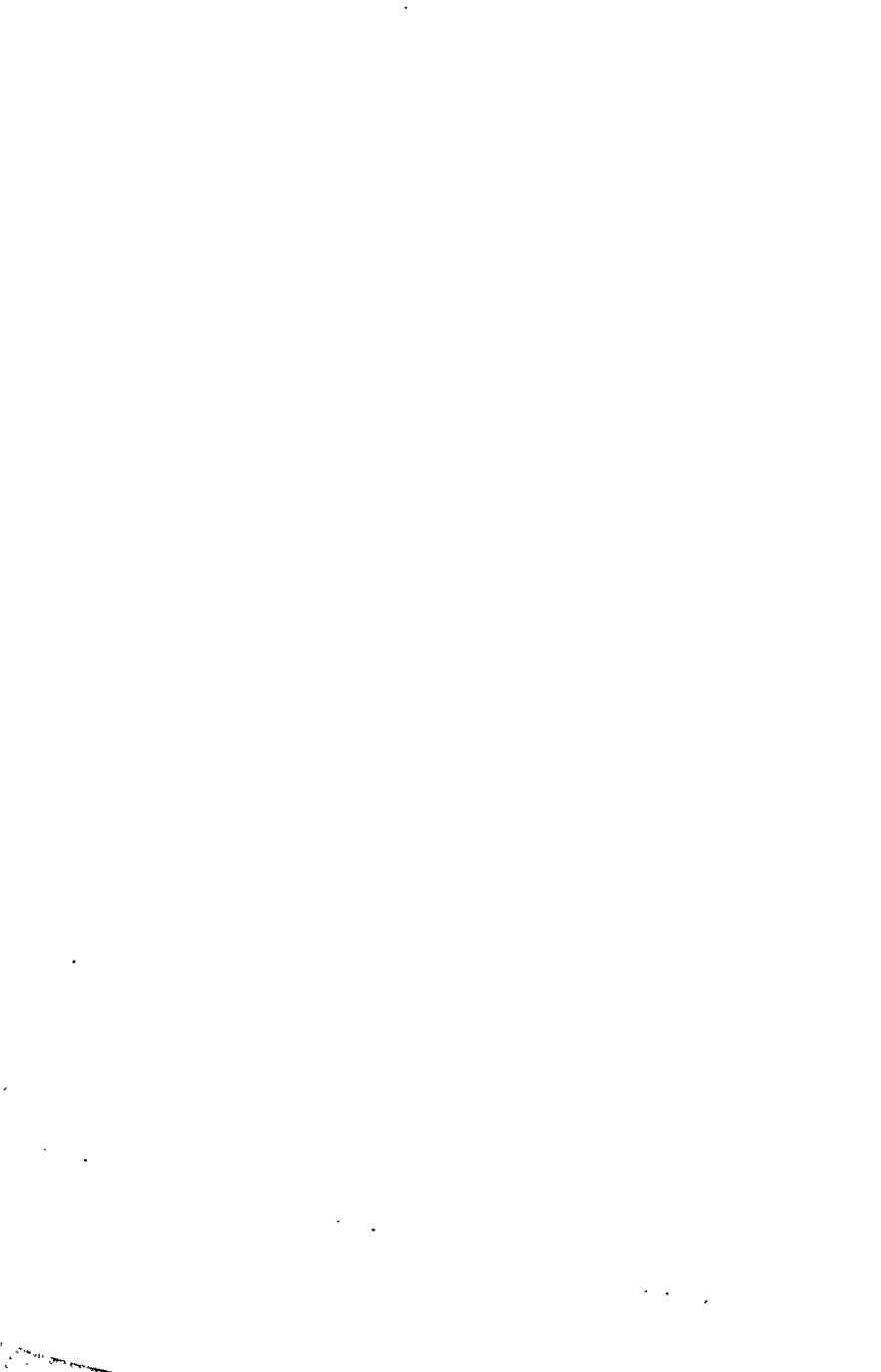
दशा किसानों की केवल इसीलिए हुई कि वे धर्म्म, नीति, क़ायदा-कानून को सदा से मानते आये। इनका मानना उनकी अनादि काल की परम्परा है। सच तो यह है कि भाग्य की परम्परा में क़ायदा-क़ानून और धर्म्म-नीति के सामने सिर झुकाने के सिवाय किसान ने और कुछ जाना ही नहीं। जिन्हें यह पता लग भी गया कि हम न्याय, अनुशासन, नीति-धर्म, क़ायदा-क़ानून के नाम से ठगे जा रहे हैं, वे भी यह नहीं जानते कि इस छल का मुक़ाबला हम किस तरह पर करें। अकेले अगर हम भारी कर देने से इनकार करते हैं तो हमारी जायदाद बिक जाती है। सब कोई मिलकर इसका विरोध करें तो भारी संगठन की जरूरत पड़ती है, जिसमें सैकड़ों बाधायें हैं। किसान चारों ओर से घिरा हुआ है। सरकारी धौंस, ज़मींदार की ज़बरदस्ती, पटवारी की चालें, चौकीदार और पुलिस का आतंक, साहूकार का दबाव, और अहलकारों के ज़ुल्म सब-के-सब चारों ओर से किसान को दबाये हुए हैं। किसान बेचारे को उभरने के लिए कहीं सांस नहीं है। वह भारतवर्ष का तीन-चौथाई भाग है। इस तरह देश के तीन-चौथाई भाग को सरकार ने अपनी कपट-नीति से लाचार कर रक्खा है। इस माया-जाल से बचने का कोई साधन दिखाई नहीं पड़ता था। पर गांधीजी की सत्याग्रह की रीति ने एक नये साधन का द्वार खोल दिया है। एक-एक सत्याग्रह का विस्तार से वर्णन करना यहाँ संभव नहीं है। इसीलिए केवल एक बारडोली के सत्याग्रह का इतिहास हम यहाँ संक्षेप से देते हैं।

२. बारडोली का सत्याग्रह

इस पुस्तक के पढ़नेवालों के सुभीते के लिए हम यहाँ बारडोली के सत्याग्रह की कथा संक्षेप में लिख देना चाहते हैं।

गुजरात प्रान्त के सूरत जिले में बारडोली नाम का एक परगना है।

उचित और न्याययुक्त कहकर किसानों पर पैंसठ फीसदी इज़ाफ़ा करने की सिफारिश करते।" इस तरह मि० एण्डरसन ने श्री जयकर की रिपोर्ट को तो बिलकुल रद्दी साबित कर दिया, लेकिन खुद बिना जाँच किये, अटकल-पच्चू लगाकर, यह फैसला कर दिया कि उन्तीस फीसदी इज़ाफ़ा करके रिपोर्ट को उत्तर-विभाग के कमिश्नर मि० चेटफील्ड के पास भेज दिया जाय। मि० चेटफील्ड ने रिपोर्ट पर लिखा "मुझे, बारडोली सम्बन्धी कोई व्यक्तिगत जानकारी नहीं है, फिर भी मैं देखता हूँ कि मि० एण्डरसन ने थोड़े लगानवाले गाँवों को ऊँचे दरजे के गाँवों में शामिल कर दिया है।" यह लिखते हुए भी उन्होंने मि० एण्डरसन के किये हुए इज़ाफे को मंजूर कर लिया।

बारडोली के किसानों ने इस मनमानी-घरजानी कार्रवाई के खिलाफ़ बहुत-कुछ लिखा-पढ़ी की। उन्होंने मि० चेटफील्ड के पास इस आशय की कई दरखास्तें भेजीं कि लगान ग़लत आधार पर कूना गया है। लेकिन मि० चेटफील्ड ने उन सबको फ़िजूल बताकर रद्दी की टोकरी में फेंक दिया और बन्दोबस्त के कमिश्नर की सिफ़ारिशों की यानी उन्तीस फीसदी इज़ाफ़े की ताईद करते हुए मामले को बम्बई-सरकार के रेवेन्यू मिनिस्टर के पास भेज दिया। इस तरह क़ानून और क़ायदे के ठेकेदारों ने ख़ुद क़ानून और क़ायदे को ताक़ पर रख दिया। क्योंकि क़ायदा यह है कि बन्दोबस्त के अफ़सर को पहले खूब अच्छी तरह पूरी आर्थिक जाँच करनी चाहिए, और जब वह यह जाँच पूरी करके अपने प्रस्ताव ऊपर के हाकिमों के पास भेजे तब इज़ाफ़े की वजह तथा अपने प्रस्तावों वग़ैरा के साथ सरकार उस रिपोर्ट को काश्तकारों की जानकारी के लिए प्रकाशित करती है। अर्थात् जनता को उसपर अपनी अर्जियाँ, दरखास्तें, शिकायतें, आपत्तियाँ आदि पेश करने का मौका देती हैं। जब जनता की तरफ़

से मिला। मि० रियू के हुक्म के मुताबिक किसानों से अर्जी लिखवाकर भी उनकी ख़िदमत में भिजवादी गई, लेकिन हुआ वही ढाक के तीन पात! सरकार ने इन सब बातों की रत्तीभर भी परवा नहीं की और १९ जुलाई १९२७ के दिन एक प्रस्ताव द्वारा लगान २९.०३ से घटाकर २१.९७ यानी कुछ कम बाईस फीसदी कर दिया और यह भी ज़ाहिर कर दिया कि इस बन्दोबस्त के खिलाफ़ जितनी भी दलीलें पेश की गई हैं गवर्नर-इन-कौंसिल उनपर खूब अच्छी तरह विचार करके इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि लोगों ने इज़ाफ़ा लगान के ख़िलाफ़ जितनी दलीलें पेश की हैं वे सब गलत हैं।

बारडोली के किसान केवल इतना ही चाहते थे कि सरकार की तरफ़ से लगान में जो इज़ाफ़ा किया गया है उसके ऊपर निष्पक्ष विचार कराया जाय। इतनी बात पर भी राज़ी हो जाना सरकार ने अपने रोबदाब के ख़िलाफ़ समझा। तब इतनी बात करा लेने के लिए, बारडोली ने अपना दृढ़ निश्चय कर लिया। उसने जब देखा कि किसी उपाय से सरकार टस से मस नहीं होती, तो महात्माजी के सत्याग्रह शस्त्र से काम लिया गया। ६ सितम्बर १९२७ को एक परिषद् ने निश्चय किया कि सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में सत्याग्रह किया जाय। ४ फ़रवरी १९२८ की सभा में सरदार वल्लभभाई ने लोगों की अच्छी तरह जाँच करली और जब देखा कि लोग सत्याग्रह के लिए पूरे तौर पर तैयार हैं, उन्होंने दो दिन बाद बम्बई-सरकार को पत्र द्वारा स्थिति की सूचना दी और निष्पक्ष पंच नियुक्त करने के लिए प्रार्थना की। इधर लगान की वसूली की शुरू की तारीख थी। तलाटियों ने वेठियाओं के द्वारा लगान भर देने की डुग्गी गाँव-गाँव पिटवादी, परन्तु तहसील में लगान की एक कौड़ी भी नहीं पहुँची। इधर गवर्नर ने यह लिखवा

हरेक ज़रूरी बात पर सरदार का हुक्म हरेक विभाग-पति के पास पहुँच जाता और उसपर अमल भी होने लगता था। जिन गाँवों में मोटरें नहीं पहुँच पाती थी उनमें डाक और सत्याग्रह-समाचार स्वयंसेवक लोग पहुँचा देते थे। हर केन्द्र पर यह बन्दोबस्त था कि गाँव में कोई ख़ास बात हो जाने पर अक्सर २-३ घंटे के अन्दर ही प्रधान कार्यालय में पहुँच जाती थीं। ऐसे समयों में मोटरों की स्पेशल छूटती थी। कभी-कभी सरकारी तारघर भी काम में लाये जाते थे। सत्याग्रही मोटरों के सिवाय निजी और कम्पनियों की मोटरें भी ताल्लुक़े में किराये पर चलती थीं और इस तरह के काम करती थीं।

सारे संगठन में कठोर अनुशासन से काम लिया जाता था। कोई स्वयंसेवक अपने नायक या विभाग-पति से यह न पूछता था कि यह काम क्यों करना चाहिए, या इतनी देर में यह काम मुझसे न हो तो मैं क्या करूँ? जिस स्वयंसेवक में ढिलाई पाई जाती थी उसे तुरन्त अयोग्य कहकर लौटा दिया जाता था। उन सबमें तपस्या थी संयम था, त्याग था, और देश-सेवा की लगन थी। स्वयंसेवक भी राष्ट्रीय तथा सरकारी हाईस्कूलों और कालेजों के विद्यार्थी थे, जो त्याग और सेवा-धर्म के भावों से भरे थे और इस सत्याग्रह की लड़ाई में राजनीति, अर्थशास्त्र, तथा समाज-विज्ञान का व्यावहारिक अध्ययन कर रहे थे। गाँवों में सत्याग्रही पहरेदार थे, जो किसीपर हथियार चलाना तो क्या कठोर वचन का भी प्रयोग न करते थे। ऐसे लोग गाँवों के चारों ओर पहरा देते रहते थे और ज्यों ही किसी तलाटी (पटवारी) या अधिकारी को देखते तो शंख, नक्कारा या बिगुल बजाकर सारे गाँव को सजग कर देते थे। बस, गाँव-भर में सन्नाटा छा जाता, मकानों के बाहर से ताले लगाकर किसान अन्दर चले जाते, सड़कें सूनी हो जातीं, लगान

उगाहनेवाले सरकारी अधिकारी जब्ती करने आते तो हर मकान पर ताले पड़े देखते थे। पंच बनने, जब्ती का सामान पहुँचाने या बोली बोलने की कौन कहे, उनकी बात पूछनेवाला भी वहाँ कोई न मिलता था। जो सामान जब्त किया जाता था, वह जहाँ-का-तहाँ पड़ा रह जाता था। धीरे-धीरे यह काम इस कमाल को पहुँच गया कि जब्ती करनेवाले सरकारी अफ़सरों को अपने आराम या सुभीते के लिए किसी चीज की जरूरत होती तो लाचार होकर सत्याग्रह छावनी पर आकर उन्हें माँगना पड़ता था। इसीपर बम्बई के 'टाइम्स' ने घबराकर लिखा था कि बारडोली से सरकारी राज उठ गया है।

शुरू-शुरू में भूल से और सरकार की पट्टी में आकर कुछ लोगों ने रिआयती लगान अदा कर दिया, पर वे लोग पछताये। अनेक पटेलों ने और तलाटियों ने इस्तीफे दे दिये। फरवरी का महीना बीत चला, लगान वसूल न हुआ। समय पर लगान न देने से लगान का एक-चौथाई बढ़ाकर उसके सहित काश्तकार से जब्ती द्वारा या और किसी तरह वसूल किया जाता था। २७ फ़रवरी को कई गाँव के रहनेवालों को ऐसे नोटिस दिये गये। परन्तु नोटिस से क्या होता है? सरकार के पास कुरकी और जब्ती के सिवाय कोई उपाय न था। इसलिए बारडोली के पड़ोस के मांडवी ताल्लुक़े में सरकारी अफ़सरों ने यह जाँच शुरू की कि बारडोली के किसानों की भैंसें तथा ज़मीनें लेने को ग्राहक मिलेंगे या नहीं? किसानों में पड़ोस का धर्म जागृत हुआ, उन लोगों ने जगह-जगह सभायें करके निश्चय किया :—

(१) बारडोली के किसानों के यहाँ जब्ती हो तो यहाँ से कोई पंच बनकर न जाय। अधिकारियों को ठहरने के लिए मकान और गाड़ी वग़ैरा न दें। कोई उनकी किसी तरह बेगार न करे।

(२) हमारे ताल्लुक़े से कोई किसान बारडोली के किसानों की ज़मीन न ले, न जोते, न जुतवाये। ज़मीन मुफ्त मिलती हो तो भी न ले।

(३) सत्याग्रह के लिए चन्दा एकत्र करें।

प्रायः सभी पड़ोसियों ने यह समझ लिया कि बारडोली-सत्याग्रह केवल बारडोली के लिए नहीं बल्कि हम सबके लिए है। इस तरह संगठन और आन्दोलन बारडोली और आस-पास के ताल्लुक़ों में ज़ोर पकड़ रहा था। इसी बीच सरकार और सरदार में लम्बी-चौड़ी लिखा-पढ़ी चल रही थी और बम्बई की धारा-सभा में मेम्बर लोग अपनी ओर से पूरा ज़ोर लगा रहे थे। इसी समय वढ़वान के प्रसिद्ध कवि श्री० फूलचन्दभाई शाह के बनाए लड़ाई के गीतों से गुजरात की भूमि गूँज रही थी। बच्चे, जवान, बूढ़े नर-नारी सबके बीच इन गीतों से जोश फैल रहा था।

जब जब्तियाँ शुरू हुई, उस समय वालोड़ में एक और तमाशा हो गया। वहाँके तहसीलदार दो साहूकारों के यहाँ ज़ब्ती करने गये। दोनों सेठ तहसीलदार से मिले हुए थे। जब तहसीलदार तीन पटवारियों को लेकर गाँव में पहुँचे तो सारे गाँव में खबर होगई और लोग तुरन्त अपने-अपने घरों में ताला लगाकर बैठ गये। दोनों सेठों को भी खबर मिली, पर उन्होंने दरवाज़े बन्द नहीं किये। तहसीलदार ने आकर कुर्की का नाटक किया और गल्लों में रक्खे हुए नोटों का बण्डल लेकर चलता हुआ। इस बात की खबर फैलते ही सारे ताल्लुक़े में गुस्से की भयानक आग भड़क उठी। गाँव-गाँव ने इनके सामाजिक बहिष्कार का इरादा किया, परन्तु सरदार ने भरी सभा में लोगों को समझाया :—

"जोश में आकर आप लोग कुछ भला-बुरा न कर बैठें। इस तरह डर दिखाने से कोई कायर शूर नहीं हो सकता। किसीको टेका लग

कर खड़ा करने से वह हमेशा थोड़े ही खड़ा रह सकता है ? जो अपनी प्रतिज्ञा के महत्व को समझता है, जिसे अपनी इज्जत का ख़याल है, वह तो कभी लगान अदा नहीं करेगा, चाहे सारा गांव अपनी प्रतिज्ञा को तोड़कर भले ही लगान अदा करदे ।

"यदि आपको यह डर हो कि इन दोनों को क्षमा कर देंगे तो दूसरों का भी पतन होगा, तो उसे भी दिल से निकाल बाहर कर दें । इस तरह यह काम नहीं चल सकता । ऐसी प्रतिज्ञावाली लड़ाइयों में हरेक आदमी का यही संकल्प होना चाहिए कि सारा गाँव भले ही लगान जमा करदे, मैं कभी न दूंगा ।

"मुझे इन बहिष्कार के प्रस्तावों आदि की ख़बर मिल चुकी है, जिनपर आप विचार कर रहे हैं । पर मैं आपसे यह कहूँगा कि अभी इन बातों की जल्दी न करें । हम सरकार के साथ लड़ने चले हैं, ख़ुद हमारे ही अन्दर जो कमज़ोर लोग हैं उनसे लड़ने के लिए नहीं । इनसे लड़कर भी आप क्या करेंगे ? ये तो आपसे भी डरते हैं और सरकार से भी डरते हैं । इसीलिए तो जब्तियों के ऐसे नाटक उन्हें करने पड़ते हैं । हमें सत्याग्रही का धर्म न छोड़ना चाहिए । वह बड़ा मुश्किल है । क्रोध के लिए उसमें कहीं स्थान ही नहीं है । यह लड़ाई आपस में लड़ने के लिए नहीं छेड़ी गई है । निर्माल्य लोगों को पैरों-तले रौंदने के लिए हमने यह युद्ध नहीं छेड़ा है । यह मानना झूठ है कि जिसके पास धन है, ज़मीन है, वह बहादुर है । अरे, इनपर तो हमें दया आनी चाहिए कि ऐसा इनका जीवन है ! ग़रीब, अपढ़, अजान लोगों के अंगूठे काट-काटकर तो इन्होंने ज़मीन इकट्ठी की है, और फिर इन्हीं ज़मीनों पर ख़ूब मुनाफ़ा लेकर किराये पर उठा दिया है । और इन ऊँचे किराये के अंकों को देख-देख कर ही सरकार ने इनके पाप के फल-

स्वरूप सारे ताल्लुके पर लगान बढ़ाया है। और जब आप इस लगान वृद्धि के विरोध में युद्ध छेड़ बैठे हैं तब यही साहूकार लोग फिर आपके रास्ते में रोड़े अटका रहे हैं। अगर आपको अपनी शक्ति का पूरा-पूरा भान हो जायगा तो आपको किसी प्रकार का दबाव डालने की जरूरत नहीं रहेगी। सब अपनेआप सीधे होते चले जावेंगे।

"हमारी इस अहिंसा-धर्म की लड़ाई में यह अच्छी तरह याद रखना चाहिए कि हम तो आपनी ओर से मजबूत रहें, परन्तु हमारा कोई भाई अगर अपनी कमजोरी से कोई खोटा काम कर बैठे तो हम बहुत ज्यादा उसके फेर में न पड़ें। हम अगर अपनें काम में चौकस रहेंगे तो काम कभी न बिगड़ेगा। और यदि कोई बुरा काम करे और उसके साथ फिर भी हम भलाई करें तो उसका फल अच्छा ही होगा। हमारा बिगड़ा हुआ भाई आगे चलकर राह पर आ सकता है। इसलिए बुरे पर मिट्टी डालकर हमें उसे भुला देना चाहिए और ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि ऐसी कुमति हममें उपजे उससे पहले मृत्यु की गोद में हम सो जायें।"

कुरकी के नोटिस घर-घर चिपकाये जाने लगे। कुरकी के अफसर दौरे लगाते थे, परन्तु शंख-नक्कारे आदि बजाकर पहरेवाले सबको सचेत कर देते थे। अहलकार लोग सुनसान गाँव देखकर हैरान हो लौट जाते थे। अफ़सरों को अपने बँगलों पर भी चैन न था। वे जहाँ डेरा डालते थ वहाँ भी सत्याग्रही स्वयंसेवक कहीं पास में कुटिया डालकर अपना थाना बना लेते थे, और उनके सारे समाचार पैरगाड़ियों और घोड़ों पर बैठकर चारों ओर पहुँचाने लगते थे। ऐसे जबरदस्त संगठन को देखकर सरकार हैरान हो गई। ज़मीन और खेतों की कुरकी के नोटिस तो लग ही गये थे, अब दमन और जबरदस्ती के जोर पर कुरकी होने लगीं। जब्ती-

अफ़सर आपस में चढ़ा-ऊपरी करने लगे कि कौन अपने काम में सफल होता है। अहलकारों को दमन करने के अधिकार भी मिल गये। ११ अप्रैल से यह काम बड़े जोरों से शुरू हुआ। कुरकी के खास आफिसर के साथ, कई मजिस्ट्रेट हथियारबन्द पुलिस, चुने हुए पठान और तीन मोटरें लेकर कुरकी का काम शुरू किया गया। एक डिप्टी पुलिस सुपरिण्टेण्डेन्ट खास तौर पर मुक़र्रर हुआ। खुफ़िया पुलिस का भी एक दल तैनात हुआ। इस तरह सज-धजकर गाँव में दिन-रात सरकारी डाके पड़ने शुरू हुए। खुले मकानों पर डाका पड़ना तो कोई बात न थी, और दरवाजों पर इधर-उधर टूटी-फूटी खाट और पलंग सहज में मिल जाते थे। पर इन्हें भी उठाने को आदमी न मिलते थे। सरकारी डाकेवाले दीवारों को फाँदकर भी घर के भीतर घुसने लगे। जो माल मिलता, सिपाहियों को ही लादकर ले जाना पड़ता था। बैल न मिलने पर पठानों को छकड़े भी खींचने पड़ते थे। कुरकी के अफसरों को जब और कोई उपाय न सूझा तो उन्होंने चरते हुए पशुओं पर हाथ लगाया। बैलों की कुरकी नहीं कर सकते थे, भागती गायों को पकड़ने में कठिनाई होती थी। अतः उन्होंने भैंसों को पकड़ना और बेदर्दी से पीटना शुरू किया। एक भैंस पर इतनी मार पड़ी कि वह मर गई। यह देखकर और भैंसों का भी पकड़ा जाना कठिन होगया। किसी-न-किसी ढंग से जो भैंसें जब्त भी की जा सकीं उनको पानी और चारा देने का कोई बन्दोबस्त न था। यह जब्ती भी अंधाधुंध थी। पता न था कि कौन भैंस किस किसान की है। इन भैंसों में कुछ ऐसे लोगों की भी थीं जिनके ज़मीन न थी और जिनसे लगान नहीं पाना था। उन लोगों ने नोटिस दिये कि हमारी भैंसें वापस करो, नहीं तो अदालत में घसीटेंगे।

घर पर सामान न मिलता था तो कपास या दूसरे माल की राह

चलती गाड़ियाँ तक ज़ब्त करली जाती थीं। ज़ुर्मानों की कुरकी भी धूम से हुई। तीस-तीस हज़ार की ज़मीनें डेढ़-डेढ़, दो-दो सौ रुपयों के लिए कुरकी पर चढ़ीं। और इसी तरह डेढ़-डेढ सौ की भैंसें पाँच-पाँच रुपये पर नीलाम हुईं।

सत्याग्रहियों के पहरे से, बाजे से, जय-घोष से, डाक से और अद्भुत संगठन से घबराकर ३ मई को ताल्लुके भर में नोटिस चिपकाये गये, जिनके द्वारा कोशिश की गई कि स्वयंसेवक लोगों को इन कामों से रुकावट हो, और गिरफ्तारियों और जेल की धमकियाँ दी गई। किसानों को भी जोश आया। कलक्टर को मोटर मिलना मुश्किल होगया। तीन बैल-गाड़ियाँ मंगवाई। किराये पर देनेवाले किसानों को जब उनकी भूल मालूम हुई तो उन्होंने गाड़ीवानों को मना किया। सामान लद चुका था, पुलिसवालों ने उतारने न दिया। लाचार हो गाड़ी और बैल छोड़कर हाँकनेवाले और किसान लोग चले गये। इस घटना पर सरकार ने श्री रविशंकर भाई को ५ मास १० दिन की कड़ी कैद की सजादी, और इस सज़ा पर महात्माजी ने अपनी असीस दी। रविशंकरजी से तो आरम्भ किया गया, फिर तो किसी-न-किसी बहाने काम करनेवालों और स्वयं-सेवकों में जो-जो अगुआ थे वे सभी धड़ाधड़ जेल जाने लगे, और सत्याग्रह के चौथे महीने में बारडोली ताल्लुके भर में गुण्डे पठानों का राज्य शुरू होगया। सरकार संगठित डाकेज़नी से संतुष्ट न हुई, अब गुण्डों के राज्य में यह पूछने की जरूरत न थी कि जिसका यह मकान है उसमें हमें कुछ पाना है या नहीं? बाड़ों में, गाँवों में, खेतों में दिन-रात पठान घूमते पाये जाने लगे। रात के एक-एक, दो-दो बजे किसानों के दरवाज़े खट-खटाये जाते और उन्हें इस तरह पुकारा जाता मानों कोई सगा सम्बन्धी आया हुआ है। अब हाल यह था कि राह चलते आदमी, चाहे वे कहीं

के हों, बारडोली की सड़कों पर लूट जाते थे, उनकी गाड़ियाँ और पशु छिन जाते थे, और उनकी दोहाई सुननेवाला नहीं था। ये लोग चाहे जिसके घरों में घुस जाते थे और मनमानी चीजें उठा लेजाते थे। अंधेर यहाँतक बढ़ा कि स्त्रियों के सतीत्व पर भी आक्रमण होने लगे। दिन-दहाड़े की चोरी, ज़बरदस्ती, डाका, लूट और तरह-तरह के जुल्मों की शिकायतें सरकार तक बरम्बार पहुँचती भी गईं, तो भी बम्बई-सरकार ने यह कहकर गुण्डों को चाल-चलन की सनद दे दी कि "सरकार इस बात से संतुष्ट है कि उनका व्यवहार हर तरह पर आदर्श-रूप रहा है।" सरकार के एक बड़े ख़ैरख़्वाह और किसानों के बड़े हितैषी बननेवाले अदलजी बहराम नाम के एक पारसी सज्जन किसानों को बहकाने के लिए, कि वे लगान देने को राजी हो जायँ, समाचारपत्रों में सरकार की ख़ैरख़्वाही के लेख छपवाने लगे। एक ओर से जहाँ कमिश्नर और बहरामजी सरकार की ओर से अन्दोलन कर रहे थे, दूसरी ओर से देश के बड़े-बड़े नेताओं में यह खलबली पड़ी हुई थी कि हम बारडोली की इस अद्भुत लड़ाई को चलकर देखें। सरदार वल्लभभाई यह नहीं चाहते थे कि भारत के बड़े-बड़े नेता बारडोली में आकर इस लड़ाई को अखिल-भारतीय रूप दे दें। उन्होंने महात्माजी को ही आने से रोका। श्री राज-गोपालाचार्य और श्री गंगाधरराव देशपांडे को सरदार ने बारडोली आने से रोका। गुजरात के बाहर के अनगिनत स्वयंसेवकों की अर्ज़ियाँ आईं, परन्तु सरदार ने धन्यवाद देकर उन्हें आने से रोक दिया। पठानों के अत्याचार ऐसे बढ़ गये थे कि बाहर से चन्दे की मदद की ज़रूरत मालूम हुई। सरदार ने अपील की और महात्माजी ने उसे दोहराया। फल यह हुआ कि केवल भारत नहीं बल्कि संसार के भिन्न-भिन्न भागों से चन्दा आने लगा। सब जगह से इस अद्भुत संग्राम के साथ सहानुभूति प्रकट की जाने लगी।

सरदार के लाख रोकने पर भी कुछ नेता तो आकर ही रहे। पहले-पहल श्री भरूचा और नरीमान आये। श्री नरीमान ने वारडोली में ५,००० किसानों की सभा में कहा :—

"मैं तो आपकी टीका करनेवाले से कहूँगा कि यहाँ आकर पहले किसानों की हालत देखो, तव आपको सच्ची हालत मालूम होगी। चन्द घण्टों में ही मैंने यहाँकी हालत को देख लिया है। सारा ताल्लुक़ा जेल वन गया है। वेचारे किसान दिन-दिन भर अपने जानवरों को लेकर घर में वन्द रहते हैं। लोग कहते हैं कि चोर, लुटेरों और पिण्डारियों को निकालकर अंग्रेज यहाँ राज कर रहे हैं। पर मैं तो कहूँगा कि और कहीं चाहे जो हो, वारडोली में तो आज पिण्डारियों, पठानों और बम्बई के गुण्डों का ही राज्य है। इस ताल्लुके में आजकल घूमनेवाले पठान वही बम्बई के पठान हैं जिनके पीछे रात-दिन पुलिस घूमती रहती है, जो वहाँ लोगों के गले काटते फिरते हैं। अव ये वदमाश किसान वहनों से भी छेड़छाड़ करने लगे हैं। मैं कहता हूँ, सरकार के लिए इससे अधिक लज्जाजनक और कुछ नहीं हो सकता। यह लड़ाई तो मामूली लगान-वृद्धि की थी। पर सरकार ने इसे वहुत विशालरूप दे दिया है। इसलिए अव कहा जा सकता है कि आप तो सारे देश के लिए लड़ रहे हैं। मुझे तो आश्चर्य होता है कि देश के वडे-वडे नेताओं का, जो परिषदें और प्रस्ताव करते रहते हैं, ध्यान अवतक वारडोली की तरफ़ क्यों नहीं आकर्षित हुआ? मेरा तो ख़याल है कि पिछले सौ वर्ष में सरकार की जालिम नीति का सामना करने के लिए यदि कोई सच्चा आन्दोलन हुआ है तो वह वारडोली का सत्याग्रह है। मैं कहता हूँ कि अगर एक दर्जन ताल्लुके भी इस तरह संगठित हो जायँ और आधे दर्जन ऐसे सेनापति पैदा

रूप से करती है। प्रजा को सिर्फ़ माल के महकमे से शिकायत है और उसीसे उसने लड़ाई छेड़ी है। परन्तु सरकार ने तो जनता पर जुल्म करने के लिए न्याय-विभाग को कलंकित किया, कृषि-विभाग को भी न छोड़ा, और आबकारी-विभाग को तो प्रत्यक्ष अपना शस्त्र ही बना लिया। कितने ही मास्टरों को इस युद्ध में दिलचस्पी लेते देखकर उन्हें भी बदल दिया और इस तरह विद्या-विभाग जैसे निर्दोष और पवित्र विभाग को अपवित्र कर दिया। पुलिस-विभाग तो सबसे आगे है ही। इस तरह वह तो सुसंगठित रूप से हर तरफ़ से लोगों पर जुल्म कर रही है, और किसानों से कह रही है कि तुम अकेले रहो?

"सीधी-सी बात तो है। किसानों से मैं साफ़ कहूँगा कि जो तुम्हारे साथ विश्वासघात करे उसे तुम कभी माफ़ न करो। 'माफ़ न करो' के यह मानी नहीं हैं कि उसे मारो या पीटो। नहीं। यह न करो। आप तो उसे यह कह दो कि हम सबको एक नाव में बैठकर जाना है। अगर किसीको नाव में छेद करना है तो वह नाव से उतर जावे। हमारा-उसका कोई सम्बन्ध नहीं। यह संगठन आत्मरक्षा के लिए है, किसीको दुःख देने के लिए नहीं। आत्म-रक्षा के लिए भी संगठन न करना आत्म-हत्या करने के समान है। हम तो पौधे को भी जानवरों से बचाने के लिए बाड़ वग़ैर लगाकर सुरक्षित रखते हैं। तब जब इतनी बड़ी सरकार से लोहा लेना है, तो अपना संगठन भी न करें?"

सरकार के सारे कामों में पटेल और पटवारी मदद दिया करते थे। इस लड़ाई में पटवारियों को सरकार की मदद करने के लिए सत्याग्रह की दशा में अपने हाथ से नोटिस चिपकाने पड़े, डुग्गी पीटनी पड़ी, सिर पर बस्ता लाद-लादकर घूमना पड़ा, ज़ब्ती के अफ़सरों के लिए चौका-बासन करना पड़ा और रसोई बनानी पड़ी। इधर तो

सरकारी अफ़सरों की हर तरह की सेवा करने के लिए झुकना पड़ा और उधर गाँव के लोगों के सामने दुरदुर होना पड़ा और गाँव के लड़के 'बावला कुत्ता' कहकर उन्हें चिढ़ाने लगे। इतने पर भी उनकी दशा यह हुई कि सरकार और प्रजा दोनों उन्हें सन्देह की निगाह से देखते थे। इस दुर्दशा को न सहकर अनेक पटवारियों ने इस्तीफ़े दे दिये।

अब स्वयंसेवकों को छोड़कर सरकार ने गिरफ्तारी के अस्त्र का प्रयोग किसानों पर करना आरम्भ किया। इस मास के आरम्भ में क़रीब १८ गिरफ्तारियाँ हुई, जिनमें से अधिकांश किसान ही थे। सिर्फ एक-दो गुजरात-विद्यापीट के विद्यार्थी थे। कई दिन तक उनपर मामला चलता रहा। कहने की आवश्यकता नहीं कि सरकारी आक्षेप झूठे थे। पर सत्याग्रही अपना बचाव तो करते ही न थे। इसलिए सबने चुपचाप अपने-अपने बयान पेश करके जिन्हें जो सज़ा सुनाई गई उसको हँसते हुए स्वीकार कर लिया और तपस्या के लिए चले गये। वे जिस दिन जेल गये, जनता ने उन्हें बड़े सम्मान के साथ विदा किया। स्टेशन पर हज़ारों का झुण्ड था।

१२ जून को सारे देश में बारडोली-दिवस मनाया गया। देश में सैकड़ों सभाओं में बारडोली के सत्याग्रह का रहस्य लोगों को समझाया गया। सत्याग्रह के लिए चन्दा एकत्र किया गया और सत्याग्रहियों के प्रति सहानुभूति तथा सरकार की दमन-नीति की निन्दा करनेवाले प्रस्ताव पास किये गये।

१२ जून १९२८ तक ३,६१२ खालसा नोटिस जारी हो चुके थे और सत्याग्रह-कोष में ८२०८७=)।।। एकत्र हो चुके थे।

१२२ पटेलों में से ८४ ने इस्तीफ़े दे दिये, ४५ पटवारियों में से १९ ने नौकरी छोड़ दी। इस तरफ़ से सरकार का एक अधिकारी लिखता

कि ताल्लुका दबता जा रहा है, अब नहीं तो थोड़ा दमन और कि वह औंधे मुँह गिरा, पर दूसरी तरफ़ से पुलिसवाले लिखते कि लोग दिन-दिन कट्टर हुए जा रहे हैं और मरने पर भी तुले हैं, अपनी टेक न छोड़ेंगे। सरकार ने ठीक परिस्थिति की जाँच के लिए एक खास पुलिस अफ़सर मिस्टर हेली को भेजा। मि० हेली के साथ कमिश्नर भी आया। मि० हेली ने रिपोर्ट भेजी कि यहाँ पुलिस की कोई ज़रूरत नहीं है और न पठानों का काम है। इसपर पठान लोग हटा दिये गये।

इस समय तक बम्बई-धारासभा के कोई १६ सदस्यों ने अपने इस्तीफ़े दे दिये, और फिर सभी बारडोली के प्रश्न को लेकर अपनी जगहों के लिए खड़े हुए। सबके सब फिर से चुन भी लिये गये।

"भारत-सेवक-समिति (सर्वेण्ट्स ऑफ़ इण्डिया सोसायटी) ने न केवल इस आन्दोलन से सहानुभूति दरसाई बल्कि सरकार से ज़ोर देकर इनकी माँग पूरी करने की प्रार्थना भी की।

इसके बाद बम्बई के इण्डियन-चैम्बर, ऑफ़ कामर्स के कुछ सहृदय मित्र गोलमेज़ कॉनफ़्रेंस के लिए सरकार को राज़ी करने लगे। जून महीने के प्रारंभ में सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास कमिश्नर से मिलने के लिए सूरत गये। साथ ही उन्होंने इस विचार से सरदार वल्लभभाई को भी वहाँ बुलाया कि कमिश्नर और उनके बीच रूबरू कुछ खानगी तौर से बातचीत हो जाय। उन दिनों सरदार को काम की बड़ी गड़बड़ी थी। उन्होंने श्री महादेव देसाई को सूरत भेज दिया। श्री महादेव भाई की मि० स्मार्ट से खूब बातचीत हुई, जिसमें महादेवभाई ने यह देखा कि मि० स्मार्ट हर तरह से सत्याग्रह को तोड़ने पर तुले हुए हैं। मि० स्मार्ट का यह ख़याल था कि अधिकांश सत्याग्रही जून के अन्त तक आत्म-समर्पण कर देंगे। सर पुरुषोत्तमदास ने मि० स्मार्ट को समझाया

कि "आपका मत गलत है। आपको सत्याग्रहियों की सहन-शक्ति का पता नहीं है। जब्ती-अफ़सरों तथा पठानों के व्यवहार ने सरकार को बदनाम कर दिया है।" इसके बाद उन्होंने अपने चेम्बर में यह कहा कि यदि सरकार नहीं मानती तो हमारे प्रतिनिधि श्री लालजी नारणजी बारडोली के प्रश्न पर कौंसिल से इस्तीफ़ा क्यों न देदें? तब चेम्बर के अध्यक्ष श्री मोदी ने सरकार की नीयत जानने के लिए गवर्नर से पत्र-व्यवहार शुरू किया, पर इसका कुछ भी नतीजा न निकला। उत्तर में गवर्नर ने जो पत्र भेजे उनमें सत्ता-मद भरा था। फिर भी उन्होंने सोचा कि शिष्ट-मण्डल लेकर गवर्नर से रूबरू मिलना चाहिए और उससे समझौते की बातचीत प्रत्यक्ष करनी चाहिए। इसलिए सत्याग्रहियों की आवश्यक शर्तें जानने के खयाल से सर पुरुषोत्तमदास साबरमती पहुँचे, और वहाँ उन्होंने वल्लभभाई को भी बुलवाया। महात्माजी से मिलकर वह श्री लालजी नारणजी तथा श्री मोदी को लेकर गवर्नर से मिलने पूना गये। पर इस बार भी उनको बड़ी निराशा हुई। सर पुरुषोत्तमदास चाहते थे कि गवर्नर सरदार वल्लभभाई को एक गोलमेज कान्फ्रेंस में बुलावें और उनसे समझौता करलें। पर ऐसा नहीं हुआ। तब वह स्वयं ख़ानगी तौर से गवर्नर से मिले। गवर्नर उनसे बड़ी अच्छी तरह मिले, पर अपनी बात को उन्होंने नहीं छोड़ा। उनकी शर्त वही थी—सत्याग्रही पहले बढ़ा हुआ लगान अदा करदें या पुराना लगान जमा कराके वृद्धि की रक़म किसी तीसरे पक्ष के पास जमा करादें, तब जाँच हो सकेगी। शिष्ट मण्डल तो यह आशा लेकर लौटा कि संभव है इस शर्त पर दोनों पक्ष का समझौता हो जाय। अतः जब सर पुरुषोत्तमदास पूना से बम्बई लौटे तो वह वल्लभभाई से मिले और शिष्टमण्डल से गवर्नर की जो बातचीत हुई थी वह सब सुनाई। पर स्पष्ट ही सरदार इन शर्तों को स्वीकार नहीं कर सकते

थे। अतः यह प्रयत्न भी असफल ही रहा। लालजी नारणजी ने सरकार की हठ को अनुचित बताते हुए धारा-सभा से अपना इस्तीफ़ा दे दिया।

जुलाई के आरंभ में बारडोली-सत्याग्रह का समर्थन करने के लिए भड़ौंच में एक ज़िला परिषद् हुई, जिसके स्वागताध्यक्ष श्री कन्हैयालाल मुनशी थे और अध्यक्ष श्री खुरशेदजी नरीमान।

ज्यों-ज्यों लोकमत प्रबल होता गया, सरकार की स्थिति साँप-छछूँदर की-सी होती गई। दमन करती है तो संसार में बदनाम होती है, क्योंकि बारडोली के किसान अखंड शान्ति का पालन कर रहे थे। इधर उनकी माँग के सामने अपना सिर झुकाती है तो सरकारपन ही मारा जाता है। यदि वह झुक जाय तो उसकी प्रतिष्ठा ही क्या रही? फिर यह प्रश्न केवल बारडोली का तो था नहीं। यहाँ तो आये दिन उसे किसी-न-किसी ताल्लुक़े में नया बन्दोबस्त करना ही पड़ता है। सभी जगह के लोग इसी तरह ताल ठोंक कर फिरंट हो जायँ तब तो उसके लिए यहाँ शासन करना भी असंभव हो जाय। अन्त में 'टाइम्स ऑफ़ इण्डिया' ने अपने विशेष संवाददाता को बारडोली भेजा। तीन लम्बे-लम्बे और चौंका देनेवाले लेख निकले। चार-पाँच दिन के अन्दर सारे संसार में यह ख़बर फैल गई कि "हिन्दुस्तान के बम्बई इलाक़े में बारडोली नाम का एक ताल्लुक़ा है। वहाँ महात्मा गांधी ने बोलशेविज्म का प्रयोग करना शुरू किया है। प्रयोग बहुत हदतक सफल हो गया है। वहाँ सरकार के मारे कल-पुर्ज़े बन्द हो गये हैं। गाँधी के शिष्य पटेल का बोल-बाला है। वही वहाँका लेनिन है। स्त्रियों, पुरुषों और बालकों में एक नई आग सुलग उठी है, और इस दावानल में राजभक्ति की अन्त्येष्टि क्रिया हो रही है। स्त्रियों में नवीन चैतन्य भर आया है। अपने नायक वल्लभभाई पटेल में वे अनन्य भक्ति रखती हैं। वह उनके गीतों का विषय हो रहा

है। पर इन गीतों में राजद्रोह की भयंकर आग है। सुनते ही कान जल उठते हैं। निःसन्देह यदि यही हाल रहा तो आश्चर्य नहीं कि यहां शीघ्र ही खून की नदियां बहने लगें।" इत्यादि।

और ब्रिटिश शेर नींद से अपने होंठ चाटता हुआ जमुहा कर उठा। उसने गर्जना की—"सम्राट की सत्ता का जो अपमान कर रहा हो उसकी मरम्मत करने के लिए साम्राज्य की सारी शक्ति लगादी जायगी।" फलतः वायुमण्डल में अफवाहें उड़ने लगीं कि बारडोली में सम्राट् की सत्ता की रक्षा के लिए फ़ौज आरही है। सिपाहियों के लिए खाटें, तम्बू, रसद, सामान वग़ैरा की व्यवस्था हो रही है। लेकिन बारडोली के निर्भय किसान इससे भयभीत नहीं हुए।

सरकार की विपरीत मनोदशा और किसानों के क्लेश देखकर देश के बड़े-बड़े नेता अपनी सेवायें अर्पण करने के पत्र सरदार वल्लभभाई पटेल के नाम भेजने लगे। सरदार वल्लभभाई पटेल की गिरफ्तारी की अफ़वाहें भी उड़ने लगीं। तब महात्माजी ने भी उन्हें लिखा कि जब ज़रूरत हो, मुझे खबर कर देना; आजाऊँगा। डा० अनसारी, पं० मदनमोहन मालवीय, पं० मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय आदि ने भी इसी आशय के पत्र सरदार के नाम भेजे। सरदार शार्दूलसिंह ने तो देश में बारडोली से सहानुभूति-सूचक व्यक्तिगत सत्याग्रह छेड़ने की सिफारिश भी की। शिरोमणि अकाली दल ने अमृतसर के तमाम जत्थों को इस आशय की एक गश्ती चिट्ठी भेजी कि यदि बारडोली की न्याय्य माँगों को सरकार इसी तरह ठुकराती रही तो शिरोमणि अकाली दल को उसकी सहायता के लिए जाना पड़ेगा, इसलिए अकाली भाई अपने बारडोली-स्थित किसान भाइयों के लिए आवश्यक कष्ट सहने को तैयार रहें।

इधर वारडोली से पठान हटा लिये गये और अब उनके स्थान पर हथियारबन्द पुलिस आ गई। मि० स्मार्ट हारकर अहमदाबाद लौट गये। किसानों की कठोर तपस्या विजयी हुई। यह देखकर मेघराज इन्द्र गद्गद् हो गये। वह आकाश से वर्षा द्वारा उनपर अभिषेक करने लगे। किसानों ने महीनों से बन्द किये हुए अपने मकानों को खोला और अपनी प्यारी ज़मीन को निर्भयतापूर्वक जोतने लगे, यद्यपि यह कहा जाता था कि उनमें की कई बिक चुकी हैं। कुछ लोगों को यह भी आशंका थी कि सरकार उन लोगों पर शायद मामला चलाये, जो बिकी हुई ज़मीनों पर हल चलायेंगे। पर एक भी किसान इस बात से नहीं डरा, न पीछे हटा। बहनें तो इससे भी आगे बढ़ गई थीं। कुमारी मणिबेन पटेल और श्रीमती मीठांबेन पेटिट ने बिकी हुई ज़मीनों पर अपने रहने के लिए कुटियायें बनवाली।

ज़मीन की ज़ब्ती के नोटिस छः हज़ार से भी ऊपर निकल चुके थे। कितने ही स्वयंसेवक जेल गये, जानवर भी बीमार हुए। सबने बड़े-बड़े नुक्सान उठाये। वारडोली तबाह हो गई, परन्तु किसीने पीछे पाँव नहीं रक्खा। सरकार और सरदार के बीच समझौते की कोशिश भी हुई, परन्तु उसमें सफलता न हुई। अन्त में २३ जुलाई को धारासभा में गवर्नर ने अपना अन्तिम निश्चय यह सुनाया कि सरकार माँगी हुई निष्पक्ष, स्वतंत्र और सम्पूर्ण जाँच के लिए तैयार है, केवल इसी शर्त पर कि लोग नया लगान पहले जमा करदें और यह आन्दोलन बन्द कर दिया जाय।

सरकारी शर्तों में आन्दोलन बन्द करने की शर्त तो फ़ौरन पूरी की जा सकती थी, अगर सरकार निष्पक्ष जाँच की माँग बिना किसी और शर्त के मंजूर कर लेती, परन्तु नया लगान पहले कैसे जमा हो सकता

था ? झगड़ा तो इस बात का था कि या तो सरकार बढ़े हुए लगान को रद्द करदे, या अगर इसे वह न्याय्य समझती है तो सत्य के निर्णय के लिए निष्पक्ष और स्वतंत्र समिति से जांच करावे। फिर नया लगान पहले ही से अदा कराने पर किसान कब राज़ी होने लगे ? इस सत्याग्रह में वे हार कब गये थे ?

अतः सरदार वल्लभभाई तथा उनके किसान अड़ गये। पर इस समय श्री रामचन्द्र भट्ट नामक धारा-सभा के एक सभ्य के हृदय में एकाएक करुणा का संचार हुआ। उन्होंने, किसानों की तरफ़ से नहीं, किसानों के लिए सरकारी खजाने में ताल्लुके के बढ़े हुए लगान के रुपये जमा करा देने की इच्छा प्रकट की। पिछले अकाली-सत्याग्रह के समय भी इसी तरह सर गंगाराम 'गुरु-का-बाग़' की ज़मीन अपने यहाँ रहन में रखने के लिए राज़ी हो गये थे। सरकार के भाग्य से या किसी अज्ञात अदृश्य की प्रेरणा से आनबान के समय, जबकि देश के बलाबल को नापने का समय आजाता है, कोई ऐसे व्यक्ति पैदा हो जाते हैं जिनके हृदय में एकाएक देश-भक्ति और भ्रातृ-प्रेम का उदय हो जाता है। श्री रामचन्द्र भट्ट ने भी यह रक़म जमा करने की इच्छा प्रकट करके संसार की आँखों में सरकार की प्रतिष्ठा की बड़े मौक़े पर रक्षा कर ली। क्योंकि यही एक ऐसी बात थी जिसपर दोनों पक्ष अड़े हुए थे। इसके बाद तो सुलह का मार्ग बहुत आसान हो गया। यह सारी व्यवस्था धारा-सभा के के सभ्यों द्वारा हुई।

गांधीजी ने गवर्नर के भाषण पर क्रोध न करने की जनता को सलाह दी। उनकी माँग को फिर जनता के सामने रक्खा और अन्त में श्री रामचन्द्र भट्ट के उपर्युक्त कार्य पर अपने विचार इस तरह प्रकट किये :—

"जिस बढ़े हुए लगान को अदा न करने के लिए सत्याग्रह छेड़ा

गया था, उसे बम्बई के किसी गृहस्थ ने सरकार में जमा करा दिया है, ऐसा अख़बारों में छपा है। यदि सरकार को इतनी बड़ी रक़म भेंट करने का वह विचार ही कर चुके हों, तो उन्हें कौन रोक सकता है? यदि ऐसी भेंट से सरकार अपना मन सन्तुष्ट करले तो हम उसका द्वेष न करें। बम्बई में रहनेवाले बारडोली ताल्लुके के इन गृहस्थ ने यह रुपये जमा कराके अपना नुक़सान किया या जनता का, इसका निर्णय आज नहीं हो सकता। यह रक़म सरकार के लिए तुच्छ है। पर यदि उससे उसे सन्तोष हो जाय और वह सुलह करने पर राज़ी हो जाय तो सुलह कर लेना सत्याग्रही का धर्म है।"

पर कहीं कोई यह ख़याल न करले कि सरकार झुक गई है। अतः लंदन से सहायक भारतमंत्री अर्ल विण्टर्टन को भी गवर्नर के भाषण का समर्थन करने की जरूरत दिखाई दी। उनसे पूछे गये प्रश्नों का जवाब देते हुए अर्ल विण्टर्टन ने हाउस ऑफ़ कामन्स में कहा :—

"आज बम्बई की धारा-सभा में सर लेसली विल्सन ने बारडोली के सम्बन्ध में जो शर्तें पेश की हैं, वे पूरी न की गईं तो बम्बई-सरकार को पूर्ण अधिकार है कि वह आन्दोलन को कुचल दे और जनता को क़ानून का आदर करने पर मजबूर करे। इसमें भारत-सरकार और साम्राज्य-सरकार पूर्णतया उसके साथ हैं। शर्तों के न मानने के साफ़ मानी यह होंगे कि आन्दोलन-कर्त्ताओं के दुःख असली दुःख नहीं हैं। वे ख्वामख्वाह सरकार को झुकाकर अपनी बातें मानने पर मजबूर करना चाहते हैं।"

इस प्रकार सरकार ने तो ऊपर से तो तानाशाही दिखाई, पर भीतर-ही-भीतर श्री रामचन्द्र भट्ट को प्रेरणा की गई कि बारडोली के किसानों की तरफ़ से नया लगान चुका देने की रज़ामन्दी ज़ाहिर करें।

ऊपर से उनसे कहा गया कि हम आपकी बात नहीं सुनेंगे, सूरत के ही प्रतिनिधियों की बात सुनेंगे; परन्तु जब उन प्रतिनिधियों की सूरत नहीं नज़र आई, तब भट्टजी की बात चुपचाप मान ली गई। इस कथा के विस्तार में न जाकर संक्षेप में इसका अन्त इस प्रकार सरदार के शब्दों में ही कर देना चाहते हैं :—

"परमकृपालु ईश्वर की कृपा से हमने जो प्रतिज्ञा की थी उसका सम्पूर्ण पालन हो गया। हम लोगों पर बढ़ाये गये लगान के बारे में हम जैसी जांच चाहते थे सरकार ने वैसी जाँच-समिति का नियुक्त करना क़बूल कर लिया है। खालसा ज़मीनें किसानों को वापस मिलेंगी, जेल में गये हुए सत्याग्रही छोड़ दिये जायेंगे, पटेल और तलाटियों को फिर उनकी नौकरी पर रख लिया जायगा, और भी जो छोटी-छोटी मांगें हमने पेश की थीं उनकी स्वीकृति हो गई है। इस तरह हमारी टेक पूरी करने के लिए हमें परमात्मा का उपकार मानना चाहिए।

"अब हमें पुराना लगान अदा कर देना चाहिए, बढ़ा हुआ लगान नहीं। मैं आशा करता हूँ कि पुराना लगान अदा करने की सारी तैयारी आप करके रक्खेंगे। लगान जमा कराने का समय आते ही मैं सूचना कर दूंगा।

"अब सब लोग अपने-अपने काम-काज में लग जावें। अभी तो हमें बहुत-सा उपयोगी काम करना है। उसे इकट्ठा करने की तैयारी तो हमें आज से ही करनी पडेगी। इसके अतिरिक्त सारे ताल्लुक़े में रचनात्मक काम करने के लिए भी हमें खूब प्रयत्न करना पडेगा। इस विषय में तफ़सीलवार सूचना फिर दी जायगी।

"संकट के समय आत्म-रक्षा के लिए जिन खास लोगों से हमें सम्बन्ध तोड़ना पड़ा तथा दूसरी तरह के व्यवहार भी पंचों की आज्ञा

से बन्द करने पडे, उनपर पंचों को चाहिए कि वे फिर विचार करें। जिन्होंने हमारा विरोध किया, उनका भी हमें तो विरोध न करना चाहिए। सारी कटुता को भुलाकर अब हमें सबसे प्रेमपूर्वक हिलना-मिलना चाहिए। बारडोली के किसानों को अब इस बात के समझाने की जरूरत तो नहीं होनी चाहिए।"

बारडोली की लड़ाई स्वराज्य के लिए न थी। वह जिस बात के लिए थी उसमें उसे पूरी विजय हुई। गुरु-का-बाग़ के सत्याग्रह में भी सिक्ख लोग एक विशेष बात के लिए लड़े थे और उसमें उन्हें पूरी सफलता हुई थी। खेड़ा, बोरसद और नागपुर के झंडा-सत्याग्रह में भी खास-खास बातों पर सत्याग्रह हुआ और सबमें सत्याग्रहियों की जीत हुई। इन सब सत्याग्रहों में विशेषता यह थी कि शत्रु-पक्ष से जितने अत्याचार होते थे, सत्याग्रही उन्हें सहता परन्तु अपनी बात पर अड़ा रहता था। दूसरे पक्ष को किसी तरह का कष्ट नहीं पहुँचाता था और न बदले का भाव मन में लाता था। जिस बात पर अड़ता था उसे पूरा करके ही छोड़ता था, चाहे इस कोशिश में जान क्यों न चली जाय। किसानों को इस तरह की लड़ाई सीखने के लिए सत्याग्रह का इतिहास जानना जरूरी है। अफ़्रीका के सत्याग्रह से लेकर चम्पारन, खेड़ा, गुरु-का-बाग़, बोरसद और नागपुर के सत्याग्रह का इतिहास भी बारडोली के साथ-साथ पढ़ने लायक है।[1]

१. इन सब सत्याग्रहों का इतिहास संक्षेप में 'मण्डल' से प्रकाशित 'कांग्रेस का इतिहास' में दिया गया है। इसका मूल्य २॥) है। —सम्पादक

: ३ :

विदेशी राज्य से असहयोग और सत्याग्रह

१. विदेशी राज्य प्रजा के राज़ी हुए बिना नहीं रह सकता

किसी देश की प्रजा के लिए पहले तो यह बात स्वाभाविक नहीं है कि किसी दूसरे देश का राज्य पसंद करले। यदि ऐसा कभी हो भी तो प्रजा इसलिए विदेशी राज्य पसन्द कर सकती है कि विदेशी राज्य से उसका कल्याण हो। परन्तु जिस विदेशी राज्य से प्रजा का कल्याण भी नहीं होता, वह प्रजा की रजामन्दी से नहीं बल्कि जबरदस्ती शासन करता है। यह बात केवल विदेशी शासन की ही नहीं है। वेन, रावण, कंस जरासंध आदि विदेशी राजा न थे, तोभी प्रजा पर जबरदस्ती कठोर शासन करते थे। वेन को ऋषियों ने मार डाला। रामचन्द्रजी ने रावण का वध किया। कंस और जरासंध को श्रीकृष्ण ने मारा, ये राजा थे और अपनी जबरदस्ती से राज्य करते थे, इसलिए इन्हें मार डाला गया और उनकी जगह पर कोई अच्छा हाकिम राजा बना दिया गया। परन्तु आजकल अंग्रेजों के राजा का तो नाम ही नाम है। असल में राज्य तो अंग्रेजी प्रजा करती है और उस अंग्रेजी प्रजा में भी उस वर्ग के लोग असल में राज्य की बागडोर अपने हाथ में रखते हैं जिनके हाथ में अंग्रेजी राज्य का अधिकार है और जो सारी प्रजा के एक छोटे से धनवान अंश हैं। जिनका स्वार्थ न केवल भारतवर्ष के बल्कि दुनिया भर के शोषण में है। एक आदमी का राज्य हो तो अत्याचार को दूर करने के लिए उसे ही दूर कर दिया जाय, परन्तु जब एक समूह-का-समूह या जाति-की-

जाति राज्य करती हो तो पहले तो उन सबको नष्ट कर देना सम्भव नहीं है, दूसरे व्यक्तियों को नष्ट करने से दुर्नीति या अत्याचार का नाश नहीं हो सकता।

कोई आदमी या कोई समाज दूसरे आदमी या दूसरे समाज पर बिना उसकी रजामन्दी के अत्याचार नहीं कर सकता। कोई आदमी या समाज कभी अत्याचार सहने के लिए राज़ी हो भी जाय, तो उसकी रज़ा-मन्दी का कारण केवल उसकी दुर्बलता है। भारत की प्रजा इसी दुर्बलता के कारण मुट्ठी-भर अंग्रेजों की गुलामी में फंस गई। यहाँ के आदमी और यहाँ के समाज जुल्म सह लेने के लिए राज़ी होगये। इसीलिए विदेशियों ने धीरे-धीरे हमारे देश में अपना क़दम मज़बूत कर लिया। आज भी कुछ गया नहीं है। हम चाहें तो आज भी अपनी जान पर खेल जायें और निश्चय करलें कि 'आज से हम विदेशियों का अत्याचार नहीं सहेंगे।' फिर हमारे छुटकारे में कुछ भी देर नहीं लगती।

हमारे किसान भाइयों को अपनी इज्जत का, अपनी स्वतंत्रता का और अपने भले-बुरे का ख़याल न रहा हो ऐसी बात नहीं है। हमारे यहाँ के शांत और सीधे किसान अपने दुःख और झगड़े गाँव की पंचायत के सामने पेश किया करते थे। जब पंचायतें तोड़ डाली गईं, तब उन्हें समझाया गया कि अपने झगड़ों का निपटारा तुम अंग्रेज़ी अदालतों में कराया करो, वहाँ बहुत अच्छा न्याय होगा। अंग्रेज़ रोज़गारियों ने अदा-लत का रोज़गार खड़ा करके अपनी आमदनी बढ़ाई। सीधे-सादे किसानों ने इसका रहस्य न समझा। अहलकार, वकील, दलाल, आदि जिनकी मुट्ठियाँ गरम होने लगीं वे इस रोज़गार में शरीक होगये और इसमें मदद पहुंचाने लगे। अपने भाइयों से लड़-लड़ाकर किसान बरबाद होने लगा और आपस की लड़ाई और फूट के पीछे अपना खून चूसनेवाले विदेशी

हाकिम को भूल गया, जिसने कि अन्धाधुन्ध मालगुज़ारी और लगान वसूल करने के लिए क़ानून बनाने का काम अपने हाथ में रक्खा था। किसान देखता था कि अपने भाइयों से लड़ने में तो हमें अच्छे दाम देकर थोड़ी-बहुत सफलता मिल भी जाती है, हम अपने को बरबाद करके अपनी मूछें खड़ी कर सकते हैं, परन्तु जहाँ सरकार से मुकाबला करना पड़ता है वहाँ तो हम अपने सर्वस्व की बाज़ी लगादें तो भी हमारी मूछें नीची ही रहेंगी। पर इतना जानकर भी किसान कुछ कर नहीं सकता था। उसके गाँव के मुखिया अपने नहीं रह गये; वे विदेशी सरकार के ग़ुलाम हो गये। अपनी पंचायतें टूट गईं और सरकार के विरुद्ध फरियाद सुननेवाला कोई नहीं रहा। पटवारी, चौकीदार, पुलिस, तहसीलदार सबके सब सरकार के आदमी ठहरे, सरकार के विरुद्ध उसकी कोई सुननेवाला नहीं है। ऐसी दशा में किसान हर तरफ़ से दबकर पिस गया। आज भी उसके लिए ऐसा कोई इलाज या साधन देख नहीं पड़ता जिससे उसका उद्धार हो सके।

वे जिस दिन सरकार के आदमियों की बात मानकर उनकी कही बातों पर राज़ी होगये और विदेशियों की मदद करने लगे उसी दिन से उन्होंने ग़ुलामी की जंजीर अपनी गरदन में डाल ली। किसी ज़ुल्म को सहने के लिए, किसी दुर्नीति को मान लेने के लिए, किसी अनुचित काम को करने के लिए राज़ी हो जाना आदमी को पाप का भागी बनाता है। अनुचित लगान देने के लिए किसान का राजी हो जाना अपनेको नष्ट करने के पाप का भागी होना है। अपने यहाँ के रोजगार को चौपट करके दूसरों का रोज़गार बढ़ाना पाप है। अपने गाँव के आदमियों को भूखों मारकर विदेशियों की दावत करना घोर पाप है। अपने यहाँ का खद्दर का रोज़गार नष्ट होगया। कोरी, कोष्ठी, जुलाहे, ताँतिये और

नोनिये बेरोजगार होगये और किसानों ने मोहवश विदेशी कपड़े पहनने में अपनी इज्जत मानी। यह भारी भूल हुई। इस भारी भूल का प्रायश्चित एक ही तरह से हो सकता है, कि वे विदेशी राज्य से असहयोग करें।

२. असहयोग

किसान ने बहुत थोड़े-थोड़े से लालच में आकर विदेशी सरकार से सहयोग किया है। विदेशी कपड़े महीन और सस्ते बनते हैं। महीन के लालच से उसने विदेशी पहनना शुरू किया। नोनियों का तो कानून से रोजगार छिन गया। बुनकर बेरोजगार होकर तितर-बितर होगये। बहुत ज्यादा गिनती ऐसे बेरोजगारों की रोजी की तलाश में इधर-उधर घूमती थी। इनमें बहुतेरे खेती में लग गये। गोचर-भूमि के मिलाने से खेती बढ़ी तो सही, पर खेतिहरों की बढ़ी हुई गिनती के सामने वह कुछ न थी, इस लिए खेत पर काम करनेवालों की गिनती बहुत बढ़ गई। बढ़ी हुई बेकारी से बहुत-से लोग आवारा घूमने लगे। विदेशी सरकार की कुटिल नीति से पैसे की माया फैली। चलनसार सिक्का सस्ता कर दिया गया। बेकार किसान और मजदूर, जिन्हें कोई रोजी नहीं मिलती थी, गाँव छोड़कर बाहर जाने लगे। इधर जाल बिछा था, चिड़ियों के आने की देर थी। सीधे-सादे देहाती फँस गये। अच्छे-से-अच्छे चुने हुए जवानों ने थोड़े-से रुपयों के सहारे के ऊपर अपनी अनमोल जानें बेंच दीं, और विदेशी सरकार की सेना में भरती होगये। जिन्हें सेना या पुलिस में जगह न मिली वे अरकाटी के जाल में फँस गये। ये बेचारे नहीं जानते थे कि हम क्या कर रहे हैं और कहाँ जारहे हैं। सेना और पुलिस इन्हीं बेरोजगार किसानों से भरी पड़ी है। इन्हीं पुलिस और सेनावालों के भाई-बन्धुओं के ऊपर विदेशी सरकार मनमानी करती है और जब उसके मुक़ाबले में लड़ने के लिए अहिंसा-

त्मक युद्ध होता है तब सत्याग्रहियों की सहायता करने के बदले यही भूले हुए भाई उलटे उन्हींपर डंडे और गोलियां बरसाते हैं।

किसान को इसलिए, विदेशी सरकार से असहयोग करना चाहिए। विदेशी कपड़ा मत पहनो, क्योंकि उसके तार-तार में आपकी दरिद्रता उलझी हुई है। आपका परिवार बहुत कुछ उसीकी बदौलत भूखो मर रहा है। विदेशी कपड़े का त्यागना और खद्दर का तैयार करना दोनो साथ-साथ चलनेवाली बातें हैं। विदेशी कपड़े के त्याग का साफ़ यही मतलब है कि हर किसान अपने लिए खद्दर तैयार कराने का उपाय करे। खद्दर का उपाय किये बिना विदेशी कपड़ों का त्याग करना बिलकुल निरर्थक है। क्योंकि हम बिना किसी तरह के कपड़े के रह नहीं सकते। पिछले अध्याय में हम यह दिखा आये हैं कि किसानों की बेरोज़गारी दूर करने के लिए खद्दर की तैयारी और विदेशी का बहिष्कार ज़रूरी है। इस अध्याय में हम यह दिखाते हैं कि विदेशी कपड़ा पहनना पाप है और अपने हाथों अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना है। इस पाप से बचने के लिए हमें विदेशी का त्याग और खद्दर का ग्रहण करना चाहिए।

विदेशी कपड़े के त्याग से और खद्दर के ग्रहण से हमको चारों पदार्थ मिलते हैं। हम आत्मघात के महापातक से बचकर आत्म-रक्षा के **धर्म्म** के भागी होते हैं। बेरोज़गारों को काम देकर और उनकी दरिद्रता दूर करके हम **अर्थ** के भागी होते हैं। मुद्दत से भूली हुई कातने और बुनने की सुन्दर और कोमल कला को फिर जिलाकर और उसे बढ़ावा देकर हम **काम** के भागी होते हैं। लंकाशायर के दुर्निवार राक्षसी पाश में बंधे हुए अपने देश को बन्धन से छुड़ाकर हम **मोक्ष** के भागी होते हैं। इस तरह विदेशी से असहयोग करके हम अकेले कपड़े में ही चारों पुरुषार्थ पाते हैं।

परन्तु असहयोग का काम इतने से ही पूरा नहीं होता। आपस में फूट भी हमें दूसरों के बन्धन में फँसा देती है, अतः उसका भी परित्याग करना चाहिए।

एक बात और भी है। किसान क़र्ज़ के बोझ से लदाहुआ है। साहूकार अपना रुपया छोड़नेवाला नहीं। वह किसान को अदालत घसीटेगा। डिगरी करावेगा। जायदाद कुर्क करावेगा। वह पंचायत को न मानेगा। इसी तरह बहुत सम्भव है कि ज़मींदार गांव की पंचायत बनने में ही बाधा डाले और विदेशी सरकार से असहयोग करने में किसी तरह राज़ी न हो। इसलिए जहाँ साहूकार और ज़मींदार समझाने-बुझाने से भी न मानें वहाँ उनके बिना ही पंचायत बनानी पड़ेगी और सत्याग्रह और अहिंसा के बल से अन्त में पंचायत अपनेको मनवा लेगी और उसकी विजय भी होगी। सारांश यह कि ज़मींदार और साहूकार चाहे कितना ही विरोध करें, किसानों को अपनी पंचायतें बनानी चाहिएँ।

असहयोग का बहुत बड़ा अंग नशे का त्याग है। हम अबतक असहयोग के जिन पहलुओं को देखते आये हैं, उनमें से सबसे बड़ा पहलू नशे के त्याग का है। नशे की सब चीज़ों के ऊपर सरकार ने महसूल लगा रक्खा है और उससे उसको ख़ासी आमदनी है। यह एक बहाने की बात है कि महसूल ज्यादा लगाने से नशे का प्रचार घटेगा। पहले शुरू-शुरू में कम महसूल लगाकर नशे का ख़ूब प्रचार किया गया। जब नशेबाज़ों को चसका लग गया, तब महसूल बढ़ाने का यही मतलब है कि सरकारी आमदनी बढ़जाय। कोई धर्म ऐसा नहीं है जो नशे के इस्तैमाल को पाप न ठहराता हो। नशे का प्रचार करके विदेशी सरकार भारत के लोगों का धर्म और धन दोनों हर लेती है। इसलिए नशे से असहयोग करने का यह मतलब है कि हम अपने धन और धर्म

दोनों की रक्षा करें। शराब, ताड़ी, गांजा, भंग, चरस, चंडू, अफीम ये सभी नशे हमारा धर्म भी बिगाड़ते हैं, हमारे स्वास्थ्य को भी खराब करते हैं, हमारे पैसों को भी बरबाद करते हैं। इस तरह जिन नशीली चीज़ों से हमारा धन भी जाय, धर्म भी जाय, और हमारी स्वतन्त्रता छिनकर हमारी गर्दनों में गुलामी की जंजीर पड़े उनसे असहयोग करना तो हमारा पहला काम है। इसमें जमींदार और साहूकार कोई बाधा नहीं डाल सकते। नशे का इस्तैमाल करनेवालों को आप ही अपना जी कड़ा करके इस पाप का परित्याग कर देना चाहिए। नशा बेचनेवाले जब ग्राहक न पावेंगे तो आप अपना रोज़गार छोड़ देंगे।

३. सत्याग्रह

असहयोग तो अधर्म से और असत्य से सम्बन्ध छोड़ देना है। हम जिस काम में बुराई देखते हैं उस काम से अलग हो जाते हैं। हम जिस काम को ठीक नहीं समझते उसमें अपनी तरफ़ से किसी तरह की मदद नहीं पहुँचाते। यह धर्म्म का एक पक्ष है—एक पहलू है। हमने पाप में हिस्सा नहीं लिया, हम पाप के भागी नहीं हुए। परन्तु इतने से ही हमारे कर्तव्य पूरे नहीं होते। हमें तो जो सत्य है और जो धर्म्म है उसका पालन करना कर्तव्य है।

जो हठि राखै धर्म्म को, तेहि राखै करतार।

धर्म्म और सत्य में कोई भेद नहीं है। धर्म्म सत्य है और सत्य धर्म्म है। जिसमें सचाई नहीं है वह धर्म्म कभी नहीं हो सकता। सत्याग्रह सत्य के लिए अड़ जाना और अपने प्राणों की बलि करके भी सत्य को पाना है। सत्याग्रह ही असहयोग का वह दूसरा पहलू है जो हमारे ग्राम-संगठन के काम की बुनियाद है। जब हम यह जानते हैं कि हमारी खेती से इतनी पैदावार नहीं हुई है कि हम उतना लगान दे सकें जितना

कि सरकार मांगती है, तो हमारा यह कर्तव्य है कि हम इस सत्य पर अड़ जायँ कि हम उतना ही लगान अदा करेंगे जितना कि खेती की रक्षा करने के लिए राजा का हक़ होता है। हमारे धर्म्मशास्त्रों के अनुसार राजा को पैदावार के छठे भाग से अधिक लेने का अधिकार नहीं है। जहाँ इससे अधिक लिया जाता है वहाँ अधर्म्म किया जाता है। सत्य यह है कि राजा छठा भाग ले और प्रजा के धन की रक्षा करे। इसी छठे भाग के भीतर लगान मालगुज़ारी आदि सब कुछ है। इस समय लगान और मालगुजारी के नाम से किसान लुट जाता है। इस लूट से बचने के लिए उसे सत्याग्रह करने की ज़रूरत है। लेकिन किसान को हिंसा का ख़याल तक करने की ज़रूरत नहीं है। जैसे वे लाखों तरह के संकट और ज़ुल्म सहते आये हैं, जी कड़ा करके और थोड़े संकट और ज़ुल्म सह लेना कबूल कर लें, और इस बात के लिए सच्ची टेक कर लें कि हम सब संकट सहेंगे, जान दे देंगे, पर झूठा लगान न देंगे और न अत्याचार करनेवालों पर गुस्सा करेंगे न बदला लेंगे और न उनको तकलीफ़ पहुँचायेंगे। सत्य और अहिंसा के व्रती किसान कभी हार नहीं सकते। सत्य की सदा जय होती है। परन्तु साथ ही यह याद रहे कि हिंसा सत्य नहीं है। अहिंसा सत्य है। हिंसा छल है। अहिंसा निष्कपट सत्य है। छल से मिला हुआ सत्य कभी नहीं होता। अहिंसा और सत्य कभी अलग नहीं हो सकते। अहिंसा और सत्य में ही भारत की जीत है।

इसके लिए बारडोली की लड़ाई की कथा विस्तार से पढ़ने लायक़ है। हमने जिस पुस्तक के आधार पर और जिसके अनेक अवतरण देकर पिछले अध्याय में बारडोली की विजय का वर्णन किया है वह "विजयी बारडोली"[१]

१. "विजयी बारडोली" : श्री बैजनाथ महोदय लिखित। प्रकाशक—सस्ता-साहित्य-मण्डल, दिल्ली। मूल्य २) रु०

है। यह पुस्तक सत्याग्रह की इच्छा करनेवाले हर किसान को आदि से अन्त तक पढ़ डालनी चाहिए। औरों के उदाहरणों का हमारे ऊपर अच्छा प्रभाव पड़ता है; और बारडोली की लड़ाई तो हर तरह पर आदर्श लड़ाई हुई है।

: ४ :

ज़मींदार, साहूकार और किसान

अनाज, कपड़े, बरतन, गृहस्थी के सामान, घर, बाग-बगीचे, खेत, मैदान, सोना, चांदी, मणि, रत्न, हाथी, घोड़े, रथ, गाड़ियाँ आदि सवारी, गाय, बैल आदि ढोर—ये सब-के-सब उस मनुष्य के धन कहलाते हैं जो इनका मनचाहा उपभोग कर सकता है और दूसरों को इनका उपभोग करने देने का या न करने देने का अधिकारी होता है। जो सम्पत्ति हमने ऊपर गिनाई है उसमें से किसीके पास थोड़ी और किसीके पास बहुत होती है। इसी हिसाब से हम किसीको कम और किसीको ज्यादा धनवान कहते हैं। जिनके पास इतने अन्न-वस्त्र का संग्रह नहीं है कि वे बिना हाथ का काम किये या बिना एक या कई इन्द्रियों से पूरा परिश्रम किये गुजारा न कर सकें, वे धनवान कहे जाने के अधिकारी नहीं हैं। वे धन के नाते तो दरिद्र हैं। हाँ, शक्ति के नाते हम उनको शक्तिमान कह सकते हैं। परन्तु धन भी एक शक्ति है, और ऐसी-वैसी नहीं बहुत भारी शक्ति है। धनवानों के पास वह शक्ति भी मौजूद है जो दरिद्रों के पास है और उसके अतिरिक्त धन की भी अपार शक्ति है। अगर हम ताक़त का मुकाबला करें तो एक धनवान एक कंगाल की अपेक्षा अपार शक्ति रखता है, क्योंकि दरिद्र और धनवान दोनों की शरीर-शक्ति तो बराबर हैं परन्तु धनवान के पास धन की शक्ति अत्यधिक है। इस हिसाब से धनवान और निर्धन दोनों में यदि झगड़ा हो तो धनवान के मुकाबले में निर्धन कभी खड़ा नहीं हो सकता। कभी अगर निर्धन अपने जैसे सौ

निर्धनों को धनवान का मुकाबला करने के लिए इकट्ठा करे तो शायद धनवान को कुछ भय हो जाय। परन्तु सौगुनी जन-शक्ति का मुकाबला करने के लिए संभव है कि धनवान की धन-शक्ति कहीं अधिक बलवती ठहरे और वह अपने धन-बल से एक के बदले दसगुनी और सौ के बदले हजार गुनी जन-शक्ति पैदा करले। अच्छी मजूरी और बहुत ललचानेवाला इनाम रखकर अमीर आदमी चाहे तो सौ आदमियों के मुकाबले के लिए एक हजार आदमी रख सकता है। जरूरत की घड़ी पर मजूरों के एक हजार के दल को भी, जो एकाएकी काम पड़ने पर, भीड़ पड़ने पर इकट्ठे होगये हों, मुद्दतों के सीखे-पढ़े सिपाही सौ भी हों तो सहज में खदेड़ सकते हैं और अपनेसे दस गुनी या ज्यादा गिनती के आदमियो को हरा सकते हैं। जिसके पास धन-बल है वह जन-बल भी पैदा कर सकता है। इस तरह सदा से निर्धन या दरिद्र लोग धनवानों की अधीनता में रहते आये हैं। राजा, जमींदार, साहूकार, कारखानेदार, व्यापारी आदि सभी धनवानों की श्रेणी में आते हैं और सबका निर्धनों के ऊपर बहुत बड़ा प्रभाव है। यदि ये लोग मनुष्य न हों, इनमें हृदय न हो और काम, क्रोध, लोभादि अवगुणों के साथ-साथ दया, क्षमा, करुणा, श्रद्धा, उपकार आदि के भाव भी न हों तो ये सहज ही राक्षस-रूप होकर निर्धनों को बरबाद कर सकते हैं और साथ ही अपने भविष्य को भी बिगाड़ सकते हैं। आसुरी सम्पत्ति दूसरों का भी क्षय करती है और अपना भी। दैवी सम्पत्ति दूसरों की रक्षा करती है और अपनेको भी सुरक्षित रखती है।

निर्धन के पास अपने शरीर की शक्ति की ही सम्पत्ति है, चाहे वह मानसिक हो चाहे कायिक। परन्तु व्यक्ति यदि चाहे तो और व्यक्तियों की शक्ति अपने साथ जोड़कर सामूहिक जन-शक्ति पैदा कर सकता है।

जिस व्यक्ति में संगठन-शक्ति हो वह और व्यक्तियों की शक्ति को अपने साथ जोड़ सकता है, और इस तरह के संगठन करनेवाले अनेक मनुष्य हों तो जन-बल का संगठन हो जाना सहज है। धनवान के संगठित जन-बल के मुकाबले में इस प्रकार निर्धनों का सगठित जनबल भी खड़ा हो सकता है और उनकी धनवानों से बराबर की लड़ाई हो सकती है।

परन्तु एक ऐसी दशा भी आ सकती है जिसमें धनवान जन-शक्ति का मुकाबला नहीं कर सकता। जब दरिद्र या निर्धन यह समझने लग जाय कि यह धनवान हमको ही कुल्हाड़ी का बेंट बनाता है और धन का लोभ देकर हमारे ही हाथों हमारे भाइयों का खून कराता है तो उसके मन में अपनेआप खटका पैदा होजाता है। साथ ही जब विरोधी निर्धन भाई उसके मनोभाव को बढ़ावा देते हैं और उसे धन-लोभ से हटाकर निर्धन भाइयों के साथ सहानुभूति की ओर खींच ले जाते हैं तो धन-वान को आदमी कम मिलते हैं। ज्यों-ज्यों निर्धनों का समूहन बढ़ता है, उनमें आपस की सहानुभूति लोभ को संवरण करने में सक्षम होती जाती है और एकता का भाव दृढ़ होता जाता ह त्यों-त्यों धनवान का संग जन-शक्ति छोड़ती जाती है, अन्त में धनवान एक ओर होता है और जन-शक्ति दूसरी ओर मुकाबले में खड़ी होती है। धन-शक्ति और जन-शक्ति का जहाँ इस प्रकार का संघर्ष होता है वहाँ विजय-पताका जन-शक्ति के ही हाथ रहती है। परिणाम यह देख पड़ता है कि धनवान की अपेक्षा जनवान में अधिक बल है। इसलिए धनवान को उचित है कि जन-शक्ति को अपनी ओर रक्खे।

राज-शक्ति क्या है? राज-शक्ति वही धन-शक्ति है जिसने राज-सेना तथा धन के बल से जनबल को अपनी ओर कर रक्खा है, चाहे वह सेना हो, चाहे सभा हो और चाहे सहानुभूति हो। राज-शक्ति को बनाये

है उन दरिद्र जमींदारों या काश्तकारों से जो धनवान जमींदारों के आधीन होते हैं। उस प्रसंग में जमींदार कहने से धनवान जमींदार या ताल्लुकेदार ही समझा जाता है। इन धनवान जमींदारों से दरिद्र किसानों का वास्ता है, जिनमें ऐसे मजदूर भी हैं जो किसानों के सहायक हैं और स्वयं खेतिहर नहीं हैं।

हमारे देश में साहूकार महाजनों की भी एक श्रेणी है जो सूद पर रुपया देकर और खेतों को अपने यहाँ बन्धक रखकर जमींदारी बाग और जायदाद के मालिक होगये हैं। यद्यपि ये धनवान जमींदार होचुके हैं, तथापि साहूकारी या लेन-देन इनके यहाँ जारी है। ये अबतक साहूकार बने हुए हैं। साथ ही बहुत-से ऐसे जमींदार भी हैं जिन्होंने अपने यहाँ लेन-देन का कारबार जारी कर दिया है। ये जमींदार होते हुए भी साहूकार हैं। इस तरह साहूकारी और जमींदारी दोनों प्रायः सम्मिलित व्यवसाय बन गई हैं। किसान काश्तकार भी हैं और कर्जदार भी हैं। जिस तरह धनवान जमींदारी और साहूकारी दोनों साथ ही करता है उसी तरह किसान दरिद्र खेतिहर भी है और कर्जदार भी है।

विदेशी सरकार भारतवर्ष में धन के ही लोभ से स्थापित है। उसने आरम्भ से धनियों के ऊपर ही अपना अधिकार जमा रक्खा है। राजशासन में जब कभी भाग देने की बात आई है तब धनियों को ही उसने मिलाया है। जहाँ कहीं बन पड़ा है वहाँ उसने ज़मींदारों और व्यापारियों के हाथ मज़बूत किये हैं और यह विदेशी सरकार के लिए बिलकुल स्वाभाविक बात थी, क्योंकि वह स्वयं व्यापारियों की ही सरकार है। उसका लाभ इसीमें है कि भारतवर्ष के व्यापारी बराबर उसकी मदद करते रहें। कौंसिलों में, सभाओं में, दरबारों में, बड़ी-बड़ी नौकरियों में, निदान सभी जगह अंग्रेज़ी सरकार ने धनवानों को ही अधिकार दिये

हैं। इस तरह न केवल उसने धन का लाभ उठाया है, बल्कि साथ ही उसने धनवानों और धनहीनों के बीच नित्य की बढ़ती हुई गहरी खाई खोद दी है और दोनों वर्गों में फूट डालकर अपनी स्थिति को मजबूत कर रक्खा है। धनवान समझते हैं कि आये दिन सरकार हमारी रक्षा करेगी, इसलिए सरकार को हमेशा खुश रखना चाहिए। इस तरह धनवानों का और सरकार का स्वार्थ सम्मिलित हो गया है, और अपने ही देश के धनवान और निर्धन भाइयों में झगड़े की बुनियाद मजबूत हो गई। पंजे की सब अंगुलियाँ आपस में एक-दूसरे की मजबूती और मदद के लिए थीं परन्तु भारत में यह हुआ कि बड़ी अंगुलियाँ विदेशी स्वार्थियों की अंगुलियों से मिल गईं और छोटी उंगलियों को बेकार और उनके अधीन कर दिया गया।

जमींदार किसानों से लगान, नजराना, भांति-भांति की भेंट और बेगार तक लेते हैं। किसान की मजाल नहीं कि इनकार कर सके। अगर वह करे भी तो जमींदार की मदद में बड़ी खर्चीली अदालतें क़ायम हैं। वह सिर उठाने की हिम्मत करे तो जमींदार की मदद को सरकार की पुलिस के डंडे मौजूद हैं; और अगर जरूरत हो तो गोली, बारूद और सेना भी निहत्थे नर-कंकालों को खड़े भून देने को तैयार हैं। मजूरों और किसानों को दबाने के लिए बड़ी कौंसिलों में कानून बन सकते हैं। मजूरों और किसानों के लाभ के क़ानून बनने में बाधाओं का कोई अन्त नहीं है। हम मजूरों और किसानों की वकालत में ये बातें नहीं कह रहे हैं। यह तो हमारे देश में नित्य घटनेवाले ऐतिहासिक तथ्य हैं। एक मुद्दत से धनवानों और निर्धनों के बीच ऐसा व्यवहार चला आया है जिससे निर्धन लोग धनवानों को अपना वैरी समझने लगे हैं और धनवान लोग निर्धनों के साथ वे व्यवहार करते भी नहीं लजाते जो किसी समय गुलामों के साथ किये जाते थे।

पिछली चौथाई शताब्दी में यहाँके मजूर और किसान भी कुछ-कुछ चेतने लगे हैं। जो लहर संसार में ज़ोरों से बही वह हिन्द महासागर में हिलोरें मारे बिना न रही। यह आन्दोलन पिछले कई बरसों से जोर पकड़ने लगा है। आज किसान और मजदूर दोनों जगे हुए हैं। किसानों का आन्दोलन जगह-जगह चल रहा है। वे अत्याचार सहते-सहते थक गये हैं। मज़दूरों की हड़तालें बड़े-बड़े स्थानों में होती रहती हैं। भारत-वर्ष में कोई प्रान्त ऐसा नही जहाँ मजदूर और किसान सन्तुष्ट हों।

किसानों का आन्दोलन अवधप्रान्त में ताल्लुकेदारों के विरुद्ध बड़े जोरों से चल चुका है। रायबरेली में एक वीर ताल्लुकेदार ने निहत्थे दरिद्रों पर गोलियां चलाके यश कमाया था। यह किसानों के उपद्रव के अनेक उदाहरणों में से एक है, अभी तो दमन बहुत आसान है, क्योंकि सभी किसान चेते नहीं हैं। परन्तु यह तो अभी आरम्भ है, आगे चलकर किस दरजे का विकास होगा, यह कौन कह सकता है?

पुलिस और हिन्दुस्तानी सेना में वही लोग काम करते हैं जिनके भाई देश के मजूर और किसान हैं। जब धनवान भी अपने लिए चपरासी, जमादार, फेरीदार, बल्लमदार, खिदमतगार, ग्वाले और गुण्डे आदि तलाश करता है तो इन्हीं मज़दूरों के भाई-बन्धु इन कामों के लिए मिलते हैं। अभी तो इतनी खैरियत है कि उनके लिए ये दरिद्र लोग नौकरी करने को मिल जाते हैं और समय पड़ने पर उनकी रक्षा करते हैं और नमक अदा करते हैं। परन्तु जिस दिन ये चेत जायँगे उस दिन पहले तो इनमें से जो ईमानदार हैं वे अपने भाइयों के विरुद्ध धनवानों की नौकरी करने को तैयार न होंगे और जो इस दरजे की ईमानदारी नहीं रखते या पेट के पीछे ईमानदारी की उतनी परवा नहीं करते. वे धनवानों की नौकरी करते हुए भी जब देखेंगे कि वे हमारे

भाइयों का विरोध करते हैं अथवा भाइयों का स्वार्थ धनवानों का साथ देने से बिगड़ता है, तो वे नमक की ज़रा भी परवा न करेंगे और ठीक जोखिम के समय अपने अन्नदाताओं का साथ छोड़ देंगे। इतना ही नहीं, कोई आश्चर्य नहीं है कि जब सहानुभूति की मात्रा बढ़ जायगी तब ये अपने अन्नदाताओं को दगा भी दे सकते हैं। आजकल आन्दोलनों के जैसे लक्षण दीखते हैं उनसे यही पता चलता है कि हमारे देश के लिए कुशल नहीं है।

हमारे किसान और देशों के किसानों की अपेक्षा अधिक शान्त हैं, अधिक सौम्य हैं, अधिक सहनशील हैं और अधिक समझदार भी हैं। यह सब होते हुए भी इनको ठीक मार्ग पर ले चलने के लिए अमीरों और ग़रीबों दोनों के लिए तटस्थ, निःस्वार्थ, संगठनकारी दिमागों की ज़रूरत है। हमारी समझ में हमारे मजूरों और किसानों को अभीतक ऐसा नेतृत्व दुर्लभ है। और शायद कुछ काल तक मजूरों और किसानों में इतनी योग्यता न पैदा हो सके कि वे अपने बीच से कोई अच्छा नेता और संगठन-कर्त्ता खोज लें। जबतक उनका योग्य संगठन न होजाय तबतक उन्हें एक भयानक भीड़ समझना चाहिए जिसका मनोविज्ञान अच्छे-अच्छे विचारकों के लिए भी जटिल समस्या है। यह भयानक भीड़ आये दिन जो न करे सो थोड़ा। यह ऐसे-ऐसे उपद्रव कर सकती है जिसको क़ाबू में लाना हवाई जहाज़ों, मशीनगनों और सेनाओं के वश की बात नहीं है। अगर किसी भीड़ ने किसी गाँव को लूट लिया या आग लगा दी तो भयंकर हानि तो होगई। पीछे से हवाई जहाज़ और मशीनगनें आकर उस हानि को तो किसी तरह लौटा नहीं सकतीं, बल्कि उससे भी अधिक हानि पहुँचा सकती हैं। यह समझना ख़ामख़याली है कि आगे के होनेवाले उपद्रव इन सभ्यता-

युक्त उपद्रवों से रुक जायँगे। मल से मल धोया जाय तो वह नहीं छूटता। एक उपद्रव के सहारे हम दूसरे उपद्रव को दूर करना चाहें तो उपद्रव घटने के बदले एक और एक ग्यारह हो जाते हैं। चौरीचौरा-हत्याकाण्ड अभी लोगों को याद होगा। अंधी और बहरी जनता ने पुलिस के ऊपर जो नाहक अत्याचार किया उसका कितना भयानक परिणाम हुआ? भारत के स्वराज्य पाने में यह दुर्घटना जिस तरह बाधक हुई वह तो सभी जानते हैं, परन्तु इस बात की ओर कम लोगों का खयाल गया होगा कि जितने भाइयों के ऊपर भीड़ ने वह अत्याचार किया था उससे कितने गुने अधिक भाई उस प्रतिक्रियात्मक उपद्रव में फाँसे गये जो अमन, दमन और मुक़दमों और सजाओं के रूप में उस दुर्घटना के बाद हुआ। हुआ जो कुछ, परन्तु अन्ततः परिणाम यह हुआ कि उपद्रव और उसकी प्रतिक्रिया दोनों में हमारे देश की ही हानि हुई।

जो सच्चे देशभक्त हैं, जो सच्चे राष्ट्र-हितैषी हैं, वे ऐसा कोई उपद्रव नहीं चाहते जिसमें अन्ततः हमारे अमीर या ग़रीब किसी भाई का रत्ती-भर भी नुक़सान हो और देश का रत्ती-भर भी फ़ायदा न हो। चौरीचौरा-हत्याकाण्ड ऐसी ही दुर्घटनाओं में से एक है, जिससे भारत की भयानक हानि हुई। रत्ती-भर लाभ न किसी व्यक्ति को हुआ न देश को।

भीड़ का मनोविज्ञान ठीक-ठीक समझनेवाले और उसके अनुसार उस बड़े धारा-प्रवाह को इष्ट दिशा में ले जानेवाले नेता हमारे देश में बहुत नहीं हैं। तो भी इतने काफ़ी हैं कि वे भीड़ को ठीक दिशा में ले जा सकते हैं यदि उन्हें काम करने दिया जाय। परन्तु जब कहीं उपद्रव खड़ा होता है तब इन स्वाभाविक नेताओं को तो सरकार भीड़ के पास नहीं जाने देती, उल्टे दमन पर उतारू हो जाती है। मोपला-उपद्रव में,

पंजाब के उपद्रवों में, शान्ति के अवतार जगद्वन्द्य गांधीजी तक को सरकार ने रोक दिया। सरकार एकमात्र दमन ही जानती है। तो क्या भीड़ का दमन करना ही उपद्रव-शान्ति का एकमात्र उपाय है? क्या अमीरों को ग़रीबों पर अत्याचार करने में खुशी से मदद करनेवाली विदेशी सरकार की सहानुभूति अधिक लाभकारी है? या धनवानों के लिए ज्यादा सुभीते की बात यह है कि ग़रीबों के साथ सहानुभूति करें, उनके हृदय को अपने वस करलें, अपने अच्छे सलूक से अपने ग़रीब भाइयों को अपनालें, इस हद तक कि आये दिन किसी उपद्रव के समय यही निर्धन भाई धनवानों की ढाल हो जायँ और जिस तरह धनवानों और निर्धनों के बीच भाई-चारे का सम्बन्ध पहले था उसी तरह अब भी हो जाय? हमारी समझ में इस बात में किसीका मतभेद नहीं हो सकता कि दूसरा ही उपाय उपयुक्त है। इन दोनों प्रश्नों को दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि अमीरों के लिए दो राहें खुली हुई हैं, अर्थात् वे वर्त्तमान काल में विदेशी राज का साथ दें या स्वदेशी प्रजा का? अभीतक हमारे अमीर लोगों में उन लोगों की संख्या बहुत बड़ी है जो राजा का साथ देते हैं वे; धनवान जो प्रजा का साथ दे रहे हैं बहुत थोड़े हैं और वे इस समय काँग्रेस के पक्ष के ही लोग हैं। परन्तु काँग्रेस के वे धनवान जो प्रजा से सहानुभूति रखते हैं और राजा के पक्षपाती नहीं हैं, मजूरों और किसानों पर कुछ थोड़ा-सा प्रभाव रखते हैं। इस प्रभाव का रहस्य यह है कि वे किसान को अपना भाई समझते हैं, और उनपर उस तरह की कड़ाई और ज़बरदस्ती नहीं करते जैसा कि ज़मींदार लोग आम तौर पर किया करते हैं। साधारण ज़मींदारों का भाव अद्भुत होता है। वे ग़रीब किसानों को अपना गुलाम समझते हैं। कुछ जातियाँ तो ऐसी हैं जिनको निठुराई से पीटकर और जिनका अपमान

करके काम लेना वे अपना हक़ समझते हैं। ग़रीब चमार या पासी को जब चाहा बुलवाकर बेगार में जोत दिया। उस ग़रीब ने ज़रा भी नाहीं-नूहीं की तो जूतों से उसका पिट जाना निश्चय ही है। यह अपमान और यह अत्याचार हर ज़मींदार निर्भय होकर करता है। वह जानता है कि पुलिस और थानेदार हमारी तरफ़दारी करेंगे। रिश्वत देने को इस दरिद्र के पास पैसे कहाँ हैं? लगान वसूल करने के लिए किसी किसान को बुलाकर जेठ की कड़ी धूप में घंटों बिठलाकर दण्ड देना ज़मींदारों की एक मामूली रीति है। साहूकार तो दूसरे तरह के अत्याचार करता है। वह खेत-बारी बंधक रख लेता है और जब उसके ब्याज पर ब्याज चढ़ने लगते हैं तो अन्त में उसके पुरखों की जायदाद कौड़ियों के मोल नीलाम होकर साहूकार के पेट में चली जाती है। शराब, साहूकार और ज़मींदार तीनों मिलकर किसान के तन-मन-धन पर कब्ज़ा कर लेते हैं।

असल में ज़मींदार केवल बीच का दलाल है। सरकार ने ब्रिटिश-भारत की सारी ज़मीन को अपनी मिल्कियत बना रक्खा है। ज़मींदार तो नाम-ही-नाम को ज़मीन का मालिक है। वह अगर मालगुज़ारी न दे तो उसकी मिल्कियत ख़तम हो जाय। ज़मींदार वह बीच का दलाल है जो विदेशी सरकार को अपनी नाममात्र की मिल्कियत को किराया देकर अपने धन के बल से किसानों पर अत्याचार करने का अधिकार मोल ले लेता है। परन्तु हम यह दिखा आये हैं कि धन-बल कितना ही बड़ा हो, जन-बल से आगे ठहर नहीं सकता। किसानों और मज़दूरों के चेत जाने पर ज़मींदार अपने अत्याचारों को जारी नहीं रख सकता। मोटरावन हथियावन, घोड़ावन, नचावन आदि के नाम से जो कर वह दरिद्र किसानों से ले-लेकर मौज उड़ाता है वह बिलकुल ज़बरदस्ती है। अपने अधिकारों को समझनेवाले किसान इस लूट-खसोट को चुपचाप नहीं सह

सकते। उन्हें सहना भी नहीं चाहिए। वह लगान की रकम से अलग लुटते हैं, तरह-तरह के करों से अलग तबाह होते हैं, फिर बेगार ऊपर से। पंचायत का यह कर्तव्य है कि पहले जमींदारों को समझाने की कोशिश करे कि इन अत्याचारों को बन्द कर दें, और अगर जमींदार न माने तो पंचायत को असहयोग और सत्याग्रह से काम लेना चाहिए। ऐसी दशा गाँवों में पैदा की जा सकती है कि ज़मींदार का सिपाही किसान को जूते या डंडे लगाने से इन्कार करदे। और किसान ज़मींदार के हाथ पिटे और चूं न करे। अपना प्राण दे दे। परन्तु जमींदार की अन्याय की आज्ञा न मानें। किसीसे कोई बिना उसकी रजामन्दी के एक पाई भी नहीं पा सकता, और एक तिनका भी नहीं, खिसकवा सकता। बेगार से तो मजदूर और किसान को साफ़ इनकार कर देना चाहिए।

जमींदार और किसान की इस लड़ाई में किसान लोगों को यह बिलकुल न भूलना चाहिए, कि ज़मींदार भी हमारा ही भाई है। इसलिए उसको, उसके परिवार को और उसके पशुओं को या उसका पक्ष निवाहनेवालों को खाने-पीने पहनने, और छाया में रहने आदि साधारण मनुष्यों की आवश्यकताओं से वंचित न किया जाय। उसे किसी प्रकार का कष्ट न दिया जाय।

यह भी भूलने की बात नहीं है कि जन-बल आदि ठीक संगठित रूप से काम में लाया जाय तो बहुत बड़ी ताक़त है; और अगर संगठन न हो तो जन-बल एक भयानक भीड़ है जिसकी ताक़त किसी एक निश्चित कार्य के लिए तो कोई क़ीमत नहीं रखती, बल्कि ठीक उद्देश्य के अनुकूल काम करने की योग्यता न होने के कारण अनन्तमुख, अनन्त जीभ और अनन्त हाथ-पाँव रखनेवाली और अनन्त दिशाओं में जानेवाली ताक़त है जिसका उपयोग कुछ भी नहीं है। जन-बल का इसीलिए बहुत उचित

और नियमित संगठन होना बहुत ज़रूरी है। संगठित जन-बल अपार और अपरिमेय शक्ति है। उसके अनगिनतियों कान हैं, मगर एक ही बात के सुननेवाले हैं। उसकी असंख्य आँखें हैं, मगर एक ही निशाने को देखनेवाली हैं। उसकी असंख्य जीभें हैं, पर एक ही बात एक ही साथ एक ही स्वर में कहनेवाली हैं। उसके बेगिनती हाथ हैं, परन्तु वे सब एकसाथ एक ही समय में एक ही दिशा में एक ही काम के लिए उठनेवाले हैं। उसके अनगिनत चरण हैं जो एक ही दिशा में एक ही हिसाब से निरन्तर आगे बढ़ते रहनेवाले हैं। ये सारी इन्द्रियाँ एक ही मनुष्य की इन्द्रियों की तरह एकता के सूत्र में बँधी हुई एक-सी ही क्यों दीखती हैं? इसका कारण यह है कि यह महान् जन-बल हज़ारों सिर रखते हुए भी एक ही सिर रखता है। एक ही संगठन करनेवाले दिमाग़ के तावे होकर सारी बातें उसी दिमाग़ के आदेश के अनुसार करता है। ऐसे संगठित जन-बल का जो नेता है उसीका दिमाग़ सारी जनता के नख से शिखा का तक का काम करता है।

हमारे देश का जन-बल किसान है, और धन-बल ज़मींदार और साहूकार है। इसमें सन्देह नहीं कि संगठित जन-बल के सामने धन-बल कुछ भी नहीं है। परन्तु जन-बल के संगठित होने की शर्त बहुत कड़ी है। जो किसान जन-बल की सेना में संगठित होना चाहें उन्हें तो अपने प्राणों का मोह छोड़कर इस सेना में भरती होना पड़ेगा। यह वह लड़ाई नहीं है कि जिसमें सिपाही को वरदी के लिए खर्च करना पड़े, या बारकों में रहना पड़े, या अपने साथियों के साथ कई साल तक दलेल करना पड़े। गाँव के जन-बल के विकास में ऐसी रीति-रस्मों की ज़रूरत नहीं है। तो भी उसे अपने बहुत-से बचे हुए समय में से संगठन की शिक्षा पाने के लिए कुछ-न-कुछ अवश्य खर्च करना पड़ेगा। उसे असहयोग

और सत्याग्रह की विधियाँ सीखनी पड़ेंगी। रत्ती से रवा तक सारे विचार छोड़कर अपने नायक के आज्ञा-पालन में आँख मूंदकर जुट जाना सीखना होगा। उसके आज्ञा-पालन में प्राण भी चले जायँ तो उनका कोई हिसाब नहीं करना होगा। हर तरह पर अपनेको बलिदान कर देना पड़ेगा। सेना में हरेक के लिए अपनी-अपनी जगह होती है। उसे किसी दूसरे की जगह का लालच न करना होगा। जो काम उसे सौंपा जाय, बुरा-भला, खरा-खोटा, चाहे जैसा हो, सिपाही का काम है कि उसे पूरा करे। जब एक बार सिपाही ने अपने नायक की आधीनता मानली तो उसने अपना लड़ाई के सम्बन्ध में स्वतंत्र विचार भी उसीके हाथ सौंप दिया। क्योंकि युद्ध में जन-बल को चलानेवाला दिमाग़ एक ही होना जरूरी है।

यह लड़ाई शान्ति, अहिंसा और सत्य की लड़ाई है। इसके सिपाही इस बड़े सत्य को कबूल करते हैं कि कोई प्राणी किसी क्षण भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता। इसीलिए कोई किसान जो संगठित जन-बल में मिलकर काम कर रहा है, अपने एक पल को भी बेकार न खोवेगा। वह हर घड़ी चरखा या तकली के पवित्र यज्ञ में लगा रहेगा।

पंचायत के पीछे जब उसकी मदद करने के लिए किसानों का ऐसा संगठित जन-बल होगा जिसके भरोसे पंचायत जरूरत पड़ते ही असहयोग और सत्याग्रह ठान देगी, उस समय किसी जमींदार या साहूकार की यह हिम्मत नहीं हो सकती कि पंचायत की न्यायोचित आज्ञा न माने और अगर ऐसी हिम्मत किसीने की भी तो उसे उलटे मुँह की खानी पड़ेगी।

किसान, साहूकार और जमींदार के पारस्परिक सम्बन्ध सुधरे बिना काम नहीं चल सकता। जो बेगारियाँ और जबरदस्तियाँ अबतक चलती रही हैं उनका अन्त तो होना ही है, परन्तु उनका अन्त करने के लिए न

तो शस्त्र या हिंसा का प्रयोग करना होगा और न किसी बाहरवाले से सहायता माँगकर अपनी बेआबरूई करानी होगी।

धरती का मालिक

आजकल जो ज़मींदार के नाम से पुकारे जाते हैं वे किसान असल में उतनी ही धरती के मालिक हैं जितनी पर उनकी अपनी खेती होती है। बाक़ी और खेतीबाड़ी, जिनके लिए वह औरों से लगान वसूल करते हैं, असल में उनकी मिल्कियत नहीं है। वह तो उन लोगों की मिल्कियत है जो उसे जोतते-बोते और उसमें से अनाज पैदा करते हैं। ज़मींदार कई प्रान्तों में उनपर इज़ाफ़ा लगान कर देता है और अगर वे बढ़ा हुआ लगान नहीं देते तो उन्हें बेदख़ल भी कर देता हैं। जहाँ कहीं तीस साल में बन्दोबस्त होने का रिवाज है वहाँ तो ज़मींदार कुछ दिन तक इज़ाफ़ा लगान करके फ़ायदा उठाता रहता है। परन्तु बन्दोबस्त के समय सरकारी मालगुज़ारी की अटकल बढ़े हुए लगान से लगाई जाती है और वह बढ़ा हुआ लगान सदा के लिए बढ़ जाता है। जमींदार को जो फ़ायदा मिलता था, अब उतना नहीं मिलता, इसलिए लालची ज़मींदार फिर लगान बढ़ाता है। किसान के इस दुःख का कभी अन्त नहीं होता। किसान भी यह समझ जाता है कि हम ज़मीन की उपज बढ़ाते हैं, तो उसका फायदा लगान बढ़ाकर जमींदार ले लेता है और हमें कुछ नहीं मिलता; इसी तरह उपजने की ताक़त अगर हम बढ़ा दें, और बढ़ा हुआ लगान न देना चाहें तो खेत हमारे हाथ से निकल जाता है। इस तरह खेत की ताक़त और हैसियत बढ़ाने में किसान अपना कोई फायदा नहीं देखता। जो चीज़ असल में अपनी मिल्कियत नहीं है उसकी तरक्की में हम अपने-को क्यों वृथा घुलावें? भारत का किसान देखता है कि यहाँकी धरती गैरों की मिल्कियत है। इसीलिए इस देश में खेती की तरक्की नहीं

होती। विदेशी सरकार ने खेती की तरक्की के नाम से देश में जो खर्चीली संस्थायें खोल रक्खी हैं उनका किया कुछ भी नहीं हो सकता। पहले तो वे खासकर विलायती मेशीनों के बिकवाने के लिए और उनके विज्ञापन के सुभीते के लिए सफ़ेद हाथी की तरह है, दूसरे अगर वे खेती की तरक्की कराना भी चाहें तो तबतक नहीं करा सकतीं, जबतक कि किसानों के मन में यह बात न बैठ जाय कि हमारे खेत हमारी मिल्कियत हैं। हमारे देश के सुधारकों ने खेती के सुधार पर बड़ी-बड़ी कोशिशे की हैं, परन्तु उनसे क्या होता है? असली रुकावट जबतक दूर न होगी, खेती में तरक्की नहीं हो सकती।

जबतक सरकार का मनमाना क़ानून है तबतक किसानों की मिल्कियत कुछ भी नहीं है। गाँव की पंचायत के ही अधीन जब गाँव की खेती का बन्दोबस्त होगा, जब सब तरह पर पंचायत ही रक्षा करने लगेगी, तभी वह पंचायती क़ानून बनेंगे जिनसे कि खेती की रक्षा होगी और खेत किसानों की मिल्कियत होगी; साथ ही साहूकार के चंगुल से बचाने के लिए पंचायत को यह निश्चय कर देना पड़ेगा कि कोई किसान अपने किसी खेत को बेच न सकेगा। और न किसी किसान के हल, बैल, खेत आदि जीविका देनेवाली मिल्कियत कभी किसी क़ानून में नीलाम पर चढ़ सकेगी। जैसे प्राचीन काल में किसीको ज़मीन बेचने का अधिकार न था, वैसे ही अब भी पंचायत के कानून से किसी किसान को यह अधिकार न होगा कि वह अपने खेत बेच सके। लम्बी मुद्दत के लिए भोग-बन्धक रख देना भी एक प्रकार से बेचना ही है।

किसी किसान को यह अधिकार न होना चाहिए कि अपनी ज़रूरत से दूने से अधिक खेत रख सके। जितनी खेती उसकी सामर्थ्य से बाहर है, उसे चाहिए कि उसे उन लोगों में उसे बाँट दें जिनको कि अपने और

अपने परिवार के लिए खेतों की आवश्यकता है। पंचायत ऐसा नियम कर सकती है कि मिल्कियत पानेवाला किसान उसके बदले पंचायत द्वारा ठहराई हुई रकम छोटी-छोटी किश्तों में कर के सूद-सहित दे डाले। डेनमार्क की स्वदेशी सरकार ने ऐसे क़ानून बनाकर छोटे-छोटे मिल्कियत-दार पैदा कर दिये हैं, जिनके होने से सारा राष्ट्र पहले से अधिक सुखी और समृद्ध होगया है। प्रजा-भक्त सरकार ने ऐसे क़ानून बना दिये हैं कि बहुत छोटी हैसियत के लोग सरकार से ही नाममात्र के सूद पर रुपये लेकर और धीरे-धीरे आठ-दस बरसों में चुकता करके मिल्कियतदार बन गये हैं। हमारे यहाँ पंचायतें भी थोड़ी हैसियत के लोगों को मदद करके अच्छी हैसियतवाले बना सकती हैं। वह बेमिल्कियतवाले मजूरों को मिल्कियतदार भी कर सकती हैं। जिन-जिन किसानों के खेतों के टुकड़े दूर-दूर पड़ गये हैं, उन्हें आपस में राज़ी करके ऐसा बन्दोबस्त करा सकती हैं कि हरेक किसान के अपने खेत पास-पास हो जायँ। कर्ज़ पाटने के लिए भी पंचायतें ऐसा कुछ बन्दोबत कर सकती हैं कि साहूकार नाम मात्र के व्याज के ऊपर छोटी-छोटी किस्तों में अपना पावना वसूल करने को राज़ी हो जायँ।

गाँव की पंचायत से बग़ावत करनेवाले या उसे क़ायम न होने देने-वाले ज़मींदारों और साहूकारों का मुकाबला करने के लिए सत्याग्रह की विधि जो हमने ऊपर बताई है वह ग्राम-संगठन के काम में पड़नेवाली बाधाओं को दूर करने के लिए है, परंतु पंचायत का रचनात्मक काम बहुत बड़ा है। बेकारी दूर करने के लिए पहले अध्याय में जो खद्दर का काम हमने बताया है, पंचायत का वह पहला रचनात्मक काम समझा जाना चाहिए। लगान और मालगुजारी को ठीक मर्यादा के भीतर लाकर देश में जो ही सरकार हुकूमत करती हो और उचित रीति से

रक्षा का काम करती हो उसे रक्षा मात्र के लिए भूमि कर के रूप में देने का प्रबन्ध करना यह दूसरा रचनात्मक काम होगा। किसानों को धरती का सच्चा मालिक बनाकर किसानों में हाथ की अंगुलियों की तरह तारतम्य रखकर उनकी फिर से बँटाई करना और खेती की मिल्कियत को भरसक पास-पास कराकर इसे सुभीते का व्यवसाय बनाना पंचायत का तीसरा रचनात्मक काम होगा। भूमि-कर के देने का ऐसा बन्दोबस्त करना कि वह रुपयों में न दिया जाकर खेती की उपज के अंश में दिया जाय, और यह अंश भी भूमि-कर के नाते उन्हीं लोगों को देना पड़े जिनके खेतों से कम-से-कम उपजवाले सालों में भी अपने परिवार के साल-भर के खर्च के लिए उपज को निकालकर फालतू उपज बचती हो। यह बन्दोबस्त गाँव की पंचायत का चौथा रचनात्मक काम होगा। ये चार रचनात्मक काम मुख्य होंगे, और गाँव की पंचायत को सबसे पहले इन्हीं कामों की जिम्मेदारी अपने सिर पर लेनी होगी।

इसका मतलब यह नहीं है कि पंचायत का जो नित्य का काम है—अर्थात् शिक्षा, रक्षा व्यवसाय, विनोद और सेवा, इन पाँचों को ग्राम की पंचायत किसी आगे आनेवाले युग के लिए उठा रखे। पंचायत के नित्य और निमित्त के कर्तव्य तो आगे अलग दिखावेंगे। यहाँ तो हमने उन जरूरी कामों का निर्देश किया है, जिनका करना हमारे देश की असाधारण परिस्थिति के कारण गाँव की पंचायतों के लिए अत्यंत आवश्यक और अनिवार्य है।

: ५ :

कर्ज़ा और मुक़दमेबाज़ी

१. ऋण-भार

आज भारतवर्ष के किसानों के सिर पर सात-आठ अरब रुपयों के कर्ज़ का बोझा है। यह बोझ दिन-पर-दिन बढ़ता चला जा रहा है। जिस किसान की आमदनी छः पैसे रोज़ के लगभग है, उसे पापी पेट को भरने के लिए अन्न तो मिलता नहीं, वह बेचारा अपना ऋण चुकाने के लिए रुपया कहांसे लावेगा। साल-भर में किसान जितना ही सिर पीछे कमाता है लगभग उतना ही उसके सिर पर कर्ज़ा भी रक्खा हुआ है। जिस आदमी की आमदनी साल में बारह सौ रुपये हो वह अपने ऊपर एक हज़ार रुपये का ऋण बहुत भारी बोझ मानता है और उसके चुकाने के लिए विशेष उपाय करता है। जिसकी आमदनी इतनी कम हो कि उसे चौबीस घंटे में एकबार भी उससे भर पेट भोजन न मिल सके, वह अपनी साल-भर की आमदनी की बराबर की रक़म भला कैसे चुका सकेगा? किसान तो असल में सरकार की करतूतों से दिवालिया बन गया है। वह तो किसी तरह पर अपना ऋण चुका नहीं सकता। उधर साहूकार भी उससे पाई-पाई वसूल करने के लिए तुला बैठा है। साहूकार की निठुराई और बेदरदी मशहूर है। वह अपने रोज़गार की बदौलत घर बैठे रईस बन गया है। ब्याज की कड़ाई को क़ानून और अदालत ने बहुत कुछ कम कर दिया है, यह बात सही है। यह भी सही है कि सहकार-समितियों ने कुछ मालदार किसानों को भी

इस दिशा में लाभ पहुंचाया है। परन्तु यह लाभ बहुत थोड़ा है। हमारे देश के दरिद्र किसानों को रत्ती-भर भी लाभ नहीं पहुँच सकता।

किसानों के सिर पर ऐसा भारी कर्ज का बोझ कैसे पड़ गया? यह बड़ा विकट सवाल है। इसमें बहुत कुछ तो हमारे किसान भाइयों का दोष है, तो भी सरकार का दोष थोड़ा नहीं है। जिन दिनों किसान सुखी और समृद्ध था, उसके पास खाने-पहरने की कोई कमी न थी। उसे भूमि-कर देकर भी इतना बचता था कि आये दिन उत्सव और मंगल के कामों में और तीज-त्योहारों पर वह जी खोलकर खर्च करता था और खुशियाँ मनाता था। उसके वे सुख के दिन तो कभी के बीत गये, पर उसके मन का हौसला न गया। वह ऐसे मौकों में जी खोलकर ख़र्च करने में अपनी आबरू समझता आया है। जब वह देखता है कि हमारी आमदनी से इतना नहीं बचता कि हम काम-काज में लगा सकें तो वह साहूकार की शरण लेता है और यह आशा रखता है कि धरती-माता की कृपा से कभी तो हमारे भले दिन आवेंगे और हम क़र्ज़े के बोझ से छुटकारा पायेंगे। दुर्भाग्य से ऐसे भले दिन तो कब के लद गये। अब तो वे सपने में भी देखने को नहीं मिलते। किसान उनकी बाट देखते-देखते सूद को इस हदतक बढ़ने देता है कि वह मूल से कई गुना ज्यादा हो जाता है और उसकी आँखों के देखते-देखते उसके बाप-दादों की जायदाद धीरे-धीरे ग़ायब होती चली जाती है तब भी ऋण का पिशाच उसको बराबर भयभीत करता ही रहता है। परन्तु किसान को उसकी दरिद्रता की अवस्था ने इतनी काफ़ी चेतावनी दी है। कि वह अब काम-काज पड़ने पर पहले के मुक़ाबले में बहुत कम खर्च करता है। और चादर देखकर टाँग पसारना सीख गया है। जाति की पंचायतें और सुधार की सभायें उसके काम-काज के खर्च को बराबर घटाती रही हैं।

: ५ :

कर्ज़ा और मुक़दमेबाज़ी

१. ऋण-भार

आज भारतवर्ष के किसानों के सिर पर सात-आठ अरब रुपयों के कर्ज़ का बोझा है। यह बोझ दिन-पर-दिन बढ़ता चला जा रहा है। जिस किसान की आमदनी छः पैसे रोज़ के लगभग है, उसे पापी पेट को भरने के लिए अन्न तो मिलता नहीं, वह बेचारा अपना ऋण चुकाने के लिए रुपया कहांसे लावेगा। साल-भर में किसान जितना ही सिर पीछे कमाता है लगभग उतना ही उसके सिर पर कर्ज़ा भी रक्खा हुआ है। जिस आदमी की आमदनी साल में बारह सौ रुपये हो वह अपने ऊपर एक हज़ार रुपये का ऋण बहुत भारी बोझ मानता है और उसके चुकाने के लिए विशेष उपाय करता है। जिसकी आमदनी इतनी कम हो कि उसे चौबीस घंटे में एकबार भी उससे भर पेट भोजन न मिल सके, वह अपनी साल-भर की आमदनी की बराबर की रक़म भला कैसे चुका सकेगा? किसान तो असल में सरकार की करतूतों से दिवालिया बन गया है। वह तो किसी तरह पर अपना ऋण चुका नहीं सकता। उधर साहूकार भी उससे पाई-पाई वसूल करने के लिए तुला बैठा है। साहूकार की निठुराई और बेदरदी मशहूर है। वह अपने रोज़गार की बदौलत घर बैठे रईस बन गया है। ब्याज की कड़ाई को क़ानून और अदालत ने बहुत कुछ कम कर दिया है, यह बात सही है। यह भी सही है कि सहकार-समितियों ने कुछ मालदार किसानों को भी

इस दिशा में लाभ पहुंचाया है। परन्तु यह लाभ बहुत थोड़ा है। हमारे देश के दरिद्र किसानों को रत्ती-भर भी लाभ नहीं पहुँच सकता।

किसानों के सिर पर ऐसा भारी कर्ज़ का बोझ कैसे पड़ गया ? यह बड़ा विकट सवाल है। इसमें बहुत कुछ तो हमारे किसान भाइयों का दोष है, तो भी सरकार का दोष थोड़ा नहीं है। जिन दिनों किसान सुखी और समृद्ध था, उसके पास खाने-पहरने की कोई कमी न थी। उसे भूमि-कर देकर भी इतना बचता था कि आये दिन उत्सव और मंगल के कामों में और तीज-त्यौहारों पर वह जी खोलकर खर्च करता था और ख़ुशियाँ मनाता था। उसके वे सुख के दिन तो कभी के बीत गये, पर उसके मन का हौसला न गया। वह ऐसे मौकों में जी खोलकर खर्च करने में अपनी आबरू समझता आया है। जब वह देखता है कि हमारी आमदनी से इतना नहीं बचता कि हम काम-काज में लगा सकें तो वह साहूकार की शरण लेता है और यह आशा रखता है कि धरती-माता की कृपा से कभी तो हमारे भले दिन आवेंगे और हम क़र्ज़े के बोझ से छुटकारा पायेंगे। दुर्भाग्य से ऐसे भले दिन तो कब के लद गये। अब तो वे सपने में भी देखने को नहीं मिलते। किसान उनकी बाट देखते-देखते सूद को इस हदतक बढ़ने देता है कि वह मूल से कई गुना ज्यादा हो जाता है और उसकी आँखों के देखते-देखते उसके बाप-दादों की जायदाद धीरे-धीरे ग़ायब होती चली जाती है तब भी ऋण का पिशाच उसको बराबर भयभीत करता ही रहता है। परन्तु किसान को उसकी दरिद्रता की अवस्था ने इतनी काफ़ी चेतावनी दी है। कि वह अब काम-काज पड़ने पर पहले के मुक़ाबले में बहुत कम खर्च करता है। और चादर देखकर टाँग पसारना सीख गया है। जाति की पंचायतें और सुधार की सभायें उसके काम-काज के ख़र्च को बराबर घटाती रही हैं।

ज़बरदस्ती से बचाले जिसमें वह आगे को कर्ज का बोझा बढ़ाने के लिए लाचार न हो।

पंचायत के सामने ऋण-भार को हलका करने का सवाल बड़ा जबर-दस्त है। पंचायत को यह उचित है कि इस सम्बन्ध में न्यायसंगत कानून बनावे। साहूकार का असल रुपया डूबना नहीं चाहिए। उसके रुपये पर साल-साल के हिसाब से उचित ब्याज भी मिलना चाहिए। जो ब्याज मिती पूजने पर भी न दिया जाय उसे मूल में जोड़कर आगे चलकर उस मिश्रित रक़म पर ब्याज लगाना भी न्यायसंगत है, पर इस सूद-दर-सूद के देने के लिए इस समय किसान समर्थ नहीं है, न आगे बहुत काल तक वह समर्थ हो सकता है। इसलिए पंचायत को इस सम्बन्ध के कानून बनाने पड़ेंगे अथवा पंचायत के संगठन के समय जो सरकार हो उससे इस सम्बन्ध के उचित कानून बनवाने पड़ेंगे। कानून ऐसे होने चाहिएँ कि सहने योग्य ब्याज की दर मुकर्रर करदे और अगर कोई साहूकार उस ब्याज से अधिक का हिसाब लगाकर किसी किसान से वसूल करना चाहे तो ऐसा करना दंड के योग्य अपराध समझा जाय। इस तरह का कानून बनने से महाजन के साथ अन्याय भी न होगा, किसान लुटेगा भी नहीं और अत्यधिक ब्याज वसूल करनेवाली मुक़दमेबाज़ी भी कम हो जायगी।

पंचायत को अथवा स्वराज्य-सरकार को ऐसे कानून की भी रचना करनी पड़ेगी कि जिस किसान को परिवार को खिलाने पहराने के बाद उपज से इतना न बचता हो कि भूमि-कर और ऋण की किस्त दोनों ही दे सके वह किसान ऐसा दिवालिया ठहराया जाय जिससे साहूकार को छोटी-छोटी किस्तों में मूलधन मात्र लौटवा दिया जाय। उससे कम हैसियत के किसान ऐसे दिवालिये ठहराये जायँ जिनसे कुछ भी वसूल

हो सकता। इसमें सन्देह नहीं कि साहूकार का इसमें नुकसान है, परन्तु ज भी कौन साहूकार ऐसा है जिसके कर्ज़दार दीवालिये होकर इस ह मूल तक हज़म न कर जाते हों। दीवालियेपन की जो आजकल ठह- ई हुई हद है, हमारे इस प्रस्ताव से उसका कुछ थोड़ा निस्तार हो जगा। यह कोई अनोखी बात नहीं है।

पंचायत को एक और ज़रूरी काम करना होगा। उसे कर्जदार सानों के ऊपर कुछ थोड़ी-सी वाजिब कड़ाई करनी पड़ेगी। कुछ ऐसे ायदे बनाने होंगे कि वे काम-काज पड़ने पर एक हद के भीतर खर्च रने को लाचार किये जायँ। वह खेती से बचे हुए समय को उपज बढ़ाने काम में लगावें और अपने खाने पहरने के ऊपर बचा हुआ उपज का ग पंचायत को उस समय तक बराबर देता रहे, जबतक कि उसका र्ज़ा चुकता न हो जाय। इस तरह कर्ज़ के लेने और देनेवाले दोनों को ड़ा सुभीता होगा।

ऐसा भी कानून बनवाने की ज़रूरत होगी कि ज़रूरत पड़जाने पर स-किस तरह पर किसान कर्ज़ ले और किस-किस विधि से कर्ज़ का हा वर्जित रहे। जैसे यह कानून बन जाना तो बड़ा ज़रूरी है कि कोई सान अपनी ज़मीन बेच न सके। लेन-देन सम्बन्धी कानून जब ठीक- क रीति से बन जायँगे—चाहे पंचायत बनावे या सरकार—तभी सान भारी कर्ज़ के बोझ से छुटकारा पा सकेगा। ऐसा कानून तो ायतों को बना ही देना चाहिए जिससे सूद की रक़म बहुत घट जाय र ऐसी हद के भीतर हो जाय कि अब ज़रूरत पड़ने पर कर्ज़दार को सी झंझट में न पड़ना पड़े। इसी हद के भीतर महाजन सूद ले सके र अगर साहूकार इतने कम सूद को मंजूर न करे तो किसान को ऐसे ीते पंचायत की ओर से दिये जायँ कि ज़रूरत के वक्त उसे कर्ज़ ज़रूर

मिल सके। ग्राम-पंचायतों के संगठन के बाद सहकार-समितियों से किसानों को ऐसा लाभ पहुँच सकता है।

३. मुक़द्दमेबाज़ी

ऋण का मुकदमेबाज़ी से भी बड़ा सम्बन्ध है। ऋण के लिए मुकदमेबाज़ी की जाती है और मुकदमेबाज़ी के लिए ऋण लिया जाता है। मुक़दमेबाज़ी किसानों का एक बड़ा जबरदस्त रोग है। ज़मींदार और किसान के बीच लगान, हक़, दस्तूर, नजराना, बाग, ऊसर आदि के झगड़े चलते रहते हैं। ज़मींदार की मर्जी बिना किसान पेड़ की एक डाली भी नहीं कटवा सकता। किसी ग़रीब किसान ने अपना पापी पेट भरने के लिए तालाब में से मछलियाँ पकड़ी, और उधर ज़मींदार का क़हर टूट पड़ा। इस तरह के झगड़े तो ज़मींदार और किसान के बीच में होते ही रहते हैं। पारिवारिक झगड़े भी कम नहीं हैं। भाई-भाई लड़ जाते हैं। बँटवारे का झगड़ा पैदा हो जाता है। पट्टीदारों में परस्पर डाँड-मेड़ का झगड़ा लगा रहता है। विरासत और हकीयत के झगड़े भी कम नहीं हैं। साहूकार कर्ज़ वसूल करने के लिए भी दावा दायर किया करता है। फिर आपस के ऐसे झगड़े भी होते रहते हैं जिनका अंत तुरन्त की डंडेबाजी, अंग-भंग और कभी-कभी हत्या तक में होता है। माल, दीवानी और फौजदारी तीनों तरह के मुकदमे हमारे गाँवों से निकलकर दूर-दूर की अदालतों में जाते हैं, और गाँव की गाढ़ी कमाई अदालतों के अनउपजाऊ खानेवालों में बँट जाती है। और बहुत-सा रुपया आजकल स्टाम्प, कोर्ट-फीस, टिकट आदि के रूप में विदेशी सरकार के हाथ लगता है। किसान शारीरिक दुःख भी उठाता है, धन भी खोता है और जब एक दफे अदालत के चक्कर में फंस गया तो कर्ज लिये बिना आगे का कोई काम उसका चल ही नहीं सकता। अगर उसकी जीत भी हुई तो

अदालती बन्दर-बाँट में उसकी डिगरी की क़ीमत कुछ भी नहीं रह जाती। अब वह कर्ज़ कहाँ से अदा करे?

इस चक्कर में वह बिलकुल अपनी ही मूर्खता से नहीं फँसा। सीधे-सादे किसान को फँसाने के लिए विदेशी सरकार ने एक महाजाल बिछा रक्खा है। जब गाँवों में पहले पंचायत थी तब वह इस जाल में नहीं फँसता था। बिना कौड़ी खर्च कराये पंचायत उसका सारा काम कर देती थी। बेचारों ने बंदर-बाँट की रीति को न समझा और जाल में फँसकर तबाह होगये। आज फिर भी वही गाँव की पंचायत किसान को इस तबाही से उबार सकती है। मुकदमे के लिए किसान की कर्ज़दारी की ज़िम्मेदारी भी सरकार पर है।

मुक़दमेबाज़ी तो आदि से अंत तक कर्ज़दारी का कारण हो जाती है। जहाँ चार बरतन होते हैं वहाँ खन-खन होना स्वाभाविक है। परिवार बड़ा हुआ, भाई-बन्धु बढ़े, तो आपस में दरिद्रता के कारण लड़ाई झगड़ों का बढ़ जाना बिलकुल स्वाभाविक है। कोई परिवार ऐसा नहीं है जिसमें सभी प्राणी समझदार और सहनशील हों। समझदार और सहनशीलों के बीच में भी नासमझ और उतावले प्राणी निकल आते हैं। दरिद्रता रही-सही समझदारी को भी बिगाड़ देती है। भाई-भाई लड़ जाते हैं। दलाली से रोटी कमानेवाले इसी ताक में रहते हैं और नासमझ उतावले बिगड़ैल भाई को फुसलाकर फूट की धार को तेज़ कर देते हैं। जो झगड़ा आसानी से सुलझ जानेवाला भी होता है उसमें ऐसी उलझन पैदा कर देते हैं कि वह अदालत को गये बिना नहीं रहता। थोड़ी-सी जायदाद भाई-भाई की लड़ाई में बारह-बाट होजाती है। मुक़दमेबाज़ी के लिए मुद्दई-मुद्दालेह दोनों कर्ज़ लेते हैं। अन्त में बन्दर-बाँट के बाद मुक़दमे का खर्च और कर्ज़ा सिर पर आता है। फिर मान

लो कि १० बीघे की खेती होती थी तो इकट्ठी खेती करने में एक ही हल, बैल और हलवाहे से काम चल जाता था, अब पाँच-पाँच बीघे जो दो भाइयों में बँटे तो उसमें हल, बैल और हलवाहा किसी-न-किसी भाई को अलग रखना ही पड़ेगा। यह सब भी कर्ज के ही बल से हो सकता है। यही झगड़ा अगर अदालत न जाता और गाँव की पंचायत में ही पेश होता तो दलाल की तो दुर्दशा हो जाती। लेने के देने पड़ जाते। झगड़नेवालों को कौड़ी न खर्च करनी पड़ती। नासमझ झगड़ालू भाई को समझा-बुझाकर ऐसा राज़ी किया जाता कि अलग हल, बैल और हलवाले की भी ज़रूरत न पड़ती। इस उदाहरण से पढ़नेवालों को यह समझ में आ जायगा कि मुक़दमेबाज़ी किस तरह खर्च बढ़ाती है, कर्जदार बनाती है और धन को चुसवाकर विदेशी सरकार के पास पहुंचवाती है। अगर पुरानी पंचायतें सरकार की कृपा से नष्ट न होगई होतीं तो यह सारी नौबत न आती। इसी लिए जैसे लगान की वसूली में सरकार कर्ज़दारी का कारण बनती है वैसे ही मुक़दमेबाज़ी में भी। कर्ज़दारी का मूल सरकार है।

सरकार लगान पर कर्ज़दारी में फँस जाने का अपराध किसान को ही लगाती है। कहती है कि हम तो फसल तैयार हो जाने पर लगान का रुपया वसूल करते है। यह तो सच है। अगर किसान से लगान के रुपये के बदले ज़मींदार या सरकार पैदावार का कोई निश्चित अंश लेकर लगान की भरपाई लिख दिया करते तब तो उतना दोष सरकार का न होता, परन्तु वास्तव में होता यह है कि फसल तैयार हो जाने के समय से ही सरकारी पावना चुकाने के लिए किसान को लाचार होकर पैदावार को बेच डालने की चिन्ता होती है। सभी किसान एक ही समय में जब अपनी-अपनी पैदावार को बेच डालने को तैयार हो जाते हैं तो मण्डी में माल ज्यादा हो जाता है और घटी हुई माँग के कारण

उपज को बहुत सस्ते भावों पर बेच डालना पड़ता है। अगर उसे रक़म चुकाने की उतावली न हो तो किसान अपनी उपज को अपने पास उस समय तक जमा रखे जबतक कि बाज़ार में भाव बहुत ऊँचा न चढ़ जाये। फिर वह सुभीते के साथ बेचे तो उसी माल के बहुत अच्छे दाम किसानों के हाथ आवें। अगर इसपर यह कहा जाय कि किसान कर्ज़ लेकर सरकारी पावना चुकावे और फिर सुभीते से उपज की बिक्री करके महाजन का ऋण चुका दे, तो यह भी विचार करना चाहिए कि इस तरह के कारबार में उसे क्या सुभीता हो सकता है? महाजन का सूद-दर-सूद उतने ही समय में इतना चढ़ जा सकता है कि सुभीते से बिक्री का जो लाभ हो उससे अधिक महाजन को रक़म देनी पड़े। और विदेशी सरकार रुपये के बदले उपज का ही अंश क्यों नहीं लेती? उसके कई कारण प्रत्यक्ष हैं। एक तो उसे पैदावार के बेचने का बन्दोबस्त करना पड़ेगा, दूसरे जो लगान ठहरा दिया जाता है वह अच्छी पैदावारवाले सालों के हिसाब से होता है। परन्तु अच्छी पैदावार होती कब है? ऐसी दशा में उपज का अंश लेने में विदेशी सरकार का सरासर नुक़सान है। जिस साल पैदावार बहुत कम होती है उस साल तो समझना चाहिए कि पैसा के उपासक पच्छाहियों के देवता ही कूच कर जायँगे। इन स्पष्ट कारणों से सारे भारत में विदेशी सरकार ने लगान की रक़म रुपयों में ही वसूल करने का नियम रखा है। इसलिए किसान को कर्ज़-दार होने के लिए उसीने लाचार किया है। अपराध उसीका है।

अगर और किसी काम के लिए पंचायत न बने और गाँवों का हमारी पुरानी विधि से संगठन भी हो सके, तब भी मुक़दमेबाज़ी से किसान की रक्षा करने के लिए गांव-गांव में ऐसी पंचायत की ज़रूरत है जो किसानों को मुक़दमेबाज़ी के महापातक से रोके और उनके झगड़े आप ही चुकावे।

: ६ :

गो-रक्षा

१. अंग्रेज़ी शासन के पहले

प्राचीन हिन्दू राज्यों में भी गो-भक्षी राक्षसों की चरचा जहाँ-तहाँ इतिहासों और पुराणों में पाई जाती है। देवता और असुर सभी ज़मानों में हुए हैं, और दोनों का युद्ध हर युग और हर समय में बराबर होता आया है। गो-भक्षक मुसलमान भी हैं, परन्तु इतने नहीं जितने कि अंग्रेज़। मुसलमानों का राष्ट्रीय भोजन गोमांस नहीं है, परन्तु अंग्रेज़ों का तो यह राष्ट्रीय भोजन है। मुसलमानों के समय में भी इतना गोवध नहीं होता था जितना आज हो रहा है।

सन् १९२९ के दिसम्बर में लाहौर में अखिल भारतीय गो-परिषद् के सभापति-पद से बाबू गोविन्ददासजी ने अपने भाषण में कहा था:—

"फयवा-हुमायुनी जिल्द १ पन्ना ३०७ पर लिखा है, 'इस्लाम की मजहबी नियत से गोहत्या ज़रूरी नहीं है। नीचे लिखा फतवा मौलाना अब्दुलहसन मुहम्मद अबदुल्ला, मुहम्मद अब्दुलवहाब, अब्दुलहमीद काजी मुहम्मदहुसेन आदि कई मुसलमान मौलवियों के दस्तख़तों से मशहूर हुआ है—'गोवध कोई ज़रूरी बात नहीं। अगर कोई मुसल्मान छोड़ देता है तो गुनाह नहीं करता। अगर कोई मुसलमान गाय न काटे या गोमांस न खावे तो उसके मज़हब पर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। झगड़े टालने के लिए और ख़ासकर ऐसी जगहों में जहाँ झगड़े या बुरे विचार पैदा होने का अन्देशा है, गाय की क़ुरबानी न होनी चाहिए। किसीके

मज़हबी जज़बात को चोट पहुँचाने का इस्लाम मज़हब सबक़ नहीं सिखाता।' मुसलमानों के राज्य में भी गाय की कुर्बानी बहुत दूर तक बन्द थी। डाक्टर सैयद महमूद ने अपनी एक किताब 'काऊ प्रोटेक्शन अन्डर मुस्लिम रूल' में लिखा है—'मुस्लिम राज्य की शुरुआत से ही कसाइयों पर फ़ी गाँव १२ जीतल का ख़ास टैक्स लगाया गया था। यह (टैक्स) मुसलमानी राज्य की शुरुआत से फीरोज़शाह तुग़लक़ के वक़्त तक यानी २०० वर्ष तक बराबर जारी रहा। जब बाबर तख़्तनशीन हुए तब उन्होंने अपने बेटे हुमायूँ को पोशीदा वसीयत नामा लिखा, जिसमें गाय की कुर्बानी क़तई बन्द करने का फ़रमान जारी किया था। आईन-ए-अकबरी और दूसरी किताबों से यह बात साफ़ ज़ाहिर होती है।' मशहूर इतिहास लेखक सर विन्सेण्ट स्मिथ ने 'अकबर दी ग्रेट मोगल' में लिखा है, कि 'अकबर के राज्य में गाय की कुर्बानी के वास्ते फांसी की सज़ा थी। आज भी कई मुस्लिम राज्यों में गाय की कुर्बानी बन्द है।"

लन्दन यूनीवर्सिटी के खोज-विभाग के रिसर्च-स्कालर श्री० अब्दुर्रहीम नामक एक मुसलमान विद्वान ने अपनी खोज में इस बात का पता लगाया है कि मुगल बादशाह जहाँगीर के ज़माने में गो-वध बिल्कुल बन्द कर दिया गया था और गो-घातक को फाँसी का दण्ड दिया जाता था।[1] उन्होंने उस समय के आसरे में हालैण्डवालों के एक कारख़ाने के यूरोपियन कर्मचारी के लेख को उद्धृत करते हुए अपनी इस खोज की पुष्टि की है। इस यूरोपियन का नाम फ्रान्सिस्को पालसर्ट था और उसने उस कारखाने में सन् १६१८ से लेकर १६२९ तक असिस्टेन्ट से लेकर चीफ़ मैनेजर तक का काम किया था। फ्रान्सिस्को ने अपने लेख में लिखा

१. २ मार्च, १९३३ के 'स्वदेश' से उद्धृत।

है कि "इस देश में किसी गाय या बैल की हत्या नहीं की जाती, क्योंकि इन पशुओं से यहाँ ठीक उसी तरह से खेती का काम लिया जाता है जैसे हालैण्ड में घोड़ों से। बादशाह ने गाय-बैलों की हत्या करने की मनाही करदी है। जो कोई हत्या करता है, उसे फाँसी की सज़ा दी जाती है। उन्होंने भैंसों की हत्या करने की आज्ञा देदी है। बादशाह ने यह क़ानून हिन्दू राजाओं, बनियों और अपनी प्रजा को, जो गौओं को सबसे बड़ा देवता और प्राणीमात्र में सबसे अधिक पवित्र मानते हैं, प्रसन्न रखने के लिए बनाया है। ये लोग बादशाह और सरकार पर कभी-कभी इस बात का दबाव डालते हैं कि कुछ त्योहारों पर बाजारों में मांस नहीं बिकने जाना चाहिए और कोई भी आदमी न मछली पकड़े और न किसी जानवर की हत्या करे। इन आज्ञाओं से कभी-कभी प्रजा को असुविधायें होती हैं। ये लोग हम लोगों के विपरीत, गर्मी की वजह से ज्यादा भोजन नहीं कर सकते, बल्कि पानी बहुत ज्यादा पीते हैं, जिससे वे कमज़ोर और मोटे हो जाते हैं।" उपर्युक्त उद्धरण देकर श्री० अब्दुर्रहीम ने अपने सहधर्मी भारतीय मुसलमानों से अपील की है कि वे अपने बड़े-बड़े मुग़ल बादशाहों की सहनशीलता से शिक्षा ग्रहण करें और देश की एकता के लिए अपने देशवासियों को प्रसन्न करने के हेतु अधिक उदारता और विवेक से काम लें। इसके साथ ही आपने हिन्दुओं से उक्त यूरोपियन फ्रान्सिसको के कथन की ओर ध्यान देने तथा मुसलमानों की असुविधाओं का पूरा ध्यान रखने की प्रार्थना की है।"

मुसलमान हाकिम भी एक तो हिन्दुओं का लिहाज करके, दूसरे खासकर अन्नधन की तरह गोधन को भी बड़ी भारी सम्पत्ति समझकर उसकी रक्षा करते थे।[१] आज भी अमेरिका, कनाडा, इँग्लिस्तान, यूरोप

१. कलकत्ते की 'काऊ प्रोटेक्शन सोसाइटी' के मंत्री मौलवी वाहिद

आदि जितने देशों में खेती होती है उनमें गोपालन पर बहुत बड़ा जोर दिया जाता है। खुद अंग्रेज़ों के देश में गायों की बड़ी सेवा होती है और और गायें बहुत ज्यादा दूध देती हैं, परन्तु भारत के गोधन की रक्षा की तरफ़ उनका ध्यान नहीं है। भारत में अपनी हुकूमत बनाये रखने के लिये वह जो गोरी सेना रखते हैं उसको भोजन के लिए नित्य गोमाँस चाहिए। इन्हीं गोरों के लिए बड़े भारी परिमाण में नित्य गोवध होता रहता है। सिविलयन और सेना दोनों के खाने के लिए १२ से लेकर २० लाख तक गौवों का वध होता है। यह क्रिया हिन्दुओं की आँखों के सामने नहीं होती, इसलिए इस बात पर न तो कोई उत्तेजना होती है। और न कोई धर्म्म-प्राण हिन्दू इस महा गोवध को ख़याल में ही लाता है।

सूखे माँस, चमड़ा, हड्डी, चरबी, सींग आदि की बिक्री से जीवित गाय की अपेक्षा ज्यादा आमदनी होती है, इसलिए विदेशी व्यापारी और भी गोवध कराया करते हैं। यह रोज़गार तभी से चल पड़ा है जब से यह देश अंग्रेज़ों के हाथ आया। सूखे माँस पच्छाहीं गोभक्षी खाते हैं। इस रोजगार के लिए ३५ से लेकर ४५ लाख तक संख्या में गोवध हुआ करता है। केवल चमड़े की तिजारत में ६० से ७० लाख तक गोवंशी मारे जाते हैं। इस तरह अंग्रेज़ों की बदौलत साल में सवा करोड़ के लगभग गोवंशियों का नाश होता है। कुरबानी करने लिए बेचारे मुसलमान मुफ्त बदनाम हैं। कुरबानी के नाते जितना गोवध होता है वह और

हुसैन साहब बी० ए० बी० एल० ने "भारत में दूध देने वाले पशुओं की रक्षा" नाम की एक पोथी सन् १९२३ में छपवाई थी। उसमें उन्होंने गोरक्षा के पक्ष में मुस्लिम धर्म के प्रमाण दिये हैं। उसके सिवाय और भी बामहुतकके अंक दिये हैं। पुस्तक पढ़ने योग्य है।

कारणों की अपेक्षा केवल नाममात्र है । इस तरह गोवंश का नाश अधिकाँश भोजन और व्यापार के लिए ही होता है ।

वध के सिवा एक और तरह से भी हमारे यहाँ गाय-बैल की कमी होती जाती है । इस देश के चुने हुए अच्छे-से-अच्छे मवेशी भी हिन्दुस्तान के बाहर, दूसरे देशों के कल्याण के लिए भेज दिये जाते हैं । सन् १९२४-२५ में इस तरह भेजे जानेवाले बैलों और सांडों की गिनती १०,१९५ थी, वही सन् १९२८-२९ में १९,३५४ होगई । बाहर जाने वाले मवेशियों की गिनती इस तरह बराबर बढ़ती ही जारही है। विदेशों में अच्छे सांडों से तो गोवंश बढ़ाने का काम लिया जाता है; परन्तु बैलों से उस तरह से काम नहीं लिया जा सकता, उनका माँस ही काम में आता है । क्योंकि अमेरिका, यूरोप, आस्ट्रेलिया सभी गोरे देशों में हल जोतने का और गाड़ी खींचने का काम घोड़ों से लेते हैं। बैलों से इस तरह के काम केवल हमारे देश में लिये जाते हैं ।

इस प्रकार चाहे इस देश में गोरों और मुसलमानों के खिलाने के लिए और चाहे व्यापार के लिए गोवंश का नाश किया जाता है और चाहे यहाँ से भू-भाग से हटाकर उन्हें बाहर भेज दिया जाता हो, हमारे देश के गोधन में हर तरह नित्य कमी होती जा रही है । इस तरह की दिनोंदिन की बढ़ती हुई कमी कैसे रोकी जाय, यह पहला सवाल है। गोधन जो नित्य घटता जा रहा है, पहले इस घटी को हम रोक लें तब बढ़ाने की चिन्ता करना उचित होगा । बढ़ाने की चिन्ता पहले ही हम करें और नित्य की घटती का द्वार बंद न करें तो हम गोवंश बढ़ाने में कभी सफल नहीं हो सकते । अब तक जो असफलता हुई है उसका रहस्य यही है ।

लेकिन जहाँ हम इतनी बड़ी गिनती में नित्य के गोवध का कारण

अंग्रेज़ों को ठहराते हैं, वहाँ हमें यह न भूलजाना चाहिए कि आज तक गोवध को दूर करने में हमारी ज़िम्मेदारी बहुत भारी है, और हम भी परदेशी गो-भक्षियों से कम दोषी नहीं हैं। इस बात को हम बिसरा नहीं सकते कि कटने के लिए गायें बेचने वाले हमी हैं। अगर हम अपने गाय-बैल-बछड़े उनके हाथ न बेचें तो यह गोहत्या कभी हो नहीं सकती। आम तौर पर हममें से बहुत से लोग बूढ़ी और लंगड़ी-लूली गायें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से कसाइयों के हाथ बेच डालते हैं। किसानों और ग्वालों में से बहुतेरे जो शहर के भीतर या शहर के पास अपना रोज़गार करते हैं, दूध देनेवाली या गाभिन गाय ख़रीद कर जब तक दूध होता है तब तक रुपये कमाते हैं और जब दूध टूट गया तो घर बैठाकर खिलाने की बला टालने के लिए गाय को बेंच डालते हैं और दूसरी दूध देनेवाली मोल ले लेते हैं। उनका रोज़गार चोखा हो जाता है, परन्तु गाय कसाईखाने में चली जाती है। देश में गोरक्षिणी सभायें हैं और पिंजरापोल हैं। पर ये संस्थायें इतनी थोड़ी हैं कि इनसे बहुत कम रक्षा होती है। बेचारे किसान और ग्वाले भी क्या करें, वे तो आप भूखों मरते हैं, और मरता क्या न करता? भूखी माँयें जब अपनी सन्तान का परित्याग कर देती हैं, तो फिर ये कंगाल गोवंश का परित्याग करें तो अस्वाभाविक नहीं है। अतः ग्वाले और किसान ऐसा सत्याग्रह कर सकते हैं कि भारत की एक भी गाय गोभक्षियों के अधिकार में न जाने पाये। इस काम के लिए गाँव-गाँव में पिकेटिंग हो सकती है। और गोवंश की रक्षा का पूरा उपाय हो सकता है। इस काम में मुसल-मान भाई जब तक हमारी मदद न करेंगे तब तक हमें कभी सफलता नहीं हो सकती। परन्तु असहयोग और सत्याग्रह की लड़ाई में किसी दल, किसी जाति या किसी समाज-विशेष के रूठ बैठने से हार नहीं हो

सकती। सबके एक में मिल जाने से जीत आसान ज़रूर हो जाती है।

जहाँ तक चारे का सम्बन्ध है वहाँ तक सरकार हर तरह पर जिम्मेदार है। किसान की असमर्थता भी उसीके कारण है। इसलिए किसानों को प्रयत्न करके जंगलों में ढोर चराने और लकड़ी लेने का अपना पुराना अधिकार उससे वापस लेना चाहिए।

जब विदेशी कारणों से उपजा हुआ गोवध बन्द होजाय और ढोरों के लिए गोचर-भूमि मिल जाय और चरने के लिए जंगलों का द्वार खुल जाय, तो तीन-चौथाई गोरक्षा निश्चित समझनी चाहिए। जब किसानों की बेकारी पहले अध्याय में बताये हुए उपायों से दूर होजायगी, और जब खद्दर के द्वारा विदेशी माल का पूरा बहिष्कार हो जायगा, तब किसानों के पास अनाज की कमी न रहेगी, वे भूखों न मरेंगे और अपने ढोरों को भर पेट खिला सकेंगे। तब गोवंश के सुधार का सवाल दो चार वर्षों का प्रश्न रह जायगा। तब सस्ती लकड़ी जलाकर अनमोल गोबर को वे खाद के काम में लावेंगे, और तब खेतों से कुबेर का गड़ा ख़ज़ाना निकल पड़ेगा। किसान फिर आसानी के साथ ऋण भार से अपने को मुक्त कर सकेगा, और गोरक्षा के पुण्य प्रभाव से भारत का सौभाग्य लौट आवेगा।

: ७ :

संगठन का श्रीगणेश

१. संगठन की जरूरत

देश में जब स्वराज्य हो जायगा तब उसका क्या रूप होगा, इस बात के ऊपर बहुत शास्त्रार्थ हो चुका है। इस शास्त्रार्थ में बेचारे किसान की वकालत करनेवाला, दरिद्रों के लिए अपने को मिटा देनेवाला जो पुरुषोत्तम है उसने उपेक्षा का भाव दिखाया। बात यह है कि जो लोग पूर्ण स्वराज्य का रूप नहीं देखे हुए हैं वे उसके भावी रूप का निश्चय नहीं कर सकते, साथ ही जब हम यह देखते हैं कि भारतवर्ष किसानों का देश है और हर दस आदमी में ७ आदमी खेती पर निर्वाह करते हैं तो इसमें हमें तनिक भी संदेह नहीं रह जाता कि स्वराज्य असल में किसानों का ही हो सकता है। अगर किसानों का न हुआ तो १० में तीन आदमियों का स्वराज्य असम्भव कल्पना है। थोड़ी देर के लिए हम मान भी लें कि मुट्ठी भर पढ़े-लिखे लोगों ने राज्य की स्थापना करली, तो भी जब तक किसानों का संगठन न होगा तब तक देश दरिद्र बना रहेगा और देश की दरिद्रता जब तक दूर न होगी तब तक स्वराज्य का उद्देश्य सिद्ध न होगा, और जिस काम में उद्देश्य ही पूरा न हुआ, वह काम पूरा कैसे कहा जा सकता है?

देश में मजूरों तक का संगठन हो गया है, और सारे भारत के मजूर अब अपने प्रतिनिधि अखिल भारतीय मजूर संघ में भेजते हैं। परन्तु मजूरों का संगठन उन बड़े शहरों का संगठन है जिनमें मिलें हैं।

की माई को भोग लगाकर खुद प्रसाद पावे। इस किसान-पन्थ में हर गाँव में किसानों की सभा का होना धर्म हो। उस सभा का मेम्बर होना और उनकी आज्ञा मानना हरेक किसान का धर्म हो। किसान-पन्थ में जो किसान-सभा का मेम्बर न बने वह और जो किसान सभा कायम न करे वह गाँव धर्म-विमुख समझा जाय और जो झूठी गवाही दे वह सबसे बड़ा पापी समझा जाय। गाँव-गाँव में किसानों की कथायें हों। गाँव-गाँव में किसानों को किताबें पढ़कर सुनाई जाँय। गाँव-गाँव में यह गूँज उठे कि पन्थ तो किसान-पन्थ है और सब पन्थ झूठे हैं। हर किसान का यही कथन हो कि बाबा तो बाबा किसानदास है और सब बाबा झूठे हैं। जिस दिन यह होगा उसी दिन किसानों का उद्धार भी हो सकेगा। इससे पहले हरगिज़ नहीं—हरगिज़ नहीं।"

२. आरम्भ कैसे किया जाय?

सचमुच गाँवों का वास्तविक संगठन गाँववाले ही कर सकते हैं। किसानों का संगठन करने के लिए ऐसे ही नेताओं की जरूरत है जो बाबा किसानदास बनकर गाँवों में अपनी कुटी बनालें और गाँव की चुटकी पर अपना निर्वाह करें। कोई शहर का आदमी जिसे किसान के कामों का और उसके जीवन का कोई तजुरबा नहीं है, इस तरह का बाबा किसानदास बनने की योग्यता नहीं रखता। वह कुटुम्बी किसान भी जो परिवार के पालन-पोषण और व्यवसाय और दरिद्रता के चहले में फँसा है, बाबा किसानदास बनकर नहीं बैठ सकता। बाबा किसान दास अपनी पूजा कराने के लिए नहीं होंगे। वह दरिद्रनारायण की उपासना करने के लिए अपने सुखों का त्याग कर देंगे। वह जो कुछ संगठन करेंगे उसमें आनेवाले संकटों के सहने के लिए अपनी आहुति कर देंगे। परन्तु अभी तो वह किसान-पंथ चला नहीं है जिसमें गांव-

गाँव में किसानदास का अवतार होगा। इस पंथ को चलाने के लिए अभी कुछ प्रारम्भिक उद्योग करने होंगे।

पूर्ण स्वराज्य के वर्तमान आन्दोलन में हज़ारों आदमी ऐसे हैं जो ग्राम-संगठन के शुरू के काम के लिए बहुत उपयुक्त हैं। हमारे राष्ट्रीय विद्यापीठों में और कांग्रेस की संस्थाओं में ऐसे लोगों को अधिक नहीं तो आठ-दस दिन[1] की शिक्षा देने की ज़रूरत है, जिससे वे शुरू के काम कर सकें। इन्हें ग्राम-संगठन के लिए स्वयंसेवक बनाकर थोड़े ही समय में ऐसा तैयार किया जा सकता है कि वे साल दो साल के लिए त्यागपूर्वक गाँवों में काम कर सकें। परन्तु हर जगह तो राष्ट्रीय विद्यापीठ नहीं हैं, और यह काम तो हर ज़िले में बहुत ज़ोरों से करने की ज़रूरत होगी। ऐसे स्वयं सेवकों की गिनती भी थोड़ी नहीं होगी। अगर छः महीने के लिए १०-१० गाँवों का संगठन करने के लिए एक एक स्वयं सेवक रखा जाय, तो सात लाख गाँवों क लिए सारे भारत में काम करने को सत्तर हज़ार आदमी चाहिए। संगठन के शुरू का काम कराने के लिए हर गाँव में एक-एक नेता खोज लेने के लिए हर गाँव का एक-एक मंडल बनाने के लिए यदि एक आदमी छः महीने तक परिश्रम करता रहे तो काफ़ी है, और सत्तर हज़ार की संख्या भी बहुत बड़ी नहीं है। हर ज़िला कांग्रेस कमेटी अपने को ग्राम-संगठन का बोर्ड बनाले और अपना यह कर्तव्य समझे कि ज़िले में जितने गाँव हैं उन गाँवों के दशमांश स्वयं-सेवक बनाकर उन्हें ज्यादा-से-ज्यादा आठ-दस

१. मुझे इस बात का अपना तजर्बा है कि चार घंटा रोज़ काम कराके ८ दिन में धुनने और कातने की पूरी शिक्षा दी जा सकती है। २-३ घंटे और शिक्षा देकर संगठन का काम अच्छी तरह समझाया जा सकता है। —लेखक

दिन तक में आरम्भिक काम की शिक्षा देदें तो कोई बड़ी बात नहीं है। जो लोग कांग्रेस के प्रमुख नेता भी हैं और देश में गाँवों की दशा से पूरे परिचित हैं, उन लोगों को कांग्रेस की कार्य्य-समिति की आज्ञा पर एक उपयुक्त समिति बनकर ग्राम-संगठन की आवश्यकताओं पर पूरा विचार करना चाहिए। किसान-संघ की रचना और साधारण नियमावली का एक नमूना तैयार करदें, दस-दस गाँवों पर नियुक्त होनेवाले स्वयं सेवक को क्या-क्या करना होगा इसका निर्देष पूरा-पूरा करदें और आठ दिन के भीतर खतम होने लायक़ ऐसी विपयावली बनादें जिसपर व्यवहार करते हुए स्वयं-सेवक को कोई अडचन न पड़े। यह बोर्ड ज़िला कांग्रेस कमेटियों से सीधा संबंध रखकर सारे भारत में ग्राम-संगठन के आरम्भिक काम का पूरा प्रवन्ध करे। यह काम कांग्रेस का ही है और काँग्रेस का संगठन ऐसा है जो आज ही गाँव-गाँव पहुँच सकता है। सरकार ने जो ज़िला बोर्ड बना रक्खे हैं उनके संगठन से ज़िला कांग्रेस कमेटी का संगठन अधिक सुगम और सुकर होगा।

जब हमने स्वयं सेवक तैयार कर लिये और उन्हें गाँव-गाँव में तैनात करना है, तो जिला काँग्रेस कमेटी का यह काम होगा कि अपनी तहसील कमेटियों से सलाह करके दस-दस गाँवों के मंडल बनाले और किसी काँग्रेस नेता को उन स्वयं-सेवकों के साथ भेजें कि मंडल के मुख्य-मुख्य गाँवों में स्वयं-सेवकों को लेजाकर संगठन की कुटिया बनादे और गाँव वालों को बुलाकर वह ग्राम सेवक उनको सौंप दें। काँग्रेस के उस नेता का यह भी कर्तव्य होगा कि वह समय-समय पर दौरा करके देखे कि कैसा काम हो रहा है, ग्राम-सेवकों को सहायता पहुँचावे और जो-जो ग्राम-सेवक अपना काम करने में किसी तरह असमर्थ हो जायँ उनकी जगह पर दूसरे ग्राम-सेवक का काम करने के लिए प्रवन्ध कर देवें।

३. किसान-संगठन का स्थायी काम

किसान-संगठन का जो काम लड़ाई के समय में शुरू किया जाय वह केवल लड़ाई के दिनों के लिए ही न समझा जाय। यह तो वह काम है जो परीक्षा की कसौटी पर कसा जा चुका है। जो काम लड़ाई के समय में भी सफल हो चुका वह साधारण समय में तो और भी अधिक सफल होना ही चाहिए। पशु-बल वाली सेना में सिपाही लोगों को तभी तक काम रहता है जब तक मारकाट होती रहती है। जिन घड़ियों में बेकारी के भयानक रोग का इलाज किसान-संगठन का पहला काम है; इस बेकारी को दूर करके संगठन की शिक्षा पाने वाला किसान फिर भी निश्चिन्त नहीं रह सकता। पिछले अध्यायों में वर्णित असहयोग और सत्याग्रह, धनवान-निर्धन का सम्बन्ध, ऋणभार, मुक़दमेबाजी और गोवध बंद करने के लिए उसे बहुत बहुत काम करने हैं। साथ ही उन्हें अपने-अपने गाँव के लिए स्थायी रूप से शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय, विनोद और सेवा के कामों का संगठन भी करना है। साधारण समयों में संगठन का काम उसके लिए सारे जीवन का काम है।

किसान-संघ के संगठन के सम्बन्ध में ६ अगस्त १९२९ के "सैनिक" में एक स्कीम प्रकाशित हुई थी। वही योजना हम यहाँ एक मसविदे के तौर पर देते हैं कि ग्राम-संगठन करनेवालों को अपनी नियमावली बनाने में सहायता मिले। हमने इसमें आवश्यक परिवर्तन इसलिए कर दिये हैं कि यह नियमावली समय के अनुकूल हो जाय:—

कृषि-जीवी-संघ

-किसान सभाओं का नाम किसान-संघ रक्खा जाय, जिसमें जिनकी जीविका खेती से चलती है वे सभी किसान-सभा के मेम्बर हो सकें—

किसान तथा ज़मींदार सभी उसमें शामिल हो सकें यह सभा अपनी तरफ़ से किसानों और ज़मींदारों में सहयोग स्थापित करे।

संघ का उद्देश्य

हर शान्त और न्याय्य तरीक़े से—

(१) खेती और खेती से गुज़र करनेवालों की तरक्की करना;

(२) किसानों को जो हक़ मिले हुए हैं, उनकी रखवाली करना;

(३) जो हक़ खेती और खेती से गुज़र करनेवालों की तरक्की और बहतरी के लिए और मिलने चाहिएँ वे दिलाना;

(४) गाँवों और गाँववासियों की सेवा और सुधार का काम करना, तथा

(५) किसानों का बहुत मज़बूत, सदा के लिए संगठन क़ायम करना और उसके द्वारा ग्राम-स्वराज्य स्थापित करना हो।

उद्देश्य-पूर्ति के साधन

इन उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए सभा निम्नलिखित उपायों से काम ले—

(१) शिक्षा द्वारा किसानों को उनके नैतिक हक़ों और कर्तव्यों का ज्ञान कराना, जिससे वे अनैतिक कार्यवाहियों से अपने को बचा सकें और अपने कर्तव्यों का पालन करके अपना भला कर सकें।

(२) महकमा खेती, महकमा नहर, महकमा तन्दुरुस्ती, महकमा तालीम, महकमा सहयोग समिति, महकमा माल, महकमा उद्योग-धन्धे वगैरह का और ज़िला सभा का किसानों और किसानी के फ़ायदे के लिए ज्यादा-से-ज्यादा और सर्वोत्तम उपयोग करना। इन महकमों से किसानों को ज्यादा-से-ज्यादा मदद दिलाना। किसानों की सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए प्रचार करना, उनमें आपस में प्रेम और

मिलकर काम करने का भाव पैदा करने की कोशिश करना। उनके आपसी झगड़े मिटाने के लिए पंचायतें क़ायम करना। उनकी शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय, विनोद और सेवा के प्रबन्ध कराना।

मेम्बर

हरेक किसान फिर चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, जिसकी उम्र अठारह साल से ज्यादा है, संघ का मेम्बर हो सकता है। मेम्बरी की फीस चार आने फ़सल रक्खी जाय। इस तरह अगर ज़िले भर में दस हज़ार मेम्बर बना लिये जायँ और मामूली तौर पर दो फ़सलों का हिसाब रक्खा जाय तो किसान सभा को पाँच हज़ार रुपये साल की आमदनी हो सकती है, जिससे किसानों की सेवा और सुधार के लिए एक-एक ज़िले में पचासों सुशिक्षित, सुसंगठित कार्यकर्त्ता, रक्खे जा सकते हैं। किसान सभा के सुव्यवस्थित बाक़ायदा दफ्तर रक्खे जा सकते हैं। किसानों की सेवा के छोटे-छोटे कार्य करके उनके लिए सभा द्वारा मुफ्त क़ानूनी सलाह, मुफ्त चिकित्सा वग़ैरे का इन्तज़ाम करके उन्हें हर महकमे से मदद दिला कर, सुख-दुःख में उनका साथ देकर, ज़ुल्मों और मुसीबतों से उन्हें बचाकर चार आना फ़सल लेना कोई मुश्किल बात नहीं है। चार आने का नाज तो फ़सल पर ग़रीब-से-ग़रीब किसान राह चलते फ़क़ीर को दे देता है!

(१) जिस गाँव में कम-से-कम दस मेम्बर हो जायँगे, उसमें गाँव की किसान-सभा क़ायम की जा सकेगी परन्तु किसान-सभा में साधारणतया घर पीछे एक सदस्य रहेगा।

(२) किसान-सभा के संगठन की इकाई हलका किसान-सभा होगी।

(३) हर ज़िले में ज़िला-सभा के चुनाव के जितने हलके होंगे उतने ही हल्के किसान-सभा के भी होंगे।

(४) कम-से-कम पचास मेम्बर होने पर हलका किसान-सभा क़ायम हो सकेगी।

(५) हलके की किसान-सभा की कार्यकारिणी के मेम्बरों की तादाद पचास तक हो सकती है। इन मेम्बरों और कार्यकारिणी के पदाधिकारियों—सभापति, उपसभापति, मन्त्री, उपमन्त्री, कोषाध्यक्ष, हिसाब-निरीक्षक तथा ज़िला-सभा के लिए दो मेम्बरों का चुनाव हलके-भर के मेम्बर वैसाख सुदी १५ तक कर लिया करेंगे।

(६) चुनाव की इत्तिला तमाम मेम्बरों को नाई या स्वयंसेवकों के हाथों पहले चिट्ठियाँ भेजकर या डौंडी पिटवाकर या नोटिस बँटवा-कर कम-से-कम सात दिन पहले करनी होगी। चुनाव में वे ही मेम्बर वोट दे सकेंगे जिनकी फ़ीस चुनाव से एक दिन पहले तक सभा के दफ़्तर में जमा हो चुकी होंगी।

ज़िला किसान सभा

(७) ज़िला किसान-सभा की कार्यकारिणी में जितने हलके होंगे उसके दुगने तथा उनके बाद की दहाई में जितने कम होंगे उतने और मेम्बर होंगे। यानी अगर किसी ज़िले में इक्कीस हलके होंगे तो इक्कीस दूनी बयालीस और आगे की दहाई के आठ और यानी कुल पचास मेम्बर होंगे।

(८) हरेक हलके से दो मेम्बर चुनकर आया करेंगे। आगे की दहाई को पूरा करने के लिए जितने मेम्बर और ज़रूरी होंगे उन्हें हलकों के चुने हुए मेम्बर बैठकर चुनेंगे।

(९) इन मेम्बरों का तथा ज़िला-सभा—पदाधिकारियों, के सभापति, उपसभापति, मन्त्री, उपमंत्री, कोषाध्यक्ष, आय-व्यय निरीक्षक तथा सूबे सभा के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव गंगा दशहरा तक हो जाना चाहिए।

(१०) मेम्बरी की फ़ीस में से एक-चौथाई सूबे की सभा को, एक-चौथाई ज़िला सभा को, और एक-चौथाई हलका सभा को देना होगा। बाक़ी एक चौथाई गाँव की किसान-सभा के पास रहेगा। जहां गाँव की किसान-सभा न होगी वहाँ उसका हिस्सा हलका सभा को मिलेगा। सूबे की सभा न होगी तो उसका हिस्सा ज़िला सभा को मिलेगा।

(११) ज़िला-सभा की वे ही हलका-सभायें अपने प्रतिनिधि भेज सकेंगी जिनके मेम्बरों की फ़ीस का चौथाई ज़िला-सभा को मिल चुका होगा। आधे से अधिक हलके के प्रतिनिधि चुने जाने पर ही ज़िला-सभा का बाक़ायदा संगठन हो सकेगा। हाँ, जहाँ संगठन पूरा न हो सकेगा वहाँ यानी शुरू में काम करने के लिए अस्थायी ज़िला कमेटियाँ बनाई जा सकती हैं।

(१२) ज़िला सभा ज़रूरी समझे तो तहसील के हलके के प्रतिनिधियों तथा तीन बाहरी मेम्बरों की एक तहसील-सभा क़ायम कर सकती है।

सूबा सभा

(१३) सूबा सभा में हर ज़िले के दो-दो चुने हुए प्रतिनिधि रहेंगे, सूबा सभा के कुल मेम्बरों की तादाद, अपने पद के कारण जो मेम्बर हैं उनको छोड़कर, एक सौ इक्कीस होगी। ज़िले के चुने हुए प्रतिनिधियों के अलावा जितनी जगहें बचेंगी उनका चुनाव तथा सूबा सभा के पदाधिकारियों का चुनाव ज़िले के प्रतिनिधि आषाढ़ बदी पन्द्रह यानी अमावस तक कर लिया करेंगे।

(१४) कम-से-कम आधे से अधिक ज़िलों के चुने हुए प्रतिनिधि होने पर ही सूबा सभा का बाक़ायदा संगठन हो सकेगा। हाँ, जबतक

ज़िलों का संगठन न हो पावे, तबतक यानी शुरू में स्थायी सूबा सभा बनाई जा सकती है।

(१५) सूबा सभा के भूतपूर्व सभापति प्रान्तीय कमेटी के अपने पद के कारण मेम्बर माने जायेंगे, लेकिन उनके लिए यह जरूरी होगा कि वे प्रान्त की किसी मूल किसान-सभा के सदस्य हों।

(१६) हलका-सभा के निर्वाचन के बाद चुने हुए मेम्बरों, पदाधिकारियों और प्रतिनिधियों की नामावली ज़िला-सभा के पास भेजदी जायगी और इस तरह ज़िला कमेटी के निर्वाचन के बाद चुने हुए मेम्बरों, पदाधिकारियों और प्रतिनिधियों की नामावली सूबा सभा के पास भेजदी जायगी।

(१७) हल्का-ज़िला और सूबा सभायें अपने काम को ठीक तौर से चलाने के लिए एक छोटी-सी पंचायत या कार्यकर्ता कमेटी बना सकती है।

(१८) गाँव, हलका, ज़िला और सूबा सभा के मेम्बर वही हो सकेंगे जो किसी-न-किसी किसान-सभा के मेम्बर हैं।

(१९) हरेक सभा में कोरम उसके कुल मेम्बरों का पाँचवाँ हिस्सा होगा। इससे कम मेम्बरों की हाज़िरी में सभा की कार्रवाई मान्य नहीं होगी। हाँ, मुल्तवी-शुदा मीटिंग हो सकती है।

(२०) साधारण हल्का, ज़िला और सूबा सभा की बैठकें महीने में एक बार हुआ करेंगी। इनकी सूचना कम-से-कम एक हफ्ते पहले होजानी चाहिए। सब बातें बहुमत से तय हुआ करेंगी।

(२१) संघ का रुपया बैंक में जमा किया जायगा।"

आर्यवालजी ने ऊपर लिखी योजना ग्राम-स्वराज्य की दृष्टि से नहीं लिखी है, बल्कि विदेशी सरकार को मानकर ही वह योजना

बनाई गई है। हमारी राय में हर गाँव की किसान-सभा में हर घर से एक सदस्य चुनकर जाना चाहिए। इस सभा का यह काम होगा कि वह गाँव के कामों के लिए आवश्यक धन-संग्रह करने का बन्दोबस्त करे। यह बन्दोबस्त बेहरी, चंदा या किसी तरह का कर लगाकर करना होगा। यह फसल पर चार आने वाले चन्दे से बिलकुल अलग होगा। स्वराज्य होजाने पर किसानों के संगठन के खर्च और इन किसान-सभाओं को चलाने के लिए सूबे को, ज़िले को, तहसील को, और गाँवों को जो कर दिया जाना चाहिए वही यह कर होगा। ये किसान-सभायें गाँव के भीतर स्वराज्य की इकाई बनावेंगी, और किसान-संगठन को चलाने वाले खर्च के आलावा शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय, विनोद और सेवा के काम के लिए एवं समय-समय पर सत्याग्रह की लड़ाई के लिए जो कुछ खर्च करना होगा वह फसल पर चार आने के इस चंदे के सिवाय होगा। गाँव की किसान-सभा इसके लिए उचित धन मंजूर करेगी और कर के रुपये किसान-सभा की अन्तरंग को देगी।

किसान-सभा की मुख्य कार्यकर्त्री सभा अन्तरंग सभा होगी, जिसमें किसान-सभा का सभापति, गाँव का मुखिया, सभा का मंत्री और दो सदस्य मिलाकर कुल पाँच आदमी होंगे। यही पचायत असल में गाँव पर हुकूमत करनेवाली पंचायत होगी। किसान-सभा की आज्ञा के अनुसार यह पंचायत धन का संग्रह करेगी, हरेक विभाग को मंजूर किया हुआ खर्च देगी और वर्ष के अन्त में सबसे हिसाब का ब्योरा लेगी और धन का सारा हिसाब देखभाल कर और जाँचकर किसान सभा की सालाना बैठक में पेश करने के लिए ज़िम्मेदार होगी।

इस पंचायत के सिवाय शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय, विनोद और सेवा के लिए पाँच और पंचायतें होंगी जो किसान-सभा अपने सदस्यों में

या बाहर के लोगों में से चुनेगी। यह भी ज़रूरी न होगा कि जो आदमी एक पंचायत का मेम्बर हो चुका है वह दूसरी पंचायत का मेम्बर न हो।

शिक्षा-पंचायत का यह कर्तव्य होगा कि गाँव के बूढ़े-बच्चे नर-नारी सबकी शिक्षा के लिए उचित उपाय करे। शिक्षा उन बातों की हो जिनकी किसान के जीवन में सबसे ज्यादा ज़रूरत है। शिक्षा पढ़ने-लिखने की भी हो और विनोद के विषय में भी हो। किसी बाहरी परीक्षा या प्रमाणपत्र के अधीन कोई शिक्षा न रक्खी जाय।

रक्षा-पंचायत का यह कर्तव्य होगा कि सारे गाँव की रक्षा का बन्दोबस्त करे। गाँव के लिए पहरूये चाहे तनख्वाह देकर रक्खे, और चाहे गाँव के सेवा-दल के आदमियों की बारी बाँध दे। खेती और व्यवसाय की रक्षा के लिए भी बन्दोबस्त करना रक्षा-पंचायत का काम होगा। इनके सिवाय आये दिन विदेशी आक्रमणों से बचने के लिए उपाय करने पड़ेंगे और सारे गाँव को असहयोग और सत्याग्रह की शिक्षा देकर अपनी स्वतंत्रता और स्वराज्य की रक्षा के लिए बराबर तैयार रहना पड़ेगा। विदेशी व्यापार भी एक तरह की चढ़ाई समझी जायगी और उससे गाँव की रक्षा करना भी इसी पंचायत का काम होगा। गाँव के भीतर आपस के झगड़े जो किसान-सभा के भीतर होंगे वे सब इसी रक्षा-पंचायत में पहले आवेंगे। रक्षा-पंचायत का निपटारा अगर दोनों पक्षों में से किसीको मंजूर न होगा तो वह गाँव की किसान-सभा में अपील करेगा। किसान-सभा का फ़ैसला आखिरी होगा।

व्यवसाय-पंचायत का काम होगा कि वह किसानों के सब तरह के व्यवसाय के सुधार और संगठन का बन्दोबस्त करे और ऐसे उपाय करे कि किसान फिज़ूलख़र्ची से बचे और कर्ज़दारी से छुटकारा पा जाय। शिक्षा-पंचायत से मिलकर इस पंचायत को भी गाँव के व्यव-

साय और व्यापार की रक्षा के लिए पूरा उद्योग करना पड़ेगा।

विनोद-पंचायत का यह काम होगा कि तीज-त्योहार, मेले आदि का प्रवन्ध करे, उन्हें किसानों के लिए लाभदायक बनावे। नित्य के खेल-कूद, व्यवसाय आदि का प्रवन्ध करे और नशे आदि कुटेवों से किसानों को दूर रक्खे। किसानों के मेहनती जीवन को जिन-जिन नैतिक उपायों से सुखी बनाया जा सकता है वे सब उपाय इस पंचायत को करने होंगे।

सेवा-पंचायत का काम हर तरह की सेवा है। रोगी की सेवा के लिए वैद्य का प्रवन्ध, औषधि का बन्दोवस्त, रोगी की परिचर्या आदि इस सेवा-पंचायत का एक विभाग होगा। भूखों मरते हुए किसी भाई को अन्न पहुँचाना, लंगड़े-लूले अपाहिज के खाने-कपड़े का बन्दोवस्त करना, जिसके छाया न हो उसके लिए छाया का उपाय करना, जिसे किसी दुर्घटना से चोट लग गई हो, जो जल गया हो, जिसे ज़हरीले जानवरों से या ज़हरों से पीड़ा हो, उसका कष्ट दूर करना, एकाएकी किसी आफत के आजाने पर पीड़ितों की रक्षा करना इत्यादि सभी काम सेवा-पंचायत के हैं। सेवा-पंचायत अपने अधीन एक संगठित सेवा-दल रक्खेगी जो ज़रूरत पड़ने पर उचित सेवा किया करेगा। इसी सेवा-दल से रक्षा-पंचायत भी काम लिया करेगी।

ये पाँचों पंचायतें अपने-अपने काम में एक-दूसरे की बराबर सहायता करेंगी और हर तरह पर गांव की किसान-सभा के अधीन होंगी।

अंतरंग की चर्चा करते हुए हमने मुखिया की चर्चा की है। गाँव का मुखिया गाँव का सब-से बड़ाबूढ़ा और समझदार आदमी होगा, जो गाँव की भलाई की सब बातें, जिनका सम्बन्ध गाँव के बाहर के लोगों से होगा, आप जाकर निपटावेगा। इसका चुनाव लम्बे समय के लिए हुआ करेगा, जैसे पांच या सात बरस, और ज़रूरत होगी तो मुद्दत पूरी

होने पर फिर उसीका चुनाव हो सकेगा। गाँव का नेता इसी मुखिया को समझना चाहिए। यह किसान-सभा का सभापति भी चुना जा सकेगा, परन्तु तीन-तीन साल के चुनाव में यह जरूरी होगा कि एक ही आदमी लगातार सभापति न चुना जाय।

८. गाँव के नेता की उत्पत्ति

आज किसानों की इतनी भारी आबादी होते हुए भी उनमें इतना जीवन नहीं है कि आये दिन के संकटों में कोई उनके ही बीच से निकलकर उनका अगुवा बने और संकट को दूर करने के लिए उपाय करे और करावे। करोड़ों कण्ठ भावों से भरे होते हुए भी वाणी के न होने से जड़ और गूंगों की तरह चुप हैं और चुपचाप विपत्ति झेलते हैं। पर ऐसी दशा अब नहीं रह सकती। भारत की उर्वरा भूमि महात्मा गांधी जैसे पुरुषोत्तम के आदर्श के ऊपर चलनेवाले असंख्य वीरों के खून से सींची जा रही है। सच्चे भारतवासी किसान हैं और उन्हीं किसानों में से इसी धरती से बहुत जल्दी ही नये जीवन वाले किसान-नेता एका-एकी निकल पड़ेंगे, जो अहिंसा और सत्य के अनुयायी होंगे और जो किसान-संगठन और ग्राम-संगठन को अपने हाथों में ले लेंगे। उस समय गाँवों में नेताओं की कमी नहीं रहेगी। उस समय बड़े बोल वाले पढ़े-लिखे नेताओं की तलाश न होगी।। यही गाँव के सभापति होंगे, मुखिया होंगे, संगठन करनेवाले होंगे। जबतक ऐसे नेता पैदा नहीं हो जाते तब-तक हमारे देश में जो लोग वर्तमान लड़ाई में अगुवा हो रहे हैं उन्हींसे संगठन के काम में मदद लेनी पड़ेगी। उन्हींसे भावी नेता के निर्माण, उपनयन और शिक्षा की आशा करनी पड़ेगी।

इन लोगों का काम भी थोड़ा नहीं है। सोते हुए कृष्णों और हलधरों को जगा देना, और उन्हें इस काम में सचेत कर देना जो देश

उनसे चाहता है, थोड़ा नहीं है। आजकल के हमारे काम करनेवाले दागवेल डालनेवाले लोग हैं जिसे देखकर आगे आनेवाली पीढ़ियाँ अपने-अपने रास्ते समझेंगी और उन्हें जल्दी-से-जल्दी अपना कार्यक्रम निश्चित करने में वड़ी मदद मिलेगी। वात यह है कि किसानों को अपने पैरों पर खड़े होना है। किसानों के अगुवा किसानों को ही होना है। वाहर का आदमी उनका काम वहुत दिनों तक नहीं कर सकेगा। उनकी योग्यता भी उसमें न होगी। किराये के टट्टू पर मंजिल तक पहुँचने में लँगड़े-लूलों को ही सवसे ज्यादा सुभीता होता है। मज़वूत टाँगों वाले हट्टे-कट्टे लोग ऐसी रद्दी सवारी के वस में होकर धीरे-धीरे चलना कभी पसंद न करेंगे। क्रान्ति का वेग अपाहिज़ों और लाचारों को पीछे छोड़-कर आगे वढ़ता है। इसीलिए किसानों को अपना अगुवा आप होना पड़ेगा। अपना संगठन आप करना पड़ेगा। उन्हें इसके लिए कमर कस-कर तैयार हो जाना चाहिए।

: ८ :

किसानों का आर्थिक सुधार और उनकी माली हालत की जाँच

१. किसानों का खर्च घटाने की ज़रूरत

पिछले अध्यायों में हम कई बातें ऐसी कह आये हैं जिनसे किसानों के खर्च का बोझ ज़रूर हलका होजायगा। आदमी की माली हालत सुधारने के लिए सबसे सीधा उपाय यही है, कि उसका खर्च घटाया जाय और उसकी आमदनी बढ़ाई जाय। यों तो साधारण रीति से अगर वह कपास की खेती करे और अपने लिए खद्दर बनाने का उपाय करे तो उसके कपड़े का कुछ खर्च घट जाता है और उसकी आमदनी कुछ बढ़ जाती है। परन्तु उसके खाने और कपड़े का खर्च तो बहुत थोड़ा है। उसका भारी खर्च तो लगान है, और ज़मींदार, पुलिस व पटवारी को ख़ुश रखने के लिए दी जानेवाली तरह-तरह की घूस है, नज़राना है, बेगार है, मुकदमेबाज़ी है, नशा है। जहाँ नहर है वहाँ पानी के दाम हैं, तरह-तरह के हक़ दस्तूर हैं, नमक पर अप्रत्यक्ष कर है, कचहरियों और दफ्तरों की दौड़ है, आये दिन के तीज-त्यौहार उत्सव का खर्च है, व्याह आदि संस्कार और मरनी-करनी का खर्च है। ये सब जीवन के अत्यंत आवश्यक खर्च नहीं हैं, परन्तु तरह-तरह के दबावों से दबकर और लाचारी से उन्हें ये सब ख़र्च करने पड़ते हैं। खेती की उपज बढ़ाने के लिए जो ख़र्च उन्हें करना चाहिए, अनेक कारणों से उससे हाथ खींचना पड़ता है और इन मदों में ज़बरदस्ती ख़र्च करना पड़ता है।

पिछले अध्यायों में जिन परिवर्तनों का वर्णन हम कर आये हैं, उनके होजाने पर उसका खर्च बहुत घट जायगा। पर हमारी राय में सबसे ज्यादा बोझा और सबसे बड़ी खर्च की मद वह कर है जिनके चुकाने के लिए किसान पिसान हुआ जा रहा है। इन सबमें सबसे ज्यादा कमर-तोड़ सरकारी लगान है।

डेनमार्क में वहाँ की सरकार की ओर से संवत् १८५६ में पहले-पहल एक क़ानून ऐसा बनाया गया, जिसमे बड़ी-बड़ी खेती वाली रियासतें जो सरकारी थीं या सार्वजनिक थीं छोटे-छोटे टुकड़े करके सुभीते के साथ छोटे किसानों को छोटी जोतें नीलाम में देकर उनकी मिल्कियत बना दी गई। यह काम बराबर धीरे-धीरे बढ़ाया गया और उस क़ानून में सुभीते के परिवर्तन होते रहे। अंत में संवत् १९७६ के क़ानून से सब मिलाकर कुल ८३,९८० एकड़ ज़मीन छोटी-छोटी जोतों में बँट गई। और वहाँ की सरकार को ६५ करोड रुपये की आमदनी हुई। वहाँ छोटी-छोटी जोतों का औसत १७ एकड़ के लगभग रक्खा गया है। इस तरह लगभग ५ हज़ार के नई जोतें बन गई।[१]

डेनमार्क की नक़ल करना हमारे लिए बिलकुल असंभव है। डेनमार्क की सारी आबादी हमारे एक बड़े ज़िले से ज्यादा की नहीं है, परन्तु उसका क्षेत्रफल हमारे यहाँ की एक छोटी कमिश्नरी के लगभग का है। वहाँ आबादी के हिसाब से खेती की ज़मीन बहुत ज्यादा है। हमारे देश में आबादी वहाँ के मुक़ाबले अत्यन्त घनी है। ब्रिटिश भारत में कुल ज़मीन जिसमें खेती होती है, लगभग साढ़े बाईस करोड़ एकड़ के है। किसानों

१. Small Holdings in Denmark—25 years Legislation by L. Th. Arnskov, 1924, Reprinted from the Danish Foreign Office Journal by Dyva & Jeppesen, Copenhagen.

की आबादी, बच्चे-बूढ़े, नर-नारी मिलाकर अगर साढ़े बाईस करोड़ मानली जाय तो भी सिर पीछे एक ही एकड़ पड़ता है। बिहार में जहाँ आबादी बहुत घनी है, किसानों की जोत का औसत आधे एकड़ से कम ही पड़ता है। मद्रास अहाते के उन ज़िलों में जहाँ रैयतवारी रीति है, प्राणी पीछे एक से लेकर पाँच एकड़ तक जोत होती है। डाक्टर मान ने हिसाब लगाया है कि दक्षिण में सैकड़ा पीछे साठ जोतें पचास एकड़ से कम हैं।[१] बंगाल में संवत् १९७८ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट में टामसन साहब इस बात को क़बूल करते हैं कि वहाँ जितनी खेती होती है, मुश्किल से पौने तीन एकड़ हर काम करनेवाले को पड़ती है। आसाम में औसत जोत तीन एकड़ से भी कम है, और संयुक्त प्रान्त में केवल ढाई एकड़ है।

भारतवर्ष में तो भारी-भारी थोक की खेती कहीं होती ही नहीं। डेनमार्क में १७ एकड़ के लगभग जो छोटी जोत का औसत रक्खा गया है, वह ब्रिटिश भारत के सिर पीछे एक एकड़ के औसत से १७ गुना ज्यादा है। पंजाब और बम्बई प्रान्तों में और प्रान्तों से जोत का औसत कुछ बड़ा है। डेनमार्क का औसत भारत के बड़े-से-बड़े औसत के डचोढ़े से कुछ अधिक ही है।

अंग्रेज़ों के आने से पहले और उनके शुरू के समय में मामूली तौर से जोतें बड़ी होती थीं। नौ-दस एकड़ से बड़ा ही औसत था, परन्तु अब दो एकड़ से ज्यादा की अकेली जोतें बहुत मुश्किल से रह गई हैं। अब जोतों की संख्या दूनी से ज्यादा हो गई है, और १०० में ८१ जोतें एक एकड़ से कम की हैं, और ६० जोतें ५ एकड़ से कम की हैं।

१. Land and Labour in a Deccan Village, by Sir Harold Mann.

संवत् १९७८ की मर्दुमशुमारी में खेतिहरों की आबादी सैकड़ा पीछे ७१ ठहराई गई हैं, इस ७१ में भी सबके सब खेत में काम नहीं करते। इसमें वे लोग भी शामिल हैं जो खेत पर गुजारा तो करते हैं, पर आप खुद कोई खेती नहीं करते। संवत् १९५८ की रिपोर्ट में यह लिखा है कि एक भारी गिनती ऐसे लोगों की बढ़ गई है जिनके पास ज़मीन नहीं है। उन सूबों में जहाँ बराबर अकाल पड़ जाया करता है, या उन ज़िलों में जहाँ गाँवों की आबादी बहुत बढ़ गई है, बिना ज़मीनवाले खेतिहर मजूर भी बढ़े हुए हैं। जिन बरसों में फसल की दशा साधारण होती है, उनमें भी खेत पर काम करनेवाला मजूर घोर दरिद्रता और दुःख में दिन काटता है। आबादी बढ़ गई है, पुराने परिवार टूटते गये हैं, मुक़दमेबाज़ी के दलालों ने फूट डालकर जायदाद का लगातार बँटवारा कराने में कोई कोर-कसर नहीं रक्खी। इस तरह देश में खेतों के बहुत छोटे-छोटे भाग भी हो गये हैं और खेती बहुत दूर-दूर पड़ गई है। कभी-कभी एक ही आदमी की जोत इतनी दूर-दूर पर और ऐसी बिखरी होती है कि खेती करना कठिन हो जाता है और लाभ कुछ नहीं होता।

जब देश की ऐसी दशा है तब स्वराज्य-सरकार भी एकाएकी जोतों का औसत तो बढ़ा न सकेगी। जितनी ज़मीन पर खेती होती होती है और किसानों की जो आबादी है, उसका बढ़ाना-घटाना मनुष्य के अधिकार में नहीं है। स्वराज्य-सरकार धीरे-धीरे देश के खोये हुए कारबार और मरे हुए व्यवसायों को फिर खोजकर और जिलाकर बहुत से बेधरती के किसानों को तथा लाचारी से किसान बन जानेवालों को उनमें लगा सकती है। इस तरह जोत का औसत काल पाकर बढ़ सकता है। परन्तु इसमें बहुत दिन लगेंगे। जो लोग डेनमार्क और अमेरिका की

रिपोर्टों को पढ़कर लुभा जाते हैं, उन्हें इन बातों पर ध्यान देना चाहिए।

अपनी परिस्थिति को देखते हुए लगान को घटाकर आधे से कम कर देना एक उपाय मालूम होता है। दूसरा उपाय यह है कि जिन किसानों की आमदनी पाँच सौ रुपये साल से कम है उनसे कोई लगान न लिया जाय। इसके ऊपर जिसकी आमदनी ५००) से लेकर हज़ार रुपये साल तक हो उससे कम-से-कम- लगान लिया जाय। इसके ऊपर किसान की आमदनी ज्यों-ज्यों बढ़ती जाय, लगान की दर भी अधिकाधिक ऊँची होती जाय। इसके लिए देश में ऐसा क़ानून बन जाय कि ज़मींदार इज़ाफा लगान न कर सके। फिर से बन्दोबस्त होकर सरकार की ओर से जो लगान मुकर्रर हो जाय उसमें ज़मींदार बिलकुल हाथ न डाल सके। ज़मींदारी की रीति अगर चलती रहे तो उसके ऊपर ऐसा नियन्त्रण होना चाहिए कि ज़मींदार अच्छे-से-अच्छे किसान की तरह सुख से रहे, और उसकी जो फालतू आमदनी हो—और यह आमदनी मालगुज़ारी अदा कर देने पर बची हुई रक़म में आँकी जाय—उसपर आमदनी का बहुत बढ़ा हुआ कर लगाया जाय।

किसानों के ऊपर लदे हुए बोझे को हलका करने के सिवाय उनके सुधार के लिए बेकारी का दूर करना और दूर-दूर पर बिखरी हुई जोतों को पंचायत द्वारा फिर से बांटकर किसान की सब जोतों का पास-पास हो जाना, ये दो ज़रूरी काम होंगे। ये दोनों उपाय हम पहले सुझा चुके हैं। पिछले अध्यायों में जो-जो उपाय हम बता आये हैं उनको व्यवहार में लाने के दस बरस के भीतर ही, हमको पूरा विश्वास है, किसान न केवल ऋण से मुक्त हो जायगा, बल्कि उसकी दशा इतनी सुधर जायगी कि वह दोनों जून पेट भर भोजन कर सकेगा।

मिल्कियत अडोल हो जाने के कारण वह तन, मन, धन लगाकर अपनी उपज बढ़ावे। इस तरह उसकी आमदनी भी बढ़ जायगी।

३. जाँच की विधि

आजकल हमारे किसानों की माली हालत जैसी और जितनी खराब है, वैसी और उतनी खराब संसार में कहीं के किसानों की नहीं है। वर्तमान समय में इसीलिए किसानों की माली हालत की जाँच की जरूरत नहीं है। आज उनकी जो दशा है वह पशुओं से भी गई-बीती है। जब वे भरपेट भोजन पाने लगेंगे, जब उनके कंधों से क़र्ज का बोझ उतर जायगा, और शांति और सुख के जीवन को कुछ साल तक बिता लेंगे, तब और तभी वह समय आवेगा कि उनकी माली हालत की जाँच की जाय और उन्हें अधिक सुखी और समृद्ध बनाया जाय।

स्वराज्य की स्थापना हो जाने पर ही किसानों की हालत सुधर सकती है। जब वे शुभ दिन आयेंगे तब गाँवों का संगठन भी हो चुका रहेगा। कम-से-कम वह प्रारम्भिक संगठन हुआ रहेगा, जिसके बिना स्वराज्य हो ही नहीं सकता। उस समय हर किसान अपना राजा होगा, और पंचायतों के काबू में अपनेको रखकर वह अपनेको सुधारेगा, अपनी माली हालत वह पहले के कई सालों में इतनी अच्छी ज़रूर बना लेगा कि पेट भर रूखी-सूखी रोटियां ज़रूर पा सके। इस दशा के दस-पांच बरस बाद इस बात की ज़रूरत पड़ेगी कि उसकी आर्थिक दशा की उचित जांच की जाय।

उसका गांव उसकी इकाई होगी। किसान की चौबीसों घंटे, तीसों दिन और बारहों मास की जरूरतों के अनुसार गाँवों में सभी तरह के लोग बसते होंगे। उन सब लोगों का जीवन किसानों का ही जीवन होगा, उनके रहन-सहन का परिमाण लगभग एकसा होगा। ये सब-के-सब किसान ही

हैं ? इन सबमें क्या सार्वजनिक ख़र्च पड़ता है ? फिर पीछे औसत गांव में कितना ख़र्च पड़ता है ? सेवा-दल या गांववाले कितना ख़र्च करते हैं ? गाँव के पंच किन-किन कामों के लिए भत्ता लेते हैं ? सभा और पंचायत के सम्बन्ध में क्या-क्या और कितना ख़र्च होता है ? इत्यादि सार्वजनिक जमा-ख़र्च की भी विवरणी बनानी होगी।

अमेरिका और डेनमार्क की इस प्रकार की जाँच की रिपोर्टें अनुशीलन के योग्य हैं। उनसे पता चलता है कि प्रजा की माली दशा की जाँच सरकार की ओर से कितनी अच्छी तरह होती है। वहाँ यह काम करनेवाले राज्य की ओर से भेजे हुए अर्थ-शास्त्र के पंडित कर्मचारी होते हैं। वे लोग पूरे वैज्ञानिक ढंग से निश्चित समयों पर यह काम करते रहते हैं, परन्तु उनके यहाँ भी यह काम नया है इसलिए वे समझते हैं कि इसमें बहुत पढ़े-लिखे होने की ज़रूरत है, जबकि हमारा अनुमान है कि जब इस तरह की जाँच करने के लिए उपयुक्त समय आवेगा तब किसानों में से ही ऐसे योग्य और शिक्षा पाये हुए लोग निकलेंगे जिनके बन्दोबस्त में हर गाँव में किसान-सभा ऐसी माली जाँच का दफ्तर खोल देगी और गांव से ऐसी रिपोर्टें तहसील-सभाओं में जायेंगी और तहसील-सभायें इन रिपोर्टों को आपस में खूब मिलाकर तहसील-भर के लिए औसत निकालेंगी और अपनी तहसील-भर की रिपोर्ट इकट्ठी कर-करके ज़िला-सभा को भेजेंगी। ज़िला-सभा ज़िले के भौगोलिक विभाग को समझकर विविध भागों में इन रिपोर्टों को बाँटेगी और समझने लायक साररूप बनाकर प्रान्तीय सभा के पास भेजेगी, प्रान्तीय सभा का संपत्ति-शास्त्रीय विभाग प्रान्त-भर की रिपोर्टों का संकलन करेगा। यह रिपोर्ट सारे प्रान्त की आर्थिक दशा बतावेगी। इस रिपोर्ट से पता लगेगा कि किसानों ने पिछले कितने वर्षों में कितनी तरक्की की है और उनकी

माली हालत ज्यादा अच्छी बनने के लिए क्या-क्या उपाय किये जा सकते हैं। इस तरह की समय-समय पर की हुई जाँच से यह पता लगेगा कि हमारे पशुवत् जीवन-निर्वाह करनेवाले किसानों की दशा सुधरी या नहीं ? मनुष्य के जीवन के लिए जिन-जिन चीज़ों की ऐसी ज़रूरत है कि उनके बिना काम ही नहीं चल सकता, वे सब चीजें उनको सुलभ हुई या नहीं ? जिस सरकार ने इतना भी बन्दोबस्त नहीं कर पाया उसे बिल्कुल असफल समझना चाहिए और जाँच की कसौटी पर सुधार के जो उपाय खरे न ठहरें उनका तो तुरन्त ही परित्याग उचित है। हमने जो सुधार के उपाय बताये हैं उन्हें व्यवहार में लाने के कुछ काल पीछे उनकी जाँच ऊपर बताई विधि से अवश्य होनी चाहिए।

: ६ :

शिक्षा-पंचायत

१. वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के दोष

किसानों के फ़ायदे का काम वही सबसे अच्छा हो सकता है जो उनकी ज़रूरत और इच्छा के अनुकूल हो, जिसका बन्दोबस्त वे स्वयं करें और जिसके संचालन में उनका ही विकसित विचार काम करे। आजकल जिस तरह की तालीम दी जा रही है, वह किसान के लिए कौड़ी काम की नहीं है। किसान के बालकों को आजकल की शिक्षा बाबू बना देती है, फिर पढ़ा-लिखा किसान का बेटा या तो मुदर्रिसी करता है, या कहीं मुहर्रिरी का काम बरसों की खोज से ढूँढ निकालता है, या अपनेको मुक़दमेबाज़ी में कुशल बना लेता है। उसे खेती के काम से घृणा हो जाती है। हमारे देश का कोई किसान इस तरह की तालीम से संतुष्ट नहीं है। परन्तु बेचारा करे क्या? अगर इन मदरसों में न भेजे तो बालक अपढ़ रह जाते हैं और यह बात उसके बाप-दादों की चाल से विपरीत है। वह नहीं चाहता कि उसकी सन्तान निरक्षर रहे और माता-पिता को कर्तव्य-पालन न करने के लिए बैरी समझे। जब पढ़ने को भेज देता है तब वह मानों अपनी सन्तान से हाथ धो बैठता है। खेतों पर मेहनत करने का पवित्र काम पढ़े-लिखे लड़कों की निगाहों में नीच दिखाई देता है। जिस काम में ताक़त और मेहनत लगती है, जिसमें मज़बूत हाथ-पाँवों का काम है, जिसमें कलियुग में प्राणों की रक्षा करने-वाले पवित्र अन्न के उपजाने की विधि है, जिसमें बल और मरदानगी

की ज़रूरत है, उस काम की वडी क़ीमत को न समझकर आजकल का अभागा किसान का वेटा स्त्रियों के योग्य लिखने-पढ़ने के नाज़ुक काम को, जिसमें वेहद कृत्रिमता है, वड़ी धूर्तता है, और हद दर्जे की गुलामी है, ज्यादा इज्ज़त और आवरू का काम समझता है और उसीपर अपने पवित्र होनहार जीवन को आजकल की पच्छाहीं सभ्यता के मोह में पड़कर वलि कर देता है। जहाँ वाप अपना पानी आप भरने में, अपनी लकड़ी आप काटने में, अपना वोझा आप ढोने में, गौरव समझता है, वहाँ वेटा इन कामों के करने में शरमाता है और मौक़ा पड़ने पर कुली की तलाश करता है। इस तरह का भाव किसान के काम के लिए लाभ-कर नहीं है, और किसान ने सचमुच इस तरह वेटे को खो दिया है। किसान के वेटे की शिक्षा का तो उद्देश्य यह होना चाहिए कि वेटा वाप से वढ़कर किसान हो। परन्तु आज तो वह अपने वाप के पेशे को निन्द्य समझता है।

साथ ही एक दूसरा दोष भी है। वह जितना समय शिक्षा में लगाता है, उतना अगर अपने वाप के साथ खेती का काम व्यावहारिक रीति से सीखने में लगाता तो किसान के काम में थोड़ा-वहुत कुशल हो जाता, और घृणा भी न होती। यह वात नहीं है कि किसान के काम के सीखने में उसे समय वहुत लगे। असली ज़रूरत तो यह है कि खेतों में मेहनत का काम करने की आदत डालने के लिए वचपन से ही काम में लगने की ज़रूरत है। वच्चा जव खेतों में आने-जाने लायक हो और छोटा-मोटा काम करने के लायक़ हो जाय तभीसे खेत की थोड़ी-सी क्यारियाँ उसके काम करने के लिए छोड़ देनी चाहिएँ और उसे प्रेमपूर्वक काम वतला देना चाहिए। छुटपन से ही खेती में उसे इस तरह रस हो जायगा, और उसे मामूली लिखने-पढ़ने और हिसाव का ज्ञान कराने के लिए

कोशिश करके भी सफल नहीं होते। यह बात नहीं है कि देहातवाले उर्दू से घृणा करते हैं। वे तो खुशी से लड़कों को उर्दू पढ़ाये जाने के लिए राजी हो जाते हैं, चाहे उसमें बच्चों का कितना ही नुक़सान हो। किसानों को इस बात का लालच होता है कि हमारा लड़का उर्दू पढ़ जाय, तो हमारे मुक़दमेबाज़ी के काम में बड़ी मदद मिल जायगी। सम्मन और अर्जी-नालिशें पढ़ लेगा, और उसे कचहरी के गुरगे धोखा न दे सकेंगे। परन्तु जब लड़का कचहरी की घसीट लिखावट वाले सम्मन को भी नहीं पढ़ सकता तब उन्हें अन्त में निराश होना पड़ता है। इस तरह लड़के के दिल और दिमाग़ के ऊपर बड़ी कोमल अवस्था में दो बिलकुल भिन्न लिखावटों के सीखने का भारी बोझ डाल दिया जाता है। इससे इन दोनों अँगों से जरूरत से ज्यादा परिश्रम पड़ने के कारण स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता।

जो तालीम का तरीका चल रहा है वह किसान के हक़ में बहुत ही बुरा है। हमें गुलाम बनानेवाला और पराधीन रखनेवाला है। अपने भले के लिए हमारे देश के हर किसान का यह कर्तव्य होगा कि वह इस शिक्षा-विधि से असहयोग करे और ऐसे मदरसों का पूरा बहिष्कार करे। साथ ही गाँव के बच्चों की शिक्षा का बन्दोबस्त शिक्षा-पंचायत के स्वतंत्र हाथों में सौंपे।

जिला बोर्ड ने लड़कों की कुशिक्षा का तो बन्दोबस्त कर दिया। परन्तु उसने बड़ों की शिक्षा के लिए कोई उपाय न किया। यह एक तरह से अच्छा ही हुआ, क्योंकि शायद उसके बन्दोबस्त में बड़ों की शिक्षा भी उसी तरह निकम्मी होती और हमें पछताना पड़ता।

२. पंचायत कैसी शिक्षा दे?

बच्चों या बड़ों किसीकी शिक्षा के लिए किसी बाहरी अधिकारी

के प्रमाणपत्र या सनद की जरूरत नहीं है। शिक्षा-पंचायत गाँव के उन लोगों के द्वारा बनी होनी चाहिए जो गाँव की आवश्यकताओं को खूब समझते हैं, और जिन्हें इस बात का ज्ञान है कि कैसी शिक्षा पढ़नेवालों को लाभदायक होगी। हमारी राय में तो बच्चों की छुटपन से ही किसानी की शिक्षा होनी चाहिए, और किसानी की शिक्षा में हम उन सब बातों को शामिल करते हैं जिनसे किसान समझदार, सभ्य और विवेकी समझा जायगा। किसानी की शिक्षा में पढ़ना-लिखना और ज़रूरतभर हिसाब का जानना शामिल होगा। पढ़ना उसे इतना आजाय कि वह जनता के लिए निकलनेवाले किसी साधारण अखबार को पढ़ सके और तुलसीदास जी के रामचरितमानस (रामायण) को गा सके और थोड़ा-बहुत समझ सके। लिखना हम इतना सिखा देना चाहते हैं कि वह किसान-सभा का मंत्री बना दिया जाय तो सभा की कार्रवाई लिख सके। हिसाब हम इतना सिखा देना चाहते हैं कि वह शासन या राष्ट्र-पंचायत के हिसाबिये का काम कर सके और अपने व्यवसाय का बहीखाता भी ठीक-ठीक रख सके। इतिहास और भूगोल के पढ़ाने में हम अभी उसका समय नहीं बिगाड़ना चाहते, क्योंकि इन विषयों पर किसानों के लायक पोथियाँ अभी छपी नहीं। जब वह समाचारपत्र पढ़ने-लायक हो जायगा, तब वह इतिहास और भूगोल की ठीक पोथियाँ अपने आप पढ़ लेगा। इन विषयों पर किसानों के लायक तबतक समयानुसार अच्छी-अच्छी पोथियाँ छप भी जायँगी। पढ़ने-लिखने का काम बस इतना ही काफ़ी होगा। अच्छा शिक्षक इतनी पढ़ाई के साथ-साथ दो तरह की शिक्षा देगा। एक तो व्यवसाय की और दूसरे तन-मन-वचन की शुद्धता और स्वास्थ्य की। यह शिक्षा ज़बानी भी होगी और व्यावहारिक भी।

गाँव के पुरुषों को ये विषय जानने चाहिएँ:—

(१) खेती।

(२) ओटाई, धुनाई, कताई।

(३) तात्कालिक उपचार।

(४) बच्चों की रक्षा और सार-सम्हाल।

(५) स्वास्थ्य-रक्षा।

(६) सफ़ाई।

(७) पशु-पालन।

(८) मरी आदि सार्वजनिक संकटों के समय रक्षा।

(९) दिल-बहलाव, खेल आदि।

(१०) गाना-बजाना।

इनकी उचित शिक्षा के लिए हर तरह का सुभीता करना पंचायत का कर्तव्य होगा।

व्यावसायिक शिक्षा में पहली और मुख्य शिक्षा होगी खेती-बाड़ी की। यह शिक्षा घर भी मिलेगी और पाठशाला में भी। खेती-बाड़ी के बाद कपास के ओटने, रुई के धुनने, और पूनियों के कातने की शिक्षा मुख्य होगी। खेती-बाड़ी और कताई का कारबार सारे भारत के प्राय: सभी गाँवों में होगा। इसलिए इन दो व्यवसायों की शिक्षा भारत के लिए सार्वभौम होगी। हर पाठशाला को ये दो शिक्षायें देनी ही पड़ेंगी। हर शिक्षा-पंचायत को इन दोनों व्यवसायों को सिखाने का पूरा प्रबंध करना पड़ेगा। इसमें साधारणतया दो बरस लगेंगे, परन्तु जल्दी करने की कोई ज़रूरत नहीं है। ज़रूरत पड़े तो इतने ही विषय को चार वर्ष में पढ़ाया जाय, और फिर लड़कों को गाँव में ऐसे कामों के लिए छोड़ दिया जाय जिनमें उनकी पाई शिक्षा काम आ सके। लड़कों को यह

काम दिया जाय कि वे अखबार पढ़कर सुनाया करें, मण्डलियाँ बनाकर रामायण गाया करें, भूगोल और इतिहास की पोथियाँ अपढ़ किसानों को सुनाया करें, गाँववालों की चिट्ठियाँ लिखा करें। माली पंचायत से माँगकर लिखने का काम करें। गाँव के हिसाबिये के काम में मदद दें। जहाँ मकान कुआँ आदि बनता हो वहाँ लगनेवाले मसाले या मजूरी आदि का हिसाब किया करें। बड़ों के साथ खेती में जाकर खेती-बाड़ी के काम में मदद दें और अपनी क्यारियों या अपने अलगाये हुए खेतों का सारा काम अपने-अपने घर के लिए करना ही चाहिए। इस तरह जो-जो काम उन्होंने दो से लेकर चार बरस तक सीखे हैं, उनका बराबर अभ्यास बना रहेगा।

कुछ ज्यादा होशियार होजाने पर अपने घर का स्वतंत्र काम इन्हीं नौजवानों को करना होगा। एकबार फिर कुछ बरसों के बाद इन्हीं व्यवसायों की फिर से शिक्षा देनी होगी, परन्तु वह शिक्षा बहुत ऊँचे दरजे की होगी और उसके लिए शिक्षा-पंचायत को विशेष प्रबंध करना होगा। गाँव के प्रचलित व्यवसायों के विशेषज्ञ लोग आकर किसी सुभीते के केन्द्र में पाठशाला स्थापित करके ३ महीने से लेकर ६ महीने तक शिक्षा देकर जवान किसानों को उनके कामों में दक्ष करदें। यह समय दक्ष होने के लिए थोड़ा नहीं है। डेनमार्क में इसी तरह जवान किसानों को शिक्षा दी गई है और अबतक दी जाती है। इसमें उनको बड़ी सफलता हुई है। इस तरह की शिक्षा अगर बचपन में दी जाय तो ४-५ वर्ष लगने पर भी सफलता की आशा नहीं की जा सकती। जब किसान समझदार होगया और उसे अपने व्यवसाय का कुछ अनुभव होगया तो उस समय की दी हुई शिक्षा जल्दी हृदयंगम होजाती है और उसे तुरंत ही व्यवहार में लाने का मौका भी मिलता है। इस तरह दोनों अवसरों

पर मिलाकर शिक्षा का कुल समय कम-से-कम ढाई बरस और अधिक-से-अधिक चार बरस का होता है। अगर यह सारी शिक्षा एकबारगी दी जाय तो बजाय ढाई और चार बरस के पांच-सात बरस ज़रूर लग जायें। इस विधि से शिक्षा-दान में बड़ी किफ़ायत होती है। शिक्षा भी इस तरह से ऐसे प्रकार की दी जायगी जिससे किसानों को हर तरह का लाभ हो।

शिक्षा-पंचायत का यह भी कर्त्तव्य होगा, कि वह बड़ों और बूढ़ों की शिक्षा का भी प्रबंध करे। लड़कियों को भी उपयुक्त शिक्षा देनी होगी। पढ़ना-लिखना और हिसाब तो लड़कियों को उतना ही सिखलाना होगा जितना लड़कों को, परन्तु जिन व्यवसायों की शिक्षा लड़कों को दी जाती है उन्हीं व्यवसायों की शिक्षा लड़कियों को भी दी जाय यह जरूरी नहीं है। लड़कियों को उन व्यवसायों की शिक्षा अवश्य दी जाय जिनका काम साधारणतया घर-गृहस्थी में पड़ता है। ओटाई, धुनाई, कताई आदि की शिक्षा तो लड़कियों को ज़रूर ही देनी चाहिए। इसके सिवाय घर-गृहस्थी में अनाज साफ़ करना और खाने के लायक कर देना, भोजन पकाना, दही-दूध आदि के सारे काम करना, बरतन साफ़ करना, घर की सफ़ाई, सीना-पिरोना, बूटा-कसीदा आदि का काम, पंखे, दौरी, टोकरी पिटारे आदि का बनाना, कागज को गलाकर भाँति-भाँति की चीजें तैयार करना, टोपी, बनियाइन, मोजे, तौलिया आदि बुनना इत्यादि इस तरह के काम हैं जो अच्छी घर-गृहस्थी में लड़कियां बिना पाठशाला गये सीख सकती हैं। तब भी इनमें से कुछ कामों को पाठशाला में सिखाने का बन्दोबस्त हो तो ज्यादा सुभीता होगा। अपने इन सीखे हुए कामों को लड़कियां यदि जारी रक्खेंगी तो दिनोंदिन कुशल होती जावेंगी। बड़ों की शिक्षा के लिए पंचायत को ऐसा बन्दोबस्त करना होगा कि उनके लिए गांव में चुनी हुई अच्छी पुस्तकों के मिलने और पढ़ने का

सुभीता रहे। समाचारपत्र भी उनको मिलते रहें। उनके मानसिक विकास के लिए समय-समय पर इतिहासों और पुराणों की कथा का भी प्रबंध होना चाहिए। अच्छे कथा कहनेवाले देश, काल और परिस्थिति का विचार करके उत्तम-उत्तम कथायें सुनाकर उनका बड़ा उपकार कर सकते हैं। समय-समय पर मेले-तमाशे और अभिनयों से भी अच्छी शिक्षा मिल सकती है। बाजार, मंडी और नुमाइशों में भी जाने से अनेक तरह की शिक्षा मिलती है।

गाँव में विशेष शिक्षा का प्रबन्ध हर जगह नहीं हो सकता। परन्तु किसी केन्द्र में पुरोती आदि की विशेष शिक्षा का बन्दोबस्त करना ही पड़ेगा, जहाँ थोड़ीसी ज्योतिष, कुछ पूजा-पाठ त्योहारों के काम, घर व कुआँ आदि बनाने के नियम, रोगी का औषधोपचार, रोगी-सेवा, स्वास्थ्य के नियम, शौचाचार, भोजन आदि के नियम—यह सब कुछ बरस दो बरस में अच्छी तरह सिखाया जा सकता है। गाँव का पुरोहित, वैद्य, इंजिनियर और ज्योतिषी एक ही आदमी होसकता है।

सामाजिक दोषों के सुधार का काम भी शिक्षा का ही काम है। सच्ची शिक्षा तो चरित्र की ही शिक्षा है। इसलिए गाँव की पाठशाला की प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर मेले-तमाशे और बाज़ार तक की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे चरित्र का सुधार हो, बिगाड़ नहीं। नीति की सबसे अच्छी शिक्षा व्यवहार से दी जा सकती है। अहिंसा और सत्याग्रह की लड़ाई नीति की व्यावहारिक शिक्षा देती है, परन्तु इस तरह की शिक्षा देने के लिए उपयुक्त शिक्षक वही होसकते हैं, जो अपने जीवन में नीति और धर्म्म को व्यवहार में लाते हैं। शिक्षा ऐसों ही के हाथ में होनी चाहिए। जिसमें वास्तविक व्यवहार नहीं है, उसकी मौखिक शिक्षा का प्रभाव भी छात्रों पर नहीं पड़ सकता।

३. मंडलियाँ

जो शिक्षा आदमी को जीवन के लिए उपयोगी बनाती है उसका आरम्भ बड़े और समझदार होने पर होता है। जो आरम्भिक शिक्षा बचपन में मिलती है वह तो केवल उपयोगी शिक्षा पाने के लिए पात्र बनाती है। बड़े होने पर दिल और दिमाग़ दोनों के दोनों बढ़कर पात्र में शिक्षा की अधिक समाई पैदा कर देते हैं। ऊपर बताई हुई पाठशाला के सिवाय अनेक तरह की मण्डलियाँ गाँवों में स्थापित होसकती हैं, जिनसे कि शिक्षा भी मिले और गाँवों की भलाई का काम भी होसके। अमेरिका की एक कमेटी ने शिक्षा के ये सात उद्देश्य बताये हैं :—

१. स्वास्थ्य;

२. व्यावहारिक विधियों का ज्ञान;

३. कुटुम्ब का योग्य सदस्य होना;

४. पेशा;

५. ग्रामिकता;

६. अवकाश के समय का सदुपयोग; और

७. सदाचार

हमारे गाँव के लोगों की शिक्षा के लिए भी यही सातों उद्देश्य हमारी निगाह में उपयोगी जँचते हैं। इन सातों में ग्रामिकता एक महत्व का शब्द है। ग्रामिकता का भाव आज भी हर गाँव के रहनेवाले में मौजूद है। हर किसान अपने गाँव की बड़ी ममता रखता है और हर तरह पर उसकी भलाई चाहता है। अभी पंचायतों का संगठन नहीं हुआ है। जब होजायगा तब वे गाँव की सब तरह की भलाई करने और उसकी हर बुराई को दूर करने के लिए अपनेको ज़िम्मेदार समझने लगेंगी।

शुरू-शुरू में यह काम भिन्न-भिन्न मंडलियों के रूप में सहज में हो

सकेगा। शिक्षा पाने के लिए दस से लेकर अठारह वर्ष तक के लड़के और लड़कियाँ ओटने, धुनने, कातने और बुनने के काम के लिए इकट्ठा बन्दोबस्त कर सकते हैं। अपने-अपने कामों का हिसाब रक्खें, इकट्ठे माल जमा करें, इकट्ठे ही बेचें और होड़ के साथ एक-दूसरे की देखा-देखी अपने-अपने काम में चोखाई पैदा करें। इसी तरह तरकारियाँ उपजाने में, शहद उपजाने में, उत्तम-से-उत्तम कपास उपजाने में, अच्छी-से-अच्छी भेड़ें पालने में, उत्तम-से-उत्तम घी-दूध के काम में, खद्दर की रंगाई-छपाई में, कपड़े के काट और सिलाई में, ऐसी मंडलियाँ बनाकर और होड़ लगाकर गाँव के लड़के और लड़कियाँ चोखे-से-चोखे काम करने लग जायँगे और बढ़िया-से-बढ़िया माल तैयार होने लगेगा। इस शिक्षा के साथ-साथ कला की भी बढ़न्ती है। ऐसी ही मंडलियाँ पढ़ने-लिखने और अच्छे आचार-विचार के प्रचार में उपयोगी होसकती हैं।

लड़कों की यही मण्डलियाँ धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते बड़ों की मंडलियाँ बन जायँगी और सब तरह के गाँव के व्यवसायों में भी इस तरह बराबर उन्नति होसकती है। नये-नये साप्ताहिक या सप्ताह में दो-तीन बार वाले बाज़ार बढ़ाये जा सकते हैं। नये मेले और उत्सव क़ायम किये जा सकते हैं।

४. साक्षरता

हमारे देश में यह भारी भ्रम फैलाया गया है कि अक्षरों का ज्ञान ही बड़ी भारी शिक्षा है। यह भ्रम फैलाकर और आरम्भिक शिक्षा में कमी करके भारतवासियों को निरक्षर और नालायक़ बनाया गया है। इस समय सैकड़ा पीछे ७ से अधिक साक्षर नहीं हैं। यह विदेशी हुकूमत का प्रसाद है। यद्यपि यह हम जानते हैं कि शिक्षा और साक्षरता एक ही चीज़ नहीं हैं, तो भी निःसन्देह साक्षरता में बड़ा सुभीता है, इसलिए

इसका प्रचार ज़ोरों से होना चाहिए। नागरी अक्षरों का सिखाना बहुत आसान है। कोई स्वयंसेवक चाहे तो एक महीने में नित्य शाम को पढ़-कर सारे गाँव को साक्षर भी कर सकता है और चरखा कातना भी सिखा सकता है। जहाँकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, वहाँ भी इसी तरह वहाँ-की मातृ-भाषा की आरम्भिक शिक्षा दी जा सकती है। मातृभापा की आरम्भिक शिक्षा और अक्षर-ज्ञान सहज है। देवनागरी की तरह वह भी हर तरह पर सुलभ होसकता है। जबतक गाँवों को पूरा स्वराज्य प्राप्त नहीं होजायगा, तबतक तो शुरू-शुरू में काँग्रेस के स्वयंसेवकों को हर गाँव के लिए एक महीने भर का काम ज़रूर करना पड़ेगा। हर ज़िले में काफ़ी बड़े-बड़े मदरसे हैं, जहाँके बड़े लड़के एक साल गर्मी की छुट्टी का एक महीना सहज में दे सकते हैं। इस तरह अगर काँग्रेस अपने-अपने ज़िले में बसकर काम करे तो एक साल में ही सैकड़ा पीछे सात के बदले साक्षरों की संख्या सत्तानवे होजाय। साक्षरता इस तरह बढ़ जाने पर अच्छी-से-अच्छी कोई पोथी किसान के हाथ में दी जा सकती है, जिसे वह पढ़कर समझ सके और सीखे हुए अक्षर भूल न जाय। हिन्दी बोलने-वाले प्रान्तों में तो तुलसीदासजी के 'रामचरितमानस' से बढ़कर कोई उपयोगी पोथी नहीं होसकती। राष्ट्रभाषा की दृष्टि से भी इसी पोथी का अन्य प्रान्तों में प्रचार होसकता है, जैसा कि दक्षिण में होरहा है।

ग्राम-संगठन का पहला काम शिक्षा है। इसके बिना कोई काम शुरू नहीं होसकता। यह काम गाँववाले आरम्भ नहीं कर सकते। यह तो काँग्रेस को ही करना पड़ेगा। सातवें अध्याय में हमने यह दिख-लाया है कि संगठन का काम कैसे शुरू किया जाय।

: १० :

रक्षा-पंचायत

शान्ति के समय में चोरों, डाकुओं, हत्यारों, ठगों और इसी प्रकार के और अत्याचारियों से रक्षा करने के लिए पुलिस का बन्दोबस्त होता है और युद्ध के समय में देश के जान-माल की रक्षा के लिए सेना रक्खी जाती है। इसका मतलब यह है कि देश के बाहर से जब कभी अपने देश पर चढ़ाई हो तो दुश्मन का मुक़ाबला किया जाय। यह मुक़ाबला हर्वे-हथियारों से ही होता है और इसमें एक-दूसरे को पीड़ा पहुँचाई जाती है। खून बहाया जाता है और अच्छे-से-अच्छे वीर देश की रक्षा के लिए जान देते हैं। परन्तु कोई किसी देश पर चढ़ाई क्यों करता है? साधारणतया यही बहाना किया जाता है कि अमुक देश ने हमारी अमुक हानि की है, हमारे साथ अमुक बुरा सलूक किया है, इसलिए हम उसका बदला लेंगे। परन्तु अच्छी तरह विचार करके देखा जाय तो सब झगड़ों की तह में लोभ, क्रोध, बदला लेने का भाव, अपने पशुबल का नशा, और इसी तरह के नीच विकार ही काम करते रहते हैं। चोर, डाकू, लुटेरे और ठग भी जो कुछ प्रजा पर अत्याचार करते हैं उसकी तह में भी काम, क्रोध लोभ, मद, मत्सर आदि नीच वृत्तियाँ काम करती रहती हैं। सत्याग्रह और अहिंसा की भारी लड़ाई के बाद भी हमको ऐसा न समझना चाहिए कि मनुष्य का स्वभाव एकदम बदल जायगा और काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर का संसार से लोप होजायगा। ये विकार तो सृष्टि के साथ हैं, ये न हों तो सृष्टि का

विकास नहीं होसकता। हाँ, एक बात है, कि इस समय बहुत-सी चोरी, डाके, लूट आदि दरिद्रता के कारण भी होते होंगे। स्वराज्य के होने पर इनकी गिनती ज़रूर कम होजायगी। परन्तु ये अपराध मनुष्यों से थोड़े-बहुत होते ही रहेंगे और इनसे प्रजा की रक्षा की ज़रूरत बाकी ही रहेगी।

भारतवर्ष में अहिंसा और सत्य की जब पूरी तरह पर विजय हो जायगी तब एक देश के दूसरे देश पर चढ़ाई करने का जोखिम ज़रूर ही मिट जायगा। इसलिए पशुबल की सेना रखने की ज़रूरत जब प्रान्तों को ही पड़ने की सम्भावना नहीं है, तो गाँवों को तो इसकी ज़रूरत पड़ ही नहीं सकती। चोरों-डाकुओं से रक्षा करने के लिए पुलिस की तो ज़रूरत होती ही है। गाँव का सेवादल ही गाँव के लिए ज़रूरी पुलिस का काम करे, इस दल का संगठन बहुत उत्तम रीति से होना चाहिए। इसकी उचित शिक्षा होनी चाहिए। चोरों से मार खाकर और अपनी जान जोखिम में डालकर उन्हें पकड़ लेना और फिर न्याय की पंचायत के सामने उन्हें हाजिर करना उनका कर्तव्य होना चाहिए। अभियोग सिद्ध होजाने पर अभियुक्त को दंड देना न्याय-पंचायत ही का काम है। यह दंड भी न्याय-पंचायत का कर्तव्य होगा और शायद यह दंड बिलकुल नये ढंग का हो, परन्तु इस दंड से चोरी घट जायगी। डाकों में और लूट में कमी होजायगी। प्राचीन काल के दंडों की तरह न तो दाहिना हाथ कलम करने की ज़रूरत है और न कोड़ों से मारने की आवश्यकता है। चोरी का कारण दरिद्रता हो तो उसे मिटा देना समाज का कर्तव्य होगा। जाति-जाति की और पेशे-पेशे की पंचायतें अपनी ओर से अपने अपराधियों को सामाजिक दंड देंगी और इससे अगर आचरण का सुधार न हुआ तो इस तरह के बन्दीख़ाने भी रखने होंगे जिनमें बन्दी से अच्छा सलूक किया जायगा। उसे सत्य और अहिंसा की शिक्षा दी जायगी और उसे

कोई-न-कोई धर्म का ऐसा धन्धा सिखाया जायगा कि वह अपने सुधार की मियाद काटकर ईमान की मेहनत करके कमाने-खाने लगेगा। यह कोई ख़याली वात नहीं है। मेगस्थनीज़ ने लिखा है कि भारतवर्ष में लोग मकानों में ताले नहीं लगाते थे और चोरियाँ सुनने में नहीं आती थीं। वहुत सम्भव है कि हाथ काटने के वहुत कठोर और अमानुषी दंड के भय से उस समय चोरियाँ कम होती हों। परन्तु उनका नाम जो नहीं सुना जाता था उसका कारण नैतिक सुधार ही हो सकता है, क्योंकि उसीके लगभग कठोर वध का दंड थोड़े ही समय पहले इंगलिस्तान में दिया जाता था तव भी वहाँ चोरियाँ इतनी घटी हुई नहीं थीं। शिक्षा और सामाजिक दंड से नैतिक अपराध वहुत घटाये जा सकते हैं।

जान-माल की रक्षा केवल चोरों और डाकुओं से ही नहीं की जाती। फैलनेवाले रोगों से इतनी जानें जाती हैं कि उनका मुक़ाबला युद्ध में मरनेवालों से सहज ही किया जा सकता है। आग लगने से किसानों के खलिहान-के-खलिहान भस्म होजाते हैं। घर-द्वार नष्ट होजाता है। जव एकाएकी वाढ़ आजाती है तो गाँव-का-गाँव उजड़ जाता है। आदमी और पशु डूव जाते हैं और वह जाते हैं। खेती-वाड़ी तवाह होजाती है। जव टिड्डी-दल की चढ़ाई होती है तो हाहाकार मच जाता है और वह दुर्भिक्ष पड़ता है कि टिड्डियों को आदमी खाजाते हैं और टिड्डियाँ आदमी को खाजाती हैं। ऐसी दशा में भी रक्षा करने की आवश्यकता होती है। गन्दगी के कारण अनेक रोग फैल जाते हैं और संयम और सफ़ाई न रखने से आदमी जवानी में ही वूढ़ा होजाता और वुढ़ापा आने के पहले ही मर जाता है। इसलिए जान और मान की रक्षा इन उपद्रवों से करने की ज़रूरत है।

सचाई, अहिंसा और न्याय-वुद्धि के भाव की कमी से आये दिन

आपस के झगड़े गाँवों में भी होते रहते हैं। ये झगड़े भी होते ही रहेंगे। इनको निपटाने के लिए आज कचहरियों के जाल में फंसकर किसान बरबाद होरहा है और अदालतों का उनकी बरबादी की बदौलत रोज़गार चलता है। उनमें जाने से किसानों का कल्याण न होगा। गाँव की न्याय-पंचायतों से ही गाँववाले का भला होसकता है।

इस तरह रक्षा-पंचायत के तीन विभाग तो ज़रूर होने चाहिएँ—(१) पहरा-दल, (२) स्वास्थ्य-रक्षा-मण्डल, और (३) न्याय-पंचायत। पहरा-दल सेवा-दल का वह भाग होगा जो अपने पहरे बाँधकर बारी-बारी से बस्ती के भीतर गश्त लगाया करेगा। ऐसी दशा में किसी एक चौकीदार के रखने की ज़रूरत न होगी। आग लगने पर, बाढ़ आने पर, टिड्डी आदि के उपद्रवों पर इसी दल को काम करना चाहिए। ऐसी सार्वजनिक विपत्तियों के आने पर इस पहरेवाले दल की सहायता सारा गांव करेगा। परन्तु साधारण अवस्था में यह पहरा-दल ही काफ़ी होगा।

स्वास्थ्य-रक्षा-मण्डल का काम बहुत भारी होगा। हर किसान को सफ़ाई और संयम के साथ रहने के लिए शिक्षा देनी होगी। किस ऋतु में क्या खाना चाहिए, कैसे रहना चाहिए, शरीर और कपड़ों की सफ़ाई कैसी रखनी और कैसे नहाना-धोना चाहिए, कैसे खाना चाहिए, अपने कपड़ों की सफ़ाई कैसे रखनी चाहिए, अपने घर-द्वार को कैसे शुद्ध और पवित्र रखना चाहिए और किस तरह अपने हाथों से ही अपने सफ़ाई के सारे काम करने चाहिएँ—ये सब बातें हर किसान को मालूम करानी चाहिएँ और हर बच्चों को सिखानी चाहिएँ। इस तरह की स्वास्थ्य-शिक्षा का प्रचार इसी मण्डल का काम होगा। परन्तु गांवों में सबके घरों से नालियां बहती हैं, जिनसे गलियों में बड़ी गन्दगी रहती

है। मकान के सामने घूरा है, जिसमें कूड़ा-कचरा सड़ा करता है। गन्दी नालियों में गन्दे कीड़े बिजबिजाया करते हैं। जहाँ गाय-बैल बाँधे जाते हैं वहाँ उनके मल-मूत्र से यों ही गन्दगी बनी रहती है। मकानों के पास ही अक्सर गड्ढे होते हैं, जिनमें बरसाती पानी भरा रहता है, काई जमी रहती है और लकड़ी-पत्तियाँ और कभी-कभी मैला भी बहता रहता है। लोग उसीमें आबदस्त लेते हैं, कुल्ला करते हैं, मिट्टी मल-मलकर हाथ धोते हैं और लोटा माँजते हैं। इसी पानी में मच्छर का परिवार बड़े ज़ोरों से बढ़ता है और इन्हीं गड्ढों की बदौलत फ़सली बुख़ार फैलता है। गाँव के लोग मैदान में, खेतों में, घरों के पास बेधड़क पाखाना फिरते हैं। मैला सड़ता और सूखता रहता है। उसपर मक्खियाँ भिनकती रहती हैं और अपने गन्दे पाँव लेकर वे बस्ती के भीतर घरों में जाकर भोजन के पदार्थों पर बैठती हैं और उन्हें गन्दा कर देती हैं। लोग जगह-जगह थूकते-खखारते हैं और जूठा-कूड़ा इधर-उधर डाल देते हैं। इन गन्दी आदतों से गाँववालों को मुक्त करना है। घरों की भी बड़ी दुर्दशा है। हवा और रोशनी के आने की गुँजाइश कम रहती है। भीतों पर और छतों में गर्द-गुबार, जाले, कीड़े-मकौड़े घिरे रहते हैं। बदन पर का कपड़ा दरिद्रता और आलस्य के कारण बहुत दिनों तक न तो बदला जाता है और न धोया जाता है। बच्चों के मुँह पर लीबड़ लपटा हुआ है। गन्दी जगह लोट रहे हैं। माता-पिता को जब अपनी सफ़ाई का ध्यान नहीं है तो लड़कों की सफ़ाई का क्या होगा? गोबर-सा उत्तम और सोने के बराबर क़ीमती खाद पाथ कर जला दिया जाता है। आदमी का मैला ऊपर-ही-ऊपर सूखकर बीमारी फैलाने का कारण होता है। प्राचीन काल में गोबर और गोमूत्र में लक्ष्मी का वास इसीलिए था कि ये चीज़ें खाद के काम में आती थीं। खेत में गड्ढे बनाकर और अगर ज़रूरत

नई सड़कें, नई धर्मशाला, नये कुएँ, पाठशाला आदि तैयार कराने का बन्दोबस्त भी उसे ही करना होगा। यह सब काम गाँव की किसान-सभा के ख़र्च से हो, चन्दे से हो, किसीके दान से हो, या गाँववालों की आपस की शारीरिक मेहनत-मजूरी से हो, चाहे जैसे हो, परन्तु होना ज़रूरी है।

गाँव में आवश्यकता समझी जाय तो अस्पताल बनाना भी स्वास्थ्य-मण्डल का ही काम होगा। परन्तु उसे यह तो हर हालत में देखना होगा कि गाँव के आसपास पाई जानेवाली काष्ट-औषधियाँ, पथ्याहार, जल, मिट्टी, वायु, धूप, व्यायाम, मालिश आदि स्वाभाविक और सुलभ विधियों से इलाज करनेवाला कोई समझदार वैद्य गाँव में है या नहीं। न हो तो एक किसी ऐसे वैद्य की ज़रूरत गाँव के ही किसी रहनेवाले को यह काम सिखलवाकर पूरी करनी चाहिए। महामारी, हैजा, चेचक, फसली ज्वर आदि फैलनेवाली बीमारियों के होजाने पर किसानों की रक्षा करने के लिए, या इसी तरह की लगनी या पसरनी बीमारियों से पशुओं को बचाने के लिए, सदा उचित उपायों से सजग रहना स्वास्थ्य-मंडल का ही काम होगा। इस तरह पर प्राणों की रक्षा करने के उपाय करना स्वास्थ्य-मंडल का एकमात्र कर्तव्य होगा।

स्वास्थ्य-रक्षा-मंडल के दफ्तर में जन्म, स्वास्थ्य की दशा और रोज़गार की हालत और मरण तक का सारा विवरण हर मानव-प्राणी का रहा करेगा और हर दसवें बरस अंकों का मुक़ाबला करके एक रिपोर्ट तय्यार की जायगी, जिससे पता चलेगा कि गाँव के जनबल ने कितनी उन्नति की है।

न्याय-मण्डल का काम भी जान-माल और नीति व सत्य की रक्षा का ही है। न्याय-पंचायत में वही लोग चुने जाने चाहिएँ जो गाँव में निडर, ईमानदार और परमेश्वर से डरनेवाले समझे जाते हों और जो

किसीका पक्षपात न करते हों। रक्षा-पंचायत ऐसे ही आदमियों को चुनकर न्याय-मण्डल में रक्खेगी। जिसे नालिश करनी होगी उसे न्याय-मण्डल के सदस्यों में से दो को अपना पंच चुनकर अपनी फरियाद उनसे कहदेना होगी। ये दो सज्जन न्याय-मण्डल के मंत्री से मुद्दालेह को बुलवावेंगे और उनसे अपने दो पंच और चुनवा लेंगे। चारों मिलकर एक सरपंच उसी मंडल के सदस्यों में से चुन लेंगे और पाँचों मिलकर पंच की कचहरी का समय ठहराकर मुद्दई-मुद्दालेह को सूचना देदेंगे। इस ठहराये हुए समय पर पंच की अदालत बैठेगी और फैसला कर देगी। फैसला पंचायत-मंडल की पोथी में लिखा जाया करेगा। इन पंचों के फ़ैसले पर अपील किसान-सभा में होसकेगी। परन्तु गाँव के भीतर के झगड़े उस गाँव की किसान-सभा से आगे न जा सकेंगे।

एक गाँव के जो झगड़े दूसरे किसी गाँव से होंगे उनके लिए दोनों गाँवों से चुने हुए पंचों की कचहरी में उनका मुक़दमा होगा और अगर कई गाँवों में कोई झगड़ा फैला तो हर गाँव से न्यायी प्रतिनिधि चुने जायँगे, किसी केन्द्र में कचहरी बैठेगी, पाँच से अधिक सदस्य होसकेंगे और उनके फैसले की अपील वहीं केन्द्रस्थ किसान-सभा में हो सकेगी। उस किसान-सभा का फ़ैसला ही आख़िरी होगा।

: ११ :

व्यवसाय-पंचायत

किसान के मुख्य-मुख्य तीन व्यवसाय हैं—(१) खेती, (२) गोपालन, और (३) वाणिज्य-व्यापार। इन्हीं तीनों व्यवसायों के अन्तर्गत गाँवों के रहनेवालों के सभी पेशे आजाते हैं। हल, चरखे, चरखी आदि बनाने के लिए लोहार, बढ़ई आदि, मोट, ताँत आदि बनाने को और मरे पशुओं को काम में लाने को चमड़े आदि के व्यवसायी चमार, बांस की चीज़ें बनाने को बंसफोर आदि तो खेती के अंग ही समझे जाने चाहिएँ। परन्तु खेती करनेवाले को कपड़े चाहिएँ, उनके धोनेवाले चाहिएं, रंगने और छापने-वाले चाहिएँ, बरतन बनानेवाले चाहिएँ, हजामत के लिए नाई चाहिए। ये तो जीवन के लिए ज़रूरी बातें हुई। परन्तु मनुष्य केवल खाने-पहरने पर ही अपना जीवन निर्भर नहीं करता। उसे सौन्दर्य्य और कला की भी जीवन को सुखी बनाने के लिए ज़रूरत पड़ती है। निदान, जितने पेशे हैं, जितने शिल्प हैं, सभी खेती के अधीन हैं। सबका विकास गाँव से ही आरम्भ होता हैं। शहरों में बस्ती बड़ी होने से और राजा, साहू-कार, महाजन तथा राजपुरुषों के अपनाने से शिल्प-कला एवं ललित-कलाओं का विकास अपनी पराकाष्ठा को पहुँचता है। गाँव से ही आरंभ होने के कारण सभी पेशे और सभी कला के लोग गाँवों में पाये जाते हैं। इनमें से बहुत-से व्यवसायी ऐसी वस्तुयें तैयार करते हैं जो गाँवों के भीतर खर्च होजाने पर भी बच रहती हैं और जिनको खपाने के लिए उन्हें ऐसे गाँवों में भेजना जरूरी होता है जहाँ वस्तुयें कम तैयार

के लिए इनकी भी ज़रूरत है, परन्तु इनकी अदला-बदली या बँटाई की ज़रूरत नहीं पड़ती। इनको ऊँचे प्रकार की मजूरी में गिन सकते हैं। इसी लिए व्यवसाय-पंचायत में इनके शामिल होने की ज़रूरत नहीं है।

इस प्रकरण में हम उन्हीं व्यवसायों के संगठन पर विचार करेंगे जो सम्पत्ति को उपजाते हैं, उसकी रक्षा करते हैं, उसको प्रजा में उचित रीति पर बाँटते हैं और परस्पर अदला-बदली करते हैं।

व्यवसाय-पंचायत का उद्देश्य यही होना चाहिए कि सम्पत्ति उपजे और बढ़े, प्रजा में जैसी आवश्यकता हो उसके अनुसार उचित अदला-बदली होती रहे, उसकी बँटाई ठीक क्रम से हो, और उबरे हुए माल को उन लोगों में सहज उपाय से पहुँचाया जाय जिनको उसकी ज़रूरत है। इन उद्देश्यों का सबसे उत्तम साधन यही है कि व्यवसाय के संबंध में व्यवसायी लोग जितने काम करें वे इकट्ठे मिलकर करें। इसीलिए व्यवसाय-पंचायत का यही काम होगा कि वह अपनी ओर से सहयोग-समितियाँ बनावे।

सहयोग-समितियाँ सरकार की ओर से देश में बनीं सही, परन्तु वे उस हवेली की तरह तैयार हुई जिसकी नींव आकाश में दी गई हो। तात्पर्य यह कि गाँव के रहनेवालों के सुभीते के लिए जो संस्था बने उसे तो गाँवों में ही पैदा होना चाहिए और बढ़ते-बढ़ते देश में फैलकर बड़ा रूप धारण करना चाहिए, पीछे उसकी रक्षा के लिए चाहे सरकार क़ानून भले ही बनादे। वर्तमान सरकार की सहयोग-समितियाँ ठीक विपरीत विधि से बनी हैं। इसीलिए न तो उनसे जितना चाहिए उतना लाभ होसका और न प्रचार ही होसका। उनमें एक बड़ा और अनिवार्य्य दोष यह है कि उनसे दरिद्र और कंगाल किसान लाभ नहीं उठा सकता। यह दोष उन्हें और भी निकम्मी कर देता है।

होती हैं । इनमें तो किसानों की विविध सहयोग-मंडलियाँ बन ही जायँगी । परन्तु इन मिली-जुली बस्तियों में जो इक्के-दुक्के पेशे वाले रहते हैं, उन्हें भी सहयोग करनेवाली पंचायतों के लाभों से वंचित न रहना चाहिए । ऐसे मिले-जुले सौ-पचास गाँवों के रहनेवाले हर पेशे-वालों की अपनी मिली-जुली पंचायत वा मंडली होनी ही चाहिए । जैसे कुम्हार, लोहार, सोनार, धोबी, नाई, तेली चमार आदि दो-एक घर तो हरेक गांव में होने ही चाहिएँ । इस तरह के पचास गाँवों में पचहत्तर या सौ घर तो ज़रूर होंगे । जहाँ इनकी इस तरह की पंचायतें नहीं हैं वहाँ इनकी पंचायते या मंडलियाँ बन जानी चाहिएँ । इनकी रचना इन पेशेवाले अपनेआप न करें तो गाँवों की व्यवसाय-पंचायतों को आपस में मिलकर इनकी इस काम में सहायता करनी चाहिए ।

कारीगरों की मंडलियाँ तो विशेपरूप से इसलिए बननी चाहिएँ कि उनकी कला बराबर उन्नति करती जाय और जनता के लिए वे जो काम करें वह उत्तम-से-उत्तम हो । उसमें सचाई और नीति पूरी तौर से बरती जाय । कोई कारीगर अपने पवित्र धर्म में खोटाई करे, सच्चाई और ईमानदारी के मार्ग से डिग जाय, या कला की हानि करे, तो उसकी मंडली की ओर से उसे कड़े-से-कड़ा दंड दिया जाय ।

व्यवसाय की जितनी मंडलियां हों उन सबका एक ही लक्ष्य यह सचाई और ईमानदारी, उपकार और अहिंसा की पूरी रक्षा करते हुए उस व्यवसाय की हर तरह पर उन्नति बराबर होती ही जाय ।

व्यवसाय-पंचायत का काम अपने अन्तर्गत सहयोग की मंडलियाँ खोलकर ही पूरा नहीं होजाता । सहयोग-मंडलियों का निर्माण उसका मुख्य काम है, परन्तु साथ ही उसका यह भी कर्त्तव्य है कि अपने गाँव की परिस्थिति को अच्छी तरह ध्यान में रखकर खेती, पशुपालन और

जाय । यह तपस्या है, संयम है; इसे किसीको बुरा न समझना चाहिए ।

व्यवसाय-पंचायत का यह कर्त्तव्य होगा कि भरसक थोड़ा-बहुत मूल ऋण चुकाने का हरेक ऋणी के लिए बन्दोबस्त करती रहे और साहूकार पर अंकुश रक्खे कि वह अत्यन्त हलके ब्याज में ही ऋणी को छुटकारा देदे ।

व्यवसाय-पंचायत का यह भी कर्त्तव्य होगा कि जिन लोगों के पास कोई मिल्कियत न हो और वे ऐसी मिल्कियत ख़रीदना चाहें कि जिसमें वे गुजर-बसर कर सकें, तो उनके लिए ऐसी छोटी मिल्कियत के ख़रीदवाने में भरसक सहायता करे ।

व्यवसाय-पंचायत का एक विभाग ऐसा होगा जो हर किसान के व्यवसाय का ब्योरा अपनी बही में रक्खेगा । इसी विभाग के अधिकार में गाँव का पटवारी और उसका दफ्तर भी होगा । उसकी सारी देख-भाल पंचायत करेगी और पटवारी का वेतन पंचायत देगी ।

व्यवसाय-पंचायत के सम्बन्ध में हमने विविध पेशों और जातियों की मण्डलियों की चर्चा की है । परन्तु यह सभी जानते हैं कि विविध जातियों का संगठन देश में मौजूद है । सबकी पंचायतें हैं । ये पंचायतें पहले पेशे की रही होंगी, परन्तु आज उनका संगठन पेशे की भलाई या उन्नति के लिए नहीं मालूम होता । उनके सामने तो आज केवल रोटी और बेटी के प्रश्न उपस्थित होते हैं । वे पंचायतें सामाजिक हो गई हैं, व्यावसायिक नहीं हैं । परन्तु प्रायः हर जाति का नाम उस जाति के पेशे की सूचना देता है । जान पड़ता है कि हिन्दू-समाज का प्राचीन संगठन पेशों के अनुसार था और उसकी पंचायतें भी उन-उन पेशों की रक्षा और उन्नति के लिए थीं । यह बात भी सही है कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी के एक ही व्यवसाय में लगे रहने से उस व्यवसाय में पूर्णता आजाती है । उस

वंश का आदमी उस व्यवसाय में कुशल, दक्ष और परिपूर्ण हो जाता है। माता-पिता की कुशलता और दक्षता का प्रभाव सन्तान पर पड़ता ही है। सहवास और सहभोजन इसमें सहायक होता है। इसीलिए ये व्यावसायिक पंचायतें प्राचीन काल में इस बात पर बहुत कड़ी निगाह रखती होंगी कि एक व्यवसायवाले का रक्त-सम्बन्ध उसी व्यवसाय-वाले के साथ हो। सहभोज और सहवास भी भरसक विशेष व्यवसाय के भीतर ही हो। काल पाकर उस विचार का केवल अन्तिम अर्थात् रोटी-बेटी के सामाजिक व्यवहार का ही विषय उसका मुख्य ध्येय रह गया और व्यवसाय की रक्षा जो पहले मुख्य उद्देश्य था वह धीरे-धीरे गौण विषय हो गया। अब भी हमारी समझ में व्यवसाय को मुख्यता देकर इन जातियों की जीवित विद्यमान पंचायतों को हम ठीक मार्ग पर लगा सकते हैं और बने-बनाये काम को सुधार सकते हैं। मेरी समझ में जाति-पाँति के तोड़नेवाले भूल पर हैं और उनकी निर्दिष्ट क्रान्ति बड़े परिमाण में सफल भी नहीं होसकती। बने-बनाये काम को नासमझी से बिगाड़ने का प्रयत्न समीचीन नहीं समझा जा सकता। जाति-पाँति ने ही हिन्दू-समाज की रक्षा की है। स्वतन्त्रता खोने का दायित्व इनपर नहीं है।

व्यवसाय-पंचायत को हमारे गाँवों में बड़े परिश्रम का काम करना है। खेती का काम चौपट होचुका है। खद्दर का काम लोग भूल गये हैं। गोपालन और पशुपालन की कला का फिर से विकास करना है। वाणिज्य-व्यापार को फिर से चलाना है। हाट-बाज़ार का रंग बदलना है। मिल्कियत का भाव किसानों में पैदा करना है। उनके ऋण का बोझ उतारना है, उनका खर्च घटाना है, उन्हें खाना-कपड़ा देना है, जन-धन दोनों की रक्षा करके दोनों को बढ़ाना है। यह काम थोड़ा नहीं है। इसका सारा भार इसी पंचायत पर है।

शासन-समिति से सलाह लेकर व्यवसाय की नीति निर्धारित करना, रक्षा-पंचायत से मिलकर धन-जन की यथेष्ट रक्षा में पूरी सहायता लेना, शिक्षा-पंचायत से मिलकर गाँववालों को ऐसी शिक्षा देने के बन्दोबस्त में मदद देना जिससे कि खोये हुए व्यवसाय फिर मिल जायँ और उनकी एक मिनट की शिक्षा भी निरर्थक न हो, और सेवा-पंचायत से मिलकर ऐसे उपाय करना कि गाँववालों की भयानक बेकारी मिटे—यह सहकारिता का व्यवहार व्यवसाय-पंचायत के लिए अत्यन्त आवश्यक होगा।

शासन और अर्थ-समिति को यही व्यवसाय-पंचायत समय-समय पर यह सलाह देगी कि गाँववालों से किस प्रकार किस हिसाब से कर लिया जाय, अथवा सभी कामों में किस प्रकार सहकारिता प्राप्त की जाय, और व्यवसाय की दशा देखकर ही ख़र्च का संयम किया जायगा।

: १२ :

सेवा-पंचायत

सेवा-पंचायत के दो विभाग होंगे। एक मजूर-मण्डली और दूसरी विहार-मण्डली।

हर गांव में ऐसे लोग भी हो सकते हैं जिनके कोई मिल्कियत नहीं है और न वे ऐसे समर्थ हैं कि जल्दी किसी मिल्कियत के अधिकारी हो सकें। यह मजूरी भी कई तरह की होसकती है। किसीमें शारीरिक बल और परिश्रम अधिक चाहिए और किसीमें कम। किसीमें लगातार काम करना पड़ता है और किसीमें बीच-बीच में रुककर। जहां इंजन या बेल्ट चलता है वहां मजूर को लाचार हो निरंतर लगे रहकर बिना रुके काम करना पड़ता है। वहां उसे मनुष्य से यंत्र बन जाना पड़ता है। परन्तु हमारे सौभाग्य से यंत्र की विपत्ति गांवों में नहीं है। यहांके मजूरों को किसान का ही काम करना पड़ता है। अच्छा-खासा तगड़ा मजूर हल जोतता है, पटेलता है, बोता है, सिंचाई करता है, बैलों की सेवा करता है। रोपाई, निराई, कटाई, ढुलाई, दँवाई आदि काम खेती के अन्तर्गत हैं। इसके सिवा गाड़ी जोतना और चलाना, बोझ उठाना, घर की छवाई करना, लकड़ी काटना, पानी सींचना, डोरी बटना आदि भी गांव के मामूली काम हैं। इन सब कामों में भी

होसकते वह मजूर रखकर काम लेता है। ये सारे काम प्रतिष्ठित और पवित्र हैं, और यद्यपि ये मजूरी लेकर किये जाते हैं तो भी जिसके लिए किये जाते हैं उसे तो मजूरी देकर भी मजूर का अहसान मानना चाहिए। मजूरी तो उस काम करनेवाले के निर्वाह के लिए दी जाती है, परन्तु वह जो अपनी स्वतंत्रता और समय और आराम को छोड़कर काम करता है वह विशेपरूप से "सेवा" करता है। सेवा पवित्र काम है। रुपये-पैसे या अन्न से उसका बदला नहीं होसकता। किसीके त्याग का बदला रुपये-पैसों के द्वारा नहीं दिया जासकता।

जिसके पास मिल्कियत है वह भी मेहनत करता है और वही मेहनत करता है जो मजूर करता है, परन्तु अपनी मिल्कियत पर आप ही जो काम करता है उसकी मजूरी न तो लेता है न जोड़ता है। इसी-लिए यह नहीं कहा जासकता कि वह मजूरी करता है; परन्तु उसका और मजूर का काम असल में एक ही है।

अनेक ऐसे मिल्कियतवाले भी हैं जो अपनी ज़मींदारी या साहूकारी की आमदनी पर जीते हैं, मेहनत करना अपना अपमान समझते हैं, आराम की, सुस्ती की और बेकारी की जिन्दग़ी काटते हैं। इनका काम मजूर करते हैं। ऐसे लोगों की गिनती साधारण किसानों में नहीं हो सकती। ये धनवान पूँजीपति समझे जासकते हैं।

हम देख चुके हैं कि साधारण किसान और मजूर गाँव में काम एक ही तरह का करते हैं। इनका काम घोर शारीरिक परिश्रम का है। इनमें कई काम इस तरह के हैं कि बग़ैर मिल-जुलके किये हो नहीं सकते। छप्पर उठाने के लिए बहुत-से आदमियों की मदद लेनी पड़ती है। फिर साधारण मजूरी के काम में भी एक मजूर दूसरे से अधिक कुशल होसकता है। इसीलिए मजूरों का संगठन होजाय और जो काम

मजूर करें वे अपनेसे अधिक कुशल मजूर से सीखकर अधिकाधिक उत्तमता से करें तो गाँव के सारे कामों में उन्नति होसकती है। खेतों को समथर बनाना, उनकी मेड़ें ऐसी बनाना कि पानी बहकर निकल न जाय, सिंचाई की नालियों की ढाल ठीक करना, उचित मात्रा में पानी पहुँचाना बहुत परख और बड़ी समझदारी का काम है। मूस, घूस, टिड्डी आदि से खेतों की रक्षा के उपाय करना बड़ी कुशलता का काम है। ये सब काम जो अच्छा सीखा हुआ है वही खेती की अच्छी मजूरी कर सकता है। गोपालन के काम में जो होशियार होगा वही बैलों की ठीक सेवा कर सकेगा। जोतना, बोना आदि भी कुशलता के काम हैं। मिट्टी की भीत भी टेढ़ी-मेढ़ी और पोली उठाना एक बात है और सीधी-सुडौल और ठस बनाना बिलकुल दूसरी बात है। सुन्दर कुआँ खोदना और बँधवाना बड़ी कारीगरी का काम है। इन सब कामों में कुशलता सबको एक ही ढंग से नहीं आसकती। जो काम अवस्था के हैं उनको बड़ी अवस्थावालों से सीखना ही पड़ता है। गांव में सभी मजदूर सभी काम नहीं करते।

मजूरों को हम दो भागों में बांट सकते हैं। एक शिल्पी और दूसरे साधारण।

शिल्पी वे मजूर हैं जो विशेष प्रकार की कला में निपुण हैं और उसका रोजगार करते हैं। नोनिया नमक का रोजगारी है। वह कुएं भी खोदता है और बेलदारी भी करता है। तेली तेल पेलता है और बेचता भी है। कुम्हार मिट्टी के बरतन बनाता है, आवा लगाता है, खपड़े बनाता है। जरूरत पड़े तो ईंट भी पाथे और पकावे। चमार चमड़े सिझाता है और चमड़े की सभी काम की चीज़ें बनाता है। मरेस, नांत आदि भी तैयार करता है। गड़ेरिया भेड़-बकरी पालता है, ऊन उतारता

है, कातता है, कम्बल आदि बनाता और बेचता है। बँसफ़ोर बाँस काटकर सादी और चित्रित भाँति-भाँति की सुन्दर चीज़ें बनाता है। बढ़ई व लोहार लकड़ी और लोहे का काम करते हैं और अपनी ओर से सामान बनाकर बेचते भी हैं। सोनार सोने-चाँदी का काम करता है। निदान ये सभी शिल्पी मजूर हैं। कारीगर हैं और रोज़गारी हैं। इनकी अलग-अलग पेशेवाली पंचायतों की चर्चा हम कर आये हैं।

साधारण मजूर मोटे काम करते हैं और अपनी ओर से कोई रोजगार नहीं करते। इनकी पंचायत भी होनी चाहिए। इनकी एक मंडली मजूर-मंडली बने जिसमें हलवाहे, बेलदार, पेशराज, दीवाल उठानेवाले, छप्पर छानेवाले, पानी भरनेवाले, डोली-बहँगी ढोनेवाले, गाड़ीवान, चौकीदारी करनेवाले, हरकारे, नाई, बारी आदि सभी मोटे काम करनेवाले शामिल हों। इन्हें चाहिए कि अपने-अपने काम में बढ़न्ती करें और उन कामों को मुख्य रखकर, दूसरी तरह की कला—पढ़ना-लिखना, गाना-बजाना, चित्रकारी आदि—सीखें। अपने-अपने काम में सचाई, अहिंसा, त्याग, सेवा, धर्म्म आदि पर निगाह रखते हुए तरक्क़ी करें।

२. विहार-मंडली

शासन, शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय, सेवा सभी परिश्रम के काम हैं। दिनभर जो मेहनत करता है उसे खाने-कपड़े, नहाने-सोने आदि कामों के सिवा जी बहलाने और शरीर और मन की थकान मिटाने की ज़रूरत भी पड़ती है। ऐसा न करे तो उसका शरीर और मन दोनों जल्दी जवाब देदेंगे, और उसके जीवन के दिन घट जायँगे। बचपन की अवस्था खेल-कूद और निश्चिन्त रहने की अवस्था समझी जाती है। यह अवस्था तन्दुरुस्ती को ठीक रखती है, आयु को बढ़ाती है और प्राणी को सुखी

रखती है। जिसका बचपन कभी नष्ट नहीं होता वह सदा सुखी रहता और दीर्घायु होता है। दिन के अन्त में कुछ समय सबके लिए ऐसा होना चाहिए कि चिन्ताओं से बिलकुल अलग होकर खेल-कूद, गाना-बजाना, कथा-कहानी आदि में खर्च हो। यह प्रवृत्ति स्वाभाविक है। इसीलिए जहाँ कहीं इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को छुटकारे के साथ विचरने का अवसर नहीं मिलता वहाँ इस कमी की पूर्ति के लिए आदमी नशे के द्वारा अपनी चिन्ताओं को बिसराने का जतन करता है। शराब, ताड़ी, भंग, गांजा, चरस, अफ़ीम, कोकेन, तमाखू आदि की लत इसीलिए पड़ जाती है। नशे से थोड़ी देर के लिए बेहोशी-सी आकर चिन्तायें तो दूर होजाती हैं, पर दिल, दिमाग, तन्दुरुस्ती, आयु, धन सभी नष्ट होते हैं। बैरी छल करना चाहता है तो नशे में करके सहज ही अपना मतलब साध लेता है। सब तरह का नशा मनुष्य का बैरी है और एक बैरी का दूसरे को मिलाकर अधिक बलवान बन जाना स्वाभाविक ही है। नशा-रूपी बैरी से छुड़ाने के लिए और गाँव में रहनेवालों के सौख्य और आयु को बढ़ाने के लिए हर गाँव में **विहार-मंडली** का होना उसी तरह जरूरी है जिस तरह शिक्षा या रक्षा-पंचायत का। इस मंडली में गाँव के बच्चों से लेकर बूढ़ों तक हरेक के मन-बहलाव का बन्दोबस्त होना चाहिए।

लाभ बहुत है पर दंड, बैठक आदि में मेहनत बहुत है और मन-बहलाव कम है, साथ ही यह वह काम नहीं है जो थके शरीर पर किया जाय। खेती और बागवानी में जिन्हें पूरी मेहनत नहीं करनी पड़ती या जिनको इन कामों से छुट्टी मिल चुकी है उनके लिए इस तरह के व्यायाम बहुत ज़रूरी हैं। यह नियम होजाना चाहिए कि उन समयों में जब कि किसान को फ़ुरसत रहती है, गाँव का हर नौजवान गाँव के अखाड़े में शरीक हो और दंड-बैठक के सिवाय लकड़ी, बनेठी, गदका, फरी, कुश्ती, मलखम्भ के खेल, दौड़ आदि सभी तरह के खेलो में शरीक हो। इनमें से दो-एक को छोड़कर तो बाक़ी में पूरा दिलबहलाव है। निशाना मारनेवाले खेल या जिनमें होड़ लगती है वे खेल तो बड़े लोकप्रिय समझे जाते हैं। व्यायाम केवल मनोरंजन की सामग्री नहीं है। इसे तो ज़रूरी काम समझना चाहिए और बीमारों को छोड़कर सबके लिए अनिवार्य होजाना चाहिए।

व्यायाम के बाद खेल-कूद का नम्बर आता है। गाँवों में बहुत तरह के खेल-कूद की चाल है। प्रायः सभी खेल हाथ-पाँव को मजबूत करनेवाले हैं। कबड्डी बहुत अच्छा खेल है। इसमें साँस का भी अभ्यास होता है और हाथ-पाँव भी मजबूत होते हैं। अभी हाल में मदरसों में स्काउटों या चरों के खेलों का प्रचार हुआ है। इनमें खेल भी है, मनोरंजन भी है, और समाज की सेवा भी है। चाहिए कि हर गाँव अपने नौजवानों को सेवा-रूप में संगठित करे। उन्हें मनोरंजन के साथ-साथ समाज-सेवा की यह उत्तम शिक्षा है।

सेवा-समिति के इन चरों को ऐसे सब तरह के काम सिखाये जाने चाहिएँ कि जिनकी आये दिन जरूरत पड़ा करती है और जिनके लिए समाज ने कोई विशेष प्रबन्ध नहीं किया है। जैसे (१) आकस्मिक

चिकित्सा; (२) रोगी की सेवा; (३) आवश्यकता के समय पर गाँव की पहरेदारी; (४) आग, बाढ़ आदि विपत्तियों पर गाँव की रक्षा; (५) आवश्यकता पड़ने पर सेना का काम। खेल-कूद के सिवाय ये पाँच काम गाँव के चरों या सेवकों को पूरी तरह से सिखाये जाने चाहिएँ। यही सेवा-समिति समय पर शिक्षा-पंचायत, रक्षा-पंचायत और व्यवसाय-पंचायत की भी सहायता करेगी। इसे गाँव की सेना समझना चाहिए।

बच्चों, बूढ़ों, जवानों, स्त्रियों, पुरुषों के मन-बहलाव की सामग्री भी भिन्न-भिन्न होगी। गाने-बजाने में, कथा-पुराण में, मेले-तमाशों में तो सभी शरीक हो सकते है। परन्तु बच्चों के बहुत-से खेल आपस में ही खेलने के होते हैं। गुड्डो और खिलौनों के साथ खेलने में छोटे बच्चों को ही रस आता है। छोटे-छोटे किस्से-कहानियाँ, पहेलियाँ, बुझौवल जो बड़े-बूढ़े बच्चों से कहते हैं उनमें तो सबको रस आता है। इन्हींके सिलसिले में पुराणों की कथायें भी आती हैं। इनमे मन-बहलाव का मन-बहलाव है और अच्छी-से-अच्छी शिक्षा भी मिलती है। शतरंज, गंजफ़े और चौसर घर बैठे के खेल हैं। इनसे हाथ-पांव मजबूत नहीं होते, परन्तु जो लोग खेतो में कड़ी मेहनत करके आते हैं और जिनके साथ खेलने को ज्यादा लड़के और हमजोली नहीं मिल सकते वे अपना कोई साथी खोजकर अगर ये खेल खेलें तो ज्यादा हर्ज नहीं है। परन्तु इन खेलों में फँसनेवाले खराब होजाते हैं। इसलिए भरसक इनसे बचना चाहिए।

कथा-पुराण से गाँववालों को सब तरह की शिक्षा मिल सकती है। हमारे देश में कथा-पुराण की रीति बहुत पुरानी है। पुराणों से अनेक तरह की शिक्षायें और विद्यायें मिलती हैं। गाँववालों को किसी

विश्वविद्यालय में जाने की ज़रूरत नहीं हैं, अगर उनके यहाँ पुराणों की कथा हुआ करती हो। पुराणों के पढ़ने से भारत की पुरानी संस्कृति का ज्ञान होता है। कोई-कोई पुराण ऐसा है कि बातचीत के बहाने किसी विशेष विद्या की शिक्षा भी उसमें मिलती है। अग्नि-पुराण में तो सभी विषयों का वर्णन है। एक भी छूटा नहीं है। एक अग्नि-पुराण पढ़लेने से मनुष्य सारी हिन्दू संस्कृति को थोड़े में जान जाता है। महाभारत सभी विद्याओं का भण्डार है। कोई विद्या ऐसी नहीं है जो उसमें न हो। रामायण, महाभारत और पुराणों की कथायें गाँव-गाँव में होती रहें तो बिना अक्षर-ज्ञान के भी बड़ी अच्छी शिक्षा गाँव के उन रहनेवालों को मिल सकती है जिनको अक्षरों के सीखने का मौक़ा नहीं मिला है।

मेले-तमाशों से दिल-बहलाव भी होता है, शिक्षा भी मिलती है, और रोज़गार भी चलता है। जो तमाशे नीति के विरुद्ध होते हों वे न होने चाहिएँ। जुए का तमाशा निन्दित है। जिन तमाशों से मनुष्य या पशुओं को कष्ट पहुँचता हो वे अच्छे तमाशे नहीं समझे जाने चाहिएँ। मेलों में खेल और तमाशे भी होते हैं और व्यापार भी होता है। बाज़ार भी दिल-बहलाव की जगह है। यहाँ शिक्षा मिलती है और बहुत-से लोगों से भेंट भी होती है। परन्तु नित्य के घूमने-टहलने के लिए तो साफ़ एकान्त जंगल ही अच्छा है, जहाँ हरियाली का दृश्य हो और जल-वायु साफ़ हो। दिन-भर की मेहनत से लौटा हुआ किसान शायद टहलना पसन्द न करेगा, वह अपने दरवाज़े पर या चौपाल में और तरह पर जी बहलावेगा। परन्तु जिस दिन उसे खेत में मेहनत नहीं करनी पड़ती उस दिन वह व्यायाम करे या टहलने निकले तो स्वाभाविक है। तमाखू पीना, या गांजा या भंग पीना, अथवा शराब या ताड़ी पीना अत्यन्त बुरा है। इन्हें गाँवों से निर्मूल कर देना होगा। इनसे दिल-बहलाव

नहीं होता। इनसे धन का नाश होता है, तन्दुरुस्ती बिगड़ जाती है और परिवार का जीवन संकट में पड़ जाता है और ये बुरी लतें हर तरह पर दरिद्रता लाने में सहायक होती हैं।

सेवा-मंडली और विहार-मंडली ये दोनों गाँववालों के जीवन में एक बड़ी भारी कमी को पूरा करती हैं। आज गाँव का जीवन इनके बिना नीरस और उदास होरहा है। संगठन करनेवालों को इस विषय पर काफ़ी ज़ोर देना चाहिए।

हमारे देश में इस समय दुर्भाग्य से सेवा-भाव का बड़प्पन लोग भूल गये हैं। इसीलिए गाँवों के संगठन का बहुत बड़ा और ज़रूरी अंग सेवा-भाव की पवित्रता स्थापित करना है। उसकी स्थापना कैसे होगी? क्या केवल उपदेश से यह बात होसकेगी? नहीं, कोरे उपदेश से कोई नतीजा नहीं निकलता। उसकी स्थापना केवल इस तरह होसकती है कि जो लोग समाज में बहुत बड़े और ऊँचे समझे जाते हैं वे सेवा का

पर्वों और त्योहारों में हमारी प्राचीन राष्ट्रीयता जीती-जागती मौजूद है। पिछले काल से दरिद्रता के कारण इनका भी लोप होचला है। नित्य के एक तरह के चलते हुए जीवन के बीच-बीच में पर्व और त्योहार आजाने से मन बदल जाता है, जीवन में उत्साह आजाता है, अपने पूर्वजों की याद जग जाती है, अपनी खोई बड़ाई एकबार फिर सामने आकर हमें आगे बढ़ने का हौसला दिलाती हैं और हमारी निगाहों के सामने बड़ों का उत्तम आदर्श एकबार फिर खड़ा कर देती हैं। अपने पर्वों और त्योहारों को फिर से जगाकर चलाने की ज़रूरत है। ग्राम-संगठन का यह भी एक ज़रूरी अंग समझा जाना चाहिए।

यहाँतक हमने यह देखा कि हमको किन-किन बातों में संगठन की ज़रूरत पड़ सकती है। अब आगे चलकर हम यह विचार करेंगे कि पूरा गाँव कैसा होना चाहिए।

: १३ :

पूरा गाँव

हमारी देह में जितने अंग हैं उन सबके लिए अलग-अलग काम हैं। कोई अंग बेकार नहीं है। एक अंग भी बीमार होजाता है तो बाक़ी सब अंगों को बेचैनी होजाती है। हम सुखी तभी रहते हैं जब हमारे अंग-अंग अच्छी दशा में होते हैं, किसी अंग में कोई कष्ट नहीं होता। हमारी देह में कोई चीज़ निकम्मी नहीं है; यहांतक कि हमारे बाल और नाख़ून भी बड़े काम की चीज हैं। जब थोड़े रहते हैं, शरीर की रक्षा करते हैं। बढ़ जाते हैं तब मैंने के रूप में निकाल दिये जाते हैं। हम भोजन करते हैं, यह भी बड़ा ज़रूरी काम है; मुंह उसे अपने कारख़ाने में सानकर पेट में भेजता है। पेट उसे अपने रसोईघर में पकाता है और जो रस बनने लायक़ है वह अलग कर लिया जाता है, बाक़ी जो देह के काम की चीज़ नहीं है वह मैले और पेशाब के रूप में बाहर निकाल दी जाती है। देह के जीते रहने के लिए अनाज का पचना ज़रूरी है। शरीर की सफ़ाई भी ज़रूरी है। रक्षा भी ज़रूरी है। और देह के बढ़ने के लिए रसों का बनना भी ज़रूरी है। देह बढ़ती भी है और पूरे बाढ़ को पहुंचकर संसार में सुखी जीवन बिताती है।

न हों, तो गाँव पंगुल है। और किसान न हों तो गाँव मुर्दा है। गाँव के रहनेवाले उसके अंग हैं। पर किसान तो गाँव का प्राण है। आजकल हमारे भारत के गाँव बहुत करके अंगहीन हैं। कोई अन्धा है कोई बहिरा, कोई लंगड़ा है कोई लुंजा, और कई तो ऐसे हैं जिनके प्राण-ही-प्राण रह गये और बाक़ी अंग नष्ट होगये हैं। हमारे गाँव आजकल पूरे नहीं हैं, अधूरे हैं। भारत के सात लाख गाँवों में अधूरे और रोगी प्रायः सभी हैं। हम क्या करें कि इनका रोग मिट जाय और अधूरे अंग पूरे होजायँ? देह के अंग जो नष्ट होजाते हैं वे फिरसे नहीं बन सकते। परन्तु प्राण बाक़ी रहता है तो अंधा आदमी टटोल के आँख की कमी पूरी कर लेता है। बहिरा अन्दाज़े से और मुँह के हिलने-डोलने से काम चला लेता है। रोगी अंग का रोग जबतक दूर न होजाय तब-तक काम ठीक नहीं कर सकता। जिस अंग में रोग है और नष्ट नहीं होगया है वह इलाज से अच्छा होसकता है। सात लाख गाँवों में जिन गाँवों के अंग एकदम नष्ट नहीं होगये हैं, उनके सुधार के उपाय किये जासकते हैं। जिनके अंग नष्ट होचुके हैं उनका काम चलाने के लिए भी उपाय होसकते हैं।

गाँवों का सुधार और संगठन करने के लिए हमें समझना होगा कि एक नमूने के गाँव की जरूरतें क्या-क्या हैं? हम किसी गाँव को पूरा कब कह सकते हैं?

अनाज और कपास पैदा करना खेतो का असली काम है। गाँव के चारों ओर खेतों का होना ज़रूरी है। गाँव को खाना और कपड़ा दोनों चीज़ें मिलनी ही चाहिएँ। आदमी के जीने के लिए हवा, पानी, खाना और कपड़ा ये चार चीज़ें बहुत ज़रूरी हैं। साफ़ हवा और साफ़ पानी रोग से बचने के लिए बहुत ज़रूरी है। चारों ओर सफ़ाई रखने से हवा

साफ़ रह सकती है। अच्छे कुएँ, तालाब या नदी से साफ़ जल भी मिल सकता है। भोजन और कपड़ा खेत के अनाज और कपास से मिल सकता है। किसान अनाज और कपास उपजाता है और उपजाने के लिए जो-जो और साधन चाहिएँ उनको इकट्ठा करता है। कुएँ खोदने को, सिंचाई करने को, हल जोतने को, उसे आदमी और पशु की मदद चाहिए और औजार भी चाहिएँ। कुएँ खोदने को नोनिये, हल जोतने को हलवाहे, हल, चरखा आदि बनाने को लोहार या बढ़ई या दोनों ज़रूर चाहिएँ। कपड़े बनाने को कोरी, कोष्टी, जुलाहा या बुनकर भी चाहिएँ। हम अगर मानलें कि वह नंगे पाँव रह सकता है, उसकी बीबी घर में पीस सकती है और ओट, धुन, कात सकती है, साथ ही ज़रूरत पड़ने पर थोड़ा-बहुत मी भी लेती है, तो किसान के निबाह के लिए मजूर, हलवाहा, बुनकर इन्हींकी ज़रूरत है। पर उसके कपड़े मैले भी होंगे, वह अगर पा सके तो उसे धोबी भी चाहिए। बाल और नाखून बढ़ेंगे, इसलिए मिले तो नाई भी चाहिए। जिस घर में रहेगा उसके छाजन में खपरों की ज़रूरत पड़ेगी। उसे खाने-पकाने को बर्तन भी चाहिएँ। इसी तरह पानी भरने को घड़े आदि भी बार-बार चाहिएँ। मिट्टी के बर्तन उसे अनेक कामों के लिए बार-बार चाहिएँ, इसलिए

रह सकता, उसके यहाँ व्याह भी होता है, सन्तान भी होती है, तीज-त्योहार भी होते हैं, धर्म के काम भी होते हैं। आये दिन जब कभी कोई बीमार हुआ तो इलाज कराना भी ज़रूरी होता है। इसलिए पुरोहित और वैद्य दोनों की ज़रूरत है। फिर जब अनाज और कपड़े इकट्ठे होते हैं, बर्तन और गहने भी घर में होते हैं, तो चोरों का डर होता है। इसलिए किसान को समय-कुसमय पहरा देनेवाला भी चाहिए। एक गाँव में बहुत-से किसान होते हैं, खेत भी उसी तरह बहुत-से टुकड़ों में बँटा रहता है। आये दिन डाँड-मेंड के झगड़े भी आपस में होसकते हैं। गाँव में वन भी होते हैं, जलाशय भी होते हैं, ऊसर भी होते हैं और बाग़-बग़ीचे भी होते हैं। किसी-किसीपर एक आदमी का अधिकार होता है और किसीपर सारे गाँव का। ऐसी दशा में भी झगड़े उठ सकते हैं। इसी तरह आये दिन भाई-भाई में, पट्टीदार-पट्टीदार में, झगड़े उठ सकते हैं और उनको सुलझाने की ज़रूरत होसकती है। इसके लिए पंचायत की भी दरकार है। अगर एक गाँववाले दूसरे गाँव से झगड़ा करने पर उतारू हों और चढ़ आवें तो गाँववालों को अपने हरवे-हथियार से भी तैयार रहना चाहिए। इसके लिए अकेले पंचायत से काम न चलेगा, बल्कि मुक़ाबला करने के लिए जवान किसानों को तैयार रखना पड़ेगा। और अगर हर गाँव में अपना ऐसा अलग-अलग बन्दोबस्त न करें तो कम-से-कम ऐसे राजा या पंचायत के अधीन रहना होगा जो इकट्ठे बहुत-से गाँवों की रक्षा का बन्दोबस्त कर सके। सिंचाई के काम में चमड़े के मोट की भी ज़रूरत पड़ सकती है; और मरे हुए गाय, बैल और भैंसों के चमड़े को सिझाने, कमाने आदि की भी ज़रूरत पड़ सकती है; इसलिए गाँव में चमार का होना भी ज़रूरी है।

इस तरह गाँव में सबसे ज्यादा किसान होने चाहिएँ। हम किसानों

में पशु-पालन करनेवालों को भी गिनते हैं। विशेष रूप से हम उन्हें गिनते हैं, जो गाय-बैलों का पालन करते हैं। साथ ही तेल, घी, मसाले, नमक और औषधियों व कपड़ों का व्यापार भी किसानों का ही काम है। खेती, गोपालन और बनियाई ये तीनों काम साथ-साथ चलते हैं और गाँवों के मुख्य काम हैं। बाक़ी और जितने काम हैं वे सब-के-सब इन्हीं किसानों के सहारे चलते रहते हैं। इसीलिए गाँवों की प्रधान आबादी किसानों की होनी चाहिए। इन किसानों की मदद के लिए चमार, धोबी, नाई, पासी, काछी, तेली, कुम्हार, जुलाहा, कायस्थ, ब्राह्मण और क्षत्री सभी जातियाँ हैं। इन सबमें से किसीको अपने पेशे के काम में सारा समय कभी नहीं लगाना पड़ता। इसीलिए गाँव में रहते हुए अकेले अपने पेशे पर इनका गुज़ारा नहीं होसकता। ये सब-के-सब अगर खेती का काम न करें तो खाने को न मिले। इसीलिए इनका मुख्य काम खेती है, जिससे ये अपनेको और अपने परिवार को पालते-पोसते हैं। गांव में चमार चमड़े का काम करता है, साथ ही खेती भी करता है। लुहार और बढ़ई लकड़ी और लोहे का काम भी करते हैं और खेती भी। कुम्हार खपरे और बरतन भी बनाता है और खेती भी करता है। ब्राह्मण पुरोहिताई भी करता है और खेती भी करता है। ग्वाला गऊ भी पालता है और खेती भी करता है। चौकी-दार, हलवाहे और मजूर आजकल बहुत करके खेती नहीं करते, क्योंकि बहुत भारी आबादी रोजगारों के छिन जाने से खेती के आसरे रह गई है पर खेत नहीं पा सकती। परन्तु पूरे गांव में हलवाहे और मजूर को भी जैसे-तैसे खेतिहर होना, किसान होना, बहुत जरूरी है। बात यह है कि गांव में रहकर सभी वर्णों और सभी जातियों के लोग खाते और पहनते हैं, खाना और कपड़ा खेती से ही मिलता है। इसीलिए

खेती तो सभीको करनी ही चाहिए। और अपने वर्ण या जाति का काम तो खेती के बाद आता है।

पूरा गाँव वही है जिसमें आदमी की जरूरतें पूरी हों, जिसमें सबको सब तरह से बढ़ने की शिक्षा मिल सके, जिसमें सबको अपने काम के करने और सुख से रहने में रक्षा हो सके, जिसमें खाना-कपड़ा और सब सामान शांति से उपजाये और बाँटे जा सकें, और जिसमें सब तरह के लोगों के—चाहे वे शिक्षा का काम करते हों चाहे रक्षा का, चाहे सम्पत्ति उपजाने का काम करते हों और चाहे मेहनत-मजूरी करते हों—खेल-कूद और मनबहलाव के लिए उचित बन्दोबस्त हो। जो गाँव अपना खाना-कपड़ा दूसरे गाँव से मँगवाने के लिए लाचार न हो, जिस गाँव में बाहर से मजूर न मँगवाने पड़ें, जिस गाँव की नित्य की सारी ज़रूरतें पूरी होजाया करें और किसी और गाँव से मदद न लेनी पड़ें, वही गाँव पूरा है। यह कहा जासकता है कि बरतनों के लिए गाँववालों को शहर आना पड़ेगा और गाय, भैंस और बैल की ख़रीद के लिए मेलों और बाज़ारों में जाना पड़ेगा। यह बात बिलकुल सच है। परन्तु ये नित्य की ज़रूरतें नहीं हैं। इन्हींके लिए बड़े-बड़े बाजार और मेले हैं। इन्हींके लिए राजधानी के शहर हैं। राजा जहाँ रहता था वहाँ प्रजा के आराम के लिए सब तरह का ऐसा सामान शहर के बाज़ारों में इकट्ठा होने का प्रबन्ध करता था जो गाँव के रहनेवालों की ज़रूरत को पूरा करे, अथवा उनके ज्यादा ऐश-आराम या शौकीनी के लिए ज़रूरी समझा जाय।

इन्हीं पूरे गाँवों की आबादी मिलकर अपने यहाँ के झगड़ों के निपटारे के लिए, गाँव की सफ़ाई के लिए, बस्ती के लोगों को सुखी करने के लिए, बस्ती की रक्षा के लिए, बस्ती की शिक्षा के लिए, और बस्ती के

खेल-कूद और मन-बहलाव के लिए अपने लोगों में से ईमानदार, बुद्धिमान, भगवान को माननेवाले और पापों से डरनेवाले बूढ़े भलेमानसों को अपना पंच चुन लेती थी और गाँव का सारा बन्दोबस्त उन्हें सौंप देती थी। इन्हीं पंचों में से गाँव-गाँव से एक-एक मुखिया चुनकर बड़ी पंचायत बनती थी जिसे "जनपद की पंचायत" कहते थे। गाँवों के सम्बन्ध का आपस का निपटारा और गाँवों के परस्पर के झगड़ों का फैसला, गाँवों की सीमा और सड़कों आदि के झगड़े निपटाना, इसी बड़ी पंचायत का काम था। प्राचीन हिन्दूकाल में इन्हीं बड़ी पंचायतों के प्रतिनिधि मिल-कर जिलों या प्रान्त की या राज्य की "जानपद" पंचायत बनाते थे। "पौर" पंचायत शहरवालों की थी। इस तरह जानपद और पौर दोनों से अधिकार पाकर राजा शासन करता था।

भारत के पुराने संगठन में हरेक गाँव पूरा था। अपनी-अपनी जरूरतें आप पूरी कर लेता था। बाहरी चढ़ाई से और चोर, डाकू, आततायी आदि अपराधियों से रक्षा करने के लिए एक राजा या हाकिम या सर-पंच की जरूरत होती थी। और इसी सेवा के नाते गाँववाले जनपद की पंचायत को या राजा के प्रतिनिधि को अपनी पैदावार का एक भाग

से दिया जाता था वह असल में भूमि की रक्षा के लिए कर था। यह कर खेती की पैदावार का छठा, आठवाँ या दसवाँ अंश होता था। प्रजा की सब तरह की रक्षा राजा करता था, इसीलिए उसे सबसे कर पाने का अधिकार था।

ये तो पुरानी कहानियाँ हैं। आज हमारी जैसी दशा है वह किसीसे छिपी नहीं है। हमारे गाँव के अंग-भंग होचुके हैं। किसान दरिद्र हो-गये हैं। लाखों मजूर गिरमिट की गुलामीक रने बाहर चले गये हैं। पैसे की माया में पड़कर काफी अन्न उपजाकर भी हम भूखों मरते हैं, आये दिन कड़े लगान और मालगुजारी के बोझ से दबकर ऋण की चक्की में पिसते रहते हैं, और नहीं जानते कि इन विपत्तियों से कैसे छुटकारा होगा ?

हमने पिछले अध्यायों में संगठन की जो योजना दी है उस योजना से गाँव को पूरा करने के उपाय करने होंगे। पंचायतें गाँवों की कमी जिन विधियों से और जिस रूप से पूरी करेंगी उनका वर्णन सँक्षेप से हम आगे के अध्यायों में करेंगे।

: १४ :

गाँव का समाज

जब बच्चा पैदा होता है तभीसे उसको समाज से या माता-पिता से चार चीजों के पाने की जरूरत होती है। शिक्षा, रक्षा, भोजन और खिलौना। सबसे पहली और जरूरी चीज शिक्षा है। दूध पीने की शिक्षा से लेकर हाथ-पैर हिलाने, चलने-फिरने, खेलने-कूदने, हाथ-पांव और आंख-कान आदि के काम, खेल-कूद, मनबहलाव और दुनिया की चीजों को आमतौर पर बनाने-बिगाड़ने तथा सोचने-बोलने और हिलने-डोलने आदि भांति-भांति की शिक्षा हर बच्चे को मिलनी चाहिए। हर बालक और हर आदमी को—चाहे वह बच्चा हो चाहे जवान हो, चाहे बूढ़ा हो—जबतक वह जीता रहता है तबतक इस तरह की थोड़ी-बहुत शिक्षा मिलती ही रहती है। कुछ काम शिक्षा का मां-बाप करते हैं और कुछ मां-बाप के सिवाय बाहरी लोग भी किया करते हैं। खेत की जुताई, बुवाई, निराई, बीज की पहचान, सिंचाई, रखवाली का काम, अनाज के पकने आदि के सम्बन्ध का ज्ञान, उनकी कटाई, दँवाई और अन्न की सफाई, कपास की लोढ़ाई, ओटाई, धुनाई, कताई, और मकान का बनाना, बाग-बगीचों का लगाना, फलों का उपजाना, ढोरों का पालन-पोषण और रक्षा, ऊन के काम, दूध-दही आदि के काम, जानवरों का पालना आदि गांवों के अनेक काम हैं जो हर लड़के के लिए सीखना-सिखाना बहुत जरूरी है। सूत-पटसन आदि की तैयारी और उसका बटना, टोकरियां या झाबे बनाना, बांस के सामान बनाना,

रस्से-रस्सी आदि तैयार करना, खाट-मोढ़े आदि बुनना, जूते-कपड़े आदि सीकर तैयार करना, टोपी तैयार करना, कपड़े की रँगाई-छपाई करना, बेल-बूटे आदि कसीदे काढ़ना, बढ़ई का काम, लोहार का काम, तिलहन की पहचान और तेल पेलना, गन्नों और ईख की पहचान और उसकी खेती तथा उससे गुड़, खांड, चीनी आदि तैयार करना, साथ ही अनाज, खांड, कपड़े, तेलहन या और देहात की तैयार की हुई चीज़ों का व्यापार करना—ये सभी काम देहात के सम्बन्ध के हैं और गाँववालों को करने पड़ते हैं। इन्हें गाँव के लोगों को उचित समय पर सिखाना ज़रूरी है। इनमें से एक काम भी ऐसा नहीं है जिसमें पढ़ने-लिखने की शिक्षा ज़रूरी हो। परन्तु हर बालक को अपनी पूरी ऊँचाई तक उभरने और बढ़ने का मौक़ा मिले, इसलिए उसे कुछ थोड़ा-सा पढ़ना-लिखना और काम के लायक कुछ हिसाब-किताब जानना बहुत ज़रूरी है। सिखानें का काम वही लोग कर सकते हैं जो काम को जानते हैं। हर माँ-बाप और बड़े-बूढ़े का यह ज़रूरी कर्तव्य है कि बच्चों को काम सिखावें। पर थोड़ा-थोड़ा पढ़ना-लिखना और हिसाब सिखाने का काम किसी अलग सिखानेवाले को मिलना चाहिए। गाँव में ऐसे दो-एक पढ़ानेवालों से काम चल सकता है। यदि दो-चार और हों तो सुभीता होसकता है। यह हुई शिक्षा की बात।

जैसे शिक्षा की पहली ज़रूरत है वैसे ही रक्षा भी बहुत ज़रूरी है और शिक्षा के बाद उसका नम्बर आता है। चोर और डाकू से रक्षा करने के लिए चौकी-पहरे की और रखवाली की ज़रूरत होती है। खड़ी फ़सल की रक्षा बाड़ बाँधकर पशुओं से की जाती है। मचान पर बैठकर किसान रात-रात जगकर खेत की रखवाली करता है। पानी की बाढ़ से और सूखे से भी खेती की रक्षा करने की ज़रूरत होती है। नाज की बालों में और पौधों में रोग पैदा होजाते हैं और कीड़े लग जाते हैं।

आये दिन टिड्डी आदि से भारी हानि होजाती है। चूहे, घूँस आदि जानवर धरती के नीचे से और तोते आदि पक्षी ऊपर से खेती पर चढ़ाई करते हैं। इन सबसे भी रक्षा होनी चाहिए। खलियान में आग का सदा डर लगा रहता है, और नदी आदि में बाढ़ आजाने से गाँव-के-गाँव बह जा सकते हैं। गाँवों में सफ़ाई न रहने से और घरों के ठीक तरह पर न बनने के कारण भाँति-भाँति की बीमारियाँ फैलती हैं, जिनसे बस्ती-की-बस्ती तबाह होजाती है। इनसे भी रक्षा होनी चाहिए। फिर अगर दो आदमियों में झगड़ा होजाय और बीच-बिचाव का कोई सामान न हो तो लट्ठ लेकर दो दलों में गहरी मारपीट होसकती है। इसतरह की दुर्घटना से भी बचने के लिए उपाय होना चाहिए। निदान सब तरह से गाँव के धन और जन दोनों की पूरी रक्षा और दोनों के बढ़ने में किसी तरह की रुकावट को न पड़ने देना बस्ती के लोगों में से हर ऐसे आदमियों का काम है जो बचाने में मदद देसकते हैं। परन्तु झगड़ों के निपटारे के लिए पंचों का संगठन किये बिना रक्षा का काम नहीं होसकता। एकाएकी अगर कोई आफ़त आवे तो गाँव के सभी हाथ-पाँव-वाले दौड़ पड़ेंगे। यही चाहिए भी। परन्तु रक्षा का काम जिन लोगों ने सीखा है, वे दौड़कर सहज में विपत्ति को टाल सकते हैं। और जिन्होंने नहीं सीखा है वे केवल भीड़-भरोंके बनकर काम में रुकावट डाल और अपनेको जोखिम पहुँचा सकते हैं। इसलिए रक्षा के काम के लिए चुने हुए आदमियों का संगठन ज़रूरी है, चाहे वे पंच हों या पहरेदार, या स्वयंसेवक हों अथवा चर या दूत हों, या सैनिक के नाम से पुकारे जाते हों।

भोजन और कपड़ा नित-नित उपजाया नहीं जासकता। पर खाने और पहरने को ये दोनों चीजें नित-नित चाहिएँ। इसीलिए हर किसान को फ़सल के ऊपर अपने खाने-पहरने का सामान इकट्ठा कर लेना पड़ता है। जब मिलों की चाल न थी, तब अनाज और कपास दोनों जुटाकर रक्खे जाते थे। इनके सिवाय तेलहन और मसाले भी भोजन की सामग्री में समझे जाते हैं। इनको भी इकट्ठा करना ज़रूरी समझा जाता है। गुड़, शकर आदि की भी बहुत बड़ी माँग है। साथ ही खेती के लिए बैलों की बड़ी ज़रूरत है और गऊ पालने से गाय-बैल की सम्पत्ति बढ़ती है। गाय से दूध, दही, घी आदि मिलता है, जो आदमी के लिए बहुत ज़रूरी भोज्न है। गोबर और मूत्र को तो धरती में गाड़े जानेवाले धन समझना चाहिए। इन्हींमें लक्ष्मी का वास है। सोना-चाँदी गाड़ने से मिट्टी के मोल के हो जाते हैं, परन्तु गोबर व गोमूत्र खेत में गाड़ने से सोने के होजाते हैं। चतुर किसान इस गोधन को भी इकट्ठा करता है। गाय-बैल के साथ-साथ भैंस, बकरी, भेड़, सुअर आदि पशु भी पाले जाते हैं। इनसे भी किसान सम्पत्ति इकट्ठी करता है। मरे हुए पशुओं का चमड़ा सींचने के लिए मोट और पहनने के लिए जूता बनाने के काम में आता है और मल-मूत्र खाद के काम में आता है। मरे हुओं की हड्डी भी धरती को उपजाऊ बनाती है। किसान के लिए जीते-मरे सब तरह के पशु के रोएँ-रोएँ में धन है। सच पूछिए तो गाँवों में रुपये-पैसे के चलन की कोई ज़रूरत नहीं है। ये जितनी तरह के धन हमने गिनाये हैं, वे आपस की अदलाबदली से किसान की सारी ज़रूरतें पूरी कर सकते हैं। मजूरों को और हलवाहों को, शिक्षकों को और पण्डितों को, और इनके सिवाय जितने और काम करने वाले हैं, उन सबको अपने-अपने कामों की मजूरी अनाज, कपड़ा या और जिंसों के रूप में दी जासकती

है। किसी युग में जमींदार या राजा की मालगुजारी या लगान इन्हीं जिंसों के अंशों में दी जाती थी। रुपया-पैसा देने का रिवाज न था। आजकल लोग भूल से रुपये-पैसे को ही धन समझने लगे हैं। यह भारी माया है—भ्रम है। रुपया-पैसा धन नहीं है, सभ्यता का मायाजाल है। धन या जीविका का पैदा करना हर आदमी के लिए जरूरी है। प्रजा इसीसे जीती है। इसीलिए जीविका का यह तीसरा काम शिक्षा और रक्षा से कम बड़ा नहीं है।

गाँव में मेहनत का मोटा काम करनेवालों की बड़ी जरूरत होती है। हल जोतना, खेत सींचना, दौरी चलाना, कुएँ खोदना, मेड़ बाँधना, भीत उठाना इत्यादि मोटे-मोटे काम हैं जिनके लिए बहुत होशियारी तो नहीं चाहिए पर हाथ-पाँव अच्छे पोढ़े होने चाहिएँ। गाय-भैंस चराना भी मोटा काम है, जो लड़के-लड़कियों से लिया जा सकता है। नन्दजी बड़े धनी थे, परन्तु कृष्ण-बलराम भी गाय चराने जाया करते थे। ये सब मोटे काम हर किसान को बिना झिझक के, बिना संकोच के, करने ही चाहिएँ। बिना इन मेहनत के कामों के किये हाथ-पाँव मजबूत नहीं रह सकते और आदमी की देह सुडौल नहीं बन सकती। परन्तु रात-दिन कड़ी मेहनत का काम कोई नहीं कर सकता। और जो यह कहा जाय कि थोड़ी देर कड़ी मेहनत का काम करके आदमी एकदम सुस्त पड़ जाय तो भी ठीक नहीं है। क्योंकि जिन अंगों से मेहनत का काम लिया गया है उनको आराम करने के लिए समय मिलना चाहिए, उनकी थकान मिटनी चाहिए। पर जो अंग काम करते नहीं रहे हैं उन अंगों को उसी समय काम देने की जरूरत है जब कड़ी मेहनत करनेवाले अंग आराम करते हों। यह परमेश्वर का नियम है कि कोई क्षण भी कोई बिना कुछ काम किये नहीं रह सकता। सोता हुआ आदमी भी अपनी

देह के भीतर अन्न पचाने का, रसों के बनाने का, मलों के निकालने का और साँस को बाहर से भीतर और भीतर से बाहर लेजाने का और सारे शरीर में लोहू की धारा बहाने का काम करता ही रहता है। इसी-लिए दिनभर की कड़ी मेहनत के बाद आदमी को ऐसा काम मिलना चाहिए जिससे उसका जी बहले और जो वह बिना मेहनत के कर सके। इस तरह का काम मनबहलाव का काम कहलावेगा। इसमें खेलकूद, गाना-बजाना, कथा-पुराण, पढ़ना-लिखना, भाँति-भाँति की सुन्दर चीज़ें बनाना, खिलौने आदि बनाना, बच्चों को खिलाना इत्यादि बहुत-से काम मनबहलाव के हैं। हमारे देश के किसानों के लिए तमाखू, गाँजा, भंग, ताड़ी, शराब आदि से अपने मन, तन और धन तीनों को बिगाड़ने वाला काम मनबहलाव नहीं होसकता। मोटी तरह की मेहनत और मनबहलाव ये दोनों तरह के काम बहुत ज़रूरी हैं। इनके बिना सम्पत्ति इकट्ठी नहीं होसकती, अपने जीवन की रक्षा नहीं होसकती, बच्चों की शिक्षा नहीं होसकती। सारी देह जैसे पाँवों के बलपर खड़ी होती है उसी तरह शिक्षा, रक्षा और जीविका ये तीनों काम इस चौथे काम के बलपर खड़े होते हैं।

हमारे देश के बहुत पुराने लोगों ने इन चारों कामों को बहुत अच्छी तरह समझा-बूझा था। गाँव की या बस्ती की क्या-क्या ज़रूरतें हो सकती हैं, इन बातों को लाखों बरस पहले सोच-विचारकर उन्होंने प्रजा का संगठन किया था। यह बात सच है कि हर आदमी को चारों काम करने ही पड़ते हैं। परन्तु मनुष्य-समाज के भीतर इन चारों कामों की बँटाई इस तरह पर होजाय कि कुछ लोग एक काम में होशियार हों और कुछ लोग दूसरे काम में चतुर होजायँ तो काम बड़े सुभीते से होसकता है। हर आदमी अपने-अपने काम में पक्का पौढ़ा और होशि-

यार होजाय तो सारा समाज बड़ा चतुर और बहुत ऊँचा उठा हुआ होजाता है। इसीलिए पुराने युगों के लोगों ने कामों को चार प्रकारों में बाँटा। शिक्षा, रक्षा, सम्पत्ति और सेवा। शिक्षा का काम विशेष रूप से जिन लोगों को सौंपा गया वे थोड़े-से लोग थे जो बड़े ही चतुर, बड़े ही बुद्धिमान, बहुत अच्छी चालचलनवाले, बहुत सहनेवाले, बड़ी समझ-बूझवाले और भगवान को माननेवाले, किसीको दुःख न पहुँचानेवाले, सबपर दया करनेवाले और धर्म-अधर्म को समझनेवाले सच्चे लोग थे। इन लोगों का नाम ऋषि और ब्राह्मण पड़ा। इन्हींको शिक्षा का भार सौंपा गया।

समाज में कुछ लोग पुराने युग में ऐसे भी थे जो हाथ-पांव के ही बली न थे बल्कि उनके जी में बड़ी हिम्मत थी, बड़ा हियाव था, साहस था, ताक़त थी। वे भी दयावान थे, अच्छी चालचलनवाले थे। धर्म और अधर्म को खूब समझते थे। किसीको दुःख नहीं पहुँचाते थे, पर दूसरे को दुःखी देखकर उसका दुःख दूर करते थे। कोई किसीको सताता हो तो उसे अपनी बुद्धि से, बल से और अच्छी चालों से बचा लेते थे। जो दुर्बल थे, रोगी थे, उनकी और बच्चों व स्त्रियों की रक्षा करने में हर घड़ी कमर कसे रहते थे। समय आजाने पर वे बड़े-बड़े करतब कर दिखाते थे। हथियार के काम में ऐसे कुशल थे कि आये दिन जब दो दलों में लड़ाई होती थी तब वे हथियार चलाकर रक्षा करते थे। ऐसे लोगों को समाज ने रक्षा के काम के लिए चुना। ये लोग भी गिने-चुने बहुत थोड़े थे, और ज़रूरत भी थोड़ों की ही थी। यही लोग क्षत्रिय कहलाये।

रक्षा करनेवाले का गुज़र होसकता था। इसीलिए सम्पत्ति उपजाने और जुटाने का काम थोड़ा-बहुत ब्राह्मण और क्षत्रिय को भी करना ज़रूरी हुआ। पर सारे समाज के लिए खाना-कपड़ा ज़रूरी था और जो लोग शिक्षा और रक्षा के काम से खाली थे उनकी गिनती बहुत भारी थी। यह गिनती इतनी बड़ी थी कि इसके सामने शिक्षा और रक्षा के कामवालों की कोई गिनती ही न थी। इन सबका काम, खाना-कपड़ा और जीवन की आवश्यकता की सब चीज़ें उपजाने का था। ये सब लोग खेती करते थे, गऊ पालते थे और जो सम्पत्ति उपजाते थे उसकी आपस में अदलाबदली भी करते थे। इन सबका नाम उन पुराने लोगों ने विश या वैश्य रक्खा।

गऊ पालने का और खेती का और माल के इधर-उधर पहुँचाने का काम बिना मजूरों के चल नहीं सकता था और समाज में हाथ-पैर के मज़बूत ऐसे हट्टे-कट्टे लोग भी थे जिनके पास बुद्धि की पूँजी कम थी और बल होते हुए भी इतना हियाव—इतना कलेजा—न रखते थे कि दूसरों को बचाने के लिए अपनी जान जोखिम में डाल सकें। और न उनके हाथ की अंगुलियाँ महीन काम करने में मँजी हुई थीं कि वे अच्छे-अच्छे प्रकार की वस्तुयें तैयार कर सकें। ऐसे बलवान लोग न तो ब्राह्मण का शिक्षा देने का काम कर सकते थे, न क्षत्रिय का रक्षा करने का काम कर सकते थे, और न वैश्य का खेती, गोपालन और बनियाई या दस्तकारी का महीन काम कर सकते थे। ये मोटे काम के सिवाय और कुछ न कर सकते थे। इसीलिए इनको मेहनत-मजूरी का मोटा काम सौंपा गया। शिक्षा के काम में जो कोई मेहनत की बात आती, उसमें ये ब्राह्मण की सहायता करते थे; रक्षा के काम में जहाँ बोझ ढोने आदि मेहनत का काम आता या चौकी-पहरा देने

का काम होता वहाँ क्षत्रिय की मदद करते थे; खेती या गोपालन के काम में या व्यापार में जहाँ हलवाहे, मजूर, गाड़ीवान, ग्वाले आदि का काम पड़ता वहाँ ये वैश्यों या किसानों की सहायता करते थे। इस तरह ये लोग शिक्षा, रक्षा और जीविका तीनों कामों में ऐसे सहायक थे कि इनके विना कोई काम पूरा नहीं पड़ सकता था। ये समाज के पाँव थे। सिर में लाख बुद्धि हो, आँख, कान, मुख आदि चाहे कितनी ही होशियारी से काम करें, पर पाँवों के विना ज़रूरत की जगह पर सिर कभी पहुँच नहीं सकता। दूसरे कोई चीज धुँधली देख पड़ती, साफ़ समझ में नहीं आती, ठीक-ठीक जानने के लिए विना पास गये काम नहीं चल सकता और जाना काम पाँवों का है। जंगल में आग लग गई है, लपटें बढ़ी चली आती हैं, आँखें देख रही हैं कि जान जोखिम में है, परन्तु विना पाँवों से भागे जान बच नहीं सकती। भोजन की सामग्री तैयार है, थाली परसी हुई है, परन्तु टाँगें भोजन तक पहुँचावेंगी तब हाथ भोजन को पेट तक पहुँचाने में सहारा दे सकेगा। टाँगों का काम उस सेवा का है जिसके विना किसी अंग का काम नहीं चल सकता। सेवा के इस पवित्र काम को जिन थोड़े-से बलवानों को सौंपा गया वे सेवक या शूद्र कहलाये। समाज के शरीर में शिक्षा देनेवाला सिर हुआ, रक्षा करनेवाला हाथ हुआ, सम्पत्ति उपजानेवाला धड़ हुआ, और सेवक टाँगें हुईं। समाज के इन्हीं चारों अंगों को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ठहराया गया।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्णों का विभाग या बँटवारा प्रजापति ने ही किया[१] और समाज में हर आदमी का कर्त्तव्य ठहरा दिया गया। इसीलिए संसार की हर बस्ती में चारों तरह के आदमी रहते हैं और एक-दूसरे की सहायता करते हैं।

हमारे गाँवों में इस समय समाज में ऐसा गड़बड़ होगया है कि जिस तरह पुराने युगों में संगठन हुआ था वह बात अब बाक़ी नहीं रही। ब्राह्मण और क्षत्रिय अब अपना-अपना काम कर नहीं पाते। वे नाम-नाम के ब्राह्मण और क्षत्रिय रह गये हैं। असल में सभी किसान हैं। कपड़े की कारीगरी उठजाने से खेती के ऊपर बेरोज़गार आदमियों का भी बोझ पड़ गया है। जोतों के छोटे-छोटे टुकड़े होगये हैं। बढ़ा हुआ लगान सिक्कों में देना पड़ता है। इसलिए पैसे की ज़बरदस्त माया में किसान फँस गया है। देश में दरिद्रता बढ़ जाने के कारण लाखों मजूर और किसान अपना घर-बार छोड़कर गिरमिट की गुलामी करने बाहर के देशों में चले गये हैं। समाज अस्त-व्यस्त होगया है। इसे फिर से ठीक करना है। इसी बात पर हम आगे चलकर विचार करेंगे।

१. चातुर्वर्ण मया सृष्टम् गुण कर्म विभागश।
तस्य कर्तार मपियाम् विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ।। (भ० गी०)

: १५ :

गाँव का धर्म

गांव के समाज में आज भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्ण पाये जाते हैं। हमारे सात लाख गांवों में सभी गांव एक तरह के नहीं हैं। जो गांव बड़े-बड़े हैं उनमें से बहुतों में चारों वर्ण के लोग रहते हैं। परन्तु बहुत-से ऐसे गांव भी हैं कि किसीमें ब्राह्मणों की ही बस्ती है और किसीमें केवल क्षत्रिय ही रहते हैं। किसी गांव में चमार-ही-चमार बसते हैं, किसीमें कूर्मी-ही-कूर्मी रहते हैं। इस तरह पर किसी-किसी गांव में एक ही तरह के आदमी रहते हैं। शहर के पास के गांवों में बहुत करके कारीगर लोग रहते हैं। कहीं-कहीं किसी गांव में जुलाहों के सिवाय और कोई आबादी नहीं है। कोई-कोई गांव केवल कुम्हारों का है। इसका क्या मतलब है? किसी गांव में अगर केवल ब्राह्मण रहते हैं तो वे सब-के-सब पुरोहिताई का ही काम नहीं करते। जिस गांव में केवल जुलाहे ही रहते हैं उस गांव में अकेले कपड़े बुनने का रोजगार नहीं होता। जिस गांव में केवल कुम्हार रहते हैं, उसमें मिट्टी के बरतन जरूर बनते हैं, परन्तु तीनों दिन यही काम नहीं होता। हर गांव में उस गांव के रहनेवाले सभी कुछ-न-कुछ और काम करते हैं। जिस गांव में केवल अहीर रहते हैं वहां वे गोपालन जरूर करते हैं, पर अकेले गोपालन से उनका काम नहीं चलता। जिस गांव में बनिये-ही-बनिये रहते हैं वहांके लोग केवल दुकानदारी ही नहीं करते। वे लोग अलग रोजगार करते जरूर हैं, पर एक रोजगार ऐसा है जिसमें हर गांववाले

का सम्बन्ध है। वह रोज़गार है खेती। गाँव में रहनेवाला बनिया या जुलाहा या कुम्हार या ब्राह्मण कोई ऐसा नहीं जो खेती में अपना नाता न जोड़े। खेती ऐसा रोज़गार है जिसके सहारे सबका पालन-पोषण होता है। इसीलिए गाँव में रहकर हर आदमी का यह कर्त्तव्य है कि भरसक खेती का उपकार करने का जतन करे। जो मजूरी कर सकता है या हलवाहे का काम कर सकता है, या जो रक्षा कर सकता है या ब्राह्मण या क्षत्रिय का काम कर सकता है, उसे चाहिए कि खेती की रक्षा, खेती की शिक्षा और खेती की सेवा में भरसक अपना कौशल लगादे। जो ग्वाला दूध-दही-घी तैयार करता है और किसान को अच्छी जोड़ी भेंट कर सकता है वह गाय-बैल के लिए चारा खेतों से ही लेता है। किसान के घर भी अन्न कट जाने पर भुस और पुआल और किस काम आसकता है ? इस तरह गाय का पालना खेती ही का बढ़ा हुआ काम है। सूत-कपास के बिना कोरियों का गाँव बेकार रहेगा। इसलिए गाँवों में जो कोरी और जुलाहे बसे हुए हैं, वे खेती के ही बढ़े हुए कामों को करते हैं। खँडसालें जहां कि खाँड, चीनी और मिसरी तैयार होती है—यहाँ-तक कि शहरों में हलवाइयों की दुकानें भी—खेती के ही बढ़े हुए काम हैं। आजकल तो मैंचेस्टर की दानवाकार मिलें भी खेती के ही बढ़े हुए काम समझे जाते, अगर मैंचेस्टरवाले अपने आस-पास कपास उप-जाते। सच पूछो तो भारत की सारी सभ्यता लगभग खेती का ही बढ़ा हुआ काम है। इसीलिए गाँव का मुख्य धर्म और मुख्य कर्म खेती ही है। ब्राह्मण माँ-बाप से जन्मा हुआ मनुष्य अपनेको ब्राह्मण कहता है सही, परन्तु जहाँतक उसका काम शिक्षा और पुरोहिती का है वहींतक उसका धर्म ब्राह्मण का है; लेकिन ब्राह्मण के काम से उसका निर्वाह नहीं हो सकता। अपने गुज़ारे के लिए खेती करना उसके लिए बहुत जरूरी है।

क्षत्रिय गाँव का जमींदार भले ही हो, या राजा ही सही, मगर अपने नौकरों से भी काम लेकर खेती करता है तो भी उसका काम किसान का भी है। बेचारा मजूर, जिसके पास एक धूर भी धरती नहीं है, अपने मालिक के लिए खेत को जोतता, बोता, निराता और सींचता है। वह भी उसी खेती से अन्न के रूप में मजूरी पाता है। खेती के सहारे चारों वर्ण जीते हैं। इसीलिए सभी रोज़गारियों का समान-धर्म खेती है, और इसीलिए गाँवभर का मुख्य धर्म खेती है।

हमारे देश का आदमी चाहे जन्म से ब्राह्मण ही क्यों न हो, अपने ब्राह्मण-धर्म के सिवाय उसे क्षत्रिय का धर्म रक्षा, वैश्य का धर्म धन-संग्रह और शूद्र का धर्म सेवा, सब कुछ अपने परिवार के लिए करना पड़ता है। जैसे मनुष्य के शरीर में सिर भी है, हाथ भी हैं, धड़ भी है और पाँव भी हैं, बिना इन सब अंगों के कोई मनुष्य पूरा नहीं हो सकता, इसी तरह हर आदमी को, चाहे वह किसी जाति में क्यों न जन्मा हो, अपने दिमाग़, हाथों, धड़ और टाँगों आदि सब अंगों से नित्य काम लेना पड़ता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्णों का काम हर आदमी को करना पड़ता है। सिर बड़ा ज़रूरी हिस्सा है, यह अंग कट जाय तो मनुष्य जीता नहीं रह सकता। मनुष्य के जीते रहने के लिए सिर और धड़ का नाता निरन्तर बना रहना चाहिए। हाथ, पाँव, बाँहें और टाँगें कट जायँ तो महासंकट में जीवन की घड़ियाँ काटते हुए भी कुछ समय तक आदमी जी सकता है, परन्तु सिर और धड़ अलग होने पर दो में से एक भी क्षणभर भी जीते नहीं रह सकते। सभी अंग मिल-कर जब जतन करते हैं तब मुख के द्वारा धड़ के अंदर भोजन पहुँचता है। धड़ के अंदर ही भोजन पचता है, रस और लोहू बनता है और सारे शरीर में बंटता है। इसीलिए सिर, बाँहें, टाँगें धड़ की रक्षा के लिए

सारे जतन करती हैं; सबका काम धड़ के लिए ही होता है। समाज का धड़ किसान है। किसान के लिए ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र सभी हैं। किसान-धर्म या वैश्य-धर्म गाँवों का मुख्य धर्म है। इसलिए गाँवों में रहनेवाले सभी गृहस्थों का समान-धर्म किसानी या खेती है, चाहें वे ब्राह्मण हों, चाहे क्षत्रिय हों, या शूद्र हों। हमने जान-बूझकर गृहस्थ शब्द कहा है। देहातों में किसानी को गिरस्ती भी कहते हैं और गृहस्थों के सहारे संसार के ब्रह्मचारी, तपस्वी और संन्यासी सभी जीते हैं। वर्णों में वैश्य और आश्रमों में गृहस्थ मनुष्य-मात्र के लिए पालन-पोषण के जिम्मेदार हैं। गाँव के रहनेवाले भी गृहस्थ ही हैं। साधु-संन्यासी घूमते हैं, तपस्वी वन में तपस्या करते हैं, ब्रह्मचारी विद्या पढ़ने के लिए जहाँ सुभीता होता है वहाँ रहते हैं। गाँव के रहनेवाले गृहस्थ ही हैं और गृहस्थों का मुख्य काम खेती है। हिन्दू-समाज के धड़ यही गृहस्थ, यही किसान, यही खेतिहर हैं। ये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी जाति के हैं, परन्तु सबका मुख्य धर्म है वैश्य-धर्म।

इसलिए हर ब्राह्मण को उचित है कि अपने ब्राह्मण-धर्म का भी पालन करे, मगर खेती के काम में हर तरह मदद दे। आप स्वयं सब कुछ करे और दूसरों को करने के लिए प्रेरणा करे। जब वह हर काम में अगुआ होगा तो उसके गाँव के सभी लोग उसकी देखादेखी अगुआ हो-जायँगे। खेती का कोई काम अपवित्र नहीं है। अपने लिए अन्न उपजाने में हल जोतने से लेकर चक्की पीसना तक अपने भोजन के लिए, और लोढ़ाई-ओटाई से लेकर कपड़े बुनने और रँगने-छापने तक आच्छादन के लिए, सारे पवित्र काम हैं। आजकल के मूर्ख लोग ऊँची जाति का गर्व करके कह बैठते हैं कि हल की मुठिया थामना हमारे लिए पाप है, पर वही अपने सिर पर खाद या मैला उठाकर अपने खेतों में फेंकते हैं और

इसमें कोई हर्ज नहीं समझते। हल जोतने में कोई पाप नहीं है। इससे किसीकी जाति बिगड़ नहीं जाती। परन्तु हल की मुठिया अपने हाथ से थामकर न जोतने में खेती खराब होजाती है, समय पर खेत में अन्न नहीं उपजता। हलवाहे की खुशामदें करनी पड़ती हैं और जहाँ देर करके हलवाहा जोतता है वहाँ फ़सल को नुकसान पहुँचता है। खेत जोतकर अन्न पैदा करना वैश्य का धर्म है और अत्यन्त पवित्र काम है। राजा पृथु और राजा जनक ने, जो बड़े भारी राजर्षि थे और जिनके पास बड़े-बड़े विद्वान ऋषि सीखने के लिए जाते थे, अपने हाथ से हल जोतकर इस काम पर पवित्रता की मुहर लगा दी है। हम अगले अध्यायों में वैश्य-धर्म या किसान-धर्म के सम्बन्ध में ज़रूरी बातें कहेंगे। हम यह बतावेंगे कि किसान की हैसियत से गाँव में रहनेवाले हर गृहस्थ का क्या कर्तव्य है? यहाँ तो हम इतना ही कहना चाहते हैं कि किसान का एक भी काम अपवित्र या नीचा नहीं है, जिसे किसी ब्राह्मण या क्षत्रिय जाति वाले को करने में ज़रा भी हर्ज हो।

: १६ :

इष्ट और अनिष्ट खेती

धरती से सभी तरह की चीज़ें उपजती हैं। अन्न, वस्त्र और ओषधियाँ ये तीन तरह की चीज़ें आदमी के काम में आती हैं। अन्न आदमी और दूसरे प्राणी खाते हैं, कपड़े आदमी पहनता है, और औषधियाँ जब कोई प्राणी बीमार होता है तब उसे अच्छा करने के लिए बुद्धिमान लोग काम में लाते हैं। अन्न में वे सब चीज़ें हैं जो प्राणी के पालन-पोषण के लिए ज़रूरी हैं। दाने आदमी खाता है; डंठल और भूसा पशु खाते हैं। इसीलिए अनाज की खेती आदमी और पशु सबके लिए ज़रूरी है। अन्न के पकने से पहले बहुत-से छोटे प्राणी उसे खाना शुरू कर देते हैं। आदमी उनके लिए खेती नहीं करता; इसलिए खेती की रक्षा इन छोटे प्राणियों से भी करनी पड़ती है। इनसे बड़े पशु-पक्षी आदि भी अन्न की तैयारी के पहले ही खेत पर चढ़ाई कर देते हैं। इनसे भी खेती की रक्षा इसलिए की जाती है कि अन्न से मनुष्य की रक्षा होती है। ऐसी खेती आदमी के लिए ज़रूरी है जिससे उसका पालन-पोषण और रक्षण हो। धतूरा, कुचला, सींगिया आदि जहरों की खेती इसीलिए नहीं की जाती कि उनसे मनुष्य को लाभ के बदले हानि होती है। ये सब चीज़ें जंगलों में होती हैं, वहींसे संग्रह की जाती हैं और दवाई बनानेवाले लोग इन्हें मोल लेते हैं। ये सब चीज़ें लोगों के काम की नहीं हैं। खेती करने-वाले उन्हीं चीज़ों की खेती करते हैं जिनकी मनुष्य को ज्यादा ज़रूरत पड़ा करती है। जिनके नाम हमने लिये हैं वे बड़े तेज़ विष हैं।

मनुष्य के दुर्भाग्य से बहुत-से विष मनुष्य-समाज में ऐसे फैल गये हैं कि उन विषों की बड़े ज़ोरों से खेती होने लगी हैं, और विषों के खाने की आदमियों में ऐसी कुटेव पड़ गई है कि भारतवर्ष इन ज़हरों की खेती के लिए संसार में प्रसिद्ध होगया है। अफीम की खेती का तो संसार के लिए यह ठेकेदार-सा है। यहाँ किसान सरकार से दादनी लेकर खुले मैदान अफ़ीम उपजाते हैं और रुपये के लोभ से कपास और अनाज की खेती छोड़ देते हैं। इस अफ़ीम ने चीन देश को बरबाद कर डाला और भारतवर्ष की एक बहुत बड़ी आबादी इसी अफ़ीम के ज़हरों का शिकार है। अफ़ीम पाँच-छः प्रकार के उग्र विषों से मिला-जुला एक पदार्थ है, जो पोस्त की डोढ़ी के छिलकों से रस के रूप में निकलता है। इसकी डोढ़ी के भीतर सफेद-सफेद बारीक दाने निकलते हैं, जिन्हें पोस्त का दाना और खसखस भी कहते हैं। ये दाने खाने में मधुर और ताक़त बढ़ानेवाली चीज़ हैं। इनमें नशे या विष का कोई दोष नहीं है। परन्तु ये बहुत बड़े परिमाण में नहीं होते और भोजन के पदार्थों की तरह काम में नहीं आते। मसालों की तरह बरते जाते हैं। अफ़ीम का चलन जबसे भारत में हुआ तबसे भारतवर्ष की दशा अच्छी नहीं रही है। यहाँ लोग बच्चों को आमतौर पर अफ़ीम खिलाते हैं। थकावट और जाड़े को भगाने के लिए और किसी बीमारी को रोकने या भगाने के लिए भी लोग अफीम खाते हैं। और साधारणतया नशे के लिए भी अफीम का इस्तैमाल बहुत ज़ोरों से होता है। लोग इसके फल को बहुत कम सोचते हैं। अफ़ीम का सेवन करनेवाले के शरीर में जो रोग होते हैं वे सदा के लिए अपनी जगह बना लेते हैं, उनको दूर करने के लिए जो दवायें दी जाती हैं उनका अफ़ीम के होते हुए कोई असर नहीं होता। वे अफ़ीम छोड़ना चाहें तो छूट नहीं सकती। अफ़ीम के नशे के उतर जाने पर उसकी चाट की

तकलीफ़ इतनी ज्यादा होती है कि अफ़ीमची को अगर अफ़ीम न मिले तो वह मर जाय। परन्तु यह भ्रम-ही-भ्रम है। जेल में सब क़ैदियों को सब चीजें आसानी से नहीं मिल सकतीं। अफ़ीमची जेल जाते हैं और मुद्दत तक अफ़ीम नहीं पाते, तब भी वे जेल मे बच आते हैं। परन्तु अफ़ीम का चसका उन्हें फिर भी नहीं छोड़ता। यह वह विष है जो शरीर पर धीरे-धीरे असर करता है और अन्त में मरने के दिनों से बरसों पहले मार डालता है।

पोस्त की तरह तम्बाकू की खेती भी हमारे देश में बहुत होती है। तम्बाकू के पीनेवाले तो अफ़ीमचियों से गिनती में अत्यंत अधिक बढ़े हुए हैं। जिन लोगों में जाति के नियम के कारण तमाखू नहीं पी जाती, उन लोगों में भी चोरी-छिपे लोग तमाखू पीते हैं। फिर उनके क्या कहने हैं जिनके यहाँ तमाखू की कोई मनाही नहीं है! उनके यहाँ तो बालक जवान और बूढ़े सभी तमाखू पीते हैं। बहुत जगह तो औरतें भी तमाखू पीती हैं। सिगरेट और बीड़ी ने तो मानों देश पर विजय पा रक्खी है। बड़ों की देखादेखी नन्हे-नन्हे बच्चे तक सिगरेट और बीड़ी पीते हैं। हमारा अनुमान है कि बत्तीस करोड़ आदमियों में से कम-से-कम दस करोड़ आदमी ज़रूर तमाखू पीते हैं। अगर हम मानलें कि आठ करोड़ आदमी धेले की तमाखू रोज़ पीते हैं तो भारतवर्ष में सवा छः लाख रुपये नित्य फूँक दिये जाते हैं और ये सवा छः लाख रुपये पीने-वालों को भाँति-भाँति के रोगों में फँसाते हैं और उनकी उमर कम कर देते हैं। "आध सेर तमाखू में इतना विष होता है कि जो तीन सौ आदमियों के प्राण ले सकता है।" "एक मामूली सिगरेट में की तम्बाकू से दो आदमियों की जान ली जा सकती है। तीस ग्रेन की तम्बाकू की चाय एक आदमी के दर्द को कम करने के लिए दी गई और वह फ़ौरन

मर गया।"[1] सूंघनी सूंघने से, तमाखू खाने से और तमाखू पीने से, सब तरह से, आदमी के शरीर में जहर का प्रवेश होता है। तमाखू किसी तरह पर सेवन करो, उससे दिमाग़ सूख जाता है, खून पतला होजाता है, फेफड़े कमज़ोर हो जाते हैं और हृदय की क्रिया सुस्त पड़ जाती है। खाँसी और कब्ज़ शरीर के भीतर अपना घर कर लेते हैं और अन्त में दमा, क्षयरोग, हृद्‌रोग, नेत्ररोग, नपुंसकता और पागलपन तक तम्बाकू के सेवन से होजाता है। परन्तु आज यही सर्वनाश करनेवाली चीज़ गाँव की चौपाल में स्वागत-सत्कार की चीज़ बन गई है। संसार में तमाखू ने बहुत भारी विजय कर रक्खी है। कोई देश छूटा नहीं है। परन्तु हमें तो अपने देश से मतलब है। हमें अपने गाँवों की चिन्ता है, जहाँ अफ़ीम और तमाखू की खेती होती है। भाँग-गाँजे की खेती भी होती है, पर वह इतनी ज्यादा नहीं होती जितनी कि तमाखू और अफ़ीम की होती है। इनकी खेती ने हमारे देश में ज़हर का प्रचार कर रक्खा है और अन्न और कपास की खेती को रोक रक्खा है। लाखों रुपये नित्य ऐसे काम में फुंक जाते हैं जिनसे भले-चंगे आदमी रोगी हो जाते हैं और हट्टे-कट्टे जवान मौत के अधिक पास चले जाते हैं। इनकी खेती करना महापातक है। किसानों को चाहिए कि अपनेको इन नशों से दूर रक्खें और देश को इन नशों से बचावें। सब किसान मिलकर एका करलें कि हम शैतान के भुलावे में न आवेंगे। हम पैसों के लोभ के लिए अपनी और अपने भाइयों की गाढ़ी कमाई के रुपयों का खून न करेंगे। अपनी और अपने भाइयों की जान इतनी सस्ती न बेचेंगे और नशा पिलाकर जो लोग भारत को लूट रहे हैं उनकी लूट में हम कभी मदद न देंगे।

१. 'शैतान की लकड़ी' से। सस्ता-साहित्य-मण्डल द्वारा प्रकाशित।

अनाज की खेती इष्ट खेती है और इन विषों की खेती अनिष्ट खेती है। किसान का धर्म रक्षा है, नाश नहीं। सच्चा किसान ऐसा रोज़गार करेगा जिससे उसको और उसके भाइयों को लाभ हो। वह रोजगार जान-बूझकर न करेगा जिससे उसका और उसके देश का सर्वनाश होजाय। अतः इस अनिष्ट खेती को छोड़कर हमें इष्ट खेती में लगना चाहिए। हमने कपास की खेती बिलकुल छोड़दी है। उसका फिर से उद्धार करना चाहिए। हमें अच्छे प्रकार की कपास के बीज लेकर मन लगाकर उसकी खेती करनी चाहिए। कपास की खेती इष्ट खेती है। इससे रोग फैलने का डर नहीं। किसीकी आयु इससे घटनेवाली नहीं है। हम इससे पैसे भी पा सकते हैं और अपने देश को कपड़े भी पहना सकते हैं। कपास की उत्तम प्रकार की खेती तो करने ही से आवेगी, परन्तु उसके लिए थोड़ा-बहुत उपाय तो हम यहाँ बतावेंगे।

: १७ :

किसान का कल्पवृक्ष कपास

१. कपड़े से अन्न की रक्षा

संसार में जितने प्राणी हैं उन सबके जीते रहने के लिए भोजन और पानी जरूर चाहिए। घास से लेकर बड़े-बड़े पेड़ तक, बहुत नन्हे-नन्हे कीड़े-मकोड़ों से लेकर हाथी तक, और उड़नेवाले पतंगों से लेकर बड़े-से-बड़े पक्षी तक, और मनुष्य को भी—चाहे वह जंगली, गँवार और भिखमंगा हो और चाहे शहर का पण्डित या राजा हो—अन्न और पानी जरूर चाहिए। जितने प्राणियों के नाम हमने लिये हैं उन सबमें आदमी ही ऐसा प्राणी है जिसको जाड़े में शीत से बचने और अपनी लाज ढकने तथा इज्जत-आबरू से रहने के लिए कपड़ा भी चाहिए। पशु-पक्षी में और आदमी में यह बड़ा भारी भेद है कि आदमी को कपड़े भी चाहिएँ, पशु-पक्षी को नहीं।

आदमी धरती से अन्न उपजाता है और किसी-न-किसी तरह पेट भरने की फ़िक्र कर लेता है। परन्तु उसको कपड़ा भी चाहिए, यह चीज़ उसे बनी-बनाई धरती से नहीं मिल सकती। जंगल में रहनेवाले आदमी मारे या मरे पशु की खाल ओढ़कर काम चला सकते हैं। गाँव के आदमी भेड़-बकरी का ऊन कतरकर कम्बल आदि बना सकते हैं। पर यह इतने सुभीते की चीज़ नहीं है। सबसे ज्यादा सुभीता इसीमें है कि हम जैसे धरती से अन्न पैदा करते हैं वैसे ही कपड़ा भी उपजावें।

हमारे देश में लगभग तीन पीढ़ी पहले अन्न की तरह कपड़ा भी

उपजाया जाता था। और किसान लोग रुई, सूत और कपड़ा तैयार करके आप पहनते और जग को पहनाते थे और सुखी रहते थे। खाने और कपड़े से वे वेफिक्र रहते थे। अन्न उपजाने के काम में जितने दिन लगते थे उससे बचे दिनों में वे कपड़े की तैयारी का काम करते थे। सूत कातते थे और खद्दर तैयार करते थे। किसी घड़ी वेकार नहीं रहना पड़ता था। बच्चे, जवान, बूढ़े, नर-नारी सभी सूत के काम में लग सकते थे, सभी काम-काजी थे, सभी महनती थे; इसीसे बहुत कम रोगी होते थे, बहुत कम भूखों मरते थे, लोग दुखी-दरिद्री नहीं थे। सूत का यह पवित्र काम हर किसान करता था। जबसे लक्ष्मी-माई का यह काम हमारे हाथों से निकल गया और विदेशियों के हाथ लग गया, हमारे देश में दरिद्रता ने घर कर लिया और लोग आलसी हो-गये, क्योंकि उनके पास काम न था। वेकार बैठे रहा नहीं जाता तब आपस में झगड़े होते हैं, मुक़दमेबाज़ी होती है। हुक्का, तमाखू, अफ़ीम, शराब, भंगादि की बुरी लत लग जाती है। वेकार आदमी भूखों तो मरता ही है, लेकिन उसकी मेहनत-मजूरी की बान भी छूट जाती है। भूख से सताये हुए आदमी की ताक़त घट जाती है। दुबले शरीर के ऊपर रोग सहज में चढ़ाई कर लेता है और आदमी का शिकार कर लेजाता है।

यह सब हमारे देश में हमारी आँखों के सामने नित्य होरहा है। यह सब क्यों होरहा है? इसीलिए कि हमारे देश में विदेशी रोजगा-रियों ने आकर हमारा कपड़े का रोज़गार छीन लिया। हमारे यहाँ के अच्छे बीज लेजाकर विदेशों में ख़ूब फैलाये और कपड़े का रोज़गार ख़ूब करने लगे। इतने पर ही वे सन्तुष्ट नहीं रहे। वे पहले हमसे कपड़ा ख़रीदकर लेजाते थे, अब वे अपना कपड़ा ख़ुद बनाने लगे थे। इससे हमारा उतना बिगाड़ न था। पर उन्होंने एक दूसरी बात की। कल-

बल, कर-बल और छल-बल से उन्होंने हमको गाहक बना लिया। अपना तन ढकने के लिए, अपनी लाज छिपाने के लिए, शीत से बचाने के लिए, और इज्जत-आबरू रखने के लिए हम उन्हींके मोहताज रहने लगे और उन्हें अपने अनाज देकर उनका दिया कपड़ा पहननें लगे। यह किस तरह ? समझ लीजिए कि आप अनाज बेचकर पैसे लेते हैं। उन्हीं पैसों से विदेशी कपड़े लेते हैं। वही अनाज विदेश जाता है। कपड़े उसी नाज के बदले आते हैं। इस तरह आप विदेश को अनाज और कपास भेजकर कपड़े मँगवाते हैं और देश अन्न बिना भूखों मरता है। इस तरह हमारा अन्न भी गया और कपड़ा भी गया, और हम दरिद्र भी होगये। आलस, रोग, भूख के शिकार होगये। हमारी अक़्ल मारी गई।

गई लक्ष्मी बटोरने का क्या कोई उपाय भी है ? गया रोज़गार फिर लौट आवे, इसके लिए हम क्या करें ? यह हर किसान को पूछना चाहिए। और सोच-समझकर कुछ-न-कुछ करना चाहिए, नहीं तो उजड़ते-उजड़ते हम भारत से उजड़ जावेंगे और हमारी सन्तानें दूर के टापुओं में और विदेशों में गिरमिट की गुलामी करते-करते अपनी मनुष्यता भी खो बैठेंगी और विदेशों को गुलामों की बस्ती बना देंगी।

किसान भाइयों को ऊपर के सवालों का जवाब हम बताते हैं। ध्यान से सुनिए, मन लगाकर विचार कीजिए और हाथ-पाँव से काम लेकर उस उपाय को व्यवहार में लाइए।

२. सम्हलने के उपाय

पहली बात तो यह है कि कोई विदेशी आकर डंडे के बल से हमको विदेशी कपड़े लेने के लिए लाचार नहीं करता। हम तो अपनी ख़ुशी से ख़रीदते हैं। भूल हमारी है। हम न ख़रीदें तो कोई हमें लाचार नहीं कर सकता। इसलिए पहली बात यह है कि किसान का सच्चा यह

व्रत लेले कि हम विदेशी कपड़ा हाथ से छुवेंगे नहीं, तन से लगायेंगे नहीं, क्योंकि इसी महापाप ने हमारा रोज़गार छीना और हमको दुखी और दरिद्र बनाया, हमारी इज्ज़त-आवरू मिट्टी में मिलादी और हमारे भाइयों को ग़ुलामी करने के लिए फुसलाकर विदेशों में लेगया। भगवान के सामने उनको गवाह करके सच्ची प्रतिज्ञा लेलो, वचन देदो कि हम विदेशी कपड़ा नहीं खरीदेंगे। इस तरह हम विदेशी रोज़-गारियों के गाहक बनने से इनकार कर देंगे। हम नहीं लेंगे तो कोई हमारे गले नहीं लगा सकता। यह तो हमारे पसन्द की बात है।

यह पहली और बहुत बड़ी बात हुई। चालें चलके हमको गाहक बना लिया था, अब हम गाहक नहीं रहेंगे। विदेशी कपड़ा मोल न लेंगे। इस ज़रूरी काम के बाद दूसरा काम यह रह जाता है कि अपना गया रोज़गार हम फिर से करने लगें।

और हमें तो करना ही पड़ेगा, क्योंकि हमने विदेशी कपड़ा मोल लेने से इनकार कर दिया है। हम अपने लिए कपड़ा बनावें या बनवावें तभी तो हम पहन सकेंगे। जो हमने व्रत कर लिया है उसको पूरा-पूरा पालन करने के लिए हमें अपना पुराना रोज़गार करना ही पड़ेगा। हमको अपना दारिद्र्य दूर करना ही पड़ेगा। अपने देश का बनाया कपड़ा पहनने से दो बड़े-बड़े लाभ होंगे। एक तो यह कि हमारा अन्न बचेगा और हम भरपेट खासकेंगे; दूसरा यह कि हम जो छः-छः महीने बेकारी में, आलस में, लड़ाई-झगड़े में, नशेपानी में, रोग-दोष में और तरह-तरह के कष्टों में विताते हैं, वे सब संकट दूर होजावेंगे और बेकारी की घड़ियों को कपास के ओटने में और सूत कातने में और खद्दर बुनने या बुनवाने में लगाकर हम अपनी इज्ज़त-आवरू अपने हाथ रक्खेंगे और अपनेको अधिक सुखी, बलवान और चिरजीवी बनावेंगे।

यह रोज़गार हमारे लिए भगवान का वह मंगल-आशीर्वाद होगा जिससे कि हमारे गये दिन लौट आवेंगे और हमारी लक्ष्मी हमारे देश में रहेगी और हम अन्न से और धन से सुखी रहेंगे। महात्मा गाँधी ने किसानों के उद्धार के लिए यह एक ऐसा उपाय निकाला है कि इसमें किसीका ज़ोर-जुल्म नहीं है और कोई इस उपाय के वरतने में रुकावट नहीं डाल सकता। किसान को कमर बाँधकर काम में लगजानेभर की देर है।

इस काम में लग जाने के लिए हमको पहलेपहल क्या करना चाहिए, इसके लिए हम इस छोटी पोथी में किसान भाइसों को उचित सलाह देंगे।

३. कपास

धरती-माता जैसे हमको अन्न देती है वैसे ही कपड़ा भी पहनाती है। आप जैसे खेती से अनाज उपजाते हैं वैसे ही कपास भी उपजाइए। कपास की खेती हमारे देश में किसी समय में वड़ी अच्छी होती थी। हर किसान जैसे अपने लिए खाने को अन्न उपजाता था वैसे ही अपने पहनने के लिए कपड़ा भी उपजाया करता था। हिसाव लगाया गया है कि हमारे देश में हर आदमी को तेरह-चौदह गज कपड़ा हर साल कम-से-कम चाहिए। अगर घर में पाँच प्राणी हैं तो पैंसठ से लेकर सत्तर गज़ तक कपड़ा चाहिए। इसमें वच्चों और वूढ़ों का वरावर हिसाव रखना होगा, क्योंकि किसीको कम कपड़ा लगता है और किसी-को ज्यादा। अगर हम मानलें कि सेरभर में सात गज खद्दर वनेगा तो हमको सालभर के खर्च के लिए इस छोटे-से कुटुम्ब-भर के लिए दस सेर अच्छी रुई चाहिए, और दस सेर रुई के लिए कम-से-कम तीस सेर कपास की ज़रूरत है। हमारे देश में आजकल कपास की खेती की दशा विगड़ी हुई है। अच्छी दशा में एकड़ पीछे ढाई मन रुई होनी

चाहिए, यानी साढे सात मन कपास उपजनी चाहिए। लेकिन देखा गया है कि एकड़ पीछे पैंतालीस सेर रुई निकलती है, अर्थात् साढ़े तीन मन से ज्यादा कपास नहीं होती। इस हिसाब में चालीस सेर का मन रक्खा गया है और ८० रुपयों भर तोल का सेर रक्खा गया है।

किसान अगर मेहतन करे तो शुरू-शुरू में उसे एकड़ पीछे पैंतालीस सेर रुई तो ज़रूर मिल जाय। पाँच प्राणी के परिवार में जितना कपड़ा सालभर में लगता है उसकी ड्योढी रुई एक एकड़ में उपजती है। हमने यह हिसाब मोटे सूत का लगाया है। परन्तु एक-दो साल के बाद जब अभ्यास होजायगा और किसान बारीक सूत कातने लगेगा तो इतने ही में अपने खर्च से तिगुना और चौगुना कपड़ा बनवा सकेगा। बारीक कताई किसान के हाथ का खेल है। उसीके बस की बात है। वह अपना मुनाफा मेहनत करके और मन लगाकर बहुत ज्यादा बढ़ा सकता है। यह तो रोज़गार की बात है, जितना ही गुड़ डालोगे उतना ही मीठा होगा। बीज अच्छे चुने जायँ, मिट्टी अच्छी मिल जाय, खाद और सिंचाई का उचित बन्दोबस्त होजाय, और बोआई ठीक रीति से की जाय, तो दिन-पर-दिन इस रोज़गार की बढन्ती होसकती है। कपास अच्छी उपजेगी, ओटाई और धुनाई क़ायदे की होगी, सूत बराबर बारीक और ठीक-ठीक बटा हुआ कतने लगेगा और खद्दर बारीक और मज़बूत बनने लगेगा, तो संसार की कोई ताक़त नहीं है जो हमारे इस धन बरसानेवाले रोजगार को हमसे छीन ले। इसमें एक और केवल एक ही शर्त है, कि हम सब प्राणी कसम खालें कि अपना उपजाया हुआ ही कपड़ा पहनेंगे और विदेशी कपड़े की छाया भी छूना महापातक समझेंगे।

इसलिए हर किसान को, जो विदेशी कपड़े के न लेने और न छूने का व्रत लेता है, यह भी जरूरी है कि अगर उसके पास खेत हो तो

एकाध एकड़ कपास बोना अपना धर्म समझे और इसका भी व्रत लेले।

साथ ही उसे यह भी याद रखना चाहिए कि भरसक खानेभर को अन्न और परिवारभर के पहनने के लिए काफी कपास अपने पास संग्रह करके तब बेचने का नाम ले। और बेचे भी तो बची-खुची कपास और अनाज अपने देश के उन भाइयों के हाथ ही बेचे जो या तो कम उपजा सकते हैं या खुद नहीं उपजा सकते। भरसक ऐसों के हाथ अन्न या कपास न बेचें जो उसे विदेशों में पहुँचवादें। आगे चलकर हम खेती के सम्बन्ध की और बातें बताते हैं।

४. कपास की जातियाँ

कपास अनेक जातियों की होती है। कोई-कोई कपास किसी देश में धरती और जलवायु के भेद से ज्यादा उपजती हैं, वही दूसरे देश में कम उपजती है। हमारे देश में कपास की खेती बिलकुल उठ नहीं गई है, बहुत जगह होती है। बानी, जारी, पंजाबी, न्यारिया, विलायती, बागड़, मठिया और देव कपास प्रसिद्ध जातियाँ हैं।

इनके सिवाय कपास के और भी भेद हैं :—

(१) भोगला।	(७) हिंगनघाट।
(२) राम कपास।	(८) सी० आई० लैंड।
(३) अमेरिकन।	(९) कारोलाइन।
(४) धारवाड़।	(१०) जार्जियन।
(५) नरमा।	(११) डानकन।
(६) गारोहिल (आसाम में)।	(१२) ओलना, इत्यादि।

इनमें से नरमा, अमेरिकन, गारोहिल, हिंगनघाट और ओलना के पौधे बहुत दिनों तक फला-फूला करते हैं।

युक्तप्रान्त में देशी और अमेरिकन कपास की खेती होती है। देशी

कपास की कई जातियाँ हैं जिनमें से कुछ अच्छी जातियां निकाली गई हैं।

अलीगढ़ की सफ़ेद फूल वाली कपास—देशी कपास में पीले फूल के साथ कुछ सफेद फूल के पौधे भी होते हैं, जिनको चुनकर अलग बोया गया और उसकी कपास ओटने से रुई का परता पीले फूलवाली से अच्छा रहा, साथ ही उसका तार भी कुछ अच्छा हुआ। सफ़ेद फूल-वाली कपास की यह जाँच अलीगढ़ में हुई, इसीलिए यह अलीगढ़ के नाम से कही जाती है। पीले फूलवाली कपास से १ मन में लगभग १३ सेर रुई निकलती है, और सफ़ेद फूलवाली से करीब १६ सेर। इसका बीज अलीगढ़ के सरकारी खेती-विभाग से मिल सकता है। कहीं-कहीं चतुर किसान देशी कपास में से इस जाति का चुनाव आप करने लग गये हैं।

इसकी खेती में सब क्रियायें मामूली पीले फूल की कपास की तरह होती हैं। हाँ, इसके लिए दुमट भूमि मिले तो अच्छा है और सम्भव हो तो बुआई वैशाख और जेठ के महीनों में कुएँ, नहर या तालाब से सिंचाई करके करते हैं; नहीं तो पानी बरसने पर करते हैं। यदि वर्षा ठीक समय पर न हुई तो बीच में पानी देते हैं। परन्तु खेत में नमी रहे, पानी न भरने पावे। जब पौधा छोटा ही हो और जब फूल लगने लगें उस समय पौदे को नमी अवश्य मिलनी चाहिए। सफ़ेद फूल की कपास के खेत में यदि कोई पौदा पीले फूल का दिखाई दे तो उसको उखाड़ देते हैं जिसमें बमेल न पैदा हो।

देशी कपास की दूसरी जाति जिसका रेशा मुलायम होता है और पैदावार भी अच्छी होती है जाल्रौन की कपास है। यह बुन्देलखंड और वैसी ही भूमि और जलवायु के उपयुक्त है। आसपास के जिलों में इसकी खेती अच्छी होसकती है।

अमेरिकन की जो जाति यहांके अनुकूल है वह **कानपुर-अमेरिकन** (काग) कहलाती है। इसका रेशा लम्बा और मुलायम होता है। इसकी खेती के लिए अच्छी भूमि, सिचाई और सम्हाल की बहुत जरूरत है। अतएव साधारण किसानों को इसमें कठिनाई पड़ती है। परन्तु पहले सिंचाई ठीक होजाय तो बरसात कम या अधिक होने से इसको इतना नुकसान नहीं होता जितना देशी कपास को होता है। इसके लिए दुमट या खाद डाली हुई रेतीली दुमट भूमि अच्छी होती है; ऊसर, मटियार और पानी-भरी धरती काम की नहीं होती।

जिन खेतों में ईख और गेहूँ की फसल हो वे इस कपास के लिए उपयोगी हैं। इसके बोने में कूँड़ों का अन्तर कुछ अधिक रखना चाहिए, अर्थात् कूँडे तीन फुट के अन्तर से हों और बीज भी उतने ही अन्तर से बोये जावें। दो-तीन बीजों को हाथ से गड़हा कर बोते और ऊपर से मिट्टी ढकते हैं। पौदे के हाथभर का होजाने पर छँटाई की जाती है। एक गड़हे में एक अच्छा पौदा छोड़ औरों को उखाड़ उस जगह जमाते हैं जहाँ पौदे नहीं उगते और ठिठुरकर मर जाते हैं। यदि कोई देशी कपास का पौदा हो तो घना करने से बचाने के लिए उसको उखाड़ देते हैं।

अमेरिकन का पौदा नरमा की तरह कई वर्षों तक फ़सल दे सकता है, यदि दूसरी फसल बोने के लिए उखाड़ न डाला जाय। खेत की सब कपास बीन लेने पर पौदों को खड़ा रहने देते हैं। पूस में वर्षा न हो तो पानी दिया जाता है और निराई गुड़ाई की जाती है। फागुन-चैत में फिर एक पानी देते हैं, इस रीति से जेठ में फिर फ़सल होजाती है और वह पहले से ज्यादा अच्छी होती है।

गुजरात और काठियावाड़ में अच्छी जाति की कपास होती है।

साबरमती के आश्रम में कपास की खेती करके कुछ जातियों की जाँच की गई है। उसका फल हम नीचे देते हैं।

सूरती कपास—यह बढ़िया है। इसका रेशा मुलायम, मजबूत और लम्बा होता है। यह कपास चिकनी, काली और बलुही तथा रेवटी जमीन में अच्छी होती है। बोने के छः महीने बाद उसमें टेंटुए लगने लगते हैं। कोई चार महीने में फूलने लगती है। उस समय पानी बरसता रहे तो नुकसान होता है। उस समय उसे धूप की जरूरत होती है। इसलिए जहाँ बरसात का मौसम चार महीने से ज्यादा हो वहाँ देर से यह कपास बोनी चाहिए। इसके रेशे एक इंच लम्बे होते हैं। पाखाने की खाद देने से रेशे लम्बे और पैदावार ज्यादा अच्छी होसकती है।

माठिया—काठियावाड़ में एक जाति **माठिया** कपास की होती है जो चार मास में टेंटुए देने लगती है। यह इसका खास फ़ायदा है। थोड़े पानी पर यह होसकती है और कम गहरी जमीन में भी उग सकती है। लेकिन गहरी जमीन में तथा ज्यादा पानी में यह अच्छा फल देती है। यह कपास हलकी मानी जाती है, परन्तु तो भी उसकी मामूली दरजे की रुई से चरखे पर १५अंक के लगभग मजबूत सूत निकल सकता है। जुताई जैसी अच्छी होगी वैसा रेशा भी लम्बा होगा। उसका रेशा आधे इंच तक का होसकता है। उसके बिनौलों को ढाई-ढाई बिलस्त की दूरी पर बोना चाहिए। यह कपास ऊँचे बेंत की तरह खड़ी होती है। इसलिए इसे ज्यादा दूर-दूर बोने की जरूरत नहीं है।

हमारे देश में कुछ कपास के पेड़ों की जातियाँ हैं, अर्थात् जिन कपासों का पौदा पेड़ की तरह बड़ा और ऊँचा होता है और बराबर कपास दिया करता है। जिन जगहों में कपास की खेती करने में रुका-

वट होती है वहाँ चरखा चलाने के लिए कपास के पेड़ घर के पास या हवा में या आँगन में लगाने से बहुत काम निकल सकता है। संयुक्तप्रांत में इस कपास को नरमा कहते हैं। देव कपास, जिसे जटा कपास भी कहते हैं, महाराष्ट्र, करनाटक और बंगाल में भी बहुतायत से होती है। यह बहुत मुलायम और लम्बे रेशेवाली है। इससे ८० या १९० अंक तक का महीना सूत चरखे पर काता जा सकता है। पहले इसी कपास के जनेऊ बनते थे। यह कपास अरण्ड के पेड़ की तरह बड़ी होती है। इसलिए इसे पाँच-पाँच हाथ की दूरी पर लगाना चाहिए। यह पेड़ एक बरस का हो जाने पर बारहों मास फला-फूला करता है। हमारे देश में बहुत जगह यह पेड़ घरों के आँगन में खड़ा दिखाई देता है। कहते हैं कि खेतों की हद बाँधने के लिए भी यह कहीं-कहीं चारों ओर लगाया जाता है। इसकी पत्तियाँ गहरी और चमकीले रंग की होती हैं। इसके टेंटुए तीन-तीन पंख वाले लम्बे और नुकीले होते हैं। इसकी रुई बीज पर उगी हुई नहीं बल्कि उसके आसपास लिपटी हुई होती है।

इस कपास की रुई को जो ताँत से पींजा जाय तो वह खराब होजाती है। उसमें गाँठें पड़ जाती हैं और ऐसा मालूम होता है कि उसके तन्तु टूट जायँगे। इसलिए इसकी रुई हाथ से पींजी जाती है। उसमें किसी प्रकार की गर्द भी नहीं होती, न लोढने-पर-लोढने के कारण उसमें झुर्रियां ही पड़ जाती हैं। अर्थात् एक तो उसके पींजने में देर नहीं लगती और दूसरे पींजी भी सुन्दर जाती है। इस कपास की रुई से ६०-९० अंक तक का सूत कता हुआ देखा गया है। सफ़ाई भी अच्छी होती है।

कुछ लोग इस कपास को बिना ही बीज निकाले उसके कोश पर से ही एकदम (बिना ओटे या धुने) कातने लग जाते हैं। जिस प्रकार ऐरी रेशम को कातते समय उसके कोश पर से तार निकलना

जाता है उसी प्रकार इसके कोश पर से भी तार निकलता जाता है और रुई खत्म होजाने पर हाथ में बिनौले रह जाते हैं। पर उसे इस तरह कातने से उसका दुरुपयोग होता है। रुई अलग निकालकर कातने से एक तो सूत अधिक महीन निकलता है और वह जल्दी भी काता जाता है, दूसरे तार भी बराबर काता जासकता है। रुई को बीज पर से निकालने में कुछ देर भी नहीं लगती, इसलिए उसे कोश पर से कातना अच्छा होता है।

तीनी कपास या सिरंज कपास—तीनी कपास विदेशी है। उसकी पैदाइश तिनेवल्ली जिले में की जाती है। उसके बीज की आकृति देशी कपास के बीज जैसी ही होती है, किन्तु वह कद में उससे आधा होता है। कपास को फैलाने से बीज पर ज़रा भी रुई नहीं रहती। इस कपास की पत्तियों के दोनों तरफ़ एक-एक या दो-दो छोटी-छोटी नोंकें होती हैं। अगर इसके पौदे की अच्छी तरह हिफाज़त की जाय तो इसका एक अच्छा छोटा-सा पेड़ होजाता है। तीसरे साल से कपास देने लगता है। इसकी रुई मुलायम और लम्बे तन्तुवाली होती है। इस कपास की लगभग २८ फी सैकड़ा रुई निकलती है। इसके तन्तु की लम्बाई $\frac{3}{4}$ से १ इंच तक होती है। इसको लोढने पर ओटने की ज़रूरत नहीं होती। हाथ से ही उसके बीज अलग कर दिये जासकते हैं। इसकी रुई की ताक़त देशी रुई से कम पाई गई है। पर इसका कारण यह होगा कि इसका तन्तु देशी रुई के तन्तु से ज्यादा महीन है और इसीसे उससे महीन सूत भी काता जासकता है।

हीरमणी—यह भी एक पेड़-कपास है, जिसका पौधा पाँच-छः फुट ऊँचा होता है। इसका बीज मामूली बीज के बराबर ही रंग में हरा-सा होता है। इसकी रुई चमकीली, उजली और लम्बे मज़बूत रेशेवाली

होती है। इसका रेशा बीज से झट अलग नहीं होता। रेशे की लम्बाई भी अच्छी होती है और सूत मजबूत निकलता है। यह चार-पाँच बरस तक बराबर फलता रहता है। इसको पानी देने की ज़रूरत नहीं पड़ती, पर दिया जाय तो उपज भी अच्छी हो। इसके फूल रेशमी लाल रंग के होते हैं, इससे आँगन की शोभा भी बढ़ती है।

बारिया कपास या रोज़ीकपास—यह कपास गुजरात में होती है। यह भी पेड़-कपास का नमूना है। इसके पौधे को काटा न जाय तो वह पेड़ या बेल के रूप में बढ़ता है।

गारो कपास--यह कपास मौसमी जाति की है। इसके रेशे आध इंच से भी छोटे और ऊन जैसे खुरदरे होते हैं। इसके एक-एक टेंटुए की कपास में करीब १४ बीज मिलते हैं। गुजरात की खेत की कपासों में आम तौर पर ७ बीज होते हैं। गारो कपास गारो नाम के पहाड़ पर उगाई जाती है, इसलिए यह नाम पड़ा है। इस कपास की रुई ऊन की तरह होती है। ऊन की मिलों में उसमें मिलाने के लिए विलायती सौदागर इसकी सैकड़ों गाँठें खरीदकर बाहर भेजते हैं।

कम्बोडिया—यह कपास भी देशी कपास की तरह सिर्फ एक ही साल फसल देती है। यदि इसकी अच्छी हिफाजत की जाय तो दो-दो साल तक भी इससे फसल मिल सकती है। पर इसका एक पौधा सत्याग्रह-आश्रम पर कई खास अनुकूलताओं के कारण दूसरे साल करीब ६ फीट जगह में फैल गया और उसपर से करीब ५ सेर कपास उतरा। यदि बन्दरों से वह सुरक्षित रहता तो इतनी ही कपास और भी वह देता। कपास के कोमल टेंटुए बन्दरों को स्वादिष्ट लगते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि मनुष्य भी कभी-कभी उसका शौक कर लेते हैं।

बारिश शुरू होते ही वह पौधा खूब फैला और बाद जब बारिश

जाता है उसी प्रकार इसके कोश पर से भी तार निकलता जाता है और रुई खत्म होजाने पर हाथ में विनौले रह जाते हैं। पर उसे इस तरह कातने से उसका दुरुपयोग होता है। रुई अलग निकालकर कातने से एक तो सूत अधिक महीन निकलता है और वह जल्दी भी काता जाता है, दूसरे तार भी बराबर काता जासकता है। रुई को बीज पर से निकालने में कुछ देर भी नहीं लगती, इसलिए उसे कोश पर से कातना अच्छा होता है।

तीनी कपास या सिरंज कपास—तीनी कपास विदेशी है। उसकी पैदाइश तिनेवल्ली जिले में की जाती है। उसके बीज की आकृति देशी कपास के बीज जैसी ही होती है, किन्तु वह कद में उससे आधा होता है। कपास को फैलाने से बीज पर ज़रा भी रुई नहीं रहती। इस कपास की पत्तियों के दोनों तरफ़ एक-एक या दो-दो छोटी-छोटी नोकें होती हैं। अगर इसके पौदे की अच्छी तरह हिफाज़त की जाय तो इसका एक अच्छा छोटा-सा पेड़ होजाता है। तीसरे साल से कपास देने लगता है। इसकी रुई मुलायम और लम्बे तन्तुवाली होती है। इस कपास की लगभग २८ फी सैकड़ा रुई निकलती है। इसके तन्तु की लम्बाई ¾ से १ इंच तक होती है। इसको लोढने पर ओटने की ज़रूरत नहीं होती। हाथ से ही उसके बीज अलग कर दिये जासकते हैं। इसकी रुई की ताक़त देशी रुई से कम पाई गई है। पर इसका कारण यह होगा कि इसका तन्तु देशी रुई के तन्तु से ज्यादा महीन है और इसीसे उससे महीन सूत भी काता जासकता है।

हीरमणी—यह भी एक पेड़-कपास है, जिसका पौधा पाँच-छः फुट ऊँचा होता है। इसका बीज मामूली बीज के बराबर ही रंग में हरा-सा होता है। इसकी रुई चमकीली, उजली और लम्बे मज़बूत रेशेवाली

होती है। इसका रेशा बीज से झट अलग नहीं होता। रेशे की लम्बाई भी अच्छी होती है और सूत मजबूत निकलता है। यह चार-पाँच बरस तक बराबर फलता रहता है। इसको पानी देने की ज़रूरत नहीं पड़ती, पर दिया जाय तो उपज भी अच्छी हो। इसके फूल रेशमी लाल रंग के होते हैं, इससे आँगन की शोभा भी बढ़ती है।

बारिया कपास या रोजीकपास—यह कपास गुजरात में होती है। यह भी पेड़-कपास का नमूना है। इसके पौधे को काटा न जाय तो वह पेड़ या बेल के रूप में बढ़ता है।

गारो कपास—यह कपास मौसमी जाति की है। इसके रेशे आध इंच से भी छोटे और ऊन जैसे खुरदरे होते हैं। इसके एक-एक टेंटुए की कपास में करीब १४ बीज मिलते हैं। गुजरात की खेत की कपासों में आम तौर पर ७ बीज होते हैं। गारो कपास गारो नाम के पहाड़ पर उगाई जाती है, इसलिए यह नाम पड़ा है। इस कपास की रुई ऊन की तरह होती है। ऊन की मिलों में उसमें मिलाने के लिए विलायती सौदागर इसकी सैकड़ों गाँठें खरीदकर बाहर भेजते हैं।

कम्बोडिया—यह कपास भी देशी कपास की तरह सिर्फ एक ही साल फसल देती है। यदि इसकी अच्छी हिफाजत की जाय तो दो-दो साल तक भी इससे फसल मिल सकती है। पर इसका एक पौधा सत्याग्रह-आश्रम पर कई खास अनुकूलताओं के कारण दूसरे साल करीब ६ फीट जगह में फैल गया और उसपर से करीब ५ सेर कपास उतरा। यदि बन्दरों से वह सुरक्षित रहता तो इतनी ही कपास और भी वह देता। कपास के कोमल टेंटुए बन्दरों को स्वादिष्ट लगते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि मनुष्य भी कभी-कभी उसका शौक कर लेते हैं।

बारिश शुरू होते ही वह पौधा खूब फैला और बाद जब बारिश

बहुत दिन तक टिकी तो उसकी पत्तियों में एक प्रकार का कीड़ा लग गया, वे झुक गईं और मुरझाकर झड़ने भी लगीं। अतः उसको हमने काट दिया। वह फिर से लहलहाने लगा और उसपर से ऊपर लिखे अनुसार कपास निकला। उसकी रुई बहुत सफेद और टेंटुए भरे हुए थे। उसकी रुई फी सैकड़ा ३३ आई है। तन्तुओं की—बिलकुल आखिर के टेंटुओं के तन्तुओं की—लम्बाई भी लगभग एक इंच थी, यद्यपि लगभग आधे तन्तु थोड़ी लम्बाई के अर्थात् ¾ इंच के होते हैं। बीज के सिर पर के तन्तु बड़े-बड़े, मजबूत और बढ़िया होते हैं, पर उनकी मोटाई ऊपर लिखे दोनों कपासों से अधिक है। अच्छी सूरती कपास की रुई की अपेक्षा भी उसकी मोटाई अधिक मालूम होती है। उसकी रुई मजबूत और बहुत सफेद होती है। उसका पौधा जल्दी नहीं सूखता, अतः कपास चुनते समय उसमें सूखी पत्तियों आदि का मेल नहीं होता और रुई बहुत स्वच्छ रहती है। ऊपर बताये हरेक पेड़-कपास की रुई भी इसी प्रकार स्वच्छ होती है।

साधारण कम्बोडिया—कम्बोडिया कपास का एक पौधा कुछ दूसरी ही बातें बताता है। वह भी दो साल का था। वह ऐसी ज़मीन में पैदा हुआ था, जहाँ ईंटों के टुकड़े और भूसा पड़ा हुआ था और जो बिना जोती हुई थीं। बारिश के शुरू होने पर वह भी खूब फैला और दो-ढाई मास में उसमें टेंटुएं लगने लगे थे। उसकी पतली और कमज़ोर टहनियाँ तथा सिरे काट दिये गये और क़रीब पचास अच्छे भरे हुए टेंटुए रहने दिये गये। इससे चार मास पूरे होते ही उनमें से रुई उतरने लगी और एक मास में फसल पूरी आगई। इसकी रुई बड़ी महीन और बढ़िया थी और उसके तन्तु भी एक इंच से कुछ लम्बे थे। यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि तमाम पैदावार थोड़े ही समय में

पूरी मिल गई। उस पौधे का घिराव कोई तीन वर्गफुट था और उसमें से सब मिलकर कोई १० तोले कपास निकली।

५. भूमि

सब धरतियों में दुमट जाति की धरती सभी तरह की खेती के लिए बहुत अच्छी भूमि कही जाती है और कपास की खेती के लिए तो और भी लाभकारी है। दुमट भूमि का रंग कुछ पीलापन लिये रहता है, इसी कारण कहीं-कहीं इसे पीली मिट्टी भी कहते हैं।

काली मिट्टी की भूमि भी कपास की खेती के लिए सबसे अच्छी समझी जाती है और कपास के साथ तो इसका ऐसा घना सम्बन्ध है कि काली मिट्टी की भूमि को कपास की भूमि के नाम से पुकारते हैं। यह भूमि हर तरह की जिन्स के लिए उत्तम मानी गई है। ऐसी मिट्टी को मार या करेल भी कहते हैं। दक्षिण भारत, मध्यभारत, बुन्देलखंड, बरार और संयुक्तप्रान्त की भूमि कपास के लिए बहुत उपजाऊ है, क्योंकि काली मिट्टी इन स्थानों में बहुतायत से पाई जाती है। थोड़ी-बहुत दूसरी जगहों में भी है। ऐसी मिट्टी में कपास बोने से पानी की कम ज़रूरत पड़ती है। इस भूमि में थोड़ा पानी ही फसल के लिए बस होता है। इसे गीला जोतने से बड़े-बड़े ढेले होजाते हैं और सूख जाने पर बड़ी कठिनाई से टूटते हैं। इसलिए वर्षा के बाद इस धरती की बड़ी देखभाल करनी होती है। गरमी में यह भूमि तड़क जाती है और वर्षा में इतनी भर जाती है कि चलना कठिन होजाता है।

ऊपर तीन-चार इंच लाल और फिर काली भूमि भी उपजाऊ होती है। जब नये जंगल को तोड़कर कपास बोते हैं तो तीन-चार बरस तक ज्यादा परिश्रम न भी किया जाय तो भी उपज अच्छी होती है। पर आगे के लिए भूमि की ताक़त बढ़ानी पड़ती है।

जिस भूमि में चूना अधिक हो, जो खुली हुई हो, हलकी हो, जिसमें तीन भाग रेत और एक भाग चिकनाहट हो, उस भूमि को कपास अधिक चाहती है। जिस भूमि में गन्ना, गेहूँ, ज्वार, चना होते हैं कपास भी उसमें भलीभांति होसकती है। कपास के लिए नरम धरती (जिसमें मिट्टी कम और रेत अधिक हो) लाभदायक है, क्योंकि नरम धरती में उसकी जड़ें गहराई तक जाती हैं जिसमें पौदा पुष्ट होकर अधिक फलता-फूलता है।

ज़मीन ऊपर अच्छी हो पर नीचे एक हाथ रेत हो तो उसमें केवल दो ही तीन बरसों तक कपास होसकती है। पंजाब, आगरा, अवध और संयुक्तप्रान्त की भूमि ज़मीन में और मद्रास की दक्षिणी और पूर्वी भाग की कड़ी मिट्टी में भी गहरी जोताई होने से और अच्छी तरह खाद देने से कपास उपज सकती है। जिस धरती में पानी सोखने की ताकत ज्यादा होती है वह कपास के लिए अच्छी होती है।

गोबर, कूड़ा, कचरा, सड़ी मिट्टी, सड़ा गोबर और हरे पौदों की खाद डालने से रेतीली भूमि भी दुमट होजाती है। हरे पौदों की खाद से मटियार भूमि भी दुमट होजाती है। पौदों के आहार में किसी खास चीज़ की कमी हो और इस कारण भूमि ऊसर-सी हो तो गोबर, खली, मैले की खाद या भेड़ की मींगनी पीसकर खाद देनी चाहिए।

६. जोताई

खेत की भूमि ऊँची-नीची होने से पानी बराबर नहीं फैलता। कहीं पानी भरा रहता है, कहीं भूमि सूखी रह जाती है। कोई पौदे पानी की अधिकता से सड़ जाते हैं। इसी असमानता से उपज कम और आगे-पीछे होती है, जिससे हानि और बहुत-सी दिक्कतें बढ़ जाती हैं। अतः जोतने के पहले खेत को अच्छी तरह बराबर कर लेना चाहिए।

लगातार एक ही गहराई में खेत जोतकर फसल उपजाने से ऊपरी हिस्सा उपजाऊ नहीं रहता। इसलिए समय-समम पर खेत की गहरी जोताई करने की ज़रूरत होती है, जिससे नीचे की उपजाऊ मिट्टी ऊपर और ऊपर की नीचे चली जाय और खेत में फिर अच्छी तरह से उपज होने लगे। कपास के खेत की गहरी जोताई इसलिए भी की जाती है कि जिसमें पौधों की जड़ खूब मज़बूत हो, मूसला दूर तक नीचे जाकर खूब खाद चूस सके और पेड़ खूब मोटा हो और खूब फैले। खेत को एक से डेढ़ बिलस्त तक गहरा जोतना चाहिए। हर तीसरे बरस गहरी जोताई करना चाहिए।

रब्बी के कट जाने पर खेत में कुछ नमी रहती है। इसलिए रब्बी कट जाने के बाद तुरन्त ही गहरी जोताई करके हेंगा देना चाहिए। ऐसा करने से खेत की तरी भीतर बनी रहती है और फसल को पानी के बिना कोई हानि नहीं होती। अगर खेत परती हो तो उसकी गहरी जोताई करके घास वग़ैरा निकालकर उस साल उसे वर्षा का पानी सोखने के लिए बिना बोये ही छोड़ देना चाहिए और अगले बरस फसल बोनी चाहिए। गहरी जोताई के बाद वर्षा न हो तो बहुत खाद की ज़रूरत होती है। गीली ज़मीन कभी नहीं जोतनी चाहिए और बहुत गर्म और गीली जमीन में बीज नहीं बोना चाहिए। गर्म खेत में जोताई के लिए इतना पानी देना चाहिए कि पानी सूखने के साथ ही ठंडा हो जाय। ख़याल रखना चाहिए कि खेत में पपरी न लगे। जितनी कम वर्षा हो उतनी ही अधिक खेती को जोत कोड़ करना चाहिए। शाम को जोतने और सुबह को हेंगा देने से बहुत फायदा होता है। इससे रात में जो नमी खेत में इकट्ठी होती है वह खेत में बन्द होजाती है और ढेले भी खूब बारीक पिस जाते हैं। खेत में अधिक पानी नहीं

लगना चाहिए। पानी ज्यादा हो तो नाली के सहारे पानी को खेत के बाहर निकाल देना चाहिए। खेत में किसी तरह की छाया न होनी चाहिए। कपास में खूब धूप और हवा लगने से पौधे खूब झाड़ीदार होते हैं और खूब फूलते-फलते हैं। कपास जितना धूप और हवा चाहती है उतना पानी नहीं चाहती। खेत में अगर ऊँची मेंड न हो तो पौधों को मवेशियों से बचाने के लिए टट्टी बाँधनी चाहिए।

खेत जोतने से मिट्टी के नीचेवाली तह के साथ पौदे के खानेलायक़ वस्तुयें ऊपर आजाती हैं। मिट्टी के भीतर हवा और गर्मी सहज में पहुँच सकती हैं। पौदों के खराब कीड़ों को पालनेवाले पदार्थ बहुत करके नष्ट होजाते हैं और लाभदायक कीड़े सहज में बढ़ सकते हैं। ओस और बरसाती पानी पीकर गर्मी की सहायता से मिट्टी के थर रस को चूस लेने हैं। जोती हुई भूमि में गरमी ठहरी रहती है। धरती दिन की गरमी में थोड़ी गरम होजाती है और रात में फिर ठंडी होजाती है। पौदों के जीवन के लिए इस तरह की गरमी-सरदी की जरूरत है। अच्छी जोती हुई भूमि में पौदे का भोजन अच्छी तरह गल जाता है। इससे जड़ें भली प्रकार रस चूसकर पौदों को पुष्ट करती हैं और उस भूमि में स्वभाव से ही पौदों का खाद अपनेआप पैदा होजाता है। भूमि को जितना अधिक गहरा जोता जाता है उतना ही अधिक उसका फैलाव बढ़ता है। जोताई अच्छी होने से बीज अच्छा जमता है, फसल अच्छी पैदा होती है।

७. गहरी जोताई

गहरे जोतने से जड़ें दूर तक जाकर पौदे को पुष्ट करती हैं, अधिक भोजन खींचती हैं, परन्तु जहाँ गहरा जोतने से कंकड़ ऊपर होजावें वहाँ गहरा न जोतना चाहिए। जहाँ काली भूमि हो वहाँ भी हर समय गहरा जोतना ठीक नहीं है।

गहरी जोताई के बाद वर्षा न हो तो खाद अधिक डालना चाहिए। कभी-कभी घास की जड़ें नीचे जाकर बढ़ने लगती हैं, उन्हें भी निकाल देना चाहिए। वर्षा के थोड़े पहले या पीछे भी गहरी जोताई न करनी चाहिए। इससे भूमि हलकी पड़ जाती है, यदि उसमें पानी पड़ा तो वह जम जाती है और मिट्टी बारीक न होने से उपज के काम की नहीं रहती। बीज बोने के एक-दो दिन पहले भी भूमि को गहरा जोतना उचित नहीं। रेतीली भूमि में गहरी जोताई नहीं चाहिए। जिसमें रेत कम हो ऐसी भूमि अधिक जोताई चाहती है

८. सबसे उत्तम खाद

गाँवों के बाहर घूरों में, आस-पास खेतों में, ऊसरों में, तालाबों और गड्ढों के चारों ओर लोग आमतौर पर पाखाना फिरते हैं। इससे दो नुक़सान होते हैं। एक तो बहुत उत्तम प्रकार की खाद नष्ट होती है, दूसरे गाँवों के चारों तरफ की हवा भी गन्दी होजाती है। बरसात में मक्खियों का उपद्रव होता है और भाँति-भाँति के रोग फैलते हैं। जिन खेतों में कपास बोई जानेवाली है उनमें डेढ़-दो बालिस्त गहरी नली-सी इस तरह खोद देनी चाहिए कि उसमें से निकली हुई मिट्टी उनके किनारों पर लगा दी जाय और गाँववालों को समझा दिया जाय कि उन्हींमें पाखाना फिरा करें और जब फरागत पाजायँ तब किनारे की मिट्टी उसपर इतनी गिरादें कि मैला ढक जाय। कपास के खेतों में इस तरह नाली खोद-खोदकर मैले का खाद सहज में दिया जासकता है और किसी तरह की ख़राबी भी नहीं आसकती। जहाँ-जहाँ आड़ की या परदे की ज़रूरत समझी जाय वहाँ-वहाँ छोटी टट्टियाँ बनाकर रक्खी जासकती हैं। इनका बनाना बहुत आसान है। दो हाथ चौड़ी, तीन हाथ लम्बी और दो हाथ ऊँची टट्टी काफ़ी होगी। बाँस या बल्ली

के तीन-तीन हाथ के ग्यारह टुकड़े एक टट्टी के बनाने में लगेंगे। यह ऊपर-नीचे दोनों ओर खाली रहेगी और तीन ओर इसमें चटाई या टाट या बोरे से मढ़कर दो-दो हाथ ऊँचा परदा कर दिया जायगा। जरूरत हो तो चौथी ओर भी परदे का बन्दोबस्त होसकता है। इसी टट्टी को खेत के चाहे जिस हिस्से में रख दिया जासकता है। ज़रूरत के माफ़िक जहाँ चाहे हटा दें। इसके जोड़ मूँज, सुतली या बान से बाँधे जासकते हैं। हर किसान उस खेत में, जिसमें कपास की बोआई होनेवाली है,ऐसी नालियाँ बनाकर ऐसी एक या कई टट्टियाँ रख सकता है जिससे टट्टी जानेवालों को आराम भी रहे, खेत को खाद भी मिले और गाँव में गन्दगी भी न फैले। यह बात आजमाई हुई है कि ऐसे खेत में उत्तम कपास होती है।

मैले की खाद कपास के लिए बहुत फ़ायदे की चीज़ है। गोबर की खाद अनाज के लिए बहुत फायदे की चीज है।

९. अन्य खाद

कपास के लिए गोबर और कपास के पौदों की राख की खाद भी बड़ी लाभदायक है। इसमें प्रायः वे सब अंश हैं जो कपास के पौदे के लिए पुष्टई हैं। रासायनिक खादों के झंझट में न पड़कर हमें सुलभ और सस्ती खाद का ही प्रयोग करना उचित समझ पड़ता है। जानवरों व मनुष्यों की हड्डियाँ खेत में गाड़ देना भी गुणकारी है, इससे कई वर्ष तक धीरे-धीरे पोषण होता है।

हर साल राख का प्रयोग करने से पौदे की बढ़ती में सहायता पहुँचती है और कीड़े भी मर जाते हैं। कुम्हार की मिट्टी की राख, पौदे, वृक्ष और लकड़ी की राख, कंडों और लीद की राख, कूड़े-करकट की राख, ये सभी बेदाम की खाद हैं। बिनौले की खाद भी कपास के लिए बहुत अच्छी खाद है, जो पीसकर दीजाती है।

नमक की खाद भी कपास के लिए बड़े काम की खाद है, दूसरी खाद के साथ इसे पीसकर मिला देना चाहिए। नमक पौदों के लिए आहार इकट्ठा करता है, उसे पचाता है, पानी सोखता है, भूमि को साफ़ करता और अपनेआप पैदा होनेवाली जड़ी-बूटियों और कीड़ों को नष्ट करता है।

नमक की खाद कपास को पाले से बचाती है और इससे रुई की उपज अच्छी होती है। रेशे मज़बूत और बारीक होते हैं। फी बीघा २ या २॥ मन नमक देने से उपज दुगनी होजाती है। अगर उतना न हो सके तो फी बीघा १ मन बारीक नमक किसी दूसरी खाद में मिलाकर खेत में देना चाहिए।

मैले की खाद देने से कई वर्ष तक उसका प्रभाव रहता है। पानी अधिक देना पड़ता है। राख के साथ मिलाकर देने से बदबू दूर होजाती है। पशुओं का मूत्र, भेड़-बकरी की मींगनी, और मनुष्य का मूत्र भी ज़ोरदार खाद है।

गरमी के दिनों में या चैत-बैसाख में खेत जोत देने से सूरज की तेज गरमी और गरम हवा बड़ी अच्छी खाद का प्रभाव पैदा करती है। कीड़े-मकोड़े और उनके अंडे नष्ट होजाते हैं। घास की जड़ें उखड़कर सूख जाती हैं, मिट्टी भुरभुरी और भूमि पीली होजाती है और बहुत कम वर्षा होने पर भी फसल अच्छी होसकती है।

खेत के चारों ओर मेंड़ और बीच में क्यारियों का होना ज़रूरी है। इससे खाद और पानी देने में सुविधा रहती है और उपज अच्छी और अधिक होती है। खेतों को हवा और धूप पूरी मिले, इसलिए खेत के पास पेड़ों या घरों का होना ठीक नहीं है।

सत्याग्रह-आश्रम, साबरमती, में पता लगा था कि सूरती कपास मैले

की खाद के प्रभाव से बढ़िया-से-बढ़िया कपास से भी ज्यादा मुलायम, मजबूत और लम्बे रेशेवाली होसकती है।

१०. खाद देना

शीघ्र घुलनेवाली खाद—जैसे गोबर, मैला, खली इत्यादि—अखीर जोताई के पहले देनी चाहिए।

खाद देकर मिट्टी में भरसक जल्दी ही मिला देना चाहिए। कपास के पौधे जब लगभग एक बिलश्त के होजायँ तब पौदे की जड़ के चारों ओर थोड़ा ताजा गोबर रखदेने से बड़ा लाभ होता है। भूँड नामक कीड़ा वहाँकी मिट्टी को पोला कर देता है और पानी देने से गोबर घुलकर खाद के काम में आजाता है। इससे कपास की उपज भी बढ़ती है। बरसात में इस बात की सम्हाल रखनी चाहिए कि खेत का पानी बाहर न जाय, नहीं तो खाद का मुख्य अंश पानी में घुलकर बह जायगा। यदि वर्षा अधिक हो तो उसके बीत जाने पर खाद डालना अच्छा होगा।

११. बीज

बीज भरा-पूरा, निरोगी और पुष्ट होना चाहिए। बीज-संग्रह का सबसे अच्छा ढंग यह है कि कपास चुनने के समय जो टेंटुए भरे-पूरे खूब खिले दिखाई दें और जिनमें सफ़ेद और लम्बे और मुलायम रेशे दीख पड़ें वे चुनकर बीज के लिए रख दिये जावें। बोने का समय आने पर उस बढ़िया चुनी हुई कपास को हाथ की चर्खी से ओटकर बिनौलों को निकालना चाहिए।

बीज बोने के पहले बिनौलों को गोबर और राख में लपेटकर सुखा रखते हैं, जिससे एक-एक बीज अलग-अलग होजाय। यदि गोबर के साथ तूतिया घोलकर और मिला दिया जाय तो पौदे और फल कीड़ों से नष्ट न होंगे।

बढ़िया बीज संग्रह करने के लिए कपास के खेत में पहले निरोग मोटे-ताजे और पूरी लम्बाई के पौदे चुनलें, फिर उन पौदों में लम्बे और अधिक रेशेवाले पौदे चुनलें, साथ ही यह भी ध्यान रक्खें कि उनके रेशे लम्बे, सफेद और मुलायम हों और कपास में रुई अधिक निकले।

इन पौदों के बिनौलों में फिर चुनाई करलें तो बीज बहुत अच्छी पैदावार के लायक होगा। इस बीज की फसल एकसाथ होगी और माल प्रायः एकसा तैयार होगा। बीज के लिए दूसरी और तीसरी चुनाई के समय कपास चुनना चाहिए; क्योंकि इस समय बीज अच्छा और पुष्ट होता है।

मशीन में ओटी हुई कपास के बिनौले बोने के काम के नहीं होते। हाथ की चर्खी से निकले बिनौले खूब उगते हैं। इसीमें लाभ है। यह भलीभाँति याद रखना चाहिए।

१२. बीज बोना

बीज सीधी रेखा में समान अन्तर से बोने में सब पौदों को खाद, हवा और धूप सब कुछ बराबर मिलता है। तब फसल एकसी होती है। निराई, गुड़ाई, सिंचाई इत्यादि सहज में होसकती है।

खेत जोतकर उसे सुहागे से बराबर करके लगभग दो-दो हाथ के अन्तर पर दो-दो या तीन-तीन बिनौले एक इंच गहरे दबा दिये जायँ। जब वे निकल आवें तब अच्छे पौदे को रखकर दूसरों को उखाड़ दे। यदि किसी स्थान पर पौदा न उगे तो दूसरा पौदा लेकर (उखड़े हुए पौदों में से) वहां लगादे और तुरंत थोड़ा-सा उसे पानी देदे, जिससे वह जम जाय। बोने के बाद पटेला फेरना चाहिए, जिसमें बीज मिट्टी में दब जाय और भुरभुरी जमीन में जड़ें खूब फैलें और अंकुर ऊपर निकल आवें। हाथ से बखेरकर बोने में सरासर हानि है।

मौसम के लगते ही बोने से बीज थोड़ा लगेगा और देर में बोने से अधिक लगेगा। उजियाले पाख में बीज बोना अच्छा है।

चैत से जेठ तक बीज बोने का समय है। जो वर्षा के जल से कपास बोना हो तो अधिक-से-अधिक आर्द्रा नक्षत्र तक बो देना चाहिए। देहात में कहावत है कि—

आर्द्रा टरैं पुनर्वसु पाती।
फेर बवै सो ठोके छाती॥

कपास के पहले बोने में प्रायः लाभ होता है। जो वर्षा के पहले खेत सींचकर कपास बो दी जावे तो पौदे बढ़ जायँ और वर्षा में उन्हें हानि न हो। ऐसी दशा में रोग भी नहीं लगते।

कोई-कोई कपास हथिया से लेकर स्वाती नक्षत्र तक में भी बोई जाती है। जहाँ अधिक सर्दी पड़े वहाँ पहले और जहाँ अधिक गरमी पड़े पीछे बोना चाहिए। जहाँ नहर इत्यादि का सुभीता हो, जिससे आसानी से सिचाई कर सकें, वहाँ फ़सल पहले बोना चाहिए। बरसात के पहले कपास बोने से पौधों में कीड़े लगने का कम डर रहता है। खेत में घास कम लगती है और पाला पड़ने से पहले फ़सल तैयार होजाती है। जब धूप हो और बदली न रहे तब बोना चाहिए। बीज छींटकर कभी न बोना चाहिए। कूँड बनाकर बीज गिराना चाहिए। जमीन की अच्छी जोताई करने और घास निकालने के बाद हेंगा फेरकर कूँड बना बीज गिराना चाहिए और फिर हेंगा फेर देना चाहिए जिससे बीज मिट्टी में ढक जाय।

वृक्षवाले कपास को अलग उगाकर रोपने का रिवाज है। गोबर और तूतिये को पानी में घोलकर बीज मिलाकर बेहन डाल देना चाहिए। जब पौधे पौन हाथ के करीब होजायँ तब उखाड़कर रोपना चाहिए।

पौधा बैठाने के समय हरेक गड्ढे में ३ या ४ मुट्ठी सूखे गोबर की खाद देनी चाहिए। अगर ज़मीन में काफ़ी नमी न हो तो बीज को रात की ओस में फुलाकर बोने से क़रीब-क़रीब सभी उग आते हैं। बोने के दो-चार रोज़ बाद पानी सींचने के लिए खेत में क्यारी बना देते हैं। इस बीच में बीज भी लगभग उग गया रहता है। सी. आई. लैंड, कारोलाइन, जार्जियन और डानकन नाम की कपास दो-दो हाथ दूर कूंडों में कुंवार और कार्तिक में अकेली या रब्बी के साथ बोना चाहिये। इसमें अधिक पानी की ज़रूरत नहीं होती। मिश्र देश की कपास को अलग जमाकर नदी के तीर या दुमट बलुई ज़मीन में बोने से खूब उपज होती है।

पौदों के उगने पर उनके पहले दो पत्तों को खूब बचाना चाहिए। उन दो में से अगर एक भी बरबाद होजाय तो पौधा मर जायगा। इसलिए और समय की अपेक्षा इसी समय पर पूरी चौकसी करनी चाहिए। कपास के साथ कोई और वस्तु न बोनी चाहिए, क्योंकि किसी और जिन्स के साथ बोने से इसकी उपज बहुत कम होजाती है। अगर साथ बोना ही हो तो कपास के साथ मक्का बोई जाय तो बहुत अच्छा हो, क्योंकि कपास बहुत फैलती है और मक्का के कट जाने पर उसे काफी जगह फैलने को मिल जाती है।

१३. निराई-मोड़ाई

पौदे के दो पत्ते होजाने पर पहली निराई करनी चाहिए। घास-फूस, अपने आप पैदा होनेवाले पौदे, इन पौदों का भोजन न खा जावें, इसलिए किसान उन्हें अपने खेत में पैदा न होने दे। और जो हो भी जावें तो उन्हें जड़ समेत खोदकर अलग करदे। ऐसा करने से पौदों को पूरा भोजन, हवा और धूप आदि मिलती है और वे पुष्ट होते हैं। कपास की निराई तीन बार तक की जाती है।

पानी देने के बाद भूमि के कुछ कड़ी होजाने पर खेत को गोड़ देना चाहिए। इससे भूमि की नमी बनी रहती है। गोडाई करने से जड़ों के पास की मिट्टी कोमल होजायगी और जड़ें उसमें बड़ी आसानी से फैल सकेंगी।

कपास बोने से १५ या २० दिन पहले खेत को पानी से सींच देना चाहिए। पानी पाकर घास-फूस के बीज उग आवेंगे, तब हल से खूब गहरी जोताई करने पर घास-फूस उखड़ जावेंगे और सड़-गलकर खाद बन जावेंगे। फिर घास-फूस पैदा न होगा। इस प्रकार निराई की जरूरत न पड़ेगी।

१४. सिंचाई

कपास के पौदे बिना पानी भी बहुत समय रह सकते हैं, लेकिन तब जब उनकी जड़ें दूरतक चली गई हों। यदि समय-समय पर वर्षा होती रहे तो कपास को सींचने की ज़रूरत नहीं रहती। जबतक केवल फूल हों और फल का आकार न बना हो तबतक बहुत कम जल देने की ज़रूरत है, अधिक पानी देने से फूल फल बनने से पहले ही गिर जावेंगे। जब तनिक भी पत्ती मुरझानी आरम्भ हो तब तुरन्त पानी देना उचित है। सावन में वर्षा न हो तो एक पानी उस समय ज़रूर देना चाहिए। पानी इतना देना चाहिए जो सूख जाय, भरा न रहे। पानी देने का समय सवेरे और संझा है। दोपहर को जब धूप तेज हो तब पानी कभी न देना चाहिए। बोने के कुछ समय बाद जो वर्षा न हो तो जरूर सींच दें। दूसरा पानी डेढ़ महीने के बाद देना चाहिए। फिर ज़रूरत पड़े और वर्षा न हो तो दो या तीन पानी और देना चाहिए।

कपास को चार पानी से अधिक नहीं सींचना चाहिए। बोने के बाद अगर वर्षा न हो तो पानी ज़रूर देदेना चाहिए। दूसरा डेढ़ महीने बाद

देना चाहिए। जो फिर वर्षा न हो तो देखकर एक पानी देदेना चाहिए। अगर समय-समय पर वर्षा होती रहे तो सींचने की कोई ज़रूरत नहीं होती।

१५. कटाई

जब कपास का पौदा लगभग पाँच-छः बिलस्त के ऊँचा होगया हो और ज्यादा बढ़ने का रंग-ढंग हो तो ऊपर से डेढ-डेढ़ बिलस्त काट देना चाहिए। ऐसा करने से पौदा लम्बा न होकर इधर-उधर फैलता है और फल भी ज्यादा लगते हैं। किन्तु फूल आजाने के बाद काटना ठीक नहीं है।

१६. कपास में लगनेवाले खास-खास कीड़े

सुन्धी—पेड़ ऊँचे होजाने पर पानी की कमी से मुरझाये न हों पर किसी दूसरे कारण से मुरझाये देख पड़ें तो जान लेना चाहिए कि इसमें सुन्धी लगी है। ऐसे कीड़ों को काटकर जला देना चाहिए। अगर कपास की चुनाई के वक्त मुरझाई सूखी और सूराखदार बोंडियाँ मिलें तो उन्हें जला और गाड़ देना चाहिए और खेत को जोत देना चाहिए। अगर पौधों में अधिक कीड़े लगे हों तो खेत को पानी से भरकर कीड़ेदार पौधों को हिला देने से पत्ते और बोंड़ियों के साथ कीड़े पानी में गिरकर मरजाते हैं।

लाल मनिया—बोड़ियों में छेद करनेवाले इन कीड़ों को पौधों से झाड़कर सिर्फ़ पानी व किरासन तेल या दोनों को फेंटकर उसीमें उनको डुबा देना चाहिए।

झाँझा—पत्तीलिपटौना। पत्ती लिपटानेवाला कीड़ा। इस कीड़े से अमेरिकन और मिश्र की कपास को बड़ा नुकसान पहुँचता है। जभी ऐसा कीड़ा लगा हुआ देखा जाय तो या तो पौधे को उखाड़कर जला देना चाहिए या एक हिस्सा किरासन तेल में ५० हिस्सा पानी मिलाकर उसे कीड़ेदार पौधों पर छिड़क देना चाहिए।

पौधे बिना कारण ही मुरझाये और पीले देख पड़ते हैं। ऐसे पौधों के सूख जाने पर १५ दिन के अन्दर उन्हें उखाड़कर फेंक देना चाहिए।

माऊ—इस कीड़े से पत्तियाँ काली और लसलसी होकर गिरजाती हैं। पौधों पर राख छिड़कने से ऐसे कीड़े मर जाते हैं।

टिड्डी—इन कीड़ों को बफाकर मार डालना चाहिए। खेत को जोत देने से इनके अंडे मर जाते हैं। खेत के किनारे एक गड्ढा खोदकर उसी तरफ़ टिड्डियों को हँकाना चाहिए। ऐसा करने से सब टिड्डियाँ उसीमें गिर जायेंगी। तब किरासन तेल और पानी मिलाकर उनपर छिड़क देना चाहिए। इसीसे वे मर जायँगी। किसान जब इन्हें अपने गांव की ओर आते हुए देखें तो ढाई फुट चौड़ी और चार फुट गहरी खाई उनके रास्ते में बनवा दें और उन्हें इन खाइयों में लाते जायँ। जब खाई भर जाय, तब उन्हें मिट्टी से ढकदें।

१७. कीड़ों से रक्षा

खेत की सूखी घास, कपास की बेकार बीड़ी और ऐसी ही अन्य हानिकारक चीज़ें अलग करके जला देना चाहिए। खेत में अदल-बदल कर फसल बोना अथवा कई चीज़ें एक में मिलाकर बोना कीड़ों को कम कर देता है। कई तरह के कीड़े कपास की फ़सल को हानि पहुँचाते हैं। पौधे या उसके जिस अंग को कीड़ों ने बिगाड़ दिया हो उन्हें तोड़ कर जला दें। ऐसा करने से कीड़ों की उपज मारी जावेगी। नीचे लिखे साधन काम में लाने से प्रायः सब प्रकार के कीड़ों से रक्षा होसकेगी :—

(१) चूना पानी में घोलकर रोगी पौदों पर छिड़को।

(२) तम्बाकू के पानी को रोगी पौदों पर छिड़को।

(३) राख, बुझा हुआ चूना, गंधक और नमक घोलकर रोगी पौदों पर छिड़को।

(४) खेत में गंधक या तम्बाकू जलाकर धुआँ दो ।

(५) एक भाग मिट्टी का तेल आठ भाग दूध में मिलाकर मथो और झाग आने पर छिड़को ।

(६) लगभग छः बोतल पानी में पावभर साबुन टुकड़े-टुकड़े करके उबालो । मिल जाने पर आग से हटाकर बारह बोतल के लगभग मिट्टी का तेल डालकर खूब चलाओ । मिल जाने पर छः भाग से नौ भाग तक पानी मिलाकर झाड़ू से छिड़को ।

१८. चुनाई

जब कपास अच्छी तरह खिल जावे तब चुनना चाहिए । चुनाई सवेरे से लेकर दोपहर तक होनी चाहिए । चुनाई की सबसे अच्छी विधि यह है कि खिली हुई बोंड़ी को तोड़कर उसमें से कपास निकालने के बाद खोखली बोंड़ी को खेत ही में छोड़ देना चाहिए । कपास छाया में रखकर सुखाकर रखनी चाहिए । धूप में सुखाने या बिना सुखाये रख लेने से तन्तु कमज़ोर होजाते हैं और उसकी चमक मारी जाती है । कपास चुनते समय चुननेवाले अपने पास तीन थैले रक्खें । एक में बहुत बढ़िया मुलायम बड़े वाले ढेर रक्खें, दूसरे में साधारण, और तीसरे में घटिया मेल में के कमखिले या कीड़े लगे या ख़राब रक्खें । ऐसा करने से कपास छट जायगी और दाम भी अच्छे मिल सकेंगे । चुनते समय सफ़ाई का पूरा ध्यान रखना चाहिए । पत्ती इत्यादि कपास में न मिलने पावें । इस समय की थोड़ी-सी सावधानी आगे के काम में बड़ी सुविधा देती है । दोपहर के बाद चुनी हुई कपास को छाया में सुखाना चाहिए और सूखने के बाद कपास को बोरे में रखना चाहिए । पुरानी होजाने पर रूई का दाम कम होजाता है ।

इसलिए बताई है कि इससे रुई में कूड़ा नहीं मिलने पाता। कपास चुनने में मजदूरी ज़रा ज्यादा पड़ती है, पर भाव ज्यादा मिलने से उसका बदला मिल जाता है। गुजरात में कितनी ही जगह कपास इसी तरह चुनी जाती है। उसको दूही हुई कपास कहते हैं। दूही हुई कपास में पत्ते या डाली के टुकड़े मिलने नहीं पाते। इसलिए कपास साफ रहती है और कूड़ा न होने से उसको झटकने व धुनकने में बहुत मेहनत नहीं पड़ती। वक्त की वचत भी बहुत होती है।

१६. रुई परखने की खास-खास बातें

(१) बीज के ऊपर की रुई को कूंची या कंघी से झाड़ने से जो रेशे खिंच आते हैं उनसे मालूम पड़ता है कि उस कपास में कमज़ोर रेशों का पड़ता कितना है।

(२) बीज के चारों तरफ सीधे फैले हुए रेशों से जाना जाता है कि रुई में छोटे-बड़े रेशों का पड़ता कितना है।

(३) बीज पर से रुई को अलग करने से रेशे की मज़बूती मालूम होती है। झट अलग होजानेवाली रुई ज़रा कमज़ोर होती है और जिसको खींचने में कुछ तान पड़े उसका रेशा चिकना और मजबूत होता है।

(४) बीज को झाड़ने पर उसके रेशे के दल को देखने से मालूम होजाता है कि किस कपास में रुई कम या ज्यादा निकलेगी।

(५) रेशों के मोटे-पतलेपन का मिलान कर लिया जासकता है।

२०. हमारे देश में खेत की कपास की दशा

खेत में कपास बहुत करके ढाई-ढाई बिलस्त की दूरी पर लगाई जाती है। अधिक-से-अधिक दो हाथ से अधिक दूरी पर नहीं लगाई जाती। जो इस हिसाब से बुआई हो तो एकड़ पीछे ४८४० पौधे लग

सकते हैं और जो पौधा पीछे पाँच-पाँच तोले कपास पके तो एक एकड़ में ४८४०×५ यानी अस्सी भरी सेर के हिसाव से ३०२॥ सेर कपास पक सकती है। और जो उसमें से तिहाई रुई निकले तो एकड़ पीछे १०१ सेर रुई पैदा हो। परन्तु हमारे देश में रुई की उपज एकड़ पीछे ४५ सेर ही गिनीं जाती है। हमारी कपास की खेती की दशा कितनी खराव है और उसमें सुधार की कितनी जरूरत है। जो बीजों का चुनाव हर फसल पर ऊपर वताई विधियों से किया जाय और हर फसल पर चुने हुए अच्छे ही बीज बोये जायँ और वोआई के जो कायदे वताये गये हैं उन्हें होशियारी से वरता जाय और निराई-गुड़ाई अच्छी की जाय, साथ ही रोगों से और कीड़ों से वरावर रक्षा की जाय, तो हर साल वरावर ऐसा करते रहने से दस ही पन्द्रह साल में हम इतना वढ़ सकते हैं कि निकम्मी कपास निर्वीज होजाय और हमारे देश में अच्छी-से-अच्छी कपास पहले होती थी वैसे ही फिर होने लगे। फिर तो कपास की उपज भी वढ़ जायगी, एकड़ पीछे दूनी-तिगुनी होने लगेगी, और रुई की जाति भी सुधर और सम्हल जायगी।

कपास की खेती के वारे में जितनी वातें ऊपर लिखी गई हैं, किसान को शुरू करने के लिए वे वहुत काफी हैं। परन्तु किसान ज्यों-ज्यों खेती करता जायगा, त्यों-त्यों उसको सैकड़ों नई वातें मालूम होती जायेंगी और वह हमारी किसी पोथी का मोहताज न होगा। खेती का काम उसे सव वातें अपनेआप सिखा देगा। सफेद फूलोंवाली अलीगढ़ी कपास के बीज मँगाने के लिए अलीगढ़ के सरकारी एग्रीकल्चरल फार्म के सुपरिन्टेन्डेन्ट को लिखकर जो चाहे मंगवा सकता है। पूछने पर भाव मालूम होसकता है। अगर यह सरकारी आदमी जवाव न दे तो अपने पास की कांग्रेस कमेटी से कहना चाहिए, वह मँगवा देगी। इसके अलावा जगह-

जगह चरखा-संघ की शाखायें भी हैं। जहाँ कहीं चरखा-संघ की शाखा हो वहाँ अच्छे बीजों का बन्दोबस्त भी होना चाहिए। पूछताछ और लिखा-पढ़ी से मालूम होसकता है। किसान लोग बीज कहीं से भी मँगावें, लेकिन यह बात याद रक्खें कि बहुत करके अच्छे, बुरे और मिले-जुले बीज आवेंगे। पहली बार की बुआई में तो फसल का सुधार अपनेआप करना पड़ेगा। तब भी उतनी अच्छी फसल नहीं मिल सकती जितनी अच्छी फसल कपास की चुनाई में अच्छी-अच्छी ढोढ़ियों को चुनकर, आगे की फसलों के लिए संग्रह करके, किसान फिर बोआई करेगा। किसान का काम बड़ी मेहनत का है और बड़ी सेवा का है। धीरज से काम लेगा और पूरी तपस्या करेगा तो कपास का पौधा उसके लिए कल्पवृक्ष होजायगा। इसीसे वह देश का अन्न बाहर जाने से रोक सकेगा, आप और परिवार भरपेट दोनों जून रोटी खायगा और अपने देश का पालन करेगा और अपने देश की इज्जत-आबरू की रक्षा करेगा। देश के लिए स्वराज्य चाहे आज होजाय और चाहे प्रलय तक भी न हो, परन्तु किसान के लिए और मजूर के लिए इसी मेहनत में स्वराज्य है। वह चाहेगा तो अपनी मेहनत की बदौलत देश को स्वराज्य दिला देगा। व्याख्यानों से यह काम नहीं होने का।

२१. कपास जमा करना बहुत जरूरी काम

कपास उपजा लेने से किसान का आधा काम होजाता है। खद्दर का जितना कुछ काम है वह बाकी आधा काम है। इस बाकी आधे काम में (१) कपास का संग्रह करना, (२) ओटाई, (३) धुनाई और पूनियाँ बनाना, (४) कताई, (५) अट्टियाँ बनाना, और (६) बुनाई का काम है। यह अचरज न कीजिए कि हमने इन छः बड़े-बड़े कामों को एक तरफ रक्खा और कपास की खेती को दूसरी तरफ। यह

कोई अचरज की बात नहीं है। कपास की खेती की बड़ी महिमा है। अच्छी कपास न मिल सकेगी तो अच्छा खद्दर न बन सकेगा। अच्छा खद्दर न बना तो हमारा काम ही चौपट होगया। इसीलिए कपास की खेती खद्दर की बुनियाद है, जड़ है। यही कच्चा माल है जिससे कि उत्तम-से-उत्तम पक्का माल बन सकता है।

किसान ने कपास इसीलिए उपजाई है कि उसका खद्दर बने। वह आप पहनेगा और दूसरों को पहनावेगा। यह कपास विदेशों में भेजने के लिए नहीं है। जैसे किसान परिवार के खाने के लिए अन्न इकट्ठा रख छोड़ता है और सालभर काम चलाता है उसी तरह किसान को चाहिए कि कपास भी इतना काफी जमा कर रक्खे कि वह अपने घरभर को खद्दर पहना सके। कुछ कमाई करने के लिए अधिक सूत भी कात सके और अच्छी-से-अच्छी अगली फसल में बोने के लिए जमा भी कर रक्खे।

भोजन के लिए हर आदमी को फसल पर अन्न संग्रह कर लेना बहुत जरूरी काम है और उसी तरह कपड़े के लिए कपास का संग्रह करना भी बहुत जरूरी है। परन्तु हर मजूर के पास और हर किसान के पास इतनी सामर्थ्य नहीं है कि अन्न और कपास का संग्रह कर सके। अन्न का संग्रह इसीलिए गरीब मजूर और किसान नहीं कर सकता। अच्छे किसान और व्यापारी उसके लिए अन्न का संग्रह रखते हैं। अन्न की माँग नित्य रहा करती है। महँगी के दिनों में तो और भी ज्यादा होती है। इसीलिए व्यापारी लोग इसका बन्दोबस्त रखते हैं। पर सूत की और खद्दर की चाल देश से उठ गई है। इसी डर से कि कोई माँग नहीं है, व्यापारी लोग कपास का संग्रह बहुत कम रखते हैं। बहुत करके कपास जहां उपजती है वहां से बिककर वह ओटाई के कल-कारखानों में चली जाती है और ओटी हुई रूई बाजारों में जाड़े के दिनों में रजाइयों और लिहाफों के भरने के

लिए आती है। इसतरह धुनियों का रोजगार भी मारा जाता है। जाड़ों के सिवाय और समयों म इन्हें काम नहीं मिलता। जब रुई की कताई जोरों से हर जगह होने लगेगी तब कपास के व्यापारी कपास का संग्रह करनें लगेंगे और सूत और खद्दर के कारबार में रस लेने लगेंगे। अभी तो किसानों और मजूरों के हित के लिए बड़े-बड़े किसानों और ज़मींदारों को चाहिए कि तमाखू, अफीम आदि की खेती रोककर गाँवों में जहाँ-जहाँ मौक़ा हो वहाँ ज्यादा-से-ज्यादा कपास की खेती ज़ोरों से करावें और बढ़ावें। परती जमीनों को काम में लावें। बाग़ों में, दरवाज़ों पर, आँगनों में देव कपास लगादें। जहाँ-तहाँ कपास की उपज बढ़ाकर आदमी पीछे गाँवभर के लिए कम-से-कम दस-दस सेर कपास का संग्रह फसल के ऊपर कराया करें। ग़रीबों के लिए कपास-पंचायतें बनालें और आपस में बेहरी चन्दा करके कपास इकट्ठी करें।

हम ज़मींदारों को भी किसान ही समझते हैं और आजकल जैसी हवा बह रही है उसे देखकर हम ज़मींदारों और ताल्लुक़ेदारों की भलाई इसीमें समझते हैं कि वे तुरन्त ही ग़रीब किसानों और मजूरों की रक्षा के लिए अपना तन, मन, धन लगादें और खद्दर आदि के कामों में सहायता देकर उनके सच्चे हितू बन जायँ। इस काम में लग जाने से जमींदारों और काश्तकारों दोनों का लाभ है। खींचा-खींची रखने में ज़मींदारों की हानि ज्यादा है। ग़रीब तो हर तरह मर ही रहे हैं।

कांग्रेस कमेटियों को, चरखा-संघों को, स्वयंसेवकों को और गाँव के नौजवानों को यह उचित है कि इस तरह कपास संग्रह करने में मदद दें ,जिससे कोई घर कपास से खाली न रहे। ऐसा बन्दोबस्त रहे कि फ़ुरसत की घड़ियों में और बेकारी के दिनों में घर के बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष समय न खोवें और सूत कातते रहें और चरखा चलाते रहे, जिसमें

गाँव-का-गाँव भोजन और वस्त्र से रंजा-पुंजा रहे। हमने रुई की तैयारी इस पोथी में बताई है। रुई की तैयारी पहला ज़रूरी काम है। चरखा और चरखे की कताई इसका दूसरा हिस्सा है।

२२. रुई और बिनौले का हिसाब

एक एकड़ में ४५ सेर रुई हो तो सवा दो मन से ऊपर बिनौला निकलेगा। इस बिनौले का दाम चार रुपये मन के हिसाब से नौ रुपये हुए। किसान रुई आप ही ओटेगा। बाज़ार में रुई का भाव बहुत चढ़ता-उतरता रहता है। रुई जितनी सस्ती होगी उतनी ही उसकी बिक्री से कम आमदनी होगी और उसका सूत बनाकर बेचने में किसान को उतना ही अधिक लाभ होगा। इस पुस्तक का लिखना आरम्भ करने के समय रुई रुपये की सवा सेर मिलती थी। सत्याग्रह-संग्राम छिड़ने पर रुपये की दो सेर से भी अधिक होगई। स्वराज्य होजाने पर इससे ज्यादा सस्ती होजासकती है। परन्तु यहाँ हम वही मँहगा हिसाब ही लेते हैं। अगर सवा सेर का भाव भी हम औसत मानें तो छत्तीस रुपये की रुई हुई। इस तरह कुल पैंतालीस रुपये मिले। उपज बढ़ाने पर जब दूनी होजायगी तो जितनी सेर रुई तौल में बढ़ेगी उतने ही रुपये आमदनी के भी बढ़ेंगे। इस खेती में उपज बढ़ाने की बड़ी गुंजाइश है। साथ ही जैसे ओटाई की मजदूरी किसान की ही रहती है, यदि रुई बेचने के बदले सूत कातकर बेचे और एकड़ पीछे मनभर सूत हो, और सूत घटिया ही बने और ढाई रुपये सेर के ही भाव का हो, तो किसान को एकड़ पीछे सौ रुपये मिलते हैं। इस तरह १०९) रु० साल की आमदनी एकड़ पीछे हुई। इसमें लगान और खेती का खर्च २५) रु० भी निकाल दें तो किसान को ८४) रु० मिले। यह ७) मासिक या लगभग ≡)॥ रोज़ से कुछ ऊपर हुआ। ग़रीब किसान के लिए यह

भी एक सहारा होजाता है। परन्तु वह सारा सूत न बेचे और परिवार के लिए दस सेर सूत बुनवाले और सत्तर गज़ की बुनाई -)॥ गज़ की दर से ६॥-) दे या बदले में तीन सेर सूत देदे तो उसके पास फिर भी सत्ताईस सेर सूत बचा, जिसमें से १० सेर सूत अगर उसने लगान और खेती के ख़र्च में देडाला तो १७ सेर सूत बचा, जिसके ४२।) मिलेंगे। यह सब देकर बचत है, नफा है। सत्तर गज के कपड़े का दाम।=)॥ गज़ लगाया जाय तो उसके पास ३३) का कपड़ा है और ९) का बिनौला— कुल मिलाकर ८४।) हुए। वह बारीक सूत काते तो सूत की बिक्री ५) सेर तक सहज ही लेजा सकेगा। सेर में दस गज़ तक बुनवा सकेगा। इस तरह ८४।) के बदले सौ-सवासौ रुपये तक का उसे एकड़ पीछे मुनाफ़ा होसकेगा। ज्यों-ज्यों वह अपने काम को अच्छा-से-अच्छा बनाता जायगा त्यों-त्यों उसकी आमदनी बढ़ती जायगी।

: १८ :

खेती का सुधार

हमने पिछले अध्याय में किसानों के कल्पवृक्ष कपास की खेती का वर्णन किया है। बात यह है कि हमारे देश में अनेक भागों में जहाँ कपास की खेती होसकती है वहाँसे इसकी खेती पच्छाहीं नीति के बल से उठ गई। फल यह हुआ कि किसान का कल्पवृक्ष खोगया। किसान फिर से कपास की खेती करने लग जाय तो वह अपने लिए कपड़े भी खेत से उपजा सकेगा। परन्तु अन्न के उपजाने में भी अनेक कारणों से वह पिछड़ रहा है। वह दरिद्रता के कारण अपनी विद्या भूल रहा है और विद्या हो भी तो साधन नहीं हैं। कई प्रान्तों में भूमि पर उसका सदा के लिए अधिकार नहीं है जो उपाय करके सुधारे, और सुधारे भी तो लगान और मालगुजारी बढ़ने का भय बना हुआ है। अच्छी तैयार खेती भी आये दिन के बाढ़, सूखा, टिड्डी आदि उपद्रवों से मारी जाती है। सब तरह की रुकावटों को दूर करने और सब तरह का सुभीता पैदा करने का काम उस राज्य या शासन का कर्त्तव्य है जो किसानों से लगान, मालगुजारी या कर लेता है। संसार के देखने में विदेशी सरकार इन सब बातों का प्रबन्ध करती है, परन्तु किसान का उन सब प्रबन्धों से कम-से-कम और विदेशी प्रजा का अधिक-से-अधिक लाभ होता है। इसलिए गांव की पंचायतों का यह कर्त्तव्य है कि अपने अधिकार से जितना कुछ व्यवसाय का सुधार और रक्षा हो सके वह आप करलें और जिस किसीको गांव की ओर से

किसी प्रकार का कर दिया जाय उससे पूरा काम लेने का प्रबन्ध किया जाय। यदि वह कर लेकर भी प्रबन्ध न करे तो उसे इस बात की सूचना देकर कर बन्द कर दिया जाय और तबतक बन्द रहे जबतक कि इष्ट सुधार न होजाय। गाँव की पंचायत अपने बन्दोबस्त से थोड़ी-बहुत सिंचाई, ठीक प्रकार के बीज की बोआई, उत्तम रीति की जोताई और गाँव के भीतर होनेवाले व्यवसायों की तरक़्क़ी करा सकती है। अपने गाँव की हदभर सड़कों की दुरस्ती भी कर सकती है और नहर से मिलानेवाली नालियाँ भी बना सकती है। परन्तु बहुत-से गाँवों को मिलानेवाली ज़िले की सड़कों और नहरों का, जिनसे सिंचाई का काम लिया जा सकता है और गाड़ियाँ और नावें चला-चलाकर तिजारती माल मँगवाया या भेजा जासकता है, बनाना गाँव की पंचायतों के कर्त्तव्यों में नहीं है।

जैसे किसी राज्य को जब हम कर देते हैं तो उस राज्य से बदले में रक्षा और सेवा मिलती है, उसी तरह हम धरती से अपने पालन-पोषण के लिए लेते हैं तो हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम उसका बहुत बड़ा भाग धरती को दें। हम धरती से अन्न, जल और वायु लेते हैं, हमें धरती को भी अन्न, जल और वायु देना चाहिए। खाद के रूप में हम अन्न देते हैं, सिंचाई के द्वारा हम उसे जल देते हैं और ईंधन जलाकर और अपनी साँस को बाहर निकालकर हम उसे वायु देते हैं। जब हम इन वस्तुओं के देने में कोताही करते हैं तो धरती भी हमें देने में कोताही करती है। सारी प्रकृति का यही हाल है। किसान की खेती यज्ञ है। जिसके बारे में गीताजी में कहा है कि "यज्ञ के साथ-साथ प्रजा की सृष्टि करके प्रजापति ने कहा था कि इसी यज्ञ से तुम लोग उपजाओ, यही तुम्हारे मनोरथों को देनेवाला कल्पवृक्ष है। इसी यज्ञ से तुम सारी प्रकृति को राज़ी करो, प्रकृति भी राज़ी होकर तुम्हें सुख देगी। इस तरह

परस्पर राज़ी करते हुए तुम्हारी अधिक-से-अधिक भलाई हो।" इसीलिए धरती से जो पदार्थ पैदा किये जाते हैं उनका कुछ अंश मनुष्यों को अपने निर्वाह के लिए लेलेना चाहिए और कुछ अंश धरती को लौटा देना चाहिए। जैसे धरती से जितना कपास पैदा किया जाता है, उसमें से रुई और बिनौले का अधिक अंश मनुष्य को अपने लिए लेलेना चाहिए और थोड़ा अंश धरती को लौटा देना चाहिए। वह इस तरह कि बिनौले का तेल निकालकर उसकी खली गोवंश को खिला देनी चाहिए। गोवंश बिनौले की खली खाकर आप हृष्ट-पुष्ट होता है। गौवें अधिक दूध और मक्खन देती हैं, बैल खेती की पूरी-पूरी जोताई कर सकते हैं। इसके सिवाय उनके गोबर और मूत से इतनी बढ़िया खाद बनती है कि उससे खेतों की उपजाने की ताक़त बढ़ती है। इसी तरह तिल, अलसी, रमतिली और मूंगफली आदि तेलहन चीज़ों की खली गोवंश के पेट-रूपी यंत्र से होकर जब खेतों के गर्भ में पहुँचती है तब वह आगे पैदा होनेवाली उपज का हितकर भोजन बनकर उसकी उपज को बढ़ाती रहती है। खेती की उपज बढ़ाने के लिए किसानों को नीचे लिखी हुई मोटी-मोटी बातों का अच्छा ज्ञाना होना चाहिए :—

(१) खेतों की धरती की दशा।

(२) खेतों की उचित जोताई।

(३) चुने हुए अच्छे बीजों की बोआई।

(४) खड़ी फ़सल की देखभाल।

(५) उपज को बराबर बढ़िया, काफ़ी और अधिक बढ़ाते रहने की भारी लालसा।

भूमि में गेहूँ पैदा करनेवाले गुण होते हैं, किसीमें गन्ना, धान इत्यादि। जाँच-पड़ताल से यह बात किसान को मालूम होती है कि गेहूँ या आलू की अधिक माँग होने के कारण वहाँका किसान यदि चाहे तो अपने जुवार और बाजरे को पैदा करनेवाले खेत में जुताई और खाद की बदौलत गेहूँ और आलू भी पैदा कर सकता है। किसान अपने खेतों की दशा जानकर उनमें उचित हेरफेर भी कर सकते हैं। खेतों से जो उपज ली जाती है वह खेती के पेटों से संचित किये हुए अपने भोजनों को खा-पी कर ही पैदा होती है। इस तरह हर फ़सल के साथ धरती के गर्भ के जो भोजन खर्च होते रहते हैं उनको पूरा करते रहने से ही धरती उपजाऊ और उर्वरा रह सकती है। किसान अपने खेतों को भाँति-भाँति की खाद देकर उनमें फ़सलों के भोजनों की मात्रा को काफ़ी बनाये रखने का निरन्तर जतन करते रहें तो फसल सुधरकर बहुत अच्छी होती जा सकती है।

२. खेतों की उचित जुताई

खेतों से बढ़िया और अधिक उपज पाने के लिए जिस तरह उनके गर्भ में पौधों के जरूरी भोजनों का काफ़ी बनाये रखना बहुत जरूरी है, ठीक उसी तरह खेतों की उचित और काफ़ी जोताई करना भी बहुत ज़रूरी है। गेहूँ, अलसी, तिल, कपास, बाजरा आदि को बोने के पहले खेतों को कितने गहरे जोतना चाहिए, इस बात को भी जानना किसानों के लिए बहुत ज़रूरी है।

अच्छी जुताई के लिए किसानों को बढ़िया और बलवान बैल चाहिएँ। इसके लिए गौओं का उचित रूप से पालन किया जाना चाहिए। आज दिन पच्छाहीं देशों के किसान की गौ नित्य तीस-पैंतीस सेर दूध और दो-ढाई सेर मक्खन देती है। ऐसी गौवें उन देशों में करोड़ों की तैयार

की गई हैं और की जा रही हैं। यह सब उनके गोपालन की अच्छी विधि का फल है। इसलिए हमारे गाँवों में गोपालन में पूरा सुधार करने की ज़रूरत है। गोवंश का वध रोकने की भी ज़रूरत है।

३. अच्छे बीजों की बोआई

बढ़िया और अधिक उपज पैदा करने के लिए उत्तम बीज भी ज़रूरी है। हमारे किसान बीज की उत्तमता पर टुक ध्यान नहीं देते। उन्हें जैसा बीज मिलता है वैसा ही वे बो देते हैं। वह सड़ा होने के कारण जब उगता नहीं तब माथे पर हाथ रखकर रोते हैं। किसानों को बीज देने का जो जमींदार साहूकार व्यवसाय करते हैं उनका ध्यान बीज की उत्तमता पर तनिक भी नहीं रहता। उनका ध्यान इसी बात पर रहता है कि किसान को बीज किस तरह कम नापा जाय और वसूली के समय उससे किस तरह अधिक नाप लिया जाय। इसलिए उत्तम-से-उत्तम बीज पैदा करने का जतन करना चाहिए।

४. खड़ी फ़सल की देखभाल

फसल जबसे उगती है तबसे लगाकर उसके पककर घर पर आने तक उसकी पूरी-पूरी देखभाल होनी चाहिए। खेतों में जब फ़सल खड़ी रहती है तब खेतों में चल-फिरकर देखें कि खेत के किस भाग में फसल भलीभाँति उगी है, किस भाग में वह उगी ही नहीं, किस भाग में वह भलीभाँति बढ़ी है, किस भाग में वह बढ़ी ही नहीं, किस भाग में उसमें दाने काफ़ी लगे हैं, किसमें नहीं लगे, किस भाग में वह उगी और बढ़ती तो है पर अब मुरझा रही है, इत्यादि-इत्यादि। इसी तरह वे इस बात को जान जायेंगे कि खेत के किस भाग में गोवंश के गोबर और मूत की खाद की ज़रूरत है, किस भाग में हड्डी की खाद की ज़रूरत है, किस भाग में लकड़ी की राख की खाद चाहिए, और किस भाग में खनस्थान की

भूमि में गेहूँ पैदा करनेवाले गुण होते हैं, किसीमें गन्ना, धान इत्यादि। जाँच-पड़ताल से यह बात किसान को मालूम होती है कि गेहूँ या आलू की अधिक माँग होने के कारण वहाँका किसान यदि चाहे तो अपने जुवार और बाजरे को पैदा करनेवाले खेत में जुताई और खाद की बदौलत गेहूँ और आलू भी पैदा कर सकता है। किसान अपने खेतों की दशा जानकर उनमें उचित हेरफेर भी कर सकते हैं। खेतों से जो उपज ली जाती है वह खेती के पेटों से संचित किये हुए अपने भोजनों को खा-पी कर ही पैदा होती है। इस तरह हर फ़सल के साथ धरती के गर्भ के जो भोजन खर्च होते रहते हैं उनको पूरा करते रहने से ही धरती उपजाऊ और उर्वरा रह सकती है। किसान अपने खेतों को भाँति-भाँति की खाद देकर उनमें फ़सलों के भोजनों की मात्रा को काफ़ी बनाये रखने का निरन्तर जतन करते रहें तो फसल सुधरकर बहुत अच्छी होती जा सकती है।

२. खेतों की उचित जुताई

खेतों से बढ़िया और अधिक उपज पाने के लिए जिस तरह उनके गर्भ में पौधों के ज़रूरी भोजनों का काफ़ी बनाये रखना बहुत जरूरी है, ठीक उसी तरह खेतों की उचित और काफ़ी जोताई करना भी बहुत ज़रूरी है। गेहूँ, अलसी, तिल, कपास, बाजरा आदि को बोने के पहले खेतों को कितने गहरे जोतना चाहिए, इस बात को भी जानना किसानों के लिए बहुत ज़रूरी है।

अच्छी जुताई के लिए किसानों को बढ़िया और बलवान बैल चाहिएँ। इसके लिए गौओं का उचित रूप से पालन किया जाना चाहिए। आज दिन पच्छाहीं देशों के किसान की गौ नित्य तीस-पैंतीस सेर दूध और दो-ढाई सेर मक्खन देती है। ऐसी गौवें उन देशों में करोड़ों की तैयार

की गई हैं और की जा रही हैं। यह सब उनके गोपालन की अच्छी विधि का फल है। इसलिए हमारे गाँवों में गोपालन में पूरा सुधार करने की ज़रूरत है। गोवंश का वध रोकने की भी ज़रूरत है।

३. अच्छे बीजों की बोआई

बढ़िया और अधिक उपज पैदा करने के लिए उत्तम बीज भी ज़रूरी है। हमारे किसान बीज की उत्तमता पर टुक ध्यान नहीं देते। उन्हें जैसा बीज मिलता है वैसा ही वे बो देते हैं। वह सड़ा होने के कारण जब उगता नहीं तब माथे पर हाथ रखकर रोते हैं। किसानों को बीज देने का जो जमींदार साहूकार व्यवसाय करते हैं उनका ध्यान बीज की उत्तमता पर तनिक भी नहीं रहता। उनका ध्यान इसी बात पर रहता है कि किसान को बीज किस तरह कम नापा जाय और वसूली के समय उससे किस तरह अधिक नाप लिया जाय। इसलिए उत्तम-से-उत्तम बीज पैदा करने का जतन करना चाहिए।

४. खड़ी फ़सल की देखभाल

फसल जबसे उगती है तबसे लगाकर उसके पककर घर पर आने तक उसकी पूरी-पूरी देखभाल होनी चाहिए। खेतों में जब फ़सल खड़ी रहती है तब खेतों में चल-फिरकर देखें कि खेत के किस भाग में फसल भलीभाँति उगी है, किस भाग में वह उगी ही नहीं, किस भाग में वह भलीभाँति बढ़ी है, किस भाग में वह बढ़ी ही नहीं, किस भाग में उसमें दाने काफ़ी लगे हैं, किसमें नहीं लगे, किस भाग में वह उगी और बढ़ती तो है पर अब मुरझा रही है, इत्यादि-इत्यादि। इसी तरह वे इस बात को जान जायँगे कि खेत के किस भाग में गोवंश के गोबर और मूत की खाद की ज़रूरत है, किस भाग में हड्डी की खाद की ज़रूरत है, किस भाग में लकड़ी की राख की खाद चाहिए, और किस भाग में खरपात की

खाद चाहिए, इत्यादि-इत्यादि । इसके अनुसार अपने खेतों में खाद देकर उनके गर्भ में पौधों के भोजनों का काफ़ी मात्रा में पैदा कर देने का काम करते रहें । खेतों के पेटों में उचित रूप में जाकर वहाँ पौधों के भोजन तैयार करनेवाली सामग्री—गोवंश का गोवर, मूत, हड्डी और खरपात—हमारे देश में अभी बहुत है और उसकी बढ़ती भी की जासकती है । मूर्ख किसान गोवर के तो कंड़े बनाकर जला डालते हैं, और खरपात को जलाकर ताप डालते हैं ।

किसानों को अपनी फसलों को बोकर नगरों में मेहनत-मजूरी करने को चले जाना चाहिए । खेतों में चल-फिरकर देखभाल करते रहना चाहिए कि उन्हें फसलों के बढ़ने-पकने का हाल मालूम हो ।

५. उपज को बढ़िया करने और बढ़ाते रहने की भारी लालसा

खेती पर किसान का सब तरह से अधिकार हो । जब यह निश्चय हो कि खेत के सुधर जाने पर खेत छिन न जायगा तब किसान हर तरह पर खेती की बढ़ती का जतन करता रहेगा । दरिद्रता भी इस लालसा में बाधक होती है । भूखों को हौसला नहीं होता । इसलिए पहले उसकी दशा भी कुछ सुधर ले तभी यह लालसा बढ़ सकती है ।

व्यवसाय-पंचायत का यह कर्तव्य है कि देखे कि गाँव के किसान इन पाँचों बातों का पूरा पालन करते हैं या नहीं और अगर न करते हों तो उनके लिए ऐसे साधन पैदा करे कि हर तरह पर खेती सुधर जाय । इसके लिए पंचायत को खेती सम्बन्धी सब तरह के साहित्य से काम लेना चाहिए । इस ग्रन्थ में यदि हम उन विषयों का विस्तार करें तो इसका कलेवर बहुत बढ़ जायगा । हम तो यहाँ वही बातें देते हैं जिन्हें हम मुख्य समझते हैं और जिनके द्वारा हम समझते हैं कि किसान तरक्की की राह पर चल पड़ेगा ।

खेतों का छोटा-छोटा होना, या ऐसे छोटे टुकड़ों में बँट जाना कि उनका अलग खेती करना ज्यादा खर्च और मेहनत की बात होजाय, खेती के सुधार में बाधक होता है। गाँव की किसान सभा इस बारे में आप बन्दोबस्त करेगी कि जिन लोगों के खेत दूर-दूर पड़ गये हैं वे आपस में उचित समझौता और अदला-बदली करके ऐसा करलें कि हर किसान के खेत पास-पास होजायँ जिसमें कि खेत की रखाई में, पैदावार की देखभाल में और खाद की ढुलाई आदि में किफ़ायत पड़े और सिंचाई भी सुभीते से हो सके। जब सारे खेत इकट्ठे होते हैं तब बाड़ बांधने में भी सुभीता होजाता है।

: १९ :

खाद का संग्रह और उपयोग

हमारे देश में गाड़ियों में भरकर के हड्डी और कराचियों में भर-भर कर तेलहन विदेशों में चला जाता है। पेलकर तेल भाँति-भाँति के कामों में आता है, खली और हड्डी वहाँकी धरती को उपजाऊ बनाती है, इस तरह हमारे देश से उत्तम-से-उत्तम खाद विदेशों को चली जाती है। अपने घर भी हम खाद की रक्षा नहीं करते, मैदान में पखाना फिरकर चारों ओर गन्दगी फैलाते हैं, और उत्तम खाद को अपने लिए विप बनाकर धरती को उससे वंचित रखते हैं। गोबर पाथ-कर चूल्हे में जला देते हैं। हम सब तरह से खाद का दुरुपयोग करते हैं।

अपने देश की हड्डियाँ धरती के भीतर अगर हम बिना पीसे भी गाड़ दें तो धरती को लाभ पहुँचावेंगी। कपास से जो बिनौला निकले उसका तेल हम खाने के काम में लावें और खल मवेशियों को खिलादें जिनसे कि हमें गोबर मिलता है और हम खेत में, गाड़ी में और सिंचाई में काम लेते हैं। गाँव में घरों को झाड़-बुहारकर जो कूड़ा हम घूरों पर डालते हैं और उसके आसपास गन्दगी फैलाते हैं, उसे गड्ढों में भरें और खाद बनाकर खेतों में डाल दिया करें। घास और तरह-तरह का फूस उगाकर रेतीली धरती को हम खेती लायक बना सकते हैं।

हम लोग अपने नित्य के शौच के लिए मैदान की हवा को बिगाड़ देते हैं। इसके बदले चाहिए यह कि जिस खेत में खाद देना है उसमें डेढ़ हाथ गहरी और बिलस्त भर चौड़ी और खेत की लम्बाई भर लम्बी नाली

खोद दें और चार-पाँच चलती-फिरती टट्टियाँ लगादें, जिसमें लोग परदे के साथ बैठें और फरागत होलेने पर मैले पर मिट्टी डाल दिया करें। जब नाली का टट्टी के भीतरवाला हिस्सा भर जाय तो टट्टी खसकाकर नाली के खाली हिस्से पर कर दी जाय। जब सारी नाली भर जाय तो उससे दो हाथ के समानान्तर दूसरी नाली खोद दी जाय। इस तरह एक खेत-का-खेत उत्तम रीति से खाद से भर जायगा और उस खेत में जोताई-बोआई होने के समय तक खाद पक जायगी और अनेक वर्षों के लिए उस खेती की धरती मज़बूत होजायगी। स्वास्थ्य-रक्षा और व्यवसाय-पंचायतों का यह कर्तव्य है कि मिलजुलकर इस तरह गाँव की सारी खेती को और तन्दुरुस्ती को सुधरवा दें।

उपले जलाना अपने गोधन को बरबाद करना है। उपलों के बदले लकड़ी जलाना सबसे उत्तम बात है। स्वास्थ्य और रक्षा-पंचायत को चाहिए कि ऊसर बंजर धरती पर, ताल-पोखरों के चारों ओर, गलियों और सड़कों के दोनों ओर, और चौपाल के आसपास भिटों पर, दरवाज़ों के पास, मन्दिरों और मस्जिदों के पास, जहाँ कहीं बिना किसी हानि के पेड़ लग सकते हों वहाँ, नीम आम आदि के पेड़ लगवा दें कि जिससे जलाने को काफी लकड़ियाँ मिलने लगें। लकड़ी के लिए हर पेड़ पीछे, जो कटे, बीस पेड़ लगाने का नियम करलें। इससे वनस्पति की सम्पत्ति बढ़ेगी और जलाने को लकड़ियाँ मिलेंगी। सरकारी जंगल का कानून भी बहुत जगह लकड़ी के मामले में बाधक है, वहाँ पशु चरने भी नहीं पाते। इस रुकावट को हटाये बिना काम न चलेगा।

जिसमें खेत की पोली मिट्टी भरी हो जो पेशाव को सोख ले। यह बहुत कीमती खाद होगी, जिसका थोड़ा-थोड़ा अंश खेत में देकर जोत देने से खेत की ताक़त बढ़ जायगी। जो गोबर इस नाली के पास से बटोर लिया जाय वह गोबरवाले गड्ढे में जल्दी-से-जल्दी डाल दिया जाया करे जिससे कि ढोरों के पास गन्दगी न रहे, नमी न रहे और मक्खियाँ न भिनकें। मवेशी की हालत अच्छी रखने के लिए उनके नीचे पूरी सफ़ाई रखना ज़रूरी है।

गऊ-बैल के गोबर और मूत की खाद कई प्रकार से बनाई और खेतों में डाली जाती है। दो-एक प्रकार की चर्चा यहाँ की जाती है :—

(१) तीन फुट गहरे और आवश्यकता के अनुसार लम्बे-चौड़े तीन छाँहदार गड्ढे बनाने चाहिएँ। एक गड्ढे में जवान और दुरुस्त गऊ-बैलों के गोबर और मूत से भरा भोजन प्रतिदिन डालते रहना चाहिए। दूसरे गड्ढे में बूढ़े और बीमार पशुओं के गोबर और मूत से भरा भोजन डालते रहना चाहिए। तीसरे गड्ढे में बच्चों का गोबर डालते जाना चाहिए। ये गड्ढे जब भर जायें तब उनको मिट्टी से तोप देना चाहिए। दस महीने में वह खाद पक जायगी। तब उसे निकाल और बारीक करके खेत में डाल देना चाहिए। खाद को खेत में ढेर के रूप में न पड़े रहने देना चाहिए। उसे खेत में डालकर हल चला देना चाहिए, जिससे वह खेत के नीचे उसके पेट में पहुँच जाय। कुछ लोग खाद के ढेर को खेत में कई दिनों तक डाल रक्खा करते हैं। ऐसा करने से धूप के मारे खाद की उपजाऊ शक्ति के तत्त्व उड़ जाते हैं। ध्यान रहे कि गोवंश के गोबर के साथ घोड़े-घोड़ी की लीद न मिलने पावे। लीद की तासीर गरम होती है। उसकी खाद अलग गड्ढे में रक्खी जाय। वह पन्द्रह

महीने में पकती है। जब पक जाय, तब वह भी खेतों में डाली जाय। उससे भी लाभ होता है।

गऊ और बैलों के लिए प्रतिदिन गोजन का बिछौना कर दिया जाना चाहिए। ऐसा करने से पशुओं को आराम मिलता है और उनका मूत उस गोजन के साथ सुगमता से खाद बनाया जा सकता है।

(२) दूसरी रीति यह है कि रोज का गोबर और मूत से भरा गोजन खेत में फुट-डेढ़फुट गहरी नाली खोदकर गाड़ दिया जाया करे। ढोरों को खेतों में रखने का सुभीता हो तो ऐसा करना सहज है।

(३) खेतों की मिट्टी खोदकर और उसे महीन करके पशुओं के रहने की जगह में बिछा देना चाहिए। जब वह उनके मूत से भींग जाय तब उसे खेत में खाद की तरह डाल देना चाहिए। फिर उसी जगह पर दूसरी मिट्टी लाकर डाल देना उचित है। ऐसा करते रहने से गोवंश के मूत की खाद खेतों में पहुँचती है और उससे खेतों की उपजाऊ शक्ति की रक्षा और वृद्धि होती रहेगी।'

है, वह सब जानते हैं। उसकी हड्डी तक खेत की उपज बढ़ानें के काम में आती है। हड्डियों को चमारों से पिसवाकर खेतों में डालने से वे खेत की उपज को बढ़ाती हैं। आज ये हड्डियाँ सात समुद्र और तेरह नदियों के पार जाकर यूरोप और अमेरिका के किसानों के खेतों की खाद बनती है। वे इतना खर्च उठाकर भी उन्हें खरीदते हैं। इसे बिलकुल बन्द कर देना चाहिए।

खेत को खासी बढ़िया खाद देकर उसकी उत्तम जुताई कर लेने के बाद उसमें जब चुना हुआ एक जाति का सुन्दर और रोग-रहित बीज बोया जाता है, तब वह भलीभाँति उगता है। खेतों के नीचे तैयार किये हुए अपने भोजनों को जड़ों द्वारा चूसकर पौधे बढ़ते हैं और तब वे खूब उपज देते हैं। फसल को काटने के बाद खेत म हल चला दो। जहाँ फसल बिलकुल उगी नहीं थी, वहाँ हर तरह के पेड़ों की पत्तियाँ सड़ाकर उनकी बनी हुई खाद डालो; जहाँ फसल कम उगी हो, वहाँ गोवंश के गोबर की पकी हुई खाद डालो; जहाँपर फसल खूब बढ़ी हो, पर उसमें दाने कम लगे हों, वहाँ पर हड्डियों को पीसकर उसकी बनाई हुई खाद डलवा दो। इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानों पर उसकी आवश्यकता के अनुसार खाद देने से किसानों को दूसरे वर्ष खासी उपज मिलेगी।

खेतों में जो दरारें फटती हैं वे भी खड़ी फसल को बहुत नुक़सान पहुँचाती हैं। बन सके तो इन दरारों को भरने का जतन करना चाहिए।

फसल को काटने, मींजने और उड़ाने में जो असावधानी, उपेक्षा या लापरवाही किसान करते हैं उससे माल बहुत घटिया बनता है। उसमें मिट्टी और कचरा बहुत रहता है। ऐसा माल जब बाजार में जाता है तब उसकी पूरी-पूरी क़ीमत नहीं मिलती। उनसे सस्ते दामों में खरीद-कर रोज़गारी लोग उसे साफ़ करते हैं। फिर उसे मँहगे दामों पर बेंचकर

ख़ासा मुनाफ़ा उठाते हैं। किसानों को चाहिए कि अपने माल को साफ़-सुथरा बनाया करें, जिससे वही लाभ जो बनिये मार खाते हैं किसानों को मिला करे। आशा है किसान इस बात को जानकर अब माल तैयार करने में लापरवाही नहीं करेंगे। जितना माल तैयार करें वह बहुत अच्छा और साफ़ हो। उससे किसानों को ख़ासा लाभ होगा। जैसे गेहूं के साथ चना मिलाकर बोते हो और छानते समय इतनी असावधानी रखते हो कि गेहुँओं में चने रह जाते हैं, अबसे उन्हें ऐसा छाना करो कि गेहुँओं में एक दाना भी चने का न रहने पाये। गेहुँओं को ऐसा छानो कि उनमें बड़े-बड़े दानों के गेहूं अलग होजायें और छोटे-छोटे दानों के अलग। अच्छा माल देखकर ख़रीदनेवाले किसानों को अच्छी क़ीमत देंगे और इस प्रकार किसानों को अधिक लाभ होगा।

फसल तैयार कर लेने पर उतनी ही बेचो जितनी लगान देने को बेचनी चाहिए। बाक़ी फ़सल को बावन हिस्सों में बाँटकर हर बाज़ार को एक हिस्सा बेचते रहोगे तो किसानों का माल सब तरह के भावों में बिकेगा और उससे अच्छा लाभ होगा। और, सब माल को एकदम बेच दोगे, तो बाज़ार-भाव सस्ता होने के कारण हानि होगी। बाज़ार-भाव तेज़ बहुत कम रहता है। तेज़ी के लोभ से सब माल मत बेच डालो। बीज को भाव के लोभ से बेच डालोगे तो बोने के समय बहुत मँहगा बीज ख़रीदना पड़ेगा, और बीज अच्छा भी नहीं मिलेगा।

अलसी इस प्रकार अदल-बदलकर फसल बोते रहना चाहिए। किसानी महकमा इस विषय में हर साल नई-नई बातें खोजता रहता है। किसान अगर किसानी महकमे के अफ़सरों से इस बात की सलाह करते या किसानी के अखबार और पुस्तकें पढ़ते-सुनते रहेंगे तो उनको इस विषय की बहुत-सी लाभदायक बातें मालूम होती रहेंगी।

चिलम पीने में अथवा यों ही गप्प मारने या झूठे मुकदमे चलाने का रोज़गार करनेवालों के फंदे में फँसकर जो अपना समय नष्ट करते हैं उसे अब बन्द करदें। पापियों के साथ थोड़े-से दस-पाँच रुपये के लोभ में पड़कर झूठी गवाही देने का पाप ही मिलेगा। जब झूठी गवाही देने जायँगे तब किसानों के खेत की फ़सल खराब होगी। इसलिए उन दुष्टों का साथ वे छोड़ दें और रात-दिन किसानी की उपज बढ़ानेवाली नई-नई युक्तियों की खोज में लगे रहा करें।

: २० :

सिंचाई[१]

जो जल बरसता है वह जहाँ-का-तहाँ रहता नहीं। कुछ पानी बहकर नालों और नदियों द्वारा समुद्र में पहुँचता है, कुछ पृथ्वी सोख लेती है, कुछ गर्मी से भाफ होकर वायु में उड़ जाता है। कितना पानी बह जाता है, कितना भूमि सोख लेती है और कितना भाफ बनकर उड़ जाता है—यह ठीक-ठीक नही कहा जासकता; क्योंकि इन बातों का सम्बन्ध भूमि के ढाल, भूमि की जाति और स्थानीय उष्णता पर अवलम्बित है। यथा समतल भूमि की अपेक्षा ढालू जगहों का पानी अधिकांश बह जाता है, पडुवा भूमि की अपेक्षा काली "मार" मिट्टी अधिक पानी सोखती है, बरसात की अपेक्षा गर्मियों में पानी भाफ बन-कर अधिक उड़ता है। इसके सिवाय जो पानी धीरे-धीरे नन्ही-नन्ही बूँदों में बरसता है उसे भूमि अधिक सोख लेती है, पर जो पानी बड़ी-बड़ी बूँदों में मूसलाधार बरसता है वह अधिकांश बह जाता है। सूखी ज़मीन बहुत जल्द और अधिक मात्रा में पानी सोखती है, पर गीली ज़मीन बहुत धीरे-धीरे और थोड़े परिमाण में पानी सोखती है। जोती हुई ज़मीन में परती ज़मीन की अपेक्षा अधिक पानी पैवस्त होता है। घास से दबी हुई भूमि में पानी बहुत देर में समाता है। मतलब यह कि इन्हीं

१. [illegible]—कानपुर के पं० गौरीशंकर भट्ट द्वारा प्रकाशित तथा डा० बालकृष्ण गोपाल श्रीवास्तव द्वारा लिखित "अकाल से बचने के उपाय" नामक पोथी के आधार पर यह अध्याय लिखा गया है।

प्रकार की बहुत-सी बातें हैं, जिससे यह बतलाया नहीं जासकता कि वर्षा का कितना पानी बह जाता है, कितना भूमि सोख लेती है और कितना उड़ जाता है। इतना तो स्पष्ट है कि वर्षाजल का बहुत बड़ा भाग बेकार चला जाता है। गर्मी द्वारा पानी का भाफ बनना अनिवार्य है, पर वह जानेवाला पानी रोका जासकता है; इसलिए यदि वर्षाजल बह न जाने पावे, जो बरसता है वह सब हमारे खेत सोख लें, तो खेतों में बहुत कुछ ओद बनी रह सकती है और इससे अकाल का भी बचाव होसकता है।

भारत में पानी बरसनें के चार महीने हैं—आषाढ़, सावन, भादों और क्वार। अंग्रेज़ी महीनों के हिसाब से १५ जून से १५ अक्तूबर तक विशेष रूप से जल बरसता है, इन्हीं चार महीनों में एकत्र-समय का नाम वर्षा या बरसात है। इसी मौसिम में वार्षिक वर्षा का सौ में से लगभग ९० भाग पानी बरस जाता है। खेती के लिए आषाढ़ और क्वार में पानी बरसना अत्यन्त आवश्यक है। वर्षा के आरम्भ-समय और वर्षा के अन्त-समय में यथोचित पानी बरसना बहुत जरूरी है। आख़ीर में (क्वार में) यदि अधिक वर्षा न भी हो, केवल दो-तीन इंच पानी होजाय तो काफ़ी है। पर आरम्भ में (आषाढ़ में) अच्छी वर्षा का होना ज़रूरी है। यदि ऐसा न हो तो अकाल का पड़जाना बहुत सम्भव होजाता है। वर्षा-काल में यदि २३ इंच तक पानी बरस जाता है तो क़हत (अकाल) नहीं पड़ता। परन्तु वर्षा का आधा पानी निरर्थक चला जाता है। २३ इंच वर्षा में केवल १२ इंच पानी यथार्थ में खेती के काम आता है और ११ इंच बह जाता है। यह १२ इंच पानी खेती को काफ़ी होजाता है, इसलिए कोई ऐसा यत्न किया जाय कि वर्षा-जल का एक बूंद भी खेती से बाहर न जाने पावे तो २३ इंच की जगह

१२ इंच वर्षा से भी काम चल सकता है। अकाल से बचने का क्रियात्मक और इस देश के अनुकूल मूल उपाय यह है कि वर्षा के पानी का एक बूंद भी बेकाम न बहने पावे—सब-का-सब भूमि में समा जावे।

खेतों की मेंड़ बांधकर उनका पानी रोकने से जो लाभ होता है उससे हमारे किसान भाई अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं। देहातों में बहुत-सी ऐसी कहावतें प्रचलित हैं, जिनमें खेत की मेंड़ बाँधकर पानी रोकने के गुण और लाभ बतलाये गये हैं। जैसेः—

(१) खेत बांध दस जोतन देय।
दस मन बीघा हमसे लेय॥

अर्थात् खेत की मेंड़ बांध देवे, जिससे उसका पानी बाहर न जाने पावे, फिर दस बार ख़ूब जोत डाले, तो दस मन अन्न प्रति बीघा अवश्य पैदा होगा।

(२) थोड़ै जोतै बहुत गहबे, ऊंचे बांधे आड़।
ऊँचे पर खेती करे, पैदा होवे भाड़॥

अर्थात् खेती के लिए ज़मीन तो बहुत लेले, पर उसे जोते बहुत कम, और जिस तरफ़ खेत ऊँचा हो उसी तरफ़ मेड़ बांधकर आड़ करदे और खेत भी सबसे ऊँची ज़मीन पर हो कि उसका पानी बह जाया करता हो, तो ऐसे खेत में क्या उपजेगा? कुछ नहीं।

(३) पानी बरसे बह न पावे।
तब खेती का मजा दिखावे॥

अर्थात् मेंड़ों की सदा रक्षा करते रहना चाहिए जिससे बरसात का पानी बहने न पावे। वास्तव में वही बुद्धिमान किसान है जिसके हाथ में कुदारी इसी हेतु बनी रहती है कि उससे वह टूटी हुई मेंड़ों को सुधारता है।

(५) खेती बेपनियाँ जोते कब ?
ऊपर कुवाँ खोदावे तब ।।

अर्थात् ऐसा खेत जिसमें पानी का सुभीता न हो उस समय तक न जोतना चाहिए जबतक कि उसके ऊँचे स्थान पर कुवाँ न खुदवा ले।

(६) खेत बेपानी बुड्ढा बैल।
सो किसान साँझही से गैल ।।

अर्थात् जिस किसान के पास बुड्ढे बैल हैं (जिनसे जोताई अच्छी तरह नहीं होसकती) और खेत में पानी का प्रबन्ध नहीं, वह किसान खेती क्या कर सकता है ? उसे ज़रूर खेती मे हानि होगी और वह गाँव छोड़कर जल्द ही भाग जायगा।

(७) गेहूँ आवे बाल। जब खेत बनावे ताल।

अर्थात् गेहूँ की पैदावार तब उम्दा होती है जब खेत में इतना पानी भरदे कि वह तालाब के समान होजाय।

(८) तोड़ दीन क्यारी। खेत का उजारी ।।

अर्थात् जब खेत की मेंड़ टूट जाती है, तो खेत की पैदावार कम होजाती है, मानों खेत उजड़ गया।

(९) पानी भरिये खेत में, घर में भरिये दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम ।।

अर्थात् चतुराई इसीमें है कि खेत की मेंड़ बाँधकर उसमें पानी भरे, जिससे खूब पैदावार हो और घर में रुपये भर जायँ। तब ख़र्च करना बुरा नहीं।

बन्धी बाँध

खेतों में मेंड़ बाँधने से बहुत लाभ होता है। पर मेंड़ समतल खेतों में सुगमता से डाली जा सकती है। बहुत ऊँची-नीची भूमि में मेंड़ की जगह बँधी बाँधना सुभीते का काम होता है। जिन किसानों के खेत ढालू भूमि में हों, उनको अवश्य ही पानी रोकने की बड़ी कोशिश करनी चाहिए, क्योंकि अधिक ढालू होने के कारण खेत पानी कम सोख पाते हैं और उनमें ओद कम रहता है। हर बरसात में पानी का बहाव भूमि के उपजाऊ पदार्थों को बहा लेजाता है और भूमि से खाद इत्यादि पौष्टिक वस्तुयें निकल जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि ढलवाँ खेत की हैसियत प्रतिदिन गिरती जाती है और अन्त में भूमि कंकरीली होकर खेती के काम की नहीं रहती। किसी नाले या 'झोर' के उस स्थान को मिट्टी के बन्ध से रोक देते हैं जहाँसे पानी बहकर निकल जाता है। इस विधि से एक विस्तृत क्षेत्रफल का पानी बेकाम बह जाने से रुक जाता है और तालाब बन जाता है। वर्षा के बाद इस जमा किये हुए पानी को बन्ध से बाहर निकाल देते हैं और डूबी हुई भूमि को पानी से खाली कर देते हैं। ज्यों-ज्यों ज़मीन खाली होकर जोतने योग्य होजाती है त्यों-त्यों उसमें बोवाई होती जाती है।

बन्धी डालकर खेती करने में निम्नलिखित लाभ हैं :—

की सूखी पत्तियाँ, गोबर और अन्य प्रकार की सड़ी-गली चीजें पानी अपने साथ बहा लाता है, ये सब चीजें बन्धी में जमा होकर एक प्रकार की खाद होजाती है। इस प्रकार बन्धी के भीतर बिना खाद डाले स्वयं खाद पड़ती जाती है।

(३) तीन-चार मास बराबर पानी भरा रहनें से बन्धी के भीतर नाना प्रकार के जीव—घोघा, मछली, मेंढ़क, केंचुवे इत्यादि—उत्पन्न होजाते हैं, जो पानी निकल जाने पर उसी भूमि में सड़ जाते हैं। इससे भी उस भूमि की उर्वरा-शक्ति बढ़ती है।

(४) चार महीने तक बराबर पानी भरा रहने से भूमि खूब पानी सोख लेती है, इसलिए ओद खूब रहता है।

(५) वर्षा का जो पानी बेकाम बह जाता था उसका बहुत कुछ उपयोग खेती में होजाता है।

(६) घटिया किस्म की भूमि रेव पड़ते-पड़ते बढ़िया किस्म की होजाती है।

(७) बन्धी की जमीन में केवल एक बार जोतकर बो देने से वैसी ही पैदावार होती है जैसी साधारण खुली हुई भूमि में दस बार जोतने से होती है; इसलिए परिश्रम और समय दोनों की बचत होती है।

(८) सबसे बड़ा लाभ यह है कि बन्धी में एक विस्तृत भूमि का पानी बहकर जमा होजाता है, इसलिए बन्धी में पानी की आमद काफ़ी हो तो थोड़ी वर्षा में भी बन्धी भर जाया करती है और उसमें अच्छी फसलें पैदा होती हैं। यदि पानी की आमद काफ़ी न भी हो तो भी खुले हुए खेतों की अपेक्षा उसमें अधिक ओद रहता है और सूखे के साल में कुछ-न-कुछ पैदा हो ही जाता है।

तालाब बनाकर आबपाशी करने से नीचे लिखे लाभ होते हैं:—

(१) वर्षा का पानी जो बेकाम बह जाता है वह सब उपयोग में लाया जासकता है और इस पानी का एक बड़ा भाग खेती के काम आ-जाता है।

(२) स्वतन्त्रतापूर्वक जब चाहें सिंचाई कर सकते हैं और समय-समय पानी ले सकते हैं।

(३) सब प्रकार की फसलें उत्पन्न कर सकते हैं।

(४) इन तालाबों से सींचने के सिवाय मनुष्यों और पशुओं का भी निस्तार होता है।

(५) सिंघाड़ा आदि की पैदावार होती है।

यह बात निश्चित है कि बन्धी की अपेक्षा तालाब में जितना पानी लेना चाहें ले सकते हैं और उससे अनेक प्रकार की चीज़ें पैदा कर सकते हैं। बन्धी में केवल परिमित चीज़ें—जैसे गेहूँ, जौ आदि—बो सकते हैं। उसके सिवाय बन्धी में जो पानी भरता है उसे बरसात बाद बेकार निकाल देना पड़ता है। यदि यही पानी सींचने के काम में लाया जासके, तो बन्धी के भराव से तिगुना-चौगुना क्षेत्रफल उससे सींचा जासकता है। बन्धी बनाने में दो बड़े दोष हैं। एक यह कि बन्धी बनानेवाले को वर्षा-काल में बन्धी की बराबर देख-भाल करनी पड़ती है, और अपने साथ काम करनेवालों की पर्याप्त संख्या प्रस्तुत रखनी पड़ती है। दूसरा यह कि यदि पहले ही साल एकदम बहुत वर्षा होजाती है कि जिससे बन्धी एकाएक भर जाती है

अधिक पानी के निकलने का रास्ता अथवा निकास स्थान) का पहले से ही ठीक प्रवन्ध करले तो उनको न इतनी अड़चन पड़ेगी और न वन्ध टूटने की हानि ही उठानी पड़ेगी।

तालाव के भीतर भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न गहराई का पानी भरा होता है। जहाँ जितना गहरा पानी होता है वहाँकी भूमि पानी के किनारे की भूमि से उतनी ही नीची होती है। जैसे पानी के किनारे से दस फुट के अन्तर पर गहरा पानी है और बीस फुट पर पाँच फुट गहरा पानी है, तो पानी के भीतर की भूमि पानी के किनारे की भूमि से दस फुट के अन्तर पर दो फुट नीची होगी और बीस फुट के अन्तर पर पाँच फुट नीची होगी। विना पानी भरी भूमि की इस प्रकार की ऊँचाई-निचाई जानने की रीति को "पंसार करना" अथवा "समीकरण-विधि" कहते हैं।

पाताड तोड़ कुएँ

बहुधा कुएँ के ऊपरी जलसोत कम पानी देनेवाले होते हैं और सूखे के सालों में ये सोते जलहीन होजाते हैं। इस कारण ऐसा कुआँ सींचने के लिए सर्वथा अनुपयोगी होजाता है। इस दोप को मिटाने के लिए बहुत अच्छी एक युक्ति निकाली गई है। तीन या चार इंच के फांस (व्यास) का नल कुएँ में डालना आरम्भ करते हैं और उसे बराबर भूमि में नीचे धँसाते जाते हैं, यहाँतक कि नल भूमि के उन सोतों तक पहुँच जाता है जिनको 'पाताल-सोत' कहते हैं। बम तोड़कर (नल से उबल-उबलकर) पानी कुएँ में आने लगता है। ऐसे कुएँ बड़े पनियार होते हैं और सूखे में भी लहर-दरयाव बने रहते हैं। तीन-चार चरसों के चलते रहने पर भी वे खाली नहीं होते।

अबतक कोई ऐसा सहज उपाय नहीं निकला कि जिसके द्वारा कम खर्च करने पर भी सन्तोपजनक पानी की मात्रा कुओं से प्राप्त की जा

सकें। एक चरसा और एक जोड़ी बैल से एक दिन में अधिक-से-अधिक एक पक्के बीघे की सिंचाई की जा सकती है, इसलिए इस रीति के अनुसार दो-तीन एकड़ से अधिक खेती हो नहीं सकती। रहट में चरसा की अपेक्षा कुछ अधिक पानी निकलता है, पर रहट में चरसा से अधिक झंझट भी है। इसके सिवाय रहट विशेषतः उन स्थानों में विशेष सुभीते का है जहाँ पानी निकट आता है।

कुएँ से आबपाशी करके खेती करने में बहुत-सी सुविधायें और लाभ भी हैं। कुएँ का पानी दूसरे पानी से अधिक बलकारक और कृषि को पौष्टिक होता है। एक किसानी कहावत है कि "माँ के दूध से अच्छा क्या?" अर्थात् जिस प्रकार बालक के लिए माता का दूध ही सब दूधों से अधिक पौष्टिक और गुणकारी है उसी प्रकार खेती के लिए कुएँ का पानी बहुत लाभदायक होता है। कुछ ऐसे फल और जिन्सें भी हैं जो कि कुएँ की सिंचाई से ही अधिक अच्छी होती हैं। यद्यपि कुएँ की सिंचाई से बहुत-से सुभीते और फ़ायदे हैं तथापि इस प्रकार की सिंचाई इस देश की दशा के अनुकूल नहीं, कुआँ खोदने में खर्च भी अधिक पड़ता है और उसमें अधिक खेती भी नहीं होती।

नहरें

सदा बहनेवाली बड़ी-बड़ी नदियों में बन्ध लगाकर उनका पानी रोका जाता है, और एक बहुत बड़ी जल-राशि (पानी का ज़ख़ीरा) जमा करली जाती है। इससे नहरें निकाली जाती हैं। नहरें केवल समतल भूमि में ही सुगमता से जारी की जा सकती हैं, बहुत ऊँची-नीची और बालू जगहों में वे काम नहीं देतीं।

चाहे जैसे अवस्था हो, यदि उसपर बराबर पानी भरा करेगा तो एक-न-एक दिन वह भूमि खेत के योग्य होजायगी। तथापि उचित भूमि और अनुकूल स्थान पर बन्धी बनाने से ख़र्च कम होता है। लाभ अधिक और बहुत जल्द होने लगता है। इसके विपरीत अगर बुरी भूमि में अनुपयुक्त स्थान में बन्धी डाली जाती है तो ख़र्च अधिक पड़ जाता है और लाभ कम तथा अधिक देर में होता है। इसलिए सलाह की बात यह है कि बन्धी बनाने के पहले बन्धी की जगह और उसकी स्थानीय दशा पर विचार कर लेना चाहिए। बन्धी ऐसी होनी चाहिए कि जिससे अधिक फ़ायदा हो, और कम ख़र्च में तैयार होजाय। बन्धी की जगह चुनने में निम्नलिखित बातों का ख़याल रखने में बड़ा लाभ होगा :—

(१) जिस भूमि का बन्ध बनाया जाय वह "मार" अथवा "कावर" न हो।

(२) पडुवा भूमि पर बन्ध अच्छा होता है।

(३) बन्ध में पानी की आमद अधिक हो।

(४) जिस क्षेत्रफल का पानी बहकर बन्धों में जमा होता है वह 'मार' का हो, अथवा अधिक भाग 'मार' या 'कावर' का हो।

(५) गाँव का पानी, खोदे हुए खेतों का पानी, रहुनियों का पानी, घूरों और मैली जगहों का पानी यदि बन्धी में बहकर आये, तो अति उत्तम जानो।

(६) रेतीली, ऊसर और नोनियारी भूमि का पानी आने से बन्धी की भूमि खराब होजाती है। इसलिए ऐसे स्थान पर बन्धी न बनवानी चाहिए जहाँपर ऐसी जगहों से पानी आता हो।

(७) जिस स्थान में मिट्टी डाली जाती है, अर्थात् बन्ध पड़ता है,

वह सकरा (कम चौड़ा) और जहाँ पानी भरना है वह विस्तृत (फैला हुआ) हो।

(८) बन्ध इस प्रकार का हो कि मिट्टी कम पड़े और बन्ध बड़ा बने, साथ ही पानी बड़े क्षेत्रफल में भरे।

(९) बन्ध के भीतर की भूमि (जहाँ पानी भरना है) बहुत कम ढाल की हो।

(१०) बन्ध से अलग विस्तृत और उचित स्थान पानी के निकास के लिए हो।

(११) बन्धी के पीछे (यानी भराव की दूसरी ओर) ऐसी जगह हो कि यदि अवकाश मिले और पानी की आमद काफ़ी हो तो एक दूसरा बन्ध उसके पीछे बनवा सके।

(१२) वर्षा के बाद जो पानी बेकाम निकाला जाय उससे कुछ भूमि सींची जा सके।

(१३) बन्धी में पानी की ऊँचाई कम और फैलाव अधिक हो।

(१४) बन्धी की तजवीज के साथ उसकी लागत का भी अन्दाज़ा कर लिया जाय।

(१५) वह बन्धी जिसमें एक पक्के बीघा पानी भरने में १०) रु० खर्च का औसत पड़े, अच्छी है; पर २०) से अधिक न पड़ना चाहिए।

(१६) रुपया और सामान इत्यादि का पहले बन्दोबस्त कर लेना चाहिए; पीछे काम आरम्भ करना चाहिए।

बन्ध बनाने में नीचे लिखी बातें याद रखना चाहिएँ :—

जब औना चलने लगे तब बन्ध पानी मे कम-से-कम चार फुट ऊँचा निकला रहे।

(३) सौ-सौ फुट पर या कुछ न्यूनाधिक इतने ऊँचे बाँस गाड़ देने चाहिएँ कि जितनी ऊँचाई उस स्थान में रक्खी जाती है।

(४) आठवें भाग से लेकर १२ वें भाग तक बन्ध की ऊँचाई पंसार से अधिक कर देना चाहिए, जिसमे बैठक लेने (धँसने) पर भी बन्ध नीचा न होने पावे।

(५) प्रत्येक बाँस के दोनों ओर ढाल के फैलाव की खूँटियाँ गाड़ देना चाहिए।

(६) बन्ध का ढाल पानी के भराव और ऊँचाई से दुगना और पानी के भराव की दूसरी ओर का डेवढ़ा होना चाहिए।

(७) यदि बन्ध के भीतर कोई नाला आजाय तो उसपर मिट्टी डालने के पहले उसकी रेत निकाल डालना चाहिए।

(८) दो बाँसों के बीच का अन्तर एक भाग कहलाता है। बन्ध में इस प्रकार के कई भाग हों तो पहले एक भाग पर काम जारी करे, जब वह पूरा होजाय तब दूसरे पर काम लगावे।

(९) मगरमुँहा अथवा सिल्यूस (वह स्थान जहाँ से पानी निकाला जाता है) को मिट्टी डालने के पहले ही पूरा करलेना चाहिए।

(१०) मगरमुँहा या सिल्यूस की नींव पक्की (मजबूत) भूमि निकल आने पर भरी जानी चाहिए।

(११) निकास-स्थान या औना बन्ध से कम-से-कम चार फुट नीचा होना चाहिए।

(१२) यदि औना तंग या सकरा हो तो खुदवाकर विस्तृत कर देना चाहिए, जिससे भराव से अधिक पानी उससे निकल जाया करे।

(१३) वन्ध की मिट्टी जहाँतक हो सके भीतर की भूमि से ली जाय।

(१४) बंध के ढाल से कम-से-कम-३० फुट के अन्तर पर खन्तियाँ लगाई जावें।

(१५) बड़ी देखभाल इस बात की रखनी चाहिए कि बन्ध में ढेले न आने पावें, बल्कि जो मिट्टी डाली जाय वह चूरा हो।

(१६) मिट्टी इस तरह पड़नी चाहिए कि जब इकहरी डलियों की एक पुर्त (तह) बन्ध की कुल चौड़ाई और उस भाग की पूरी लम्बाई में पड़ चुके तब उसके ऊपर दूसरी डलिया पड़े।

(१७) पहले बन्ध के सिरों पर मिट्टी डलवाना चाहिए, फिर आख़िर में बीच के भाग में।

(१८) बन्ध के ऊपर की चौड़ाई समतल न रहे बल्कि महिपुश्त (मीनपृष्ठ वा मछली की पीठ के समान) हो और ढाल इस प्रकार रहे कि आधा पानी बन्ध में एक ढाल की ओर और आधा पानी बन्ध के दूसरे ढाल की ओर रहे।

(१९) बन्ध पर पानी एकत्र होकर न बहने पावे और न बन्ध पानी सोखने पावे। अर्थात् बन्ध में पानी न समाना चाहिए।

(२०) बन्ध पर दूब या कोई घास होने से मिट्टी नहीं कटती और बन्ध में पानी नहीं समाता। पहले वर्ष बन्ध की मिट्टी पर कोदों, सावां, कुटकी इत्यादि छिड़क देने से बन्ध की हिफ़ाज़त और फ़ायदा दोनों होते हैं।

(२) जिस जगह वन्ध पानी के ज़ोर से कट रहा हो उस स्थान में वृक्षों की पत्तीदार शाखें लगा देने से कटना वन्द होजाता है।

(३) वन्ध की तैयारी के वाद दो-चार वर्ष तक हर साल वर्षा समाप्त होने पर वन्ध के ऊपर की पंसार लेना चाहिए। जहाँ बैठक लेकर वन्ध अधिक धँस गया हो वहाँ और मिट्टी डलवाकर ठीक करा देना चाहिए।

(४) हर साल वरसात के पहले वन्ध की उन स्थानों की मरम्मत कर देना चाहिए जो पानी से कट गये हों।

(५) वर्षा में वन्ध के किसी स्थान में मिट्टी धँस जाने के कारण वहुधा गड्ढ़ा होजाता है और फिर उस गड्ढ़े में पानी समाना आरम्भ होजाता है, इसीसे वन्ध को वड़ी हानि पहुँचती है। इसकी मरम्मत फौरन करा देना चाहिए।

(६) वन्ध का पानी एकदम कभी न निकालना चाहिए।

(७) यदि अधिक वर्षा होने के कारण वन्धी एकदम भर जावे और औना (निकास-स्थान) से जितना चाहिए उतना पानी न निकल पावे तो मगरमुँहां भी खोल देना चाहिए।

(८) पानी निकल चुकने पर जव वन्ध विलकुल सूख जाय तो इस वात की अच्छी तरह परताल करनी चहिए कि वन्ध कहीं से दरका अथवा फटा तो नहीं है। यदि दरका हो तो दरार के दोनों ओर एक-एक फुट चौड़ी और लगभग तीन फुट गहरी नाली खोदे और सूखी चिकनी वारीक मिट्टी उस नाली में भरकर अच्छी तरह धँसवा दे। मिट्टी की कुटाई का तरीका यह है कि पहले एक वालिश्त की एक पुर्त्त मिट्टी डालकर मोगरियों की दुरमुटों से कुटवा दे। जव वह पुर्त्त खूव दव जाय तव दूसरी तह डाले और उसी प्रकार फिर क्रिया करे।

(९) चिकनी मिट्टी में यदि पीसन (भूसा, पयाल आदि के टुकड़े) मिला दिये जायँ तो इससे पानी की रोक बहुत होजाती है। इसलिए मरम्मत कराने में सदा चिकनी मिट्टी के साथ भूसा, पयाल आदि के छोटे-छोटे टुकड़े मिला देने चाहिएँ।

(१०) यदि बन्ध झरता हो, तो जिस स्थान से पानी झिरे उसमें भीतर की ओर से पर्डलिग करा देना चाहिए। (गोंद की दीवार की तरह बन्ध में कच्ची दीवार बनाकर मिट्टी से पूर दी जाती है, उसको 'पर्डलिग' कहते हैं।)

(११) गीली मिट्टी पर पशुओं को चलाकर उनके पैरों से मिट्टी कुचलवाने से भूमि कड़ी होजाती है और पानी को रोकती है, इसीलिए बन्ध के ढालों के किनारे पर (विशेषकर भीतर की ओर) पहले साल यह क्रिया करा देनी चाहिए।

बन्ध टूटने के बहुधा निम्नलिखित कारण होते हैं :—

(१) पंसार का ठीक न होना।

(२) निकास-स्थान का पर्याप्त विस्तृत न होना।

(३) बन्ध में फीबोई का कम होना।

(४) नीचे की जगह गलकने से बन्ध का एकदम बैठ जाना।

(५) बन्ध की मिट्टी का अधिक ढेलेदार होना।

(६) ढाल का अनुचित होना।

(७) बन्ध में अधिक पानी का समाना।

(८) वर्षा के पानी का इकट्ठा जमा होकर बन्ध के ऊपर से एक जगह होकर बहना।

(९) बन्ध के एकदम भरने से पानी का न समाना और उबल पड़ना।

(१०) मगरमुँहाँ या सिल्युस की नींव कच्ची भूमि में होने के कारण उनका धँसना और वन्ध का फटना।

(११) वन्ध की दरार की मरम्मत न होने के कारण उसमें पानी का प्रवेश करना।

भी थोड़ा-बहुत खेती का काम कर सकता है। निदान किसान ऐसे रोज़गार भी, खेती और कताई आदि के सिवाय, कर सकता है, जिसमें उसे ज्यादा मज़दूरी मिले।

गाँव के रोज़गारों में दूध का काम बड़े महत्त्व का है। खेती के साथ-साथ किसान गऊ भी पाले तो दूध-दही-घी का रोजगार कर सकता है। शहर के पास होने से यह कारबार बड़े ऊँचे पैमाने पर चल सकता है। दूर होने पर दूध और मक्खन पहुँचाने का विशेष बन्दोबस्त करना पड़ेगा। यह तभी होसकता है जब रोज़गार में नफ़ा अच्छा हो। दूध-शाला का काम मक्खन और घी तैयार करना है। गाय का दूध सबसे उत्तम होता है, इसलिए पीने के काम में यही दूध आना चाहिए। भैंस-बकरी आदि के दूध से मक्खन और घी निकालना चाहिए। मक्खन मथ लेने पर मथे हुए दूध को जमाकर उसका दही और मट्ठा बना लिया जाय तो बीमारों के लिए और बहुत कड़ी मेहनत करनेवालों के लिए भी पौष्टिक भोजन होता है। यह दूध और दही सस्ता मिलना चाहिए और यह कहकर बिकना चाहिए कि यह मक्खन निकाला हुआ दूध या दही है। ग्वालों की या दूधशाला रखनेवालों की एक पंचायत ऐसी होनी चाहिए जो दूध के रोजगार को सचाई और ईमानदारी के साथ चलाने का पूरा प्रबन्ध करे और जो रोजगारी ईमानदारी न बरते उसे दंड दे। वर्तमान काल में घी-दूध के रोज़गार की बड़ी दुर्दशा है। पर स्व-राज्य की दशा में यह दुर्दशा न रहनी चाहिए। अच्छे साँडों के द्वारा गो-वंश को बढ़ाना होगा और सहयोग के द्वारा अनेक दूधशालाओं को मिल-जुल कर अपना माल दूर-दूर बिकने के लिए भेजने का प्रबन्ध कराना होगा। दूधशाला रखनेवाले कई होंगे; सबका माल पंचायत के बन्दो-बस्त से एक तरह का रखना होगा। शहर में या दूर-दूर बिकने को

भेजने के लिए एजेन्सियाँ होंगी जो दुग्धशालाओं से माल लेकर भेजने का आम बन्दोबस्त करेंगी। इस तरह दूध, घी, मक्खन, दही आदि का खासा रोजगार हर गाँव में होसकता है। इसके लिए गउओं की रक्षा करनी होगी, उनको सस्ता परन्तु पौष्टिक चारा खिलाने का बन्दोबस्त करना होगा और उनकी नस्लें और दूध में तरक्की कराने के [illegible] कराने होंगे। डेनमार्क एक छोटा-सा देश है जहाँ मक्खन और दूध का रोजगार बड़े ऊँचे पैमाने पर होता है। इंगलिस्तान भी दूध और मक्खन [illegible] डेनमार्क का हवाला देता है। भारतवर्ष में तो अभी इतनी [illegible] कमी है कि यहाँके बच्चे ही [illegible] दूध नहीं पाते। [illegible] तक दूध और मक्खन विदेशों में भेजने की [illegible] और इस रोजगार से काफी लाभ होगा।

गऊ पाले। भैंसा और बकरा गऊ की तरह उपयोगी नहीं होते, इसलिए इनके रखने में गोपालन का-सा लाभ नहीं है। हाँ, दूधशाला रक्खे और इसी तरह का रोज़गार करे तो ज़रूर लाभ होसकता है।

गड़ेरिये भेड़-बकरी पालते हैं। भेड़ों से ऊन उतारकर वे कम्बल बुनते हैं। यह रोज़गार बहुत अच्छे पैमाने पर चलाया जासकता है। ऊन की उपज भिन्न-भिन्न भेड़ों से विभिन्न प्रकार की होती है। भेड़ों की जाति में भी उसी तरह तरक्की की जासकती है, जैसे गऊ की जाति में। इस तरह अच्छे नर से जोड़ा मिलाने से अच्छी जाति की भेड़ें पैदा होंगी, जिनका ऊन बारीक लोचदार और मुलायम होगा, जिससे कि ऊन के अच्छे-से-अच्छे कपड़े बन सकेंगे। गड़ेरिये का रोज़गार किसान के लिए बहुत लाभदायक है और इसमें बड़ी तरक्की की गुंजाइश है। किसान का सारा समय इसमें नहीं लगेगा।

किसान के काम में फल और तरकारियों का रोज़गार भी बड़े लाभ की चीज़ है। इसके साथ यह आवश्यक है कि जिन बाजारों में इनकी खपत होसके वहाँतक ये पहुँचाये जायँ। इसका बन्दोबस्त भी एजेन्सियों के द्वारा सुभीते से होसकता है। शहर के पास के गाँवों में किसान आप लेजाकर बेच सकता है। ऐसे कारखाने भी खोले जा-सकते हैं जिनमें फलों को इस प्रकार सुरक्षित रक्खा जाय, कि वे बहुत कालतक ताज़ा बने रहें। यह क्रिया उस समय की जानी चाहिए जब देश में फल इतने ज्यादा पैदा हों कि ताज़े-ताज़े बिक न सकें।

जिन किसानों के पास फल और तरकारियों के बाग़ और बगीचे हों उनको यह बड़ा सुभीता है कि मधुमक्खियाँ पालें। जिन देशों में यह रोज़गार होता है वहाँ बागों में इस तरह के बक्स लगा दिये जाते हैं, जिनमें एक ओर से तो मक्खियों के लिए रास्ता हो और दूसरी ओर

से एक ऐसा ढकना हो जिसे खोलकर सुभीते से और मक्खियों को बिना उद्वेग पहुँचाये शहद ले लिया जासकता है। इन बक्सों को ऊँचाई पर लगा देते हैं और रानी मक्खी को लाकर उसमें बसा देते हैं। इन बक्सों में मक्खियाँ हमेशा शहद बनाती रहती हैं और किसान को लाभ पहुँचाती रहती हैं। किसान यह रोज़गार विशेष समय लगाये बिना ही कर सकता है।

घर बैठे हर किसान कुछ और मजदूरी का भी काम कर सकता है। कपास की ओटाई के सिवाय धान की कुटाई, मूंगफली की छिलाई, दालों की दलाई, और तेलों की पेराई, हर किसान घर बैठे कर सकता है और मजदूरी से लाभ उठा सकता है। खंडसाल कुछ पैसा लगाकर ही खोल सकता है। खंडसालों से उसे काफी आमदनी होसकती है। जो किसान समुद्र या जंगल के पास रहते हैं वे मछली और पशुओं का शिकार भी कर सकते हैं। जंगल के पास के गांवों से लाख की उपज बढ़ाने की कोशिश भी की जासकती है।

रियों में से कोई नहीं होता, वहाँके लोग दूसरे गाँवों से काम निकालते हैं। कुछ काम इस तरह के हैं, कि गाँववाले सुभीते के साथ कर सकते हैं। इनका सम्बन्ध न तो गाँव की ज़रूरतों से है और न खेती से। जैसे रंगरेज़, छीपी, चित्रकार, सोनार, गाने-बजानेवाले, नक्काशी का काम करनेवाले, काग़ज़ बनानेवाले इत्यादि। गाँववाले किसान इन सब कलाओं में से किसी कला का अभ्यास कर सकते हैं, परन्तु अपने फालतू समय में। इन कलाओं का स्थान मनुष्य के जीवन में ज़रूर है। पर इनको आश्रय तब देना चाहिए जब किसान लोग ऋण के भार से मुक्त होजायँ और सुखी और समृद्ध होजायँ। जिन किसानों को इनमें से किसी कला का शौक़ हो वे इन कलाओं को जरूर सीखें, परन्तु इनसे किसानों के बीच आपस में कमाई करने का हौसला न करें। इनमें से छीपा और रंगरेज़ का काम जो खद्दर को सुन्दर बनाने का है उसे हम अपवाद समझते हैं। अमीर और शौक़ीन औरतें और मर्द भी रंगीन और छपे हुए खद्दर चाहते हैं। अगर किसान अपने घर पर बैठा छीपी और रंगरेज़ का रोज़गार करे तो कोई हर्ज की बात नहीं है। इससे भी वह उचित कमाई कर सकता है।

: २२ :

वास्तु-सुधार

गांव में रहने के घर तरह-तरह के होते हैं, फूस के झोंपड़े से लेकर पक्के महल तक गांवों में पाये जाते हैं; परन्तु देश ऐसा दरिद्र होगया है कि हम यह कह सकते हैं कि हमारा देश झोंपड़ों का देश है। अधिक लोगों के पास इतना भी नहीं है कि अपने झोंपड़ों को बन्द करने के लिए और कुत्तों का आना-जाना रोकने के लिए एक टिकाऊ सा दरवाजा या टट्टी भी लगा सके। बहुत मजबूत दरवाजे की जरूरत भी नहीं है। उनके पास है ही क्या, जो चोर लेजायगा? इन्हीं झोंपड़ियों में कठिन-से-कठिन जाड़े, गर्मियों में लूओं के जलानेवाले झोंके और बरसात में पानी की बौछार, सभी कुछ उपद्रव बेचारा किसान झेलता

भीत इस तरह पर छील दी जावे कि रोशनी के आने में भीत से रुकावट न हो। इस तरह के कई गौखे अगर धरती से तीन-चार हाथ ऊँचाई पर रक्खे जायँ तो उनमें से कुत्ते, बिल्ली आदि पशु नहीं आसकेंगे और रोशनी का कोठरी को पूरा लाभ मिलेगा।

आमतौर बस्तियों में मकान सटा-सटाकर इस ढंग पर बनाते हैं कि मकान प्रायः तीन तरफ़ से और मकानों से घिरा होता है और एक ही तरफ़ खुला रहता है। इसमें सुभीता यह समझा जाता है कि तीन तरफ से सेंध नहीं लग सकती और चोरी नहीं होसकती। आगे की ओर ज्यादा हिफ़ाज़त रक्खी जाती है। कभी किसी समय होनेवाली चोरी के डर से लोग अपने घर की सुन्दरता और लाभकारिता को बिगाड़ देते हैं और साफ हवा और रोशनी को रोक देते हैं। ऐसा भी नहीं है कि इन उपायों से चोरियाँ रुक जाती हों। चोर के काम में इन रुकावटों से बहुत बाधा नहीं पड़ती। जहाँ धन होता है और चोरी की प्रवृत्तिवाले होते हैं वहाँ कोई-न-कोई जोड़-तोड़ लगाकर वे अपना काम साध ही लेते हैं। इसलिए सदा के लिए बस्ती की हवा और रोशनी बन्द नहीं होनी चाहिए। भरसक इस तरह पर घर बने की दरवाज़ों के सिवाय हर कमरे में क़ाफ़ी गौखे बने हों, जिनसे कि रोशनी और हवा दोनों कमरे के भीतर अच्छी तरह आवें। हर दो मकानों के बीच में कुछ खाली जगह छोड़नी चाहिए। वह जगह इतनी हो कि दोनों तरफ की ओलती टपक सके और दोनों तरफ़ की नालियाँ बह सकें और इन नालियों की पूरी सफ़ाई की जा सके। ये नालियाँ बहकर ऐसे एक कुण्ड में जानी चाहिएँ जिसमें जज्ब करने के लिए पोली मिट्टी भरी हो। समय-समय पर इस मिट्टी को निकालकर खाद की तरह काम में लासकते हैं। दरवाजे के सामने किसी नाली के बहने की जरूरत नहीं रह जाती और भरसक

इन सड़कों और गलियों में जिधर से आदमी गुज़रते हैं इधर किसी तरह की गंदगी न रहेगी। भरसक घर के भीतर संडास या पाखाने होने ही नहीं चाहिएँ। अगर बच्चों के लिए या बीमारों के लिए किसी संडास या पाखाने की ज़रूरत हो तो इस तरह घर के दूरवाले भाग में बनाना चाहिए कि खाने-पीने और रहने की जगह एक मिनट के लिए भी खराब न होसके। ज्योंही यह पाखाना या संडास काम में आचुके त्योंही उसपर काफ़ी मिट्टी-डाल दी जाय और सुभीते की जल्दी के साथ उसे खेतवाली नालियों में पहुँचवा दिया जाय। हमने खेत में नालीवाले और चलती-फिरती टट्टी-वाले पाखाने की पहले चर्चा की है। बीमारों और बच्चों की ज़रूरत के लिए निकट-से-निकट के खेत में उस तरह की नालियाँ और टट्टियाँ बनाई जासकती हैं। गाँव की गलियाँ और सड़कें भरसक चौड़ी होनी चाहिएँ। इतनी चौड़ी सड़कें तो होनी ही चाहिएँ कि दो बैलगाड़ियाँ सुभीते से निकल जायें और राह चलते आदमी भी उस समय अगल-बगल से आ-जा सकें। बरसात के दिनों में गाड़ी की लीक से गड्ढे होजायँगे और पानी भरकर कीचड़ होजायगा। इससे बचने के लिए देहात की सड़कों को एक तो और मौसिमों में बीच में ऊँची और किनारों की ओर ढलवाँ करना पड़ेगा। साथ ही सड़क की मिट्टी में कंकड़ी-खपरों के टुकड़े बजरी मिलाकर फैलवा देने चाहिएँ। अगर ये काफ़ी मिल सकें तो इन्हें कुटवा देना अच्छा होगा। तब तो वह पक्की सड़क होजायगी। परन्तु जहाँ सड़क कच्ची ही रक्खी जाय वहाँ ढलवाँ करके खूब घनी घास उगा देनी चाहिए। घास से भी धरती पोढ़ी होजाती है। जबतक ज़मीन पोढ़ी न होजाय तबतक उसपर से चलना-फिरना मना रहे।

मकानों के नालीवाले गलियारों में काम के पौधे लगा देने चाहिएँ और घर के सामने मैदान हो तो उसमें जगह-जगह फूल के पेड़ लगा

देने चाहिएँ। इन छोटे-छोटे पौधों से और फूल के पेड़ों से जितनी जगहें हों वे भर देनी चाहिएँ। इससे सुन्दरता भी बढ़ेगी और हवा भी साफ़ होगी। पुराने घड़ों को गमलों के रूप में खूबसूरती से फोड़कर और मिट्टी भरकर गमले बनाये जासकते हैं और इनमें भाँति-भाँति के छोटे-छोटे पौधे लगाये जा सकते हैं। ऐसे गमले उचित स्थानों पर रख-कर घरों की, दरवाज़ों की ओर खिड़कियों की शोभा बढ़ाई जासकती है।

कुएँ की जगत कुएँ से बाहर की ओर अच्छी तरह ढलवां बनानी चाहिए। जगत के ऊपर बैठकर नहाना या बरतन माँजना, दतुअन-कुल्ला करना मना होना चाहिए। जगत के नीचे नहाने-धोने आदि काम के लिए ऐसा बन्दोबस्त होना चाहिए कि गिरा हुआ पानी बहकर बहुत दूर चला जाय और कुएँ के पास की ज़मीन में जज्ब न होने पावे। गाँव का मन्दिर और मसजिद बहुत साफ़ जगह पर हों। उसके चारों तरफ़ फुलवारी, बाग़-बगीचा होना चाहिए। पानी की निकासी अच्छी होनी चाहिए। उसके चारों ओर किसी तरह की गन्दगी न हो। मन्दिर और मसजिद सफाई का नमूना होने चाहिएँ। अगर जगह काफ़ी हो तो गाँव की पाठशाला और मकतब इन्हीं जगहों में रहें, परन्तु ऐसे ढंग पर कि गाँव के किसी प्राणी को पाठशाला और मकतब में आने में कोई रुकावट न हो। चौपाल की जगह भी फुलवारी से सुन्दर बनी होनी चाहिए। अगर मदरसे या पाठशाला की इमारत अलग हो तो वह बहुत ज्यादा हवादार होनी चाहिए। रोशनी की भी उसमें बहुतायत चाहिए। और बाग तो बच्चों की पढ़ाई के लिए उसके किसी ओर उचित ढंग पर लगा हुआ होना ही चाहिए।

जिस गाँव में मन्दिर या मसजिद में पढ़ाई के लिए जगह न हो और गाँववाले इतने समर्थ न हों कि पढ़ाई के लिए अलग मकान

बना सकें तो भी पढ़ाई के काम में कोई कठिनाई न पड़नी चाहिए। घास के ऊपर मैदान में और पेड़ों की घनी छाया के नीचे दस-बीस लड़के सहज में शिक्षा पा सकते हैं और अगर कई दर्जे पढते हैं तो किसी बाग़ के भीतर गाँव की पाठशाला या मदरसे का काम सहज में हो-सकता है। पढ़ाई की जगहों में आमतौर पर लड़कों को और पढ़ाने-वालों को अपनी बनाई चटाइयों पर बैठना चाहिए। जब वर्षा होती हो, अंधड़ हो, धरती गीली हो, बहुत तेज़ गरमी पड़ती हो और बरफ़ या पाला पड़ रहा हो, तब अंझा या अनध्याय यानी छुट्टी होनी चाहिए।

गांव जिस जगह हो वह जगह आसपास की ज़मीन से ऊँची होनी चाहिए, नहीं तो आये दिन की बाढ़ से गाँव बह जायगा। सील अपना घर कर लेगी। गाँव के लोग फसली बुखार के शिकार होंगे। उनका स्वास्थ्य बिगड़ जायगा और आयु घट जायगी।

गाँव के आसपास खेतों के शुरू होने के पहले फलदार पेड़ों के बाग़ होने चाहिएँ। इससे गाँव सुन्दर लगते हैं, बहुत-सी सील खिच जाती है और हवा शुद्ध रहती है।

दो मकानों के बीच में जो जगह छोड़ी जाय वह जितनी ही चौड़ी हो उतना ही अच्छा है। मकान भरसक दूर-दूर बनने चाहिएँ। जिस गाँव में बस्ती इस तरह अलग-अलग बसी हो, उसमें मरी आदि फैलने-वाले रोगों से बहुत बचाव रहता है। जो गाँव बहुत घने बसे होते हैं उनमें जब मरी आदि रोग फैलते हैं तो रहनेवाले लोगों को भागकर बाग़ों में ठहरना पड़ता है या गाँव के बाहर चला जाना पड़ता है।

गाँव में तालाबों, पोखरों, पोखरियों की कमी नहीं है, परन्तु वे अत्यन्त गन्दे रक्खे जाते हैं। रक्षा-पंचायत का यह कर्त्तव्य होगा कि वह इन सब जलाशयों की पूरी सफ़ाई करादे और सफ़ाई की रक्षा करे। इन

जलाशयों में कोई आकर आबदस्त न ले, इनके चारों तरफ़ कहीं मनुष्य पाखाना-पेशाब न करें। गन्दी नालियाँ सब जगह से बहकर जलाशयों में गिरें। खेतों का पानी किसी तरह इन जलाशयों में न आने पावे। इनमें कोई न तो थूके और न कुल्ला करें।

जिस जलाशय में इतनी सफ़ाई बरती जाय उसीका जल पीने के योग्य होसकता है। ऐसे साफ़ तालाबों में नहाया भी जासकता है, परन्तु जिस जल में नहाया जाय वह पीने के लायक़ नहीं रह जाता और जिस गाँव के पास बहती हुई नदी नहीं है उसमें नहाने का सुभीता तालाबों में ही होसकता है। इसलिए तालाब तो नहाने के लिए इसी तरह साफ़ रक्खे जाने चाहिएँ।

बरसात में खेतों के सिवाय भी और ज़मीन पर पानी बरसता है और नालियाँ बह निकलती हैं। यों तो हर गाँव में बरसाती पानी के बहा लेजाने के लिए नाले होते हैं जो बहकर किसी ताल में या नदी में जा गिरते हैं। परन्तु ये नाले कभी-कभी काफ़ी गहरे और चौड़े नहीं होते, इसलिए उबल पड़ते हैं और गाँव में बाढ़ आजाती है। गाँव-वालों का यह काम है कि जब ऐसी बाढ़ आजाया करती हो तो इन नालों को खोदकर उनकी चौड़ाई बढ़ादें और गहराई भी जहाँ कहीं सम्भव हो ढाल को बग़ैर बिगाड़े हुए बढ़ा दी जाय।

जहाँ कहीं गाँव काफ़ी ऊँचाई पर न बसे हों और किसी तरफ़ से बरसात का बढ़ा हुआ पानी गाँव में आकर भर जाता हो, वहाँ रक्षा-पंचायत को चाहिए कि उस तरफ़ मिट्टी का बाँध बँधवा दे और ऐसा बन्दोबस्त करे कि उचित बाँधों के द्वारा पानी जमा भी किया जासके और बाढ़ से गाँव की रक्षा भी होसके।

: २३ :

बाज़ार और उत्सव

उपज की खपत जब उपजानेवालों के बीच गाँव के अंदर पूरे तौर पर नहीं होपाती, तो उबरे हुए माल को वहाँ पहुँचाना पड़ता है जहाँ उसकी माँग होती है। परन्तु यह जानना बहुत मुश्किल है कि किसकी माँग किस चीज़ के लिए है और वह चीज किसके पास ज़रूरत से ज्यादा है। इसी कठिनाई का इलाज है हाट-बाजार। देहातों में अठवारे में दो या तीन बार किसी ऐसी जगह बाजार लगता है जहाँ आसपास के गाँववालों को इकट्ठा होने में सुभीता होता है। लोग अपनी उबरी हुए उपज को बाज़ार में लाते हैं और जिन चीज़ों की ज़रूरत होती है उनसे बदल लेते हैं। बाज़ार में जब दस-बीस गांव के आदमी मिलते हैं तो एक-दूसरे का समाचार भी उन्हें मालूम होता है और वे उपज का हाल भी जान जाते हैं, विविध वस्तुओं के भाव का भी पता लगता है। रोज़गारियों और कारीगरों को यह भी मालूम होजाता है कि किन लोगों को किस-किस तरह की क्या-क्या चीज़ चाहिए। इस तरह आगे के बाज़ार के लिए कारीगरों को आर्डर भी मिल जाते हैं। जैसे किसी गांव में कातनेवाले बहुत हैं, सूत बहुत तैयार होता है, परन्तु कोरी एक भी नहीं है और जो सूत गाँव की ज़रूरत से ज्यादा कतता है वह बाज़ार में बिक जाता है परन्तु गांववालों को कपड़े की भी ज़रूरत है और दूसरे गांव के जुलाहों के पास काम नहीं है, तो उन्हें आसानी से काम मिल जाता है और कातनेवालों को कपड़ा। इस तरह हाट-बाजार में व्यवसाय

और व्यापार भी चलता है, ख़बरें भी मिलती हैं, एक-दूसरे की सहायता भी होती है और जो लोग बाज़ार में जी बहलाने को जाते हैं उनका जी भी बहलता है, और वे चाहें तो तजुर्बा भी हासिल कर सकते हैं। बाज़ारों में हर तरह की कला में कुशल आदमी आते हैं और अपनी बनाई हुई चीज़ें लाते हैं। एक-दूसरे का मुक़ाबला होता है और होड़ में एक-दूसरे से बढ़ जाने का हौसला पैदा होता है। इस तरह बाज़ार ऐसी जगह है जहाँ ज्ञान और कला दोनों में बढ़न्ती होती है और देश में उपज और सम्पत्ति का बराबर-बराबर बँटवारा होजाता है। इसीलिए चाहिए कि अनेक गाँवों की पंचायतें मिलकर अनुभव की इस पाठशाला को अर्थात् बाज़ार को हर तरह पर बढ़ावें और अधिक-से-अधिक उपयोगी बनावें।

हर बाज़ार एक तरह का मेला है, जहाँ हर तरह के आदमी इकट्ठे होते हैं और मिलते हैं और हर मेले में बाज़ार लगता है और तरह-तरह का कारबार होता है। मनोरंजन और कारबार दोनों मेले में भी होता है और बाज़ार में भी। दोनों की व्यवस्था एक ही है, भेद यह है कि मेले में मनोरंजन को प्रधानता होती है और बाज़ार में कारबार को। बाजार जल्दी-जल्दी और बँधे समय पर लगा करता है और मेला देर-देर में और विविध समयों और स्थानों पर हुआ करता है। बाज़-बाज़ मेले ऐसे ज़बरदस्त होते हैं कि महीनों लगते हैं और उनमें का बाज़ार और भी ज़बरदस्त होता है। उदाहरण के लिए बिहार का हरिहरक्षेत्र का मेला और संयुक्तप्रान्त का बटेश्वर का मेला लेलीजिए। इन मेलों में हाथी, घोड़े, गाय, बैल, भैंस आदि पशुओं से लेकर छोटी-से-छोटी कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो न मिलती हो, परन्तु ये मेले इसीलिए हैं कि तीर्थ के सम्बन्ध में यहाँ बहुत-से लोग इकट्ठे होते हैं, उनके दिल-

बहलाव के लिए यहाँ जो सामग्री इकट्ठी होती है वह शायद व्यापारी सामग्री से कहीं ज्यादा है। इसीलिए ऐसे भारी बाजारों के होते हुए भी ये मेले ही हैं। इसके विपरीत कलकत्ते और बम्बई के बाज़ारों में मनुष्य के काम की शायद ही कोई ऐसी चीज़ हो जो न मिल सकती हो। दिलबहलाव की सामग्री भी थोड़ी मात्रा में नहीं है। शायद बटेश्वर और हरिहरक्षेत्र में उतनी दिलबहलाव की चीज़ें न हों जितनी कि इन बड़े-बड़े बाज़ारों में मिलती हैं। परन्तु ये मेले इसीलिए नहीं कहलाते कि ये बाज़ार नित्य कारबार के लिए लगते हैं, मनबहलाव यहाँ पर गौण और कारबार मुख्य है। इसलिए चाहे मेला हो या बाज़ार हो, दोनों से लाभ वही है परन्तु जानेवालों के मन की दशा में थोड़ा-सा अन्तर है। मेले में अधिक जानेवाले कारबार के लिए नहीं जाते और बाज़ार में अधिक जानेवालेकेवल सैर-तमाशे के लिए नहीं जाते। बाज़ार और मेलों-तमाशों से सब तरह का लाभ है और उनमें सब तरह का लेन-देन है, इसलिए पंचायतों को उचित है कि मेलों-तमाशों और बाज़ारों को सहायता देकर बढ़ावें।

जिस गाँव में बाज़ार लगते हैं या मेले-तमाशे होते हैं, उस गाँव के सभी प्राणी उनसे लाभ उठाते हैं। दूसरे गाँवों के सभी लोग मेलों-तमाशों में शरीक नहीं होसकते। इसलिए जिन गाँवों में बाज़ार नहीं लगते उनमें मौक़े-मौक़े से लोगों के दिलबहलाव के लिए और कारबार के लाभ के लिए भी हाट, मेला, तमाशा, उत्सव करने का बन्दोबस्त होना चाहिए। तीज-त्योहार पर आनन्दोत्सव, खेल-तमाशे और दिलबहलाव के उपाय तो किये ही जाते हैं। ऐसे अवसर पर खेल-तमाशे के द्वारा गाँव में नया सिलसिला पैदा करना और पुराने रीति-रिवाज को बढ़ाना गाँववालों का कर्तव्य है। इन बातों से नित्य के निर्वाह वाले जीवन में

जो एक तरह की उदासीनता रहती है वह मिट जाती है और गाँव का कारबार नये हौसले से चल पड़ता है।

तीज-त्योहार पर कला और सौन्दर्य बढ़ानेवाले अनेक काम होते हैं। बाज़-बाज़ त्योहारों पर स्त्रियाँ भाँति-भाँति के चित्र भीतों पर, कपड़ों पर और धरती पर खींचती हैं। उत्सवों में, चौक पूरने में, भाँति-भाँति के सुन्दर चित्र बनाती हैं। आधे भारत में अर्थात् दक्षिण में यह दस्तूर है कि हर हिंदू के द्वार पर नित्य तड़के उठकर घर की स्वामिनी लीपती और चौक पूरती है। किसी हिन्दू का दरवाजा इस चित्रकारी से खाली नहीं होता। केवल उसी दिन चौक नहीं पूरा जाता जिस दिन कोई अमंगल होगया रहता है। मकर की संक्रान्ति पर बच्चों के लिए नावें बनती हैं, मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। इसमें मूर्ति बनाने की कला का अभ्यास होता था और बच्चों को भी थोड़ी-बहुत कुछ शिक्षा पाने का अवसर मिलता था। चित्रकारी, मूर्तिकारी, नक्काशी आदि कलाओं को उत्सवों में उत्तेजना मिलती थी। इन राष्ट्रीय कलाओं को वही उत्तेजना फिर भी मिलनी चाहिए जो पहले मिलती थी। पंजाब के देहात-सुधार अफ़सर ब्रेन महोदय शिक्षा-विधि की निन्दा करते हुए कहते हैं कि यहाँ के शिक्षितों में पढ़ना खत्म करने के बाद किसी कला, प्रकृति-निरीक्षण या किसी तरह के अध्ययन-अनुशीलन का शौक नहीं होता। कोई तितलियाँ पकड़ता हुआ या डाक के टिकट इकट्ठा करता हुआ नहीं देखा जाता। तितलियाँ इकट्ठा करना या टिकटों को जमा करना यद्यपि मैं कोई विशेष उपयोगी और शिक्षा-विधायक काम नहीं समझता, तो भी इसमें मुझे संदेह नहीं है कि प्रचलित शिक्षा-विधि से हमारी पुरानी शिक्षा-प्रद और उपयोगी कलाओं का नाश होगया है। लोग उत्सवों पर जिन कलाओं में कुशलता दिखाते थे, उन्हें भूलते जाते हैं और उनका

प्रचार उठता जाता है। पंचायतों को उन्हें फिर प्रचलित करने के लिए ख़ासी कोशिश करनी पड़ेगी। सौन्दर्य का प्रेम हर काम में पैदा करने की ज़रूरत है और जबतक प्रजा सौन्दर्य और कला का आदर न करेगी तबतक कलावाले का हौसला बढ़ नहीं सकता और हमारी खोई हुई कला फिर नहीं मिल सकती। शिक्षा-पंचायत को इस बात पर विशेष ध्यान देना होगा।

कला का क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण है। खेत के जोतने, बोने, पटेलने में भी कला है। इस कला की कच्चाई से किसान हानि उठाता है। सूत की धुनाई में, कताई में, और बुनाई में भी वह कला है जिससे रुई की क़ीमत बढ़कर अपनी असली क़ीमत से सैकड़ों गुनी ज्यादा होजाती है। गाँव का कोई रोजगार ऐसा नहीं है जिसमें कला का सौन्दर्य और बारीकी न हो। हर रोज़गार में सफलता और उन्नति कला के ही बढ़ाने में है। इसलिए शिक्षा और व्यवसाय दोनों पंचायतों का यह प्रधान कर्त्तव्य होगा कि कला की अच्छी शिक्षा दें और बड़ी ममता से उसकी रक्षा करें।

किसान की दरिद्रता के कारण अनेक तीज-त्योहार उठ गये हैं। प्रायः सभी तीज-त्योहार खेती के सम्बन्ध के थे। उनमें से एक भी उठाये जाने योग्य नहीं है। परन्तु पंचायतों को इस बात पर भी ध्यान रखना होगा कि जबतक किसान ऋण-भार से दबा हुआ है तबतक ख़र्च करने का हौसला नहीं कर सकता। उसे फ़िजूलखर्ची से रोकना चाहिए, और भरसक उसकी आर्थिक दशा पर दृष्टि रखते हुए उत्सवों का हौसला बढ़ाना चाहिए।

: २४ :

आधे भारत का सुधार

विहार प्रान्त को छोड़कर हमारे देश में कहीं भी गाँवों में परदे का वहुत ज्यादा रिवाज नहीं है। परन्तु फिर भी संयुक्तप्रान्त और वंगाल में जितना कुछ रिवाज है वह भी वहुत-से कामों में वाधक है। वहुत-से किसानों की स्त्रियाँ खेत के कामों में पुरुषों को वड़ी सहायता देती हैं। परन्तु कुछ जातियाँ, जो अपनेको वहुत ऊंची समझती हैं, स्त्रियों को परदे में रखती हैं, इसलिए खेती के कामों में उनसे उतनी मदद नहीं मिल सकती। परदे का रिवाज और ऊँची जाति होने का ख़याल दोनों वातें ऐसी है कि वहुत-से कामों के लिए लाचार होकर ऊँची जाति कहलानेवालों को मज़दूरों से काम लेना पड़ता है और इसीलिए खेती से उन्हें वहुत कम वचता है। अगर खेत के काम में स्त्रियाँ पूरी मदद न दे सकें तो सूत का काम ऐसा जवरदस्त है कि किसी स्त्री को निठल्ली वैठे रहने का कोई मौका नहीं है। जवतक परदे का रिवाज उठ न जाय तवतक अनेक विधवाओं को लाचार होकर विलकुल दूसरों के भरोसे खेती का वन्दोवस्त करना पड़ेगा। ऐसी दशा में भी किसी विधवा को चरखे के रहते वेरोजगारी की शिकायत नहीं होसकती।

स्त्रियों में सुधार करने का सबसे उत्तम उपाय यह है कि उन्हें उचित प्रकार की शिक्षा दीजाय। लड़कियों को नगरों में और वड़े कस्वों में शिक्षा दीजाती है सही, पर वह शिक्षा कुछ ऐसी होती है कि लड़कियाँ गृहस्थी के काम से घृणा करने लगती हैं और शौक़ीन वन जाती हैं।

शिक्षा-पंचायत के प्रकरण में हमने जैसे दोष लड़कों की आजकल की शिक्षा में दिखाये हैं, प्रायः वैसे ही दोष लड़कियों की शिक्षा में भी पाये जाते हैं। इसीलिए शिक्षा-पंचायत को स्त्रियों की उचित शिक्षा के लिए ख़ास बन्दोबस्त करके ख़ास ढंग पर पढ़ाना होगा।

गाँवों की लड़कियों की शिक्षा विशेषकर नीचे लिखे विषयों में होनी चाहिए:—

(१) घर की सफ़ाई, झाड़ना-बुहारना, बरतन माँजना, लीपपोत, सफ़ेदी, छोटी-मोटी मरम्मत।

(२) नाजों की सफाई, धान कूटना, दाल दलना, आटा पीसना, छानना, फटकना, मैदा और रवे बनाना।

(३) दही जमाना, दूध और दही से मक्खन निकालना, पनीर बनाना, दूध दूहना, गोपालन।

(४) भाँति-भाँति की खाने की चीज़ें बनाना, पकाना या और तरह पर तैयार कर सकना।

(५) प्राकृतिक उपचारों का ज्ञान। तात्कालिक चिकित्सा।

(६) कपड़े पछाटना और उजला धोना। कलप-इस्तरी करना।

(७) कपड़े रंगना और छापना।

(८) कपड़े काटना और सीना।

(९) बेल-बूटे काढ़ना और सुई के और काम करना, और मौज़े आदि बुनना।

(१०) ओटना, धुनना, पूनियाँ बनाना और सूत कातना, अटेरना।

(११) चौक पूरना और भीत पर की चित्रकारी, कागज़ पर जल के रंगों और तेलवाले रंगों से चित्र खींचना।

(१२) कपड़े बुनना । (पाई करने का काम सीखने की आवश्यकता स्त्रियों को नहीं है ।)

(१३) स्वास्थ्य-रक्षा और रोगी-सेवा ।

(१४) सौड़ की दाई के काम ।

(१५) बच्चों की रक्षा ।

(१६) गाना-बजाना । राष्ट्रीय गाने । भजन-विनय ।

(१७) मिट्टी की मूर्तियाँ और खिलौने तथा कपड़े की गुड़िया आदि बनाना ।

(१८) पढ़ना-लिखना और गृहस्थी सम्हालने लायक हिसाब-किताब ।

हमने ये अठारह विषय स्त्रियों की शिक्षा के लिए रक्खे हैं जिनमें पढ़ने-लिखने का स्थान सबसे अन्त में रक्खा गया है । मतलब यह है कि पढ़ना-लिखना स्त्रियों के लिए इतना ज़रूरी नहीं है जितना कि घर-गृहस्थी का नित्य का काम । यह ज़रूरी बात नहीं है कि पाठशाला तभी खुले जब इन अठारहों बातों की शिक्षा का पूरा बन्दोबस्त होजाय । इन अठारहों विषयों में अनेक तो ऐसे हैं जिनकी शिक्षा हर लड़की को अपने माता-पिता के घर मिलनी चाहिए और मिलती भी है । लड़कियाँ अपने बाप के ही घर घर की सफ़ाई, झाड़ना-बुहारना, लीपना-पोतना, नाजों की सफ़ाई करना, कूटना, दलना, पीसना, छानना, फटकना, मैंदा और रवे बनाना, दही बनाना, मक्खन निकालना, मामूली रसोई का काम, कपड़े पछाटना, कपड़े रंगना, और मामूली गाना-बजाना थोड़ा-बहुत सीख लेती हैं । मदरसों या पाठशालाओं में उन्हीं विषयों की शिक्षा देनी पड़ेगी जिनकी शिक्षा घर नहीं होसकती या घर की शिक्षा अपूर्ण होती है । ऊपर दी हुई सूची पर विचार करने से पता लगेगा कि आधे

से अधिक कामों को सिखलाने का बन्दोवस्त करना ज़रूरी होगा। आज-कल जो शिक्षा दी जारही है उसमें पढ़ना-लिखना, हिसाव आदि मुख्य काम समझा जाता है। यह विलकुल उलटी वात है। लड़कियों को रसोई वनाना न आता हो, झाड़ना-वुहारना, वरतन माँजना, लीपना-पोतना न आता हो, पढ़ना-लिखना और हिसाव आता हो, तो समझना चाहिए कि उनकी शिक्षा नहीं हुई। आजकल इसी तरह की उलटी शिक्षा स्त्री-शिक्षा के नाम से मशहूर होरही है।

इन सव विपयों के सिखाने के लिए एक ही शिक्षालय काफ़ी नहीं होसकता। कुछ विपय तो ऐसे हैं कि गाँव की ही स्त्रियाँ उन्हें सिखाने के लिए काफी होंगी, और कुछ विपय ऐसे हैं कि उनकी पढ़ाई के लिए विशेप वन्दोवस्त करना पड़ेगा। वहुत सम्भव है कि किसी वड़े गाँव या कस्वे में इसका वन्दोवस्त करना पड़े। दाई का काम, चित्रकारी, प्राकृतोपचार, तात्कालिक उपचार, रोगी-सेवा आदि विशेपज्ञता के काम हैं। इनके लिए विशेप जानकारी रखनेवाले शिक्षक चाहिएँ। ऐसे सिखानेवाले ही मुश्किल से मिलते हैं। इसलिए ऐसा प्रवंध होने में वहुत देर लगेगी। लड़कियों को विधि से शिक्षा देने के लिए गाँव की ही वड़ी-वूढ़ियों से वन्दोवस्त करना होगा। किसीको कुछ आता है, और किसीको कुछ। कोशिश की जाय तो गाँव की सव लड़कियों को काम-चलाऊ शिक्षा नियम से दिलाने का वन्दोवस्त सहज ही होसकता है। शिक्षा-पंचायत इसका प्रवन्ध थोड़ा-वहुत जल्द ही कर लेगी।

स्त्रियाँ आधी दुनिया हैं। भारतवर्ष की आधी वस्ती की शिक्षा की हम परवा न करें, उनके सुधार पर ध्यान न दें, तो हमारी कितनी भारी मूर्खता होगी?

सफ़ाई और वच्चों की रक्षा, ये दोनों विपय हमने स्वतंत्र रक्खे

हैं। हमारे देश की मातायें इन दोनों बातों में आज इतनी कच्ची हैं कि हमारे देश में सालभर के अन्दर के बच्चों की मौत की गिनती संसार-भर में सबसे ज्यादा है। न तो सफ़ाई रक्खी जाती है और न बच्चों को ठीक तरह का भोजन मिलता है। इन्हीं दोनों भूलों से निरपराध बच्चे माता की गोद से छीन लिये जाते हैं। लड़कियों की शिक्षा तो इस विषय की दी ही जायगी, पर माताओं की शिक्षा भी ज़रूरी है। जो लोग बच्चों का पालन-पोषण करते हैं उनके ऊपर यह भारी ज़िम्मेदारी है। गोपालन वाले प्रकरण में हम दिखा आये हैं कि संतान-रक्षा के लिए शुद्ध और पोषक दूध की कितनी भारी ज़रूरत है। मातायें सफ़ाई से रहें, बालक को सफ़ाई से रखें, उसे समय-समय पर उपयुक्त भोजन दें, तो बहुतसी शिकायतें जल्दी ही दूर होजायँ। इसलिए माताओं की शिक्षा का भी बन्दोबस्त करना पड़ेगा। गाँव में शिक्षा-पंचायत कोशिश करके 'महिला-मण्डली' बनावे और महिला-मंडली उचित साहित्य का संग्रह करके आपस में सफ़ाई, स्वास्थ्य-रक्षा बच्चों की रक्षा आदि माताओं के लिए ज़रूरी विषयों का प्रचार करे। इससे बच्चों की अकाल मृत्यु में ज़रूर कमी होजायगी।

अच्छा दूध मिलने का सबसे उत्तम उपाय तो यही है कि हर गृहस्थ के घर पर गायें हों। गोपालन के सब लाभों में से बच्चों के लिए दूध का मिलना तो एक प्रधान लाभ है। परन्तु हमारे देश की दरिद्रता ऐसी है कि अपनी गाय रखना हर बाल-बच्चेदार किसान के लिए संभव नहीं है। इसके लिए व्यवसाय-पंचायत को चाहिए कि ऐसा नियम करदे कि गाँव की गायों का दूध, चाहे वे किसीके यहाँ की क्यों न हों, गाँव के बच्चों में बँट जाया करे। जब बच्चों से बचे तब बीमारों को मिले। इन दोनों से बच जाय तब और कोई पावे। जो परिवार दूध के दाम न

दे सके, उसे बिना दाम के ही दूध मिले, अथवा पंचायत दामों के बदले कोई सेवा दिलाना चाहे तो वैसा बन्दोबस्त करदे। जो हो, बच्चों को दूध तो हर हालत में मिलना ही चाहिए, फिर चाहे बिना दाम हो, चाहे कम दाम पर हो और चाहे पंचायत की ओर से किसी सेवा के बदले हो।

जो स्त्रियाँ खेतों में पुरुषों के साथ काम करती हैं उनके लिए तो कुछ कहना नहीं है। वे तो घर के भीतर स्त्री का और बाहर पुरुष का काम करके अपनेको सवाया, ड्योढ़ा या दूना मर्द प्रमाणित करती हैं। परन्तु परदे में रहनेवालियों के पास भी अठारह तरह के काम मौजूद हैं। उन्हें खेत में काम करनेवाले मरदों से कम काम नहीं है। उनके घर के भीतर के काम तो मजूरी के काम हैं। उनसे तो पंचायत को कोई मतलब नहीं हैं। परन्तु रोजगारी काम तो पंचायत का आश्रय लिये बिना चल ही नहीं सकते। चरखे के काम के लिए स्त्रियों का अपना संगठन होना चाहिए जो स्वतंत्ररूप से (१) अपना कपास संग्रह करे, (२) ओटे, (३) धुने, (४) पूनियाँ बनावे, (५) काते और (६) ठीक नियम से अटेरकर पैक करने लायक अट्टियाँ एक रूप की और एक नाप की बनावे। मंडल को अपने पास आये हुए सूतों को छाँट-छाँटकर वर्गों में या नम्बरों में बांटना पड़ेगा और सब बिक्री का उपाय करना होगा। इस प्रकार स्त्रियों के काते सूत की बिक्री अथवा बिनवाने का बन्दोबस्त स्त्रियाँ ही करेंगी तो सबसे उत्तम होगा।

विधवाओं, दरिद्रों और लाचारों के लिए चरखा कातना भारी सहारा होगा। दिनभर सूत कातनेवाले को अगर छः-सात पैसे भी मिल गये तो उसे खाने के लिए कुछ बन्दोबस्त ज़रूर होजायगा। विदेशी कपड़े का पूरा बहिष्कार होजाने पर अनाज का सस्ता होना अनिवार्य है। रुपये में बीस सेर या आने में सवासेर अनाज मिले तो पेट भरने के

लिए चरखे की कताई की मजूरी काफ़ी है। पचास वर्ष पहले जब अन्न का यही भाव था, अनेक दरिद्राओं और विधवाओं ने चरखा कातकर अपना और बच्चों का पालन-पोषण किया है और उन्हें शिक्षा दिलाई है। इसलिए दीनबन्धु चरखे का प्रवेश हर घर में होना चाहिए और हर दरिद्र, हर ऋणी, हर विधवा, हर ब्रह्मचारी, हर गृहस्थ, हर वानप्रस्थ और हर संन्यासी को और हर नर-नारी बच्चे, जवान, बूढ़े को चरखा कातना चाहिए, जिससे सबके खाने और पहनने के बन्दोबस्त में सहायता मिले।

जिन स्त्रियों के घर में पुरुष नहीं हैं उनको हर तरह की रक्षा करना गाँव की रक्षा-पंचायत का धर्म है। स्त्रियाँ अबला कहीं जाती है और जब रक्षक कोई नहीं है तो गाँव का कर्त्तव्य है कि उनकी रक्षा करे।

स्त्रियाँ सेवा करने में पुरुषों से बहुत बढ़ी-चढ़ी हैं। उनमें माता का भाव है। जैसे वे बच्चों का पालन करती हैं वैसे ही रोगी की शुश्रूषा भी बड़ी उत्तमता से कर सकती हैं। इसीलिए जिस रोगी की सेवा के लिए अपने घर की कोई स्त्री न हो उसके लिए रक्षा-पंचायत किसी और स्त्री को इस काम के लिए खोजले तो उत्तम बात होगी। इसीलिए स्त्री-शिक्षा में रोगी-सेवा वाले अंग को हम गाँवों के लिए अत्यंत उपयोगी समझते हैं।

शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय और सेवा चारों बातों का ऊपर बताई बातों के सिवा स्त्रियों से प्रायः वैसा ही सम्बन्ध है जैसा पुरुषों से। इसलिए यहाँ विशेष विस्तार की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

: २५ :

आपत्काल और आपद्धर्म्म

जिस काल में देश की तिहाई वस्ती साल में कम-से-कम तीन महीने वेरोजगार रहा करती है, जिस काल में किसानों की आधी आवादी दिन में एक वार भी भरपेट भोजन नहीं पाती, जिस काल में दुर्भिक्ष से भी अधिक महँगी निरन्तर वनी रहती है, जिस काल में कंगाल-से-कंगाल और रईस-से-रईस अपने देश के भीतर वन्दी-सा वना हो, जिस काल में अपनी प्राचीन परम्परा, संस्कृति और इतिहास का लोप होरहा हो, जिस काल में वर्णाश्रम-धर्म की छाया-मात्र रहगई हो, उस काल को हम आपत्काल के सिवाय क्या कह सकते हैं? दुर्भिक्ष फैलानेवाले रोग, आग, वाढ़, टिड्डी, विदेशी शासन, स्त्रियों का अपमान, ब्राह्मण (विद्वान) व साधुओं (सज्जनों) का अपमान और उनपर अत्याचार ही यदि आपत्काल की परख हो तो भी वर्तमान काल के आपत्काल होने में कोई मूर्ख दुराग्रही ही सन्देह करेगा। भारतवर्ष की इस आपत्काल की दशा में देश के समझदार लोगों को दूरदर्शिता से काम लेना चाहिए। जो काम साधारण अच्छे काल में करने में लोग अपना कर्त्तव्य नहीं समझते, आपत्काल में उन्हें वही काम करने पड़ते हैं। इसमें संदेह नहीं कि अपने धर्म के पालन में मर जाना अच्छा है, परन्तु पराया धर्म सहज में किया जा सके तो भी उनमें जोखिम है—भय है। मगर समाज में व्यक्तियों के कर्तव्य वँटे हुए होते हैं। अगर समय की आवश्यकता के अनुसार काम की वँटाई या श्रम-विभाग फिर से वदला जाय या अपना-अपना काम सबको आप कर

लेना पड़े तो इसमें अपने और पराये धर्म का कोई प्रश्न नहीं आता। आपत्काल में समाज का संगठन अगर फिर से हो जाय तो इसमें व्यक्ति का धर्म नहीं बिगड़ता, क्योंकि व्यक्ति समाज के आधीन है।

थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि किसी जैन मन्दिर में, जो घनी बस्ती के भीतर है और जिसके अड़ोस-पड़ोस में जैन, हिन्दू, मुसलमान सभी बसे हुए हैं, बड़ी भयानक आग लग गई। यह आग फैले तो सारी बस्ती जलके राख होजाय। जैन मन्दिर के भीतर हिन्दू नहीं जाते। मुसलमानों का जाना भी मना है। मुसलमान के हाथ का पानी जैन-मन्दिर पर पड़ना कोई जैनी गवारा न करेगा। परन्तु आग लगने पर इन बातों का विवेक नहीं होसकता। मुसलमान, हिन्दू, जैनी, ईसाई सभी आग बुझाने को दौड़ पड़ेंगे और बिना किसी तरह का विचार किये आग बुझाने में लग जायंगे। कोई जैन हिन्दू और मुसलमानों की इस सहकारिता पर किसी तरह का उज्र न करेगा। इसी तरह कहीं बाढ़ आजाय और बस्ती के लोग डूबने लगें तो मुसलमान-हिन्दू का कोई भेद न किया जायगा और एक-दूसरे को बिना विवेक किये बचाने में लग जायँगे।

वर्तमान काल आपत्काल है। इस समय भारत को फिर से अपने पाँवों पर खड़ा करने के लिए और देश की दशा सुधारने के लिए भेद-भाव को भूलकर सब जातियों के लोगों को कन्धे-से-कन्धा मिलाकर काम करना चाहिए। इसी भाव को लेकर गाँवों के अन्दर सभी जातियों को और सभी धर्म और मतवालों को भेदभाव छोड़कर गाँव के काम में लग जाना उचित है। अबतक गाँव में घर-घर कलह है, पड़ोसी पड़ोसी से खार खाये बैठा हैं, कोई किसीका भला नहीं चाहता, बुराई ने इतनी जड़ पकड़ ली है कि अपने भाई को नीचा दिखाने के लिए एक गृहस्थ

अपना कुछ नुकसान उठा लेने में हर्ज नहीं समझता। चाहिए तो यह था कि भाई का उपकार करने के लिए अपने स्वार्थ को नष्ट कर देता, और किसीको कानोंकान ख़बर भी नहीं होती, परन्तु इसके विपरीत लड़नेवाले एक-दूसरे को बद-बदकर हानि पहुँचाते हैं। इस दशा को एकदम बदल देना गाँव की पंचायतों का परम-कर्तव्य होगा। जबतक यह दुर्दशा बनी रहेगी तबतक स्वराज्य नहीं होसकता। विदेशियों की भारत के ऊपर राज करनेवाली माया हमारे यहाँ की आपस की फूट की ही नींव पर टिकी हुई है। जिनको विश्वास न हो वे मुकदमेबाज़ी के खर्च और उससे होनेवाली गाँवों की दुर्दशा पर ठंडे दिल से विचार करें।

हमारा देश आपत्काल में फँसा हुआ है, उसका एक रूप यह है कि गाँवों में मेहनत-मजूरी करनेवाली जातियाँ बहुत घट गई हैं। आर्काटियों के बहकाने से एक बड़ी संख्या परिश्रमी लोगों की विदेशों में चली गई है। इसीलिए आये दिन मजूरों की कमी से खेती के काम में बड़ा हर्ज पड़ जाता है। हमारे ब्राह्मण, क्षत्रिय भाई अपने बड़प्पन के मद में हल की मुठिया छूना पाप समझते हैं। फल यह होता है कि वे खेती की दौड़ में पिछड़ जाते हैं और मजूरों की राह देखने में अक्सर ठीक तरह पर खेती करना उनके लिए कठिन होजाता है। अगर वे हल की मुठिया छूने में पाप समझना छोड़दें तो कई लाभ उनको सहज में होसकते हैं। एक तो मजूरी बच जायगी, जिससे कि खेती के इस ख़र्च की मद घटेगी। दूसरे यह लाभ होगा कि अपने हाथ से जब वे जुताई-बुआई करेंगे तो नौकर या मजूर की तरह काम के साथ बेपरवाही न करेंगे; और वे जब जी लगाकर उत्तमता से काम करेंगे तो पैदावार ज़रूर बढ़ जायगी और मजूर के हाथ से काम कराने में और अपने हाथों अपना काम कर लेने में जो भारी अन्तर है वह नष्ट हो-

जायगा। गाँवों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी खेती करते हैं; परन्तु हमें यह दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि इस आपत्काल में भी गाँवों के वे ब्राह्मण जो ब्राह्मणोचित कोई कर्म नहीं करते और खेती के सिवाय जिनकी और कोई जीविका नहीं है, जो असल में वैश्य-धर्म का पालन कर रहे हैं, मोह और मद में फँसकर कह बैठते हैं कि हम ब्राह्मण हैं और हमको हल की मुठिया छूने में पाप लगेगा, यद्यपि इन्हीं भाइयों को अपने खेतों में खाद फेंकते हुए देखा जाता है। इन भोले भाइयों को यह समझ में नहीं आता कि ईमानदारी का कोई काम ऐसा नहीं है जो ब्राह्मण न कर सकता हो और बेईमानी का कोई भी काम ऐसा नहीं है जो किसी मनुष्य के करनेलायक हो, चाहे वह शूद्र ही क्यों न हो। हल की मुठिया थामने में न तो कोई हिंसा है और न सत्य का विरोध है। इससे किसीका ईमान-धर्म नहीं जाता। लाभ यह होता है कि हट्टे-कट्टे हाथ-पैर वाले परिश्रम से अपना काम खुद करते हैं, जिससे खेती अच्छी होती है। कठिनाई से मिलनेवाले मजूरों की बाट जोहने की ज़रूरत नहीं पड़ती। यह बात सब लोगों को मालूम है कि मजूरों के भरोसे की जानेवाली खेती में बरकत नहीं होती। यह भी सबको मालूम है कि कुर्मी लोग, जो क्षत्रिय है, खेती का सारा काम बेझिझक अपनेआप करते हैं। किसानी के काम में हमारी समझ में और सभी जातियों को कुर्मियों से शिक्षा लेनी चाहिए।

अनेक काम और पेशे इस तरह के हैं जिन्हें फिर नये सिरे से जारी करना है। देश के जिन भागों में नमक बनानेवाले नोनिये अब नहीं रहे उन भागों में साधारण किसानों को चाहिए कि इस रोज़गार को अपनालें और कुछ किसान ज़रूर नोनिये बन जायें। नमक बनाना एक पवित्र काम है। इसमें इतनी भारी पवित्रता है कि चन्द्रगुप्त के राज्य में

वेद पढ़नेवाले ब्राह्मण और वानप्रस्थ राजा को बिना किसी तरह का कर दिये हुए नमक बनाने और बेचने के अधिकारी थे। यदि यह नीच काम होता तो वानप्रस्थ तपस्वी ब्राह्मणों को इस प्रकार जीविकोपार्जन का हिन्दू-काल में अधिकार न मिलता।[1]

१. कौटिलीय अर्थशास्त्र में नमक-कर के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उसे हम ज्यों-का-त्यों यहाँ उद्धृत करते हैं। आज-कल जो कर लग रहा है वह लागत का चौबीस सौ गुना है। चाणक्य के समय में अधिक-से-अधिक मूल्य का छठा भाग लगता था। तपस्वी लोग नमक का रोजगार भी कर सकते थे, नमक मुफ़्त ले भी सकते थे और राज-कर भी उन्हें नहीं देना पड़ता था।

"खन्यध्यक्षः शंखवज्रमणि मुक्ता प्रवाल क्षार कर्मान्तान् कारयेत पणन व्यवहारंच।

लवणाध्यक्षः पाकमुक्तं लवणभागं प्रक्रयं च यथाकालं संगृहणीयात् विक्रयाच्च मूल्यं रूपं व्याजीम्।

आगन्तु लवणं षड्भागं दद्यात्——दत्त भाग विभागस्य विक्रयः पञ्चकं शतं व्याजीं रूपं रूपिकं च। क्रेता शुल्कं राजपण्याच्छेदानुरूपं च वैधरणं दद्यात्। अन्यत्र क्रेता षट्छतमत्ययं च।

विलवणमुत्तमं दण्डं दद्यात्, अनिसृष्टोपजीवी च अन्यत्र वानप्रस्थे-भ्यः। श्रोत्रियास्तपस्विनो विष्टयेश्च भक्तलवणं हरेयुः। अतोऽन्योलवण क्षारवर्गः शुल्कं दद्यात्

एवं मूल्यं विभागं च व्याजीं परिघमत्ययम्।
शुल्कं वैधरणं दण्डं रूपं रूपिकमेव च॥
खनिभ्यो द्वादशविधं धातुं पण्यं च संहरेत्।
एवं सर्वेषु पण्येषु स्थापयेन्मुखसंग्रहम्॥
आकरप्रभवः कोशः कोशाद्दण्डः प्रजायते।
पृथिवी कोश दण्डाभ्यां प्राप्यते कोशभूषणा॥"

गोपालन और दूध का रोज़गार ग्वाले करते आये हैं। परन्तु इस रोज़गार को बहुत बढ़ाने की ज़रूरत है। यह शुद्ध पवित्र और ऊँचा काम है। इसमें गोरक्षा का धर्म भी शामिल है। कोई किसान दूध बेचने से नीच नहीं समझा जासकता। हर किसान को चाहिए कि इस रोज़गार को अपनाले और अच्छी गऊ पालना, अच्छे वंश के साँड से मिलाना और अच्छे बैल तैयार करना हर किसान का धर्म होजाना चाहिए। किसी समय में वे यदुवंशी क्षत्रिय जो राज्य के अधिकारी नहीं रह गये थे, इसी पवित्र व्यवसाय में लग गये। वे भारी-भारी गोपालक होगये हैं, जिनके पास गोपालन की बदौलत अपार धन हो-गया था। श्रीकृष्णजी के पोषक पिता नन्दजी के धन का वर्णन श्रीमद्-भागवत में इसी प्रकार का है। उस समय इन ग्वालों के गाँव-के-गाँव थे, जो मथुरा नगरी के पास बने हुए थे और जिनके गोरस की बिक्री मथुरा में ही होती थी।

धुनने का काम प्राचीन काल में हर कातनेवाला अपनेआप कर लिया करता था। हमारा ऐसा अनुमान इस बात से पुष्ट होता है कि प्राचीन हिन्दू-साहित्य में धुनिया जाति या पेशे के किसी मनुष्य की चर्चा नहीं मिलती। केवल मुसलमानों के राज्यकाल में धुनिया या बेहना सुनने में आता है। इससे जान पड़ता है कि मुसलमान लोग जब हमारे देश में आये तब ये लोग खेती तो नहीं करते थे, पर इनमें दस्तकारी का ज़बरदस्त हौसला था। भारत में कपड़े की बुनाई का काम संसार में ऐसा प्रसिद्ध था कि स्वभाव से ही दस्तकारी की ओर प्रवृत्त मुसलमान लोग इसकी ओर ध्यान दिये बिना नहीं रह सकते थे। इसीलिए शुरू से ही और भारत में बसते ही मुसलमानों ने खद्दर बनाने का काम सीख लिया और करने लगे। ये लोग ज्यादातर शहरों और क़स्बों में रहते

थे, इसलिए गाँव से कपास लेकर उसे खद्दर के आखिरी रूप तक पहुँचाना इन्होंने अपना पेशा कर लिया। यह तो स्पष्ट है कि कातने की कला किसी विशेष जाति या पेशे की चीज़ नहीं हुई। परन्तु जिस तरह से बुनाई का काम तातियों और कोष्टियों के हाथ में था उसी तरह मुसलमान जुलाहों के हाथ में भी आया, और पूनियाँ बनाकर शहर के कातनेवालों के हाथ बेचने का काम करनेवाला एक नया ठेकेदार पैदा होगया, जिसे धुनिया कहते हैं। धुनिया कपास को ओटता था, रुई सुखाता था, धुनता था और पूनियाँ बनाता था। बिनौले, रुई और पूनियाँ बेचना उसका रोज़गार होगया। वह कातनेवालियों को उधार पूनियाँ देकर सूत कतवाता था और कतवा-कतवाकर इकट्ठा सूत बेचना भी उसका रोज़गार होगया था। मुसलमानों के समय में इस रोज़गार की तरक्की हुई और अंग्रेज़ों के राज्य में यह रोज़गार मर गया। म० गाँधी की बदौलत इस रोजगार का और नोनिये के रोजगार का फिर से जन्म हुआ है। अगर ये दोनों पेशे जग जायँ तो बड़ी अच्छी बात है। परन्तु इस बात की ज़रूरत नहीं है कि यह कार्य इन पेशेवालों की ही बदौलत चले। आज भारतवर्ष के हर किसान को चाहिए कि इन कामों को अपनाले और इनके करने में अपनी बेइज्ज़ती न समझे। धुनियों की पैदाइश के पहले जैसे हर किसान कपास ओटता था, रुई धुनता था और सूत कातता था, उसी तरह आज भी बेझिझक सारे काम करे।

व्यवसाय-पंचायतों का काम बताते हुए हमने एक बड़े ज़रूरी कारबार की चर्चा उस स्थल पर जानबूझकर छोड़दी है। वह है चमड़ा सिझाने का कारबार। इस छोटी-सी पुस्तक का यह उद्देश्य नहीं है कि किसी पेशे पर खासतौर से विस्तारपूर्वक विचार करें, इसलिए हम यह

विस्तार से नहीं बता सकते कि विदेशी चमड़े के व्यवसाय से हमारे देश के गोवंश के नाश का क्या संबंध है। परन्तु इस स्थल पर हम इतना कहना तो जरूरी समझते हैं कि अगर हम गो-रक्षा के सचमुच सहायक हैं तो हमें चाहिए कि कम-से-कम हम खुद ऐसे चमड़े का व्यवहार न करें जो मारे हुए गोवंश का हो।

इस बात का निश्चय तभी होसकता है जब अपना चर्मालय हम खुद बनालें, जिसमें अपने मरे हुए मवेशी की खाल को हम स्वयं सिझा-कर अपने कामलायक बना लेते हों। यह काम सबसे अच्छा उन गाँवों में होसकता है जहाँ यह पेशा करनेवाले चमार अधिक रहते हों और आसपास के सैकड़ों गाँवों से मरे हुए पशुओं की लाशों के मिलने का पूरा प्रवन्ध होसके। जिस गाँव में यह प्रवन्ध होसके उसकी व्यवसाय-पंचायत का यह कर्त्तव्य है कि इस व्यवसाय का प्रवन्ध अपने हाथ में ले और बड़े पैमाने पर हिंसा से मुक्त शुद्ध तैयार चमड़े का व्यापार करे। इस व्यापार में किसी तरह का दोष या पाप नहीं है, बल्कि पुण्य की बात यह है कि इससे गोरक्षा होगी और गोहत्या घटेगी। इस तरह के चमड़े का व्यवसाय किसीको नीच और पतित नहीं बनाता। किसी प्राणी को मारना या कष्ट पहुँचाना या कष्ट पहुँचाने में सहायक होना अवश्य पाप है, जिसमें कि मारे हुए पशुओं के चमड़े का व्यवहार करने-वाले और चर्बी की माँड़ी के कपड़े पहननेवाले फँसते हैं।

जिन कामों या पेशों में हत्या या हिंसा न हो, किसी तरह की बेईमानी न हो, झूठ और ठगाई की चालों के बिना ही काम पूरा हो सके, और उस काम से मनुष्यों को लाभ पहुँचे, तो उसको करने में किसी तरह की बेइज्ज़ती या नीचता नहीं होसकती। ऐसे अच्छे और सच्चे काम भी हमारे हाथों से इसलिए छिन गये हैं कि हम पराये बस

में होगये। कपड़े की बुनाई का काम इसी तरह का एक पवित्र और सच्चा काम है, जिसमें कोई हत्या नहीं और किसीको कष्ट पहुँचाने की कोई ज़रूरत नहीं। यह काम भी हमारे देश में बहुत घट गया और न जाने क्यों सर्वसाधारण में यह भ्रम फैल गया कि यह काम नीचा है। इस भ्रम का फल यह हुआ कि हिन्दुस्तान में कोरी और गुजरात में ढेड़ लोग अछूत जाति के समझे जाने लगे। मुसलमानों में भी जुलाहों को लोग आदर की दृष्टि से नहीं देखते। इसका कारण चाहे जो कुछ हो, यह कौन कह सकता है कि जिन कपड़ों की बदौलत हम अपने तन ढकते हैं और सर्दी-गर्मी लू आदि से अपनेको बचाते हैं और अपने रूप को सुन्दर बनाते हैं, उन्हीं कपड़ों का तैयार करनेवाला इसी काम के कारण नीच और न छूने के योग्य होजाता है? यह हमारा भारी भ्रम है। कम-से-कम इस आपत्काल में ऐसे भ्रम को छोड़कर कपड़े बुननेवालों का हमें आदर करना चाहिए, क्योंकि वे स्वराज्य की रक्षा करनेवाले हमारे सिपाही हैं।

चमार, डोम और भंगी तक भी कोई ऐसे नीच और घृणित मनुष्य नहीं हैं जिनको छूने से भी परहेज़ किया जाय। जिस समय ये लोग गन्दे काम करते हों उस समय न छूना एक बात है, परन्तु उन्हें सदा के लिए अछूत करदेना समाज का भारी अत्याचार है। इसमें लोग अधिकतर शास्त्रों की दुहाई देते हैं। परन्तु हम थोड़ी देर के लिए यह भी मानलें कि शास्त्र सचमुच इन सब मनुष्यों को अछूत बताते हैं, तो भी हमें यह देखना चाहिए कि हम ऐसी भारी विपत्तियों के समूह में फँसे हुए हैं कि हम धर्मशास्त्रों के नियमों पर नहीं चल सकते। विपत्तियों के समूह का तो हमने कुछ थोड़ा-सा इस अध्याय के शुरू में वर्णन कर दिया है। परन्तु इस विपत्ति की दशा में शास्त्र के नियमों का पालन

नहीं होसकता, इस बात पर भी विचार करना चाहिए। यह तो हम लोग जानते ही हैं कि मिल के कपड़े पर चर्बी की माँडी हुई रहती है। इसी माँडी लगे कपड़े को हम मुद्दत से पहनते आरहे हैं, इसी गन्दगी को अपने शरीर पर लपेटे हुए हम भोजन करते रहे हैं और पूजा तक करते रहे हैं। इतना ही नहीं, बल्कि इन्हीं गन्दे कपड़ों से हमने देवताओं की मूर्तियों के भाँति-भाँति के श्रृंगार किये हैं, उन्हें पवित्र मानकर ब्राह्मणों को दान दिया है, और मृत्यु के बाद कफन भी इन्हीं गन्दे कपड़ों का लपेटा गया है। जिन लोगों ने विलायती टोप और टोपी पहने हैं उन्होंने चमड़े को सिर-माथे पर चढ़ाया है, और विदेशी शकर खानेवालों ने और चर्बी मिला घी खानेवालों ने तो इन गन्दी चीज़ों को अपने पेट में भी पहुँचाया है। अब शास्त्रों के नियमों का पालन कहाँ रह गया? इन बातों में तो गन्दगी प्रत्यक्ष है, और इन गन्दगियों को जानकर भी और त्यागने की पूरी इच्छा रखते हुए भी हमको ग्रहण करना पड़ता है। परिस्थिति ऐसी है कि हम बच नहीं सकते। यह तो हुई वे गन्दगियाँ जिन्हें शास्त्र बतावें या न बतावें पर हर हिन्दू बिना बताये ही जानता है। हिन्दू की बुद्धि इन्हें गन्दा कहने में कोई मतभेद नहीं रखती। जिन आदमियों ने गन्दा काम करने के बाद भी सफ़ाई करली है, उन्हें छूने से घृणा करना यद्यपि कोई बुद्धिमानी का काम नहीं है, तो भी हम अगर मानलें कि शास्त्र की आज्ञा पालने के लिए इस मूर्खता को स्वीकार कर लेने में कोई हर्ज नहीं है तो हमें अपने आचरण में संगति तो अवश्य होनी चाहिए। मुसलमान और ईसाई छूत-अछूत का कोई विचार नहीं रखते और उन मुसलमानों और ईसाइयों से भी हम कोई छूत-अछूत का विचार नहीं रखते, इसलिए हमारा आचरण सुसंगत नहीं है। मेले-तमाशों में, बरातों में और सार्वजनिक सवारियों

में हम लोग छूत और अछूत का कोई विचार नहीं रखते; फिर भी हमारा धर्म भ्रष्ट नहीं होता। हम अपने आचरण में न संगति पर ध्यान देते हैं और न शास्त्र के अनुकूल आचरण रखते हैं। हम ऐसे संकटग्रस्त हैं कि हम शास्त्रों का पालन करना चाहें तो भी नहीं कर सकते और नहीं करते। इसलिए हमें इस आपत्काल में बुद्धि और विवेक से काम लेना चाहिए और छूत-अछूत का कोई भेद, जिससे हमारे यहाँ झगड़े और कलह बढ़ते हैं, न रखना चाहिए।

गाँवों में आये दिन एक-न-एक विपदा की चढ़ाई होती ही रहती है। बाढ़ आजाती है और गाँव-के-गाँव बह जाते हैं, उस समय छूत-अछूत तो क्या, पशु और मनुष्य का भी विवेक नहीं रह जाता। ऐसे समय में बाँध बाँधने के लिए छूत-अछूत, हिन्दू-मुसलमान, बच्चे-बूढ़े-जवान, नर-नारी, सबको भेद-भाव, लाज-परदा और परहेज़ छोड़कर बाँध बाँधने में जुट जाना चाहिए और बुद्धिमानी से निजी जितनी आतुर सहायता हो सके पहुँचानी चाहिए। आती हुई बाढ़ को रोकने के लिए बाँध के उपाय तो पहले से ही हुए रहने चाहिएँ। परन्तु तत्काल भी सहायता की जरूरत होती है। ऐसी दशा में सारे गाँव का कार्य है कि उमड़ आवे और कोई आगा-पीछा न करे।

मरी, हैज़ा आदि फैलनेवाली बीमारियों के आने पर लोग बस्ती छोड़कर मैदानों में रहने लग जाते हैं। बागों में टिक जाते हैं। ऐसी दशा में गाँव के विशेष चौकी-पहरे की ज़रूरत होती है। जितने लोग गाँव में रहते हैं, सबको मिलकर पहरे में मदद देनी चाहिए और गाँव से बाहर दूसरे कुँओं का पानी, जो दूषित न हो, पीने के काम में लाना चाहिए। गाँवों में ऐसा दस्तूर है कि अछूत जातियों को और जाति के लोग अपने कुँओं पर पानी नहीं भरने देते। यह बहुत भारी अन्याय है।

सफ़ाई के नियम तो यह बनाते हैं कि ब्राह्मण का भी वर्तन हो मगर गन्दा है तो कुएँ में डालने न देना चाहिए और चाण्डाल का भी वर्तन हो मगर साफ़ हो तो कुएँ से पानी निकालने देना चाहिए। ये वुद्धि के नियम हैं। इन नियमों से काम लिया जाय तो सफ़ाई की रक्षा हो सकती है, और किसी मनुष्य का अपमान नहीं होसकता। गाँव में ऐसा भेदभाव रखने से जल के दूषित होजाने पर ऐसा भी होसकता है कि वेचारे अछूत को कहीं भी जल न मिल सके और ऐसा भी अवसर आसकता है कि अछूतों वाले कुएँ के सिवाय और कोई कुआँ साफ़ न रह गया हो। हम इस वात को मानते हैं कि अछूत कहे जानेवाले लोग सफ़ाई से नहीं रहते। इसमें भी दोष उन लोगों का है जो उन्हें सदा से घृणा की दृष्टि से देखते आये और उनमें सुधारने का हौसला पैदा न होने दिया। गाँववालों को चाहिए और सेवा-पंचायत का यह विशेष कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे इन अछूत कहलानेवालों के जीवन को मन लगाकर सुधारें और उन्हें ऐसा करदें कि गाँव की पंचायतों में उनका वरावर आदर और सम्मान रहे।

अकाल के दिनों में गाँव के समीप रहनेवालों पर भूखों मरने का संकट आपड़ता है। ऐसे समय में रक्षा-पंचायत सहायता देने का जो काम जारी करे उसमें भी छूत-अछूत का कोई भेद नहीं होना चाहिए। भूख का कष्ट सब मनुष्यों को वरावर होता है। मजूरी करने में अक्सर अछूत जाति वाले ज्यादा मेहनत करते हैं, इसलिए कोई कारण नहीं है कि सहायता का काम उन्हें कम दिया जाय और दूसरों को ज्यादा।

टिड्डी-दल की चढ़ाई करने पर या आग लगने पर जो दौड़-धूप या उपाय किये जाते हैं उनमें भी छूत और अछूत का विवेक नहीं किया जा सकता। ये संकट के दिन हैं, और हमें संकट के दिनों में भाइयों से

मिलकर विपदा को टालने के उपाय करने चाहिएँ। भेद-भाव और फूट के होते हमारी कठिनाइयाँ बढ़ जाती हैं। संकटों को दूर करने में हमें अपनी कठिनाइयाँ घटानी चाहिएँ। हमको बाहर के दुश्मनों से जब लड़ना है तब उसीके साथ अगर भीतरी दुश्मनों से भी लड़ना हो तो हमारे लिए कुशल नहीं है। विदेशी शत्रु, बाढ़, आग, मरी, दुर्भिक्ष, टिड्डी, अवर्षण आदि बाहरी दुश्मन हैं। हम अगर हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव, नशा, छूत-अछूत का भेद, आपस की मुकदमेबाज़ी, बेकारी आदि भीतरी दुश्मन पाले रहेंगे तो भीतरी और बाहरी दुश्मनों के दोनों पाटों के बीच में पड़कर पिस जायँगे। हमें भीतरी दुश्मनों को पहले अपने क़ाबू में कर लेना चाहिए, फिर बाहरी की ताक़त आधी ही रह जायगी।

: २६ :

धर्म

कहा जाता है कि "हमारे देश में अनेक धर्मों और सम्प्रदायों के लोग रहते हैं, जिनके आचार-विचार अलग-अलग हैं। इसीलिए भारत में फूट है।" यह कहना सर्वथा ठीक नहीं है। भारत में जितने भारतीय मत-मतान्तर फैले हुए हैं, उनके दार्शनिक विचारों में भेद है। उनके आचार में सिद्धान्तरूप से कोई अन्तर नहीं है। जो अन्तर बहुत बड़ा देख पड़ता है वह रूप में है और विस्तार में है। सम्प्रदायों ने अपना-अपना रूप और विशेष क्रियाओं का विस्तार अलग-अलग रक्खा है, परन्तु आचरण का सिद्धान्त एक ही है। चाहे कोई तिलक लगावे या न लगावे, चाहे एक रूप का तिलक लगावे चाहे दूसरे रूप का, पर अहिंसा, सत्य, सफ़ाई, तपस्या, दान, क्षमा, यज्ञ, ध्यान, व्रत आदि में किसीका मतभेद नहीं है, क्रियाओं की विधि में और विस्तार में चाहे कितना ही अन्तर हो। इस तरह हिन्दू सम्प्रदायों में आपस का मत-भेद सिद्धान्त में नहीं है। यों तो संसार में कोई दो मनुष्य भी ऐसे मुश्किल से मिलेंगे जो विषयों के विस्तार में और उनके आचरण और व्यवहार में सर्वथा समान हों। इस तरह के भेद से राष्ट्रीय समानता और एकरूपता में अन्तर नहीं पड़ता। हिन्दू चाहे किसी सम्प्रदाय के क्यों न हों, कोई ऐसा नहीं है जो श्रीमद्भगवतगीता को न मानता हो या कम-से-कम गीता में बताये हुए ज्ञान-विज्ञान का कायल न हो। भारतवर्ष के सभी सम्प्रदाय एक भारत की ही संस्कृति को माननेवाले हैं। चाहे वे कितना ही मतभेद रखते

हों, फिर भी उनकी संस्कृति की बुनियाद वेद, शास्त्र, पुराण, रामायण और महाभारत ही हैं; इंजील आदि कोई बाहरी ग्रन्थ नहीं।

भारत के बाहर की संस्कृतिवालों में हमारे देश में रहनेवाले पारसी, मुसलमान और ईसाई हैं। यद्यपि ईसाइयों और मुसलमानों की संस्कृति की बुनियाद प्राय: एक ही तरह के पुराण हैं, परन्तु यूरोपीय और एशियाई होने के कारण दोनों सम्प्रदायों के विकास, विस्तार, आचार-विचार और नीति में बड़ा अन्तर दिखाई पड़ता है। पारसी सम्प्रदाय की संस्कृति एकदम इन सबसे भिन्न है।

हिन्दू

हिन्दू-राष्ट्र में एक बड़ा भारी गुण है कि वह अपनेसे भिन्न सम्प्रदायों और मतों को सदा से सहता आया है। वह अपने देश में सब मतों और सम्प्रदायों का स्वागत करता है। सबको सहता है, और इसीलिए सबका धर्म है कि उसको भी सहें। गाँवों में कहीं-कहीं भिन्न-भिन्न मतों और सम्प्रदायों के लोग रहते हैं। सबका आपस में सामाजिक सम्बन्ध होता है। गाँवों में धार्मिक झगड़े बहुत कम सुने जाते हैं। हर आदमी दूसरे के आचार-विचार का पूरा ध्यान रखता है और आदर करता है। एक परमेश्वर को सब मानते हैं, चाहे वह किसी भी रूप में क्यों न मानते हों। यह बात सब मानते हैं कि किसीको कष्ट नहीं देना चाहिए और मन, वचन, कर्म से सचाई का बर्ताव करना चाहिए। सफाई के सिद्धांत को सब मानते हैं। देश और काल के अनुकूल सबके व्यवहार समान होते हैं। एक-दूसरे के साथ पूरी सहानुभूति रखते हैं। एक-दूसरे के तीज-त्योहार में शरीक होते हैं। फिर भी हिन्दुओं की गिनती इन सबमें ज्यादा है, इसलिए सबसे भारी जिम्मेदारी हिन्दू-राष्ट्र पर है। सबसे अधिक सहने का कर्तव्य हिन्दुओं का है।

हमारा विश्वास है कि हिन्दू लोग साधारणतया इस ज़िम्मेदारी को निवाहते हैं।

जहाँ-जहाँ मुसलमानों की आबादी देखी जाती है वहाँ वे प्रायः इकट्ठे ही रहते हैं। इस तरह अक्सर गाँव में जहाँ मुसलमान रहते हैं वहाँ हिन्दू बहुत कम रहते हैं। हिन्दुओं के गाँवों में कहीं-कहीं दो-चार घर मुसलमानों के भी पाये जाते हैं। ऐसे गाँवों में भी हिन्दू और मुसलमानों का झगड़ा बहुत कम सुनने में आता है। गाँवों के भीतर न तो कभी कुर्बानी का सवाल उठता है और न कभी बाजों से नमाज़ कज़ा होती है। ये झगड़े तो तभी उठते हैं जब हिन्दुओं में या मुसलमानों में बाहर से कोई फ़सादी आकर मिल जाता है और आपस में द्वेष की आग सुलगा देता है। हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े एक तीसरे दल के द्वारा फैलाये जाते हैं। क्योंकि उस दलवालों को दोनों जातियों में मेल देखकर सिर में पीड़ा होने लगती है। इस दल में हमारे देश के द्रोही लोग भी हैं, और विदेशी सरकार के राज्य की तो बुनियाद ही हिन्दू-मुसलमानों का झगड़ा है। गाँवों की पंचायतों को हमेशा इस बारे में सजग रहना चाहिए कि इस तरह की कोई लड़ाई न होने पावे और लड़ाई करानेवाले गाँव में ठहरने न पायें। रक्षा-पंचायत को इस मामले में बहुत सतर्क रहना चाहिए। अगर गाँव के अन्दर ही रहनेवाले कोई सज्जन इस न सहनेवाले स्वभाव के हों तो कोशिश यह करनी चाहिए कि उनके समान स्वभाववाले बढ़ने न पायें। झगड़ालू सम्प्रदाय जब एक दफा खड़ा होजायगा तो गाँववालों की ख़ैर नहीं है। हमेशा धमचख़ मची रहेगी।

रक्षा-पंचायत के अन्तर्गत दो-चार समझदार आदमियों की एक शान्ति-मण्डली होनी चाहिए, जो बराबर गाँववालों को सहनशील और

समझदार बनाने की कोशिश करती रहे और पनपनेवाले झगड़ों को अंकुर निकलते ही भरसक रफ़ा-दफ़ा करदे।

जहाँ आपस के मतभेद से झगड़े का होना बुरा है वहाँ एकदम इन झगड़ों के डर से परमात्मा को ही भुला देना और भी बुरा है। गाँवों मे ईश्वर की प्रार्थना, मसजिदों में नमाज़, मन्दिरों में पूजा और दर्शन, जैसा सर्वसाधारण का विश्वास हो, बराबर होते रहना चाहिए। हिंदुओं और मुसलमानों के अपने-अपने विश्वास के अनुसार कथा-पुराण, मजलिस-सभायें आदि होना चाहिए। गाँव के सब लोगों को इन धार्मिक कामों में शरीक होना चाहिए। कथाओं में जो सीखनेवाली बातें हों उन्हें अपने आचार-व्यवहार में उतार लेना चाहिए। हमको रामायण की कथा मे दशरथ की सचाई, प्रतिज्ञा और निश्छलता पर, श्रीरामचन्द्रजी के आदर्श पति, आदर्श भाई, आदर्श पुत्र, आदर्श वीर, आदर्श राजा और पुरुषोत्तम होने पर तथा भरत आदि के त्याग और भक्ति पर ध्यान देना चाहिए, जिनसे हम आप सुधर जायँ और उन्हींके जैसे अच्छे आचरणवाले बन जायँ। रामायण में रावण के जो दस सिर और बीस बाँह लिखे हैं वे होसकते हैं या नहीं होसकते, उनका अर्थ यही साधारण है या दूसरा कुछ है, इन थोथे झगड़ों में पड़ना समझदार और व्यावहारिक मनुष्य का काम नहीं है। रावण के दस सिर रहे हों या एक ही सिर रहा हो, रामचन्द्रजी ने उसे एक ही बाण मारा हो या इकत्तीस बाण मारे हों, इन बातों से व्यवहार में हमारा कोई प्रयोजन नहीं सधता। हमारे सीखने की बात तो यह है कि रावण बड़ा अत्याचारी राजा था, वह इतना अत्याचार कर चुका था कि संसार में पापी असुरों के सिवाय और कोई उसके खुश न था। रामचन्द्रजी उसका नाश करने के लिए निकले थे, परन्तु बुरे आचरणों के कारण रावण की बुद्धि ऐसी भ्रष्ट

होगई थी कि वह स्वयं रामचन्द्रजी की स्त्री सीताजी को हर लेगया और इस तरह उसने अपनी मौत को न्यौता दिया। सीखने और समझने की बातें इस तरह चुनकर हमें गाँठ बाँधनी चाहिए और झगड़े और मतभेद की बातें पण्डितों के लिए छोड़ देना चाहिए। किसानों का इसी राह में कल्याण है।

संसार में ऐसे खुदाई फ़ौजदार बहुत हैं जिनको इस बात की बड़ी चिन्ता रहा करती है कि और लोग अज्ञान में क्यों पड़े हैं ? वे आप अपने अज्ञान को दूर करने के लिए कोई चेष्टा नहीं करते, क्योंकि उन्हें यह मिथ्या विश्वास मज़बूती से जम गया है कि हम पूरे ज्ञानवान हैं, हमें कुछ सीखना नहीं है। ऐसे लोग इस बात की चिन्ता में मारे-मारे फिरते हैं और दूसरों को ज्ञान देने की चेष्टा में बहुत-कुछ त्याग करते हैं। ऐसे खुदाई फ़ौजदारों से समझदार लोगों को बचे रहना चाहिए।

जो जानते हैं, वे यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि परमात्मा और प्रकृति का रहस्य समझना अत्यंत कठिन है; इसलिए ऐसे लोग बुद्धि-भेद नहीं पैदा करते, दूसरों को ज्ञान देने के लिए उतावले नहीं होते, परन्तु जो ज्ञान प्राप्त करना चाहता है और वह उनके बस की बात होती है तो उसे बताने में भी आना-कानी नहीं करते।

किसी धर्म-मत या सम्प्रदाय की शिक्षा यह नहीं है कि लोग आपस में लड़ें। सभी अहिंसा, सत्य, प्रेम, एकता, ईमानदारी, और भलाई की शिक्षा देते हैं। इन बातों में सभी एकमत हैं। जो बातें सबको प्रेम के एक सूत्र में बाँधनेवाली हैं उन्हीं बातों को लेकर सारे गाँव को एक होना और मिलना चाहिए। जिन बातों से आपस के झगड़े पैदा हों या होने की सम्भावना हो, उनकी चर्चा नहीं करनी चाहिए। ये अपने दृढ़विश्वास की बातें हैं तो अपने हृदय में उनकी रक्षा ज़रूर की जाय। परन्तु उनके

प्रचार की तो जरूरत नहीं है, इसलिए उनकी चर्चा करना और उनपर बात बढ़ाना मूर्खता है। अगर किसी बात में सन्देह हो और वह झगड़े की बात हो तो सन्देह-निवारण की कोशिश में उतावली न करनी चाहिए। धैर्य के साथ प्रतीक्षा करने पर कभी-न-कभी कोई-न-कोई विद्वान ऐसा जरूर मिल जायगा जिसके सामने नम्रतापूर्वक उस सन्देह के सम्बन्ध में जिज्ञासा की जा सकती है और सन्देह-निवारण होसकता है। उतावली करने से सन्देह भी दूर न होगा और आपस के वाद-विवाद में कुरुचि पैदा होजायगी।

गाँव का मन्दिर गाँव के सभी हिन्दू रहनेवालों की चीज समझी जानी चाहिए। माता-पिता के सामने सभी बालक बराबर हैं। परमात्मा के सामने सभी मनुष्य एकसे हैं। इसलिए मन्दिरों में नहा-धोकर और बिलकुल शुद्ध-पवित्र होकर एक चमार भी आवे तो उसे दर्शन-पूजा का अधिकार है। गन्दगी के साथ मन्दिर में प्रवेश करने का अधिकार किसी ब्राह्मण को भी न होना चाहिए। परमात्मा के सामने छूत और अछूत का विवेक भारी पाप है, बड़ी ढिठाई है और बड़े अभिमान की बात है। जहाँ कहीं कथा-पुराण, भगवान का भजन या प्रार्थना होती हो, वहाँ तो हिन्दू-मुसलमान, छूत और अछूत सबको प्रवेश करने का अधिकार है। धर्म के मामले में उदार होना ही बुद्धिमानी है। इससे परमात्मा प्रसन्न होता है, गाँवभर का कल्याण होता है और प्रजा की सुख-समृद्धि बढ़ती है। पंचायत को चाहिए कि धर्म के सम्बन्ध में प्रेम-भाव बढ़ाने की कोशिश करे और ऐसे-ऐसे उपाय करे कि बिना भेदभाव के सारा गाँव भजन और प्रार्थना में एक होकर मिले।

: २७ :

ग्राम-स्वराज्य

हमने यहाँतक गाँव के बन्दोवस्तों के सम्बन्ध में जितनी बातें लिखी हैं, उन सबका एक ही सिद्धान्त पर विचार हुआ है कि गाँववाले सारा बन्दोवस्त अपनेआप करलें, बाहर की किसी ताक़त को किसी तरह के हस्तक्षेप का अधिकार न हो। मनुष्य के जीवन में और उसके समाज के रहन-सहन में जितनी ज़रूरतें पड़ती हैं उनपर हमने विचार कर लिया है। शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय और सेवा इन्हीं चार विभागों में उन सबका समावेश होजाता है। हमने केवल एक बात का विचार अभीतक नहीं किया है; और वह है आय। इस अध्याय में हम ग्राम-शासन का मोटा-सा रूप खड़ा करके पाठकों को दिखावेंगे। इसी प्रसंग में आमदनी की भी चर्चा करेंगे।

हरेक शासन की मुख्य आवश्यकता इसीलिए होती है कि प्रजा के जन-धन की रक्षा और उन्नति होती रहे। जो शासन इन दोनों बातों में असफल हुआ, नैतिक रीति से उसने अपनेको नष्ट कर दिया। प्रजा के जन-धन की रक्षा और उन्नति के लिए गाँव की पंचायतों के मुख्यतः चार विभाग किये गये हैं। शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय, और सेवा। इन चारों विभागों के अपने-अपने कर्तव्य अलग-अलग हैं। तो भी गाँव की सेवा में एक विभाग की सहकारिता दूसरे-विभाग से न हो तो काम नहीं चल सकता, इसलिए स्वतंत्र काम करते हुए भी इन विभागों के काम परस्पर सहायक हैं। ऐसा होते हुए भी ऐसी किसी संस्था की आवश्यकता पड़ती

है जो चारों पर निरीक्षण का अधिकार रक्खे, चारों को मिलाकर उनके कामों में ऐसी सुसंगति स्थापित करे कि उनके आपस के काम में किसी तरह का झगड़ा न पड़े। हमने पंचायतों के संगठन की चर्चा करते हुए अर्थ-समिति की स्थापना का भी वर्णन इस खण्ड के आरम्भ के अध्याय में किया है। वह अर्थ-समिति शासन या स्वराज्य-समिति का काम भी कर सकती है।

स्वराज्य-समिति में कुल पाँच ही सदस्य हों, जिनमें से चार सदस्य चारों पंचायतों के मुखिया हों और पाँचवाँ सदस्य किसान-सभा का सभापति हो। यह स्वराज्य-समिति किसान-सभा की कार्य-कारिणी-समिति होगी। पंचायतों के कामों को पूरा करने के लिए धन जुटाना इसीका कर्त्तव्य होगा।

राजनीति का मूल सिद्धान्त यह है कि प्रजा के धन-जन की रक्षा राजा करे और उसके बदले प्रजा की ओर से राजा को कर मिले। यही कर वह धन है जिसको लगाकर राजा रक्षा करने में समर्थ होता है। यह अनाज की पैदावार का दसवाँ भाग सभ्यता के आरम्भ में नियत किया गया था। कुछ काल बीतने पर यही कर बढ़कर छठा भाग हो-गया था। परन्तु यह उपज का भाग था, अर्थात् राजा को पैदा होने-वाला अनाज मिलता था, रुपये नहीं। जब पैदावार कम होती थी तब यह कर भी कम होता था और उपज बढ़ने पर यह अंश बढ़ जाता था। अपने निजी खर्च के लिए राजा की अपनी जागीर होती थी। जो कुछ कर वसूल होता था वह किसी के बाद खज़ाने में जमा हुआ करता था और उससे राज-शासन का काम चलता था। राजा अपने खर्च के लिए इस कोष में से कुछ नहीं लेता था। जहाँ-जहाँ पंचायती राज्य होते थे, वहाँ या कर पंचायतें लेती थीं और राजा का काम भी पंचायतें करती थीं।

स्वराज्य होजाने पर जिन प्रान्तों में रैयतवारी बन्दोबस्त है उनमें तो सहज में ही पंचायती राज गाँव-गाँव मे होसकता है, परन्तु जहाँ ज़मींदारी का दस्तूर चला आरहा है वहाँ जमींदारों की वही स्थिति हो सकती है जो पहले राजा की हुआ करती थी। अर्थात् ज़मींदार अपने निजी खर्च के लिए तो अपना सीर रख लेगा, परन्तु उसकी ज़मींदारी की सारी आमदनी प्रजा की समझी जायगी। वह गाँव का मुखिया या राजा नियुक्त किया जा सकता है। यह सब उस उस दशा में, जबकि ज़मींदार और किसान मे आपस के समझौते से इस तरह की शर्तें तय होजायँ। शायद प्रजा स्वयं राज़ी होकर ज़मीदार की आमदनी सीर के सिवा कुछ ज्यादा बढ़ाना भी मजूर करले। ऐसा भी होसकता है कि प्रजा और ज़मींदार के बीच में कोई समझौता न होसके और ज़मीं-दारी तोड़ दी जाय। बगाल और बिहार में बहुत बड़े-बड़े ज़मींदार हैं; वे केवल सीर पर राज़ी होजायँ, यह कैसे सम्भव है? इसलिए ऐसा अनुमान किया जासकता है कि जब ग्राम-स्वराज्य की स्थापना होगी तब प्रजा की रज़ामन्दी से ऐसे ज़मीदार मर्यादित अधिकारवाले उसी तरह के राजा हो सकेंगे जैसे कि इंग्लिस्तान के राजा हैं। अन्तर इतना होगा कि ये ज़मीदार राजा भारत की स्वराज्य-सरकार को कर देने-वाले राजा होंगे। ग्राम-स्वराज्य में ज़मींदारी-प्रथा के रह जाने की सम्भावना बहुत कम दिखाई पड़ती है। अगर केन्द्रीय स्वराज्य-सरकार ने थोड़े समय के लिए भी इस प्रथा को अछूती छोड़ दिया तो उसका फल यह होगा कि ज़मींदार किसानों को पीसते रहेंगे और किसानों के घर हाय-तोबा मचती ही रहेगी। स्वराज्य की सच्ची लड़ाई तब भी खत्म न हुई रहेगी और एक बार फिर भीतरी संग्राम हुए बिना न रहेगा।

स्थिति जैसी कुछ हो, यह तो भविष्य जाने। हम तो यहाँ यह बता

देना चाहते हैं कि चाहे गाँव की रक्षा और उन्नति का बन्दोवस्त कोई एक आदमी करे और चाहे पंचायत करे, परन्तु किसानों को अपने खेत की उपज से स्वराज्य-शासन को दशमांश से अधिक देने की आवश्यकता न पड़ेगी। इसी दशमांश में से गाँवभर की रक्षा और उन्नति का ख़र्च निकालकर एक अंश ज़िले की सरकार को, एक प्रान्तीय सरकार को और एक अखिल-भारतीय स्वराज्य-सरकार को देना पड़ेगा। गाँव की सरकार के लिए यदि किसी समय यह आमदनी कम ठहरेगी तो पंचायत को अधिकार होगा कि वह चंदा करके इस कमी को पूरा करे। कभी-कभी किसी संकट के आ पड़ने पर भी इसी प्रकार पंचायतें चन्दा करके काम निकाल सकेंगी, परन्तु मेरा अनुमान है कि उपज का दशमांश अपने देशी कार्यकर्त्ताओं के होते इतना काफ़ी होगा कि पंचायतों का ख़र्च चला चुकने के बाद गाँव के कोष में ज़रूरी कामों के लिए कुछ धन बराबर जमा भी होता रहे। इस तरह संचित धन को दुर्भिक्ष, महामारी, बाढ़ और सूखे के समय में किसानों की सहायता के लिए काम में ला सकते हैं और गाँव के लिए ज़रूरत होने पर मदरसा, चौपाल, अस्पताल, धर्मशाला, तालाव आदि बनवा सकते हैं और सड़कें और नहरें निकालने के काम में ज़िले को और प्रान्त को मदद दे सकते हैं।

सकता है। वह व्यवसायी या शिल्पी जो पंचायत के नियमों को न माने, ज़रूर ही दण्डित होगा। जो गाँववाले सफ़ाई और स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों का पालन न करेंगे, उनपर ज़रूर दण्ड लगाया जायगा। इस तरह वसूल की हुई जुर्माने की रक़म उन-उन पंचायतों की आमदनी हुई जिन पंचायतों ने वे जुर्माने किये हैं। दण्ड की रक़म तो अर्थ-समिति लेलेगी, परन्तु नियम यह होना चाहिए कि जिस विभाग की रक़म हो उसी विभाग में खर्च की जाय। नाज की उपज, चुंगी, तह बाज़ारी और दण्ड के सिवाय अर्थ-समिति का यह भी अधिकार होगा कि व्यवसाय-पंचायत की सलाह से खेती के सिवाय और ऐसे व्यवसायों पर भी कर लगावे जिनसे व्यवसायी को अच्छी आमदनी हो।

कर के लगाने में इस सिद्धांत के ऊपर ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक होगा कि उन लोगों पर ही कर लगाया जाय जिनको अपने व्यवसाय से अपने खाने, कपड़े और रहन-सहन के ऊपर कुछ फालतू आमदनी होती हो और वे उस फालतू आमदनी में से एक अंश ही कर के रूप में देते हों। यह सिद्धान्त भी व्यवहार में लाया जाय कि ज्यों-ज्यों फालतू आमदनी में बढ़ती हो त्यों-त्यों कर की दर में भी बढ़ती होती जाय। नतीजा यह होगा कि जिसकी जितनी ही ज्यादा आमदनी हो उसे उतना ही अधिक कर देना पड़ेगा और यह उचित भी है, क्योंकि जिसके पास जितना अधिक धन है उतनी ही अधिक रक्षा की जरूरत है और उतना ही अधिक उसे रक्षा का मूल्य देना चाहिए। कर नियत करने का यही सिद्धान्त सबसे समीचीन समझा जाता है।

: २८ :

ग्राम-संगठन आरम्भ करनेवालों की तैयारी

गांवों को ऐसे रूप में संगठित करने के लिए कि वे अपनी पहली स्थिति को पहुँच जायँ, भरसक उचित उपाय हमने इन पृष्ठों में बताने की चेष्टा की है। इन उपायों को गाँव के रहनेवाले हमारे भाई बरतेंगे तो उनका कल्याण अवश्य होगा। आरम्भ में काँग्रेस को अपनी ओर से ऐसा बन्दोबस्त करना होगा कि गांवों में संगठन का काम शुरू होजाय। जो स्वयंसेवक इस महत्त्व के कार्य के लिए भेजे जायँ उनकी पात्रता पर पूरा विचार कर लेना होगा। यह बात जाँच लेनी होगी कि क्या स्वयं-सेवक गांव के लोगों के साथ मन, वचन और कर्म से पूरी सहानुभूति रखता है ? क्या वह गांववाले की तरह आधे पेट मोटा अन्न खाकर गुज़र करने को तैयार है ? क्या वह अपना तैयार किया हुआ खद्दर ही पहनने को या कम-से-कम अपने काते सूत के ही और वह भी बहुत थोड़े खद्दर में गुजर करने को तैयार है ? क्या वह बिलकुल सादा जीवन और निर्दोष सत्य-अहिंसा-युक्त ब्रह्मचर्य कम-से-कम उतने काल के लिए पालन करने को तैयार है जितने दिन कि उसे ग्राम-संगठनवाली तपस्या में लग जायेंगे ? जिन गांवों में वह भेजा जाता है वहाँकी देहाती बोली क्या वह अच्छी तरह जानता है ? क्या उसने खद्दर के काम में अपनेको काफ़ी होशियार बना रक्खा है ? क्या वह कष्ट का जीवन बिताने का आदी है ? क्या वह इस बात के लिए तैयार है कि गांव की गन्दगी अपने हाथ से बिना झिझक के साफ करे ? क्या वह राष्ट्रीय शिक्षा के

तत्त्वों को जानता है ? क्या वह किसानों की जरूरतों से वाक़िफ़ है ? क्या वह अपने रूप, शील, रहन-महन से गाँववालों को अपनी ओर खींच सकेगा ? क्या वह तुलसीकृत रामचरितमानस पढ़ने, समझने और समझाने का अभ्यास रखता है ? क्या वह तात्कालिक उपचारों का व्यावहारिक ज्ञान रखता है ? क्या वह रोगी-सेवा में चतुर और शिक्षित है ? क्या वह चर-विद्या में निष्णात है ? क्या वह पंचायतों के संगठन का तत्त्व समझता है ? क्या वह देहाती खेलों और व्यायामों का शौक़ीन है ? क्या उसने कृषि-विद्या के साहित्य का परिशीलन किया है ? क्या वह वर्तमान अर्थनीति, राजनीति और समाजनीति समझे हुए है ? क्या वह सत्याग्रह-संग्राग के तत्त्वों को समझता है ? क्या वह काँग्रेस के ध्येय का पालन करने और कराने का सिद्धांत समझे हुए है ? क्या वह इतना धैर्य्यवान है कि कई दिन भूख का कष्ट सहकर, वारम्वार लाठी की मार खाकर और तरह-तरह की यातनायें सहकर भी सेवा-कर्म में अविचलित रूप से डटा रहेगा ? इस तरह के बड़े महत्त्व के प्रश्न हैं जिनकी कसौटी पर कसकर स्वयंसेवक की जाँच करनी होगी और जब वह सब तरह से योग्य पाया जाय तभी उसे इस भारी काम के ऊपर भेजना उचित होगा।

वह योग्यता कैसे आवेगी ? इन प्रश्नों के उत्तर ऐसे नहीं हैं कि शिक्षा बिना पाये हुए कोई स्वयंसेवक काँग्रेस को संतुष्ट कर सके। हमारे पास इतना समय भी नहीं है कि हम ग्राम-संगठन करनेवाले स्वयंसेवकों को वरस छः महीना वैठाकर शिक्षा दें। इस ग्राम-संगठन के काम के लिए आजकल सवसे उपयुक्त पात्र कॉलेजों के लड़के हैं। कॉलेजों के लड़कों के सिवाय दूसरे योग्य स्वयंसेवक हमको यथेष्ट संख्या में नहीं मिल सकते। अगर दस-दस गाँवों के संगठन के लिए हमें एक-एक स्वयं-

सेवक रखना हो तो सत्तर हज़ार स्वयंसेवक चाहिएँ। सारे भारत में भी कॉलिजों के लड़के इतनी बड़ी संख्या में हमें नहीं मिल सकते। इसलिए अगर सारे भारत के कॉलेजों से चुन-चुनकर एक-एक विद्यार्थी केवल ग्राम-संगठन के काम के लिए मिल जाय तो बहुत किफ़ायत से हम एक-एक विद्यार्थी को बीस-बीस तीस-तीस गाँवों के संगठन के लिए रख सकेंगे। यदि हमें सभी कॉलेज के विद्यार्थी मिल जायँ तो हर प्रांत के विद्यार्थियों को उन-उन प्रांतों में बँट जाना चाहिए जिनपर उनका अधिकार है, और हर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी को चाहिए कि अपने प्रांत के लड़कों को ग्राम-संगठन की शिक्षा देने के लिए आतुर-शिक्षालय खोलदे, जिसमें कुल पंद्रह दिनों की शिक्षा देकर स्वयंसेवक तैयार किये जायँ। इन पन्द्रह दिनों की शिक्षा में ग्राम-संगठन के पंडित नहीं तैयार होंगे। इस विधि से केवल आतुर-सेवक बन सकेंगे, जो ग्राम-संगठन के काम को एक अच्छी विधि से आरम्भ करदें। फिर जो रास्ता वे दिखा देंगे उसी रास्ते से गाँववाले आप अपना संगठन कर लेंगे। कांग्रेस को इस सम्बन्ध में आगे चलकर विशेष प्रयास की आवश्यकता न पड़ेगी।

इस आतुर-शिक्षालय में नीचे लिखे विषयों की शिक्षा देने का प्रबंध करना पड़ेगा :—

८—स्वास्थ्य-रक्षा ।

९—वर्त्तमान राजनीति, मामाजनीति और अर्थनीति ।

१०—ग्राम वास्तु-विज्ञान ।

११—पंचायतों का संगठन ।

१२—गाँवों की और किसानों की वर्त्तमान दुर्दशा ।

१३—आपत्काल में प्रजा की रक्षा ।

इन तेरह विपयों में से पात्रता, खद्दर का काम, तात्कालिक उपचार, चर-विद्या और रोगी-सेवा ये पाँच विपय ऐसे हैं जो अध्ययन और अध्यापन से सीखे और समझे जासकेंगे । इनके लिए इन्हीं पन्द्रह दिनों में आठ-आठ घण्टे रोज़ शिक्षा का प्रवन्ध करना पड़ेगा, जिनमें से चार घण्टे नित्य की व्यावहारिक शिक्षा रखना आवश्यक होगा ।

इन आतुर-सेवकों की जीविका का उन दिनों के लिए, जबतक कि वे ग्राम-संगठन का काम करेंगे, ग्रामवाले ही बड़ी खुशी से वन्दोवस्त करेंगे । परन्तु स्वयंसेवकों को उचित नहीं हैं कि अपनी जीविका के लिए विशेप रूप से अलग सेवा किये विना ग्राम-संगठन के काम से ही कुछ धन प्राप्त करें । वे गाँव के बच्चों के पढ़ाने के लिए अपने आश्रम में पाठशाला खोललें और रात में भी बड़ों को पढ़ाने के लिए रात्रि-पाठशाला खोलें । इस तरह दिन में और रात में पढ़ाकर वे काफ़ी जीविका के अधिकारी होजायँगे । वे सुभीते के साथ और तरह की मज़ूरी और मोटा काम करके अगर अपनी जीविका करलें तो मुदर्रिसी से ज्यादा अच्छा होगा, क्योंकि गाँववाले अधिकतर मोटे काम से ही रूखी-सूखी रोटी कमाते हैं । केवल विशेप अवस्था में ही उन्हें अपने लिए काँग्रेस से या किसीसे सहायता लेने का अधिकार होगा । इन खद्दर के सिपाहियों को देश के ऊपर भार प्रतीत न कराना चाहिए ।

स्वयंसेवकों को देश में फैले हुए अनेक भ्रमों से बचे रहना चाहिए। हम उन भ्रमों में से कुछ का दिग्दर्शन इस स्थल पर करते हैं।

१. साक्षरता का भ्रम

हमारे देश में पहले सच्ची शिक्षा का बहुत अच्छा प्रचार था। जबसे यहाँ विदेशियों का राज्य हुआ तबसे लोकशिक्षा प्रायः उठ गई। पच्छाहीं पढ़ानेवालों ने अक्षर-ज्ञान पर बहुत जोर देकर मर्दुमशुमरियों में गिनती कराई। लगभग पचास वर्ष से मर्दुमशुमारी हुआ करती है। गिनती से पता चलता है कि अंग्रेजों के समय में भारत में अक्षर पहचान सकनेवाले सैकड़ा पीछे सात आदमी से अधिक नहीं हैं। सरकार बड़ी चालाक है। एक तरफ़ से तो वह अक्षर-ज्ञान के प्रचार में पैसे खर्च नहीं करना चाहती, दूसरी तरफ़ से यह कहती है कि तुम लोगों में पढ़े-लिखों की गिनती इतनी थोड़ी है कि तुम्हारे यहाँ मतदाता लोग काफ़ी पढ़े-लिखे नहीं मिल सकते इसलिए तुम अपने राज्य का प्रबन्ध नहीं कर सकते। इसमें दो तरह के धोखे हैं। एक तो यह कि स्वयं इंग्लिस्तान में मतदाता होने की कोई ऐसी शर्त नहीं है कि उनका अक्षर-ज्ञान रखना या नाम लिख सकना जरूरी हो। स्वराज्य के लिए साक्षर होना भी कोई जरूरी बात नहीं है। जब अंग्रेजों के पुरखे पढ़े-लिखे नहीं थे और भारतवर्ष के लोग भारी-भारी विद्वान थे, तब भारतीयों ने कभी यह नहीं कहा था कि अंग्रेज लोग पढ़े-लिखे नहीं हैं

में दो मतलब साधे। एक तो शिक्षा में खर्च होनेवाले पैसे बचाये और दूसरे उन्होंने भारतवर्ष को बन्धन में रखने के लिए एक कारण बनाये रक्खा। हमको इन दोनों धोखों से बचना चाहिए। स्वराज्य के लिए साक्षरता कोई जरूरी शर्त नहीं है और पूरा स्वराज्य भोगनेवाले किसान के लिए पढ़ना-लिखना जानना ज़रूरी नहीं है, इसीलिए किसानों की शिक्षा में उनके काम की बातों का बताया जाना मुख्य है और पढ़ना-लिखना सिखाया जाना गौण है।

२. गहनों से समृद्धि का भ्रम

हमारे देश में गहनों का बहुत ज़बरदस्त रिवाज है। प्राचीनकाल से स्त्रियों को गहने पहनाने का दस्तूर चला आया है, परन्तु इधर जबसे राज्यविप्लव होने लगे और आये दिन गाँवों पर और किसानों पर भी कुचक्र के कारण विपत्तियाँ पड़ने लगीं तबसे स्त्रियों के ये गहने बैंक का काम करने लगे। जब कभी किसान संकट में पड़ता है और बिना रुपयों के उसका काम नहीं चलता, साहूकार ऋण नहीं देता, ज़मींदार ज़रा भी रिआयत नहीं करता और सिपाही उसकी बेइज्ज़ती करने पर तुल जाता है, तब किसान की स्त्री से देखा नहीं जाता। वह अपने गहने उतारकर पति के मान की रक्षा करती है। यों किसानों के बैंक होते तो भी काट-कपटकर किसान उतना जमा न कर सकता जितना कि व्याह के समय या और वक्तों में लाचार होकर औरतों के गहने बनवाने में खर्च करता है। जब भूख से बच्चे तड़फने लगते हैं और पेट की आग किसी-न-किसी तरह से बुझाना ज़रूरी होजाता है और चाँदी के गहने भी शरीर पर बचे नहीं रहते, तब फूल या काँसे की चूड़ियाँ फोड़-फोड़कर बेची जाती हैं और किसी तरह एक बार की रोटियों का बन्दोबस्त होजाता है। जबतक किसान की कंगाली दूर नहीं की जाती

तबतक किसानों के इस बैंक को उठा देने की कोशिश करना किसानों के साथ बड़ी भारी बुराई करना है। हम यह मानते हैं कि गहनों में किसान का बड़ा नुक़सान होता है। सोनार अगर ईमानदार हो तब भी मुश्किल से रुपये में बारह आना माल रह जाता है, पर वर्तमान काल में किसान के पास ऐसा कोई बैंक नहीं है जिसमें जमा करके वह अपनी ज़रूरत के वक्त पर इससे ज्यादा सुभीता पा सके। जब गाँव का सहकारी बैंक बन जायगा और हर किसान उससे लाभ उठाने लग जायगा और वह देखेगा कि इसमें हमको ज्यादा सुभीता है, तो वह गहने बनवाना कम कर देगा। परन्तु जबतक यह प्रबन्ध सुरक्षित नहीं होजाता तबतक सोने-चाँदी का इस्तैमाल हमारी समझ में बेजा नहीं है। जब ये लड़ाइयाँ छिड़ जाती हैं तब इस सुभीते का पता लगता है। सरकारी रुपया तो रुपये में बारह आना भी क़ीमत नहीं रखता। अगर सोनार ने बेईमानी करके गहनों को रुपये में आठ आने का ही माल कर दिया है तो भी गहने से उतना नुक़सान नहीं है जितना रुपये से है; क्योंकि रुपये में छः आना भर भी माल नहीं है और पाँच रुपये, दस रुपये, सौ रुपये या हज़ार रुपये का एक नोट तो धेले का भी माल नहीं है। इसलिए गहने में प्रजा का उतना नुक़सान नहीं है जितना कि रुपये और नोटों से है। विदेशी चालाक कूटनीतिज्ञ हमको मुफ्त बदनाम करते हैं कि भारतवर्ष में लोग गहना बनवा-बनवाकर सोने-चाँदी को सिक्के के रूप में नहीं चलने देते; दिन-दहाड़े उनसे तिगुने दाम के सिक्के क़ानून और लाठी के बल से चलाये जाते हैं और इतने पर भी विदेशियों को अगर कोई ठग या बेईमान कहता है तो वे अत्यन्त बुरा मानते हैं। अतः जो वे गहनों की निन्दा करते हैं उनके भ्रम में हमें नहीं पड़ना चाहिए। इस भ्रम में भी न पड़ना चाहिए कि गहना हमको धनाढ्य बनाता है। वास्तविक धन

हमारी आवश्यकता को पूरी करनेवाली चीजें हैं। चाँदी और सोने से हमारी कोई आवश्यकता पूरी नहीं होती। अन्न, वस्त्र और गोधन से हमारी जरूरतें पूरी होती हैं; हमको पैसों की माया में न फँसना चाहिए।

३. यह भ्रम कि दरिद्रता का कारण आबादी का बढ़ना है

हमारे देश की दरिद्रता पर अर्थशास्त्रियों ने बहुत खोज की है। विदेशी सरकार के पक्ष के लोग कहते हैं कि दरिद्रता का कारण भारत की आबादी का बढ़ना है। किसी-किसीने इसी भ्रम में आकर यहाँतक सलाह दी है कि भारतवर्ष की बढ़ी हुई प्रजा कहीं टापुओं में जाकर बस जाय। परन्तु यह बहुत भारी भ्रम है। जबसे इस देश में अंग्रेजों का पैर आया है तबसे भारतवर्ष की आबादी सबसे कम बढ़ी है। अर्थशास्त्रियों में यह तो बिलकुल मानी हुई बात है कि फ्रांस ऐसा देश है जहाँ की आबादी ठहर-सी गई है। इंग्लिस्तान की आबादी जरूर बढ़ती है और वह समृद्ध देश समझा जाता है, इसलिए कि ब्रिटिश भारत में पिछले पाँच दशकों में भी क्षेत्रफल की बढ़ती होती रही है और आबादी का हिसाब क्षेत्रफल की घनता से ही ठीक-ठीक लगाया जा सकता है। श्री कुमारप्पाजी ने इस भ्रम का उच्छेदन करते हुए 'यंग इण्डिया' में नीचे लिखे अंक देकर यह सिद्ध किया है कि भारतवर्ष की आबादी में जो बढ़न्ती गत पचास वर्षों में हुई है वह फ्रांस देश की बढ़न्ती से भी कम है। उन्होंने तीनों देशों का मुक़ाबला किया है, जो आगे के पृष्ठ पर दिया गया है।

सारांश[१] यह है कि पचास वर्षों में भारत की आबादी जहाँ ५.१ बढ़ी वहाँ फ़्रांस की आबादी ५.७ बढ़ी और इंग्लिस्तान और वेल्स की

१. From "Public Finance and our Poverty," by J. C. Kumarappa, M. A. B. Sc. Ahmedabad. P. 92.

वर्गमील पीछे आबादी प्रत्येक गणना वर्ष में				सन् १८७१ को बुनियादी वर्ष मानकर उसके अंक को १०० माना गया		
वर्ष	भारत	फ्रांस	इंग्लिस्तान और वेल्स	भारत	फ्रांस	इंग्लिस्तान और वेल्स
१८७१	२१५	१७४	३८७	१००	१००	१००
१८८१	२२७	१८२	४४५	१०५.५	१०४.६	११४.४
१८९१	२२९	१८५	४९७	१०६.५	१०६.३	१२८
१९०१	२१०	१८८	५५८	९७.६	१०८	१४३.४
१९११	२२३	१८९	६१८	१०३.६	१०८.६	१५८.८
१९२१	२२६	१८४	६४९	१०५.१	१०५.७	१६६.८

६६.८ बढ़ी। अर्थात् भारत की आबादी की बढ़न्ती फ्रांस के बराबर भी न हुई, उससे भी कम रही। अगर दशक का औसत लें तो फ्रांस की आबादी सैकड़ा पीछे जहां १.१५ बढ़ी वहां भारत की केवल १ बढ़ी है। इसके मुक़ाबले इंग्लिस्तान की १३.३ बढ़ी है। इंग्लिस्तान की बढ़ती मामूली से ज्यादा है। मामूली तौर से हर दशक में सैकड़ा पीछे दस बढ़ना चाहिए। अगर इस हिसाब से भारत की बढ़ती होती तो आज आबादी ३७ करोड़ से अधिक होती। परन्तु आबादी तो उस हिसाब से नहीं बढ़ी जिस हिसाब से फ्रांस में बढ़ रही है। फिर आबादी की बढ़ती से दरिद्रता क्यों होनी चाहिए? जो लोग दरिद्रता का कारण आबादी की बढ़ती समझते हैं उनकी भारी भूल है।

८. पच्छाहीं सभ्यता का भ्रम

उन्हें खींच न सकेंगे। पैसे बरबाद होंगे। विदेशी लोग उनकी बिक्री के लिए ज़मीन-आसमान एक कर रहे हैं, परन्तु इन धोखेबाज़ियों में जो पड़ चुके हैं वे बेतरह पछताते हैं। पच्छाहीं चीज़ें भूलकर एक भी न ख़रीदी जायें। यह एक भयंकर भ्रम है।

५. अनाज की महँगी से लाभ का भ्रम

किसान इस भूल में पड़ा हुआ है कि अनाज का महँगा होना अच्छा है, क्योंकि रुपये ज्यादा मिलते हैं। परन्तु यह भी धोखा है। भारी लगान, कपड़े-लत्ते और दूसरे सामान के लिए किसान रुपये संग्रह करता है। ये रुपये लगान, मुक़दमेबाज़ी, रिश्वत, नशा, सूद, विदेशी कपड़ा आदि कामों में ख़र्च होजाते हैं। उसके हाथ कुछ नहीं लगता। अनाज सस्ता हो तो बेचो मत। मुक़दमा न करो, पंचायत से काम लो। रिश्वत, नशा और विदेशी कपड़ों के पास न फटको। लगान घटवा लो। सूद भी घटाओ। अपने ख़र्च भर का अनाज पास रखकर बाक़ी में सूद और लगान दे डालो। अनाज महँगा होता है तो देखने को पैसे ज्यादा मिलते हैं, पर सब पैसे खिंच जाते हैं। सस्ता होने पर किसान बेचता नहीं। फिर अन्न देश में ही रहेगा। लोग भूखों न मरेंगे। इस भ्रम को भी दूर करना ज़रूरी है।

६. जाति-भेद से अनैक्य का भ्रम

बहुत-से लोगों की तरह हाथ धोकर जाति-भेद के पीछे पड़ने की ज़रूरत नहीं है। समाज की सारी सेवायें एक ही आदमी नहीं कर सकता; इसीलिए सब देशों और कालों में सेवायें बँटी रहती हैं। यह अर्थशास्त्र के अनुकूल श्रम-विभाग है। श्रम-विभाग को तोड़ने के व्यर्थ प्रयास में न लगना चाहिए। हाँ, समाज के अस्तव्यस्त होजाने से जो पेशे कोई न करते हों उनके लिए फिर से बन्दोबस्त करना चाहिए और जिनके पास

आज काम न हो वे नये पेशे चुनलें। परन्तु जाति-भेद के तोड़-फोड़ या नई जाति के निर्माण के झगड़े में स्वयंसेवक पड़ेगा तो ग्राम-संगठन का लक्ष्य बिलकुल भूल जायगा। रोटी-बेटी के भेद को लोग जो फूट का कारण समझते हैं वह भी भारी भूल है। जर्मन और अंग्रेज़ के बीच रोटी-बेटी का भेद कभी नहीं हुआ, न होसकता है; परन्तु विगत महायुद्ध में वे एक-दूसरे के ख़ून के प्यासे थे। इस रोटी-बेटी के भेद को मिटाना मैं ज़रूरी नहीं समझता। इस भेद से अनैक्य पर फूट का जितना बढ़ना बताया जाता है, उतना सत्य नहीं जँचता।

७. भारत की समृद्धि का भ्रम

भारत का किसान अपनी प्यारी धरती को छोड़ने के बदले स्वयं उजड़ जाता है, पर भूमि नहीं छोड़ता। जिस कड़ाई के साथ लगान वसूल होता है, वह सब जानते हैं। सरकार की आमदनी कभी नहीं घटती, और किसान की स्त्रियों के गहने भी रक्खे ही रहते हैं। इन बातों को देखकर विदेशी कहते हैं कि भारत समृद्ध है। कहने की ज़रूरत नहीं कि इससे बढ़कर भूल हो नहीं सकती। दरिद्रता की यह दशा है कि संसार-भर में भारत में ही सिर पीछे छः पैसे के लगभग नित्य की अत्यन्त थोड़ी रक़म है। नीचे उसका नक़शा दिया जाता है :—

आदमी पीछे रोज़ाना आमदनी

(८) गाँव के बाहर से आवा-जाई, व्यापार और व्यवहार के सब तरह के सुभीते मिलें।

(९) अपने गाँव के शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय, सेवा सभी विभागों पर, उनके आय-व्यय और प्रबन्ध पर, पूरा अधिकार अथवा ग्राम्य-स्वराज्य प्राप्त हो।

(१०) ऋण, मुक़दमेबाज़ी, नकद देन, गोवध, नशा और प्रच्छन्न कर इन छः विपत्तियों से छुटकारा मिले।

(११) देश के पूर्ण स्वराज्य की सरकार से सहयोग व सहकारिता का सम्बन्ध हो।

: ३० :

गाँवों में जाकर क्या करना चाहिए ?

१. कौन जाय ?

ग्राम-संगठन का काम बड़ी समझदारी और ज़िम्मेदारी का है। इसके लिए पात्र वही होसकता है जो चरित्रवान हो, अपने काम को अच्छी तरह जानता हो, और जिसको गाँववालों से पूरी सहानुभूति हो।

देश की जैसी हालत है उसमें इस समय दो तरह का काम होने की ज़रूरत है: एक तो खंडनात्मक और दूसरा मंडनात्मक। बिगड़ी सुधारने का काम किसानों का और गांवों का सुधार है, क्योंकि इन्हीं की दशा बिगड़ने से देश की दशा बिगड़ गई है। जहाँ एक ओर कांग्रेस को सत्याग्रह के मैदान में युद्ध करनेवाले सैनिक चाहिएँ, वहाँ दूसरी ओर ग्राम-संगठन करनेवाले शान्त, ठोस, काम करनेवाले बहादुर सिपाहियों की भी ज़रूरत है। विद्यालयों से निकलनेवाले विद्यार्थी दोनों तरह के सैनिक बन सकते हैं, परन्तु इस समय ग्राम-संगठन करनेवालों की ज्यादा ज़रूरत है। इसके लिए कांग्रेस को चाहिए कि एक आनुष-

जितनी बातें मैं सोचता हूँ वे बिलकुल सच होनी चाहिएँ; जो कुछ मैं कहता हूँ वह भी ठीक और सच्चा काम हो। वह जितने काम करे उनमें यह ध्यान रक्खे कि हम किसीको कष्ट पहुँचाने के कारण न बनें। जितनी बातें कही जायँ वे ऐसी हों कि जिनसे किसीका जी न दुखे।

२. उसकी तैयारी

ग्राम-संगठन के लिए उसे क्या-क्या जानना चाहिए ? संक्षेप में तो हम यों कहेंगे कि किसान के सब तरह के जीवन की सभी बातें उसके जानने की हैं, तो भी पन्द्रह दिन में तो सारी बातें नहीं आसकतीं। उसे कपास का ओटना, रुई का सुखाना, फटकना, धुनना, पूनियाँ बनाना, कातना और सूत की नियमित अट्टियाँ बनाना नियमित रूप से सीखना पड़ेगा। उसे यह भी जानना चाहिए कि ओटनी, धुनकी, तकली, चरखा, अटेरन, पटेला आदि के गुण-दोष क्या हैं, और उन्हें ठीक और सिजल कैसे रखना होता है, बिगड़ जायँ तो कैसे बनाना होता है, और इन वस्तुओं के उत्तम प्रकार क्या हैं ? उसे अच्छा सूत कातना चाहिए और अच्छे सूत की परख होनी चाहिए। उसे स्वास्थ्य और सफ़ाई के सभी सिद्धांत मालूम होने चाहिएँ। विशेष रूप से गोबर और गोमूत्र की रक्षा और खाद की तरह से उपयोग की पूरी जानकारी होनी चाहिए। उसे चलती-फिरती टट्टियों और खेत की नालियोंवाले पाखाने की विधि मालूम होनी चाहिए। और इसी तरह घूरे को काम में लाने की विधि मालूम होनी चाहिए, आतुर, आकस्मिक और तात्कालिक उपचार भी मालूम होने चाहिएँ जिनमें आस-पास मिलनेवाली जड़ी-बूटियाँ, पत्तियाँ, छाल आदि काम दे सकें। उसे रोगी-सेवा भी जाननी चाहिए और चर-विद्या भी उसे आनी चाहिए। इतनी बातों का व्यावहारिक ज्ञान ग्राम-संगठन के सिपाही में अत्यंत आवश्यक है।

इनके सिवा उसे कुछ किताबी ज्ञान भी होना ज़रूरी है। पुस्तकों से उसे जानना चाहिए कि भारत गुलाम कैसे बना, कंगाल कैसे बना, गाँवों की वर्तमान दशा क्या है, और सुधरने पर कैसी दशा होनी चाहिए ? वर्तमान राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्यायें क्या हैं और इनको कैसे सुलझाना है ? किसानों में क्या-क्या दोष हैं और उन्हें कैसे दूर करना होगा ? किन-किन बातों से गाँव पूरा समझा जाता है ? और जिस गाँव का संगठन किया जा रहा है उसमें किन-किन बातों की कमी है, जिन्हें पूरी करने की ज़रूरत है ? उसे खेती की विद्या, गोपालन, पशु-पालन, खंडसाल, दुग्धशाला इत्यादि गाँव में होने और होसकने-वाले सब तरह के व्यवसायों का ज्ञान होना चाहिए। खेती और गोपालन का ज्ञान सबसे अधिक और अच्छा होना चाहिए और इन सब बातों के लिए उसके पास काफ़ी साहित्य का संग्रह होना भी ज़रूरी है।

ग्राम-संगठन करनेवाले स्वयंसेवकों को रामायण की या किसी पुराण की कथा कहने का ढंग भी मालूम होना चाहिए और इसी कथा के साथ-साथ गाँव के श्रोताओं को उनके जानने के लायक़ सभी बातें बतानी चाहिएँ। सत्य, अहिंसा, नेकनीयती, ईमानदारी का बर्ताव, उदारता, धैर्य आदि अच्छे गुणों की और सच्चरित्रता की भी शिक्षा देने के उपाय करने होंगे। इसलिए कथा और व्याख्यान के लिए भी संगठन-कर्ता को तैयार रहना चाहिए।

पेंसिल; क़ाग़ज़; कार्ड-लिफ़ाफ़े; साबुन; एक थाली; एक कटोरा; एक चम्मच; तकली; तकली का बक्स; अटेरन; एक चालू वर्ष की डायरी; हिन्दी रेलवे टाइमटेबल; एक झोली; एक भगौना (बन्द); एक तवा; एक लोटा; एक गिलास; पूनियाँ ५।; एक डिब्बिया दियासलाई; एक अच्छा चाकू; अनासक्तियोग—गीताबोध; चर्खाशास्त्र; रामचरितमानस; आश्रम-भजनावली; एक खुरपी लगा डंडा (शौच के लिए खोदने को); तीन लुंगियाँ; दो अंगोछे; दो कुरते या बनियान; दो गाँधी-टोपी; दो कम्बल; सुई-डोरा; कुएँ की डोरी (लोटे लायक)।

३. काम कैसे शुरू हो ?

किसी जान-पहचानवाले या मित्र का पत्र लेकर या कांग्रेस के किसी प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता के साथ जाकर गाँव के लोगों से जान-पहचान पैदा करनी चाहिए, और किसी ऐसे सुभीते की जगह जाकर ठहरना चाहिए जहाँ रहने से किसीको कष्ट न हो, कोई बुरा न माने। संगठन करनेवाले को भरसक अपना काम स्वयं कर लेना चाहिए। किसी दूसरे से सेवा न लेनी चाहिए। गाँव में जाकर वह पहले सारे गाँव में घूमकर सफ़ाई की दशा देख ले और फिर आसपास के पाँच-सात गाँवों की भी दशा देखे। इसी बीच तकली कातने का और रुई धुनने का काम जारी रक्खे। लोगों को पहले तकली बनाना और उसपर कातना सिखावे। साँझ के समय गाँववालों को रामायण सुनावे और अच्छी-अच्छी बातें समझावे। दिन में किसी समय गाँव की गन्दी-से-गन्दी जगह या नाली की ख़ुद अपने हाथ से सफ़ाई कर डाले। सबसे पहले गाँव की सफ़ाई में ही हाथ लगावे। इस तरह जब काम की बुनियाद डाले, उसी समय धुनकी और चरखे बनवाने का और धुनने और कातने के प्रचार का आरम्भिक काम करता रहे। शुद्ध तकुआ-युक्त एक अच्छा चरखा और

एक अच्छी धुनकी---बारडोली पींजन बहुत अच्छी होगी---लेकर पूनियाँ बनाने का उत्तम प्रबन्ध अपने आश्रम पर करे। सारे गाँव के स्त्री-पुरुषों को इन कामों में कुशल कर देना होगा ।

गाँवों में घर-घर कलह है । जमींदार-किसान भी आपस में लड़ते रहते हैं। पटवारी, दलाल, चौकीदार, पुलिसवाले, जमींदार के कारिन्दे और सिपाही इन सबकी जीविका झगड़ों से ही है। संगठनकर्ता किसी-से उलझे नहीं। उसे किसी दल या किसी पक्ष से कोई मतलब नहीं। वह जमींदार और किसान दोनों का हितकारी है । वह लड़ानेवालों का भी और गाँवभर का हितकारी है, परन्तु लड़ाई नहीं चाहता । जो लड़ाई-झगड़ों की रोटियाँ खाते हैं, उन्हें उससे विरोध होगा । परन्तु वह आप किसीसे भी विरोध न मानेगा । इस बुरी जीविका को वह अपने शान्त शुद्ध आचरण और उपदेश से और उचित संगठन से नष्ट कर देगा। जिस दिन वह किसी दल का होजायगा उसी दिन वह अपना पवित्र काम बिगाड़ देगा ।

३. **संगठन**—उस विषय का जो क्रम से पड़ता हो।

ये सब काम गाँव के होंगे। उसके निजी काम, अपना नित्यकर्म, कातना-बुनना, भोजन पकाना, नहाना, कपड़े धोना, खाना, आराम करना आदि सब कामों के लिए निश्चित समय होगा। नित्य शाम को मनबहलाव के किसी काम में और कथा-वार्त्ता में समय देना होगा। जल्दी सोना और जल्दी उठना नियम होगा।

इन नित्य के कामों को इस तरह पर करना होगा कि सप्ताह में एक दिन और किसी गाँव में जाने के लिए रख लिया जाय। यही छुट्टी समझी जायगी। इसके सिवा जो दिन बाजार का होगा उस दिन भी आधी छुट्टी रहेगी। इस प्रकार का नित्य नियम धीरे-धीरे परन्तु दस ही पन्द्रह दिनों बाद स्थापित होजाना चाहिए। शिक्षा-क्रम बढ़ाकर रात्रि-पाठशाला का भी बन्दोबस्त करना होगा, जिससे बड़ी अवस्था वाले भी शिक्षा पा सकें।

५. किसान की ज़रूरतें

काम करनेवाले को किसान की जरूरतें समझ रखना पहला कर्त्तव्य है। कहीं-कहीं नौ, कहीं छः, कहीं चार और कहीं-कहीं कम-से-कम तीन महीने तो साल में किसान बेरोजगार पड़े ही रहते हैं। इस भयानक बेरोज़गारी से उन्हें न पेट-भर भोजन मिलता है न जरूरत-भर कपड़ा। धनाभाव से वे खेती के उचित और इष्ट साधन भी नहीं रखते। धरती पर स्वामित्व न होने से वे उसे सुधारने में मन भी नहीं लगाते। उनपर बहुत भारी ऋणों का भी भार है। इसपर भी आये दिन की मुक़दमेबाजी उनको कंगाल बनाये रहती है। किसान कामकाज, तीज-त्योहार आदि में अपनी ताक़त से बाहर खर्च करता है। उसको ताड़ी, तमाखू, गाँजे, भाँग आदि नशों की लत भी तबाह कर रही है। इन

सबके ऊपर भारी बोझा उसके कंधों पर लगान का है। ये सात बोझे ऐसे हैं जिनसे उसे हलका करने की जरूरत है।

खेती के सुधार के लिए उसे शिक्षा मिलनी चाहिए और सहयोग-समितियाँ बनाकर अपने काम में उसे सहायता मिलनी चाहिए। शिक्षा का अर्थ है खेती की उचित शिक्षा—केवल लिखना-पढ़ना नहीं। सहकारिता की कमी ने खेती पर का खर्च भी बढ़ा हुआ है। उसे घटाकर साधन-सुलभ कर देना चाहिए। गोबर, गोमूत्र, पाखाने, पेशाब से और घूरे से गंदगी होने के बजाय उसे उत्तम खाद मिलना चाहिए। दूर-दूर और छोटे खेतों का पंचायत द्वारा और विनिमय कराकर एकत्रीकरण होना चाहिए। निदान खेती की शिक्षा और सहयोग-समितियों का निर्माण होना चाहिए। यह काम गाँववाले आप करें। इसके लिए स्वयंसेवक **शिक्षा-पंचायत** बनाकर काम करावें।

लड़ाई-झगड़े से रक्षा, अदालत जाना व्यर्थ कर देना, ऋण का बोझ हलका करा देना—ये काम भी रक्षा-पंचायत से होंगे। गाँव में ही **रक्षा-पंचायत** मुकदमे निबटा देगी, साहूकार को सूद छोड़ने और ऋण-मोचन सहज करने को राजी करेगी और भरसक कलह न होने देगी। इसके सिवा रक्षा के सारे काम यह कर सकेगी।

उपाय ओटाई, धुनाई, कताई को जारी करना है। इन कामों के होते किसान बेकार नहीं रह सकता। यही खास काम है जिसे स्वयंसेवक पंचायत की स्थापना के पहले ही सारे गाँव में फैला देगा और बेकारी को निर्मूल कर देगा। किसान अपनी कपास उपजाकर सूत बनाने तक सारा काम करलेगा तो उसे पहनने को कपड़ा मज़बूत और सस्ता मिलेगा और जो पैसे बचेंगे वे और कामों में आवेंगे। साहूकारों की ज़रूरत सहयोग-समितियों से पूरी होसकेगी और पंचायत कोशिश करके साहूकार और ऋणी में समझौता करा देगी और जबतक ऋण है कम-से-कम तबतक कामकाज, उत्सवादि पर खर्च पंचायत की बताई हुई सीमा के भीतर करना होगा।

सेवा-पंचायत स्थापित होकर गाँव के लोगों के आचरण पर नियंत्रण रक्खेगी। नशा-सेवन से बचावेगी। उनके व्यायाम, खेलकूद, मनबहलाव का काफ़ी बन्दोबस्त करेगी। व्यवसायियों, शिल्पियों और साधारण मजूरों के समाज में सचाई, अहिंसा, ईमान्दारी, कला की उत्तमता आदि के ऊँचे आदर्श की स्थापना और रक्षा करेगी।

इन चारों पंचायतों की स्थापना इसी दृष्टि से करनी होगी कि किसानों में स्थानीय स्वराज्य की परिपाटी चल जाय। वे स्वावलम्बी होजायँ। विदेशी से तो क्या, किसी और गाववाले से भी अपने भीतरी मामलों में मदद के मुहताज न हों। संगठन का यह मुख्य काम होगा। गाँववालों को इन पंचायतों का सिद्धान्त व्यवहार द्वारा ही सिखाना होगा।

८. किसानों की सहायता

पंचायतों के संगठन के सिवा किसानों की और प्रकार से भी स्वयं-सेवक सहायता कर सकता है। उसे गाँववालों में से कई चतुर निवासि-

यों को चुनकर अनेक बातों में दक्ष कर देना होगा। उन्हें चरविद्या, आतुरोपचार, साधारण चिकित्सा, रोगी-सेवा, और बन पड़े तो बुनाई की कला भी सिखलानी होगी। यदि यही लोग वर्तमान राजनीति, समाज-नीति, अर्थनीति के मोटे-मोटे सिद्धांत समझ सकें तो यह सब भी समझाना होगा। कृषिविद्या, गोपालन, खंडसाल का काम, और गाँव के और व्यवसायों का काम भी भरसक सिखला देना होगा। गाँव का भावी नेता भरसक इन्हीं विशेष शिक्षितों में से कोई एक तो जरूर निकल आयगा। कई निकल आवें तो भी आश्चर्य नहीं। **स्वयंसेवक का मुख्य काम यही है कि गाँव के भावी नेता को पैदा करे।** जब यह काम हो-गया तो समझना चाहिए कि स्वयंसेवक ने अपना काम पूरा कर लिया। जब वह काम सम्हाल ले तब स्वयंसेवक वह कार्य-क्षेत्र उसे सौंपकर दूसरा काम करे। यही नेता और पंचायत मिलकर अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अग्निकांड, महामारी, टिड्डी आदि के उपद्रवों के समय के लिए उचित बन्दोबस्त और रक्षा करेंगे। दूसरे गाँवों से भी यही सहकारिता का बर्ताव करेंगे। संगठन की इस विधि से किसानों की सबसे बड़ी और सबसे अधिक सहायता होसकती है।

हर सौ आदमी की आबादी पीछे एक कपड़ा बुननेवाले का गुज़र हो-सकता है। परन्तु हमारे गाँवों में इस हिसाब से जुलाहे हैं कहाँ? इसलिए कपड़े की माँग पूरी करने को न केवल घर-घर घूम से कताई होने की ज़रूरत है, बल्कि कुछ चतुर युवकों को बुनाई का काम अपने रोज़गार के लिए सीखकर अपने-अपने गाँवों में खद्दर की ज़रूरत पूरी करनी चाहिए। बच्चों को दूध नहीं मिलता। इस भारी ज़रूरत को भी पूरा करना है। हर व्यवसायवाले का, हर कारीगर का काम नित्य बढ़ता हुआ रहना चाहिए। पैसे के प्रचार की घटती-बढ़ती और विदेशी आयात-निर्यात के धोखे की चालों से बचने के लिए आजकल पैसों का तो बहिष्कार कर देना चाहिए और अनाज से ही बदलकर अपना काम निकालना चाहिए। लगान भी उपज के दशमांश से अधिक नहीं होना चाहिए, और होना भी चाहिए उपज का ही। उसे बेचकर नकद रुपया चुकाने का बखेड़ा किसान अपने सिर न स्वीकार करे। अपने गाँव के सारे खर्चों को पूरा करने के बाद जो उपज यानी कच्चा माल बचे, वह व्यवसाय-पंचायत की मार्फ़त ऐसे जँचे हुए व्यापारियों के हाथ बेंचा जाय जो स्वराज्य-सरकार या काँग्रेस से यह प्रमाणपत्र रखते हों कि वे देश की ज़रूरत पूरी करने के बाद ही अन्न को देश से बाहर जाने देंगे। पंचायतों के द्वारा गाँव के आयात और निर्य्यात पर पूरा संयम रखने में ही बाहर की लूट से गाँव की रक्षा होसकती है। इस प्रकार गाँव की सामाजिक और आर्थिक पूर्णता हुई।

हर गाँव अपने चारों विभाग शिक्षा, रक्षा, जीविका और सेवा अपने अधिकार में रक्खे। अपनी शासक-समिति को या ज़मींदार को दशमांश लगान दे। शासक-समिति इसमें से केन्द्रीय सरकारों को उचित अंश देकर पंचायतों को उनके व्यय के लिए दे। दंड, तहबाज़ारी, चुंगी

आदि की आमदनी बिलकुल गाँव के भीतर के खर्च के लिए हो। इसी प्रकार गाँव का आय-व्यय गाँव के अधिकार में रहे और इस स्थानीय स्वराज्य का सम्बन्ध केन्द्रीय सरकारों से केवल सहकारिता का हो। इस स्थानीय स्वराज्य का पूरा अधिकार गाँव के किसान-संघ को होगा, जिसके सदस्य बीस बरस से अधिक अवस्था के सभी नर-नारी, जो गाँव की सीमा के भीतर रहते हों, समझे जायँगे। परन्तु यह किसान-संघ उस समय स्थापित होना चाहिए जब स्वयंसेवक गाँव के नेता का निर्माण करले और गाँव का हर सदस्य संगठन को समझ जाय। वस्तुतः यही संघ चारों पंचायतों का और उनके अवान्तर (?) विभागों का संगठन करने का अधिकारी होगा। यह संघ ही गाँव की महासभा होगी। यहाँ इस विषय को सूत्ररूप से दिया गया है। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार स्वयंसेवक आप ही संगठन को समुचित रूप देगा। यह राजनैतिक पूर्णता होगी।

पर पूर्ण बनाने का जतन करता रहे और नित्य देखभाल रक्खे कि उसका काम किस तरह बढ रहा है ।

८. गाँव का लेखा

स्वयंसेवक रात को सोने के एक घण्टा पहले एक रोज़नामचे में दिनभर का सारा काम, जो वह कर सका है, लिख डालेगा । यह उसका नित्य का काम होगा । वह एक और बड़ी किताब रक्खेगा, जिसमें गाँव के रहनेवाले हर "घर" का पूरा व्यौरा होगा और हर प्राणी का पूरा इतिहास होगा । किस घर में कितने प्राणी हैं, उनके पास कितनी जायदाद है, पिछले वर्ष कितनी आमदनी हुई, नित्य का ख़र्च कितना है, बेरोज़गारी कितनी है और व्यवसाय क्या है, उनसे क्या आमदनी है, कुल बचत धन या ऋण क्या है, किसी कामकाज पर क्या ख़र्च हुआ, कौन-कौन प्राणी किस उम्र का है, विवाहित है या अविवाहित, शिक्षा कितनी है, परिश्रम का क्या हाल है, स्वास्थ्य कैसा है, दोष क्या हैं, कौन नशा किस मात्रा में सेवन करता है, अपने सूते से किस दाम की मजूरी नित्य करता है, कितनी बेकारी है, क्या-क्या व्यवसाय जानता है, क्या व्यवसाय करता है, उससे आय क्या है, क्या संभावना है, इत्यादि सारी बातें मालूम करके इस पोथी में नकशे के रूप में दर्ज करना चाहिए और जबसे लेकर जबतक में यह जाँच पूरी हो तबतक का समय नोट करना चाहिए । यह जाँच तीन-तीन या छः-छः मास पर होने से मुक़ाबला करने पर यह पता चलेगा कि ग्राम-संगठन और सुधार के काम में कितनी मात्रा में सफलता हुई है । इसके अंक कांग्रेस को देने से कांग्रेस इस काम में ज़िलेभर में जो सफलता हुई है उसका पता लगाकर प्रकाशित कर सकेगी । यह काम बड़े महत्व का है । **कार्य्यकर्त्ता इसमें जरा भी भूल न करे ।**

शुरू में गाँव में एक से अधिक स्वयंसेवक भी जा सकते हैं। परन्तु हमारे पास इतने काफ़ी आदमी नहीं हैं, इसलिए हम दस-बीस गाँवों में काम करने के लिए यदि एक अच्छा स्वयंसेवक पासकें तो बड़ी ग़नीमत है। इसलिए बहुत जल्दी बाँटकर दस-बीस गाँव पीछे एक कार्य्यकर्त्ता रखना ही पड़ेगा।

मैंने बहुत संक्षेप में संगठन की यह योजना दी है। आतुर-शिक्षालय में एक पक्षवाले सूत्र में इसपर विस्तार किया जा सकता है और इन्हीं विधियों से अथवा ऐसी ही अन्य विधियों से काम लिया जा सकता है।

सहायक साहित्य की सूची

१. नवजीवन माला, शुद्ध खादी भंडार, १३२/१ हरिसन रोड, कलकत्ता की सभी पुस्तकें।

२. हिन्द-स्वराज्य, ले० महात्मा गांधी।

३. आरोग्य-साधन, ले० महात्मा गांधी।

४. चर्खाशास्त्र, ले० महात्मा गांधी।

५. दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह का इतिहास, ले० महात्मा गांधी।

६. आत्म-कथा, ले० महात्मा गांधी।

७. हाथ की कताई-बुनाई, ले० श्री पुणताम्बेकर।

८. खद्दर का सम्पत्तिशास्त्र, ले० श्री रिचार्ड बी. ग्रेग।

९. अनीति की राह पर, ले० महात्मा गांधी।

१०. विजयी बारडोली, ले० श्री वैजनाथ महोदय।

११. शैतान की लकड़ी, ले० श्री वैजनाथ महोदय।

१२. कृपिसार (सरस्वती भंडार, मुरादपुर, बांकीपुर)।

१३. खाद का उपयोग (ज्ञानमण्डल, काशी)।

१४. कृषि विज्ञान माला (भास्कर बुक डिपो, मेरठ)।

१५. किसानों की कामधेनु (गंगा पुस्तक माला, लखनऊ)।

१६. अकाल से बचने के उपाय (पं० गौरीशंकर भट्ट, मसवानपुर, कानपुर)।

१७. ग्राम पंचायत प्रदीपिका (साहित्यभूपण गुलाबशंकर पंड्या, मनोरंजन प्रेस, सिवनी)

१८. गोरक्षा-साहित्य और किसान-साहित्य (पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, बलदेव बाग़, जबलपुर)।

१९. ग्राम-सुधार (बा० गिरिवरधर वकील, समस्तीपुर, बिहार)।
२०. धरासना की काली करतूतें (साबरमती आश्रम)।
२१. आश्रम-भजनावली (साबरमती आश्रम)।
22. Brayne's Village Uplift of India, (The Pioneer Press, Allahabad)
२३ गोपालन (इण्डियन प्रेस, प्रयाग)।
२४. कृषि-कौमुदी (श्री दुर्गाप्रसादसिंह, इण्डियन प्रेस, प्रयाग)।
25. Handbook of Indian Agriculture (N. G. Mukerji, Thacker Spink & Co.)
२६. "विशाल भारत" में कुछ लेख।
27. Rural Education in India (Vol. I & II).
28. Fourteen Experiments in Rural Education.
29. Rural Economics of India (Radhakamal Mukerji).
30. Some South Indian Villages.
31. The Punjab Peasant in Prosperity and Debt.
32. Production in India.
33. Unhappy India.
34. Indian Economics (V. G. Kale).
35. The Science of Punjab Finance.
36. Sixty years of Indian Finance.
37. Economic condition in India.
३८. भारत में कृषि-सुधार।

46. India for Indians and for England.
47. Our Village.
४८. समाज-संगठन (बाबू भगवानदास, भारत बुक डिपो, अलीगढ़)।
४९. गौओं का पालन और उनसे लाभ (पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, गोवध-निवारक सभा, सागर)।
५०. भाग्य-निर्माण (हिन्दी-साहित्य-प्रचार कार्यालय, नरसिंहपुर)।
५१. खद्दर-शिक्षक (श्री भगवतीसिंह, शिक्षक बुनाई विभाग, काशी-विद्यापीठ)।
५२. खेड़ा की लड़त (श्री शंकरलाल द्वारकादास परीख)।
५३. चम्पारन में महात्मा गांधी (बाबू राजेन्द्रप्रसाद)।
54, Cow keeping in India (Tweed)
५५. ग्राम-पुनर्घटना (दक्षिणामूर्ति, भावनगर)।
५६. केम शीखववुं (गिजुभाई)।
५७. चालो वांचीअे (गिजुभाई)।
५८. आगल वांचो (दो भाग)।

लोक साहित्य माला

'सस्ता साहित्य मण्डल' की स्थापना इस उद्देश्य को लेकर हुई थी कि जन साधारण को ऊँचा उठानेवाला साहित्य सस्ते-से-सस्ते मूल्य में सुलभ कर दिया जाय। हम नही कह सकते कि 'मण्डल' इस उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुआ है; लेकिन इतना निश्चित है कि उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति की ओर नेक नीयती से बढ़ते रहने की कोशिश की है और हिन्दी में राष्ट्रनिर्माणकारी और जन-साधारण के लिए उपयोगी साहित्य देने में उसने अपना खास स्थान बना लिया है। लेकिन हमको अपने इतने से कार्य से संतोष नही है। अभी तक 'मण्डल' ने, कुछ अपवादों छोड़कर, ऐसा साहित्य नही निकला जो बिलकुल 'जन-साधारण का साहित्य'— लोक साहित्य कहा जासके। अभी तक आमतौर पर मध्यम श्रेणी के लोगों को सामने रखकर 'मण्डल' का प्रकाशन कार्य होता रहा है लेकिन अब ऐसा समय आगया है कि हमें अपनी गति और दिशा बदलनी चाहिए और जनता का और जनता के लिए साहित्य प्रकाशित करने का खास तौर से आयोजन करना चाहिए।

जैसे ग्राम उद्योग, ग्राम-संगठन, पशुपालन, सफाई, सामाजिक बुराइयाँ, विज्ञान, साहित्य, अर्थशास्त्र, राजनैतिक, सामान्य जानकारी देशभक्ती की कहानियाँ, महाभारत-रामायण की कहानियाँ, चरित्रबल बढ़ानेवाली कहानियाँ खेती, बाग़बानी, आदि का समावेश होगा। संक्षेप में हमारा इरादा यह है कि हम लगभग दो सौ पुस्तकों की एक ऐसी छोटी-सी ऐसी लाइब्रेरी बना दें, जो साधारण पढ़े-लिखे लोगों के अन्दर आजकल के सारे विषयों को तथा उनको ऊँचा उठानेवाले युग परिवर्तनकारी विचारों को सरल-से-सरल भाषा में रख दें और उसके बाद उन्हें फिर किसी विषय की खोज में—उसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए—कहीं बाहर न जाना पड़े।

ऊपर लिखे अनुसार लगभग दो-ढ़ाई सौ पृष्ठों की पुस्तक माला की पुस्तकों का दाम हम सस्ते-से-सस्ता रखना चाहते हैं। आम तौर पर हिन्दी में उतने पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य १) या १।) रु० रखा जाता है लेकिन हम इस माला की पुस्तकों का दाम आठ आना रखना चाहते हैं। काग़ज छपाई आदि बहुत बढ़िया होगी।

पहले पहल हम निम्नलिखित पाँच पुस्तकें इस माला में निकालने का आयोजन कर रहे हैं:—

१. हमारे गाँवों की कहानी [स्वर्गीय रामदास गौड़]
२. महाभारत के पात्र—१ [आचार्य नृसिंहप्रसाद कालिप्रसाद भट]
३. लोक-जीवन [आचार्य काका कालेलकर]
४. संतवाणी [वियोगी हरि]
५ हमारी नागरिक जिम्मेदारी [कृष्णचन्द्र विद्यालंकार]

सस्ता साहित्य मण्डल

[सर्वोदय साहित्य माला : सतहत्तरवाँ ग्रन्थ]

लोक साहित्य माला : पहली पुस्तक

हमारे

गाँवों की कहानी

प्रकाशक—
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

पहली बार : २०००
अप्रैल सन् १९३८

मूल्य
आठ आना

मुद्रक—
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नई दिल्ली

इस पुस्तक के बारे में पूछने लगे कि वह प्रकाशित हुई है या नहीं ? तब हमने उसके खो जाने की सारी कहानी उनको सुनाई। इसपर उन्होंने कहा कि "इसकीएक नक़ल तो मेरे पास है, अगर आप चाहें तो मैं आपको दे दूँ।" हमें यह सुन आनन्द हुआ और आश्चर्य भी। पूछने पर इन्होंने बताया कि जब यह पुस्तक श्री महावीरप्रसाद पोद्दार के पास कलकत्ता गई थी तब वह उनके साथ शुद्ध खादी भण्डार में काम करते थे। वहाँ इस पुस्तक को उन्होंने पढ़ा। और पढ़ने पर उनको वह इतनी अच्छी लगी कि रात-रात भर जागकर चुपके से उसकी नक़ल करली। इसका न तो पोद्दारजी को पता था और न गौड़जी को ही ।

श्री बलवीरसिंहजी ने ग्रन्थ मण्डल को देदिया। 'मण्डल' ने फिर गौड़जी को भेजा कि इसको अगर कुछ घटादें और अद्यवत् (Up to date) बनादें तो इसे प्रकाशित किया जाय। लेकिन वह दूसरे ग्रंथों के लेखन आदि में इतने व्यस्त रहे कि इसका संपादन न कर सके और अंत में पिछले वर्ष भगवान् के घर जा रहे। उसके बाद यह ग्रंथ फिर गौड़जी के मित्र श्री कृष्णचन्द्रजी (सबजज, काशी) की मारफ़त श्री पोद्दारजी के पास गया। उन्होंने इसे शुरू से अंत तक पढ़ा और उन्होंने मण्डल को सलाह दी कि इसको अब जैसा-का-तैसा ही प्रकाशित करना चाहिए। इसी निश्चय के फल स्वरूप इस ग्रन्थ का यह पहला खण्ड आपके हाथ में है। और दूसरा खण्ड 'मण्डल' की 'सर्वोदय साहित्यमाला' (बड़ी माला) में शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

इस प्रकार श्री बलवीरसिंहजी के परिश्रम से गौड़जी का यह ग्रन्थ बचगया इसके लिए वह हमारे और पाठकों के बहुत धन्यवाद के पात्र हैं।

यह इसका सारा इतिहास है। 'मण्डल' ने इस ग्रंथ पर स्व० गौड़जी के परिवार को रॉयल्टी देना तय किया है। पहले तो यह ग्रंथ ही इतना

उपयोगी और उत्तम है कि प्रत्येक ग्रामसेवक और लोकसेवक के लिए इसको अपने पास अपने मार्ग-दर्शन के लिए रखना बहुत जरूरी है। दूसरे जितना ही इसका अधिक प्रचार होगा उतनी ही स्व० गौड़जी के परिवार वालों को आर्थिक सहायता होगी और होती रहेगी। इसलिए आशा है, प्रत्येक ग्राम सेवक और लोकसेवक इसे अवश्य खरीदेगा और लाभ उठावेगा।

लोक साहित्य माला की यह पहली पुस्तक है। 'महाभारत के पात्र'-१ इसकी दूसरी पुस्तक होगी।

भूमिका

आधुनिक ऐतिहासिक विद्वान् विशेषतः भारतवर्ष के इतिहास के सम्बन्ध में मुख्य धारणाओं के साथ अपने सभी विचारों को सुसंगत करने की कोशिश करते हैं। उनकी एक धारणा यह है कि पाश्चात्य इतिहास की तरह यहाँ का इतिहास भी विकासवाद के अनुरूप होना चाहिए। दूसरी धारणा यह है कि मानव सभ्यता का इतिहास इतना पुराना नहीं है जितना हिन्दू बताते हैं। तीसरी धारणा यह है कि आर्य लोग कहीं विदेश से भारत में किसी भूतकाल में आये थे। पहली धारणा में यह दुर्बलता है कि विकास-विज्ञान उत्तरोत्तर वर्धमान शास्त्र है। उसके आधार पर इतिहास की कोई स्थिर इमारत सभी देशों और कालों के लिए सुभीते से नहीं खड़ी की जा सकती। दूसरी धारणा भी पहली के ही आधार पर है और विज्ञान गत पचास वरसों के भीतर सृष्टि और सभ्यता के भूतकाल की सीमा को बराबर बढ़ाता आया है, अतः इस धारणा में भी स्थिरता का अभाव है। तीसरी धारणा कुछ विशेष कल्पनाओं के आधार पर है जिन पर भी विद्वानों का मतभेद है। हमारा प्राचीन साहित्य हमारे निकट इसका तनिक भी समर्थन नहीं करता। सुतरां मैं तीसरी धारणा को निराधार मानता हूँ।

चाहिए या नहीं ? अथवा यह कि यहाँ के गाँवों को आर्यों ने वाहर से आकर वसाया या वे भारत में पहले से ही बसे हुए थे। हमारे इतिहास का आधार हमारा साहित्य है और उसमें भी यह विषय सर्वसम्मत है कि वेदों से अधिक पुराना संसार में कोई साहित्य नहीं है। पुराने-से-पुराने साहित्य के आधार पर प्राचीनतम गाँवों का इतिहास अवलम्बित है, फिर चाहे उसे पाँच हजार बरस हुए हों, चाहे पाँच लाख। हमारे गाँवों की जब से आवादी है हम उसी समय से अपने वर्णन का आरम्भ करते हैं। फिर चाहे वे गाँव इस भूतल पर किसी देश के क्यों न हों वे गाँव हमारे ही थे किसी और जाति के नहीं।

इस कहानी के लिखने का उद्देश्य यह है कि हम अच्छी तरह देखें कि हमारी उन्नति कहाँतक हुई थी और आज हमारा पतन किस हद तक हुआ है। अपनी वर्त्तमान स्थिति को अच्छी तरह समझने के लिए भूतकाल की स्थिति का जानना आवश्यक है, क्योंकि वर्त्तमानकाल भूतकाल का पुत्र है। साथ ही भावी उन्नति और उत्थान के लिए ठीक मार्ग निश्चय करने में भूतकाल का इतिहास बड़ा सहायक होता है। आज हमारे गाँवों के लिए जीवन और मरण का प्रश्न खड़ा है। इसे हल करने के लिए भी हमें अपने पूर्वकाल का सिंहावलोकन करना आवश्यक है। ग्राम संगठन की समस्या देश के सामने है। उसकी पूर्त्ति में इस कहानी से सहायता मिल सकती है। इस कहानी की हमारे ग्राम संगठन के काम में कुछ भी उपयोगिता सिद्ध हुई तो मैंने, इस पोथी के संकलन में, जो कुछ परिश्रम किया है उसे सार्थक समझूँगा।

बड़ी पियरी, काशी

रामदास गौड़

विषय-सूची

हमारे

गाँवों की कहानी

: १ :

सतजुगी गाँव

१. गाँव किसे कहते हैं ?

तथा शूद्रजनप्राया सुसमृद्धकृषीवला ।
क्षेत्रोपयोग-भू-मध्ये वसतिर्ग्रामसंज्ञिका ॥

—मार्कण्डेय पुराण ।

गाँव किसे कहते हैं ? आज भारत देश में कोई ऐसी बात पूछ बैठे तो लोग उसे पागल कहेंगे। बड़े से बड़े शहर में रहनेवाला बड़ा आदमी भी जिसे किसी बात की कमी नहीं है, कम-से-कम हवा खाने के लिए गाँव की ओर ज़रूर जाता है। इसलिए कोई ऐसा नहीं है जो गाँव के लिए पूछे कि किसे कहते हैं। तो भी भारी-भारी पण्डितों ने यह बताया है कि गाँव किसे कहते हैं। गाँव उसी बस्ती का नाम है, जिसमें मेहनत मजूरी करनेवाले, और सब कुदरत की वस्तुओं से रंज-पुन्ज खेतिहर रहते हों और जिसके चारों ओर खेती करने के लायक धरती हो। ऊपर लिखे श्लोक के लिखनेवाले ने गाँव के रूप का एक नक़्शा खींचा है। भारत खेती का देश है। अन्न और कपड़ा इन्हीं खेतों से मिलते हैं। संसार की [illegible] से अच्छी चीज़ें, [illegible] [illegible] इन्हीं खेतों की उपज है। इन्हीं खेतों की सामग्री [illegible] सकते हैं। इन खेतों की [illegible] और [illegible] [illegible] जाती है, [illegible] [illegible]

सामान मिल सकता है। इसलिए गाँव में मजूर और किसान इन दोनों का होना ज़रूरी है। मजूर जब अपने खेत में काम करता होता है, तब किसान कहलाता है। किसान जब मजूरी लेकर दूसरे का काम करता है तब मजूर कहलाता है। गाँव के रहनेवाले सभी मजूर और किसान हैं। एक कुम्हार जब औरों को बरतन बनाकर देता है, एक तेली जब औरों के लिए तेल पेलता है, एक कोरी जब औरों के लिए कपड़े बुनता है, और एक चमार जब औरों के लिए जूते बनाता है, तब वह मजूर का काम करता है। परन्तु जब कुम्हार, तेली, कोरी, चमार, बनिया, कायस्थ, क्षत्रिय, ब्राह्मण अपने लिए अपने खेती-बारी का काम करते हैं, तब सब के सब किसान हैं। गाँव में आपस के और नाते भी होते हैं, पर मजूर और किसान का आपस का नाता सबमें बराबर है। आदमी सभी बराबर हैं। सब अपना-अपना काम करते हैं।

आजकल भी हम गाँवों में देखते हैं तो थोड़ी-बहुत ऐसी ही बात पाई जाती है। पण्डितों ने जो गाँव का नक़शा खींचा है वह बिल्कुल मिट नहीं गया है। आज भी हम गाँवों में जाकर देखते हैं तो मजूरों और किसानों को पाते हैं। हाँ, उन्हें सुखी नहीं पाते। बहुत से हड्डी की ठठरी देख पड़ते हैं। बहुत-से रोगी आलसी और बेकार भी हैं। आधे से अधिक ऐसे हैं जिन्हें दिन-रात में एक बार भी भरपेट रूखी रोटी नहीं मिलती। खेतों में अनाज पैदा होता है, पर वह न जाने कहाँ चला जाता है। वे अन्न उपजाते हैं, पर औरों के लिए। वे चोटी का पसीना एड़ी तक बहाते हैं और काम के पीछे मर मिटते हैं; पर औरों के लिए। धूप, आँधी, पानी, ओले, पाला, बरफ सबका कष्ट झेलकर सेवा करते हैं पर उनकी सेवा करते हैं जो उन्हें लात मारते हैं; उपकार के बदले उलटे अपकार करते हैं। उनकी यह घोर

दरिद्रता—जिसको देखकर रोयें खड़े हो जाते हैं, जी दहल जाता है—उन अपकारियों पर कोई प्रभाव नहीं डालती। वे कहते हैं कि ये तो सदा के दरिद्री हैं, पशु हैं और हमारे सुख के लिए बनाये गए हैं। उनकी कल्पना में इन गांवों के सुख के दिन आते ही नहीं। आजकल की पच्छांहीं कल-पुरजों की सभ्यता से जिनकी आंखें चौंधियां गई हैं, पच्छांह की माया से जिनकी बुद्धि चकरा गई है, वे सोचते हैं कि मजूरों और किसानों की दशा पहले कभी अच्छी रही हो, ऐसा नहीं हो सकता और आज तो इनकी दशा सुधारने के लिए बड़े-बड़े कल कारखाने खुलने चाहिएं। क्या इनके विचार ठीक हैं? क्या मजूर और किसान पहले अधिक सुखी नहीं थे? क्या पहले भी आज की तरह खेती से इनका गुजारा नहीं होता था? इन बातों पर विचार करने के लिए हमें प्राचीनकाल की सैर करनी चाहिए।

२. सतजुग का आरंभ

सतजुग की चर्चा हमने बहुत सुनी है, पर हम नहीं जानते कि सतजुग किसे कहते हैं। पण्डित लोग बताते हैं कि वह समय बहुत-बहुत दिन हुए बीत गया। लाखों बरस की बात है।

सामान मिल सकता है। इसलिए गांव में मजूर और किसान इन दोनों का होना ज़रूरी है। मजूर जब अपने खेत में काम करता होता है, तब किसान कहलाता है। किसान जब मजूरी लेकर दूसरे का काम करता है तब मजूर कहलाता है। गांव के रहनेवाले सभी मजूर और किसान हैं। एक कुम्हार जब औरों को बरतन बनाकर देता है, एक तेली जब औरों के लिए तेल पेलता है, एक कोरी जब औरों के लिए कपड़े बुनता है, और एक चमार जब औरों के लिए जूते बनाता है, तब वह मजूर का काम करता है। परन्तु जब कुम्हार, तेली, कोरी, चमार, बनिया, कायस्थ, क्षत्रिय, ब्राह्मण अपने लिए अपने खेती-बारी का काम करते हैं, तब सब के सब किसान हैं। गांव में आपस के और नाते भी होते हैं, पर मजूर और किसान का आपस का नाता सबमें बराबर है। आदमी सभी बराबर हैं। सब अपना-अपना काम करते हैं

आजकल भी हम गाँवों में देखते हैं तो थोड़ी-बहुत ऐसी ही बात पाई जाती है। पण्डितों ने जो गाँव का नक़शा खींचा है वह बिलकुल मिट नहीं गया है। आज भी हम गांवों में जाकर देखते हैं तो मजूर और किसानों को पाते हैं। हाँ, उन्हें सुखी नहीं पाते। बहुत से हड्डी की ठठरी देख पड़ते हैं। बहुत-से रोगी आलसी और बेकार भी हैं आधे से अधिक ऐसे हैं जिन्हें दिन-रात में एक बार भी भरपेट रूखी रोटी नहीं मिलती। खेतों में अनाज पैदा होता है, पर वह न जाने कहाँ चला जाता है। वे अन्न उपजाते हैं, पर औरों के लिए। वे चोटी का पसीना एड़ी तक बहाते हैं और काम के पीछे मर मिटते हैं पर औरों के लिए। धूप, आँधी, पानी, ओले, पाला, बरफ सबका कष्ट झेलकर सेवा करते हैं पर उनकी सेवा करते हैं जो उन्हें लात मारते हैं; उपकार के बदले उलटे अपकार करते हैं। उनकी यह घो

दरिद्रता—जिसको देखकर रोयें खड़े हो जाते हैं, जी दहल जाता है—उन अपकारियों पर कोई प्रभाव नहीं डालती। वे कहते हैं कि ये तो सदा के दरिद्री हैं, पशु हैं और हमारे सुख के लिए बनाये गए हैं। उनकी कल्पना में इन गाँवों के सुख के दिन आते ही नहीं। आजकल की पच्छाहीं कल-पुरजों की सभ्यता से जिनकी आँखें चौंधियाँ गई हैं, पच्छाँह की माया से जिनकी बुद्धि चकरा गई है, वे सोचते हैं कि मजूरों और किसानों की दशा पहले कभी अच्छी रही हो, ऐसा नहीं हो सकता और आज तो इनकी दशा सुधारने के लिए बड़े-बड़े कल कारखाने खुलने चाहिएं। क्या इनके विचार ठीक हैं? क्या मजूर और किसान पहले अधिक सुखी नहीं थे? क्या पहले भी आज की तरह खेती से इनका गुज़ारा नहीं होता था? इन बातों पर विचार करने के लिए हमें प्राचीनकाल की सैर करनी चाहिए।

२. सतजुग का आरंभ

सतजुग की चर्चा हमने बहुत सुनी है, पर हम नहीं जानते कि सतजुग किसे कहते हैं। पण्डित लोग बताते हैं कि वह समय बहुत-बहुत दिन हुए बीत गया। लाखों बरस की बात है। अनेक पढ़े-लिखे कहते हैं कि कई लाख नहीं तो कई हज़ार बरस तो ज़रूर बीत गए हैं। चाहे जितना समय बीता हो वे लोग जिसे वेद का युग कहते हैं उसीको सतजुग भी कहा जाता है। पण्डितों का यह भी कहना है कि भारत के लोग आर्य हैं, और आर्य का सीधा-साधा अर्थ किसान है।[1] आर्य किसान को कहते हैं। इस बात की गवाही वेदों से भी

१. रमेशचन्द्र दत्त रचित अंग्रेज़ी के "प्राचीन भारत में सभ्यता का इतिहास", पृष्ठ ३५।

मिलती है।[१] राजा पृथु की कथा, सीताजी का जन्म, अकाल पड़ जाने पर बड़े-बड़े ऋषियों की तपस्या, यज्ञ, पूजा आदि कथाओं से पुराण भरे पड़े हैं। कृष्ण और हलधर किसानों ही के नाम हैं। खेती गोपालन और व्यापार वैश्यों का खास काम बताया गया है। किसान बिना गऊ पाले खेती का काम चला नहीं सकता। और खेती में उपजा हुआ अन्न जब गाँव के खर्च से बचेगा तो उसे अपने गांव से बाहर बेचना ही पड़ेगा। इसलिए जो काम वैश्य जाति का बताया गया है वह किसान का ही काम है। वेदों में 'विश्' आर्य प्रजा के लिए आया है। इसीसे वैश्य बना। इसलिए वैश्य भी किसान ही को कहते हैं।[२]

१. यवंवृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरुज्योतिश्चक्रथुरार्याय॥

ऋक् १।११७।२१

हे अश्विनी कुमारो! हल से जुते खेत में यवादि धान्य बुवाते हुए तथा मेघ बरसाते हुए खेत के नाश करनेवाले दस्यु को बकुर से (वज्र से) मारते हुए तुम दोनों ने आर्य वैश्य के लिए विस्तीर्ण सूर्य नाम की ज्योति बनाई है।

ओमासश्चर्षणी[१]धृतो विश्वे देवास आगत। दाश्वांसो दाशुषः सुतम्॥१॥

ऋक् १।३।७

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः[२]। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि॥२॥

ऋक् १।४।६

(१) चर्षणि, (२) कृष्टि—ये दोनों शब्द मनुष्य वाचक हैं। हे देवताओ! धनादि देनेवाले आप लोग हवि देनेवाले यजमान के घर पर पधारो॥१॥

हे शत्रु नाशक इन्द्र! तेरी कृपा से शत्रु भी हमें अच्छा बतलावें, फिर हम इन्द्र से प्राप्त सुख में रहें॥२॥

२. पुरुष सूक्त के सिवाय संहिताओं में और कहीं 'वैश्य' शब्द नहीं

हमारी दुनिया सतजुग से ही शुरू ही है और बोली का शुरू भी सतजुग में ही मानना पड़ेगा। इसलिए हम सहज में ही समझ सकते हैं कि सतजुग में खेती का काम बहुत होता रहा होगा। साधारण लोग खेती या मजूरी ही करते रहे होंगे। प्रोफ़ेसर सन्तोषकुमार दास अपनी अंग्रेज़ी की "प्राचीन भारत का साम्पत्तिक इतिहास" नामकी पुस्तक में पृष्ठ ६ पर लिखते हैं कि "धरती के चार विभाग होते थे। (१) वास्तु (२) कृषियोग्य भूमि (३) गोचर भूमि (४) जंगल। वास्तुभूमि का मालिक किसान होता था।·········वास्तव में जितने युद्ध हुआ करते थे गऊ या खेतों का हरण के लिए हुआ करते थे। जीत का भाग जीतनें वालों में बँट जाता था।" लोग गाँव में अपने परिवार के साथ रहते थे और खेतों के मालिक की हैसियत से खेती करते थे। बाप मर जाता था तब बेटों में जायदाद बंटती थी। गोचर भूमि और जंगल पर सबका अधिकार था। वेदों में इन अधिकारों के दायभाग की भी चर्चा है। इस पोथी में यह भी लिखा है कि "प्रोफ़ेसर कीथ (Keith) और दूसरे विद्वान् कहते हैं कि इस जुग में शहर होते ही न थे। शहर का होना सिद्ध करने के लिए जो मन्त्र कहा जाता है उसका अर्थ यह विद्वान् यह लगाते हैं कि शरदऋतु में बाढ़ आने पर इन मिट्टी के

आया। 'विश्' शब्द का बराबर प्रयोग है जिसका अर्थ 'साधारण प्रजा' लिया गया है। इसलिए यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि 'वैश्य' साधारण प्रजा के अधिकांश समुदाय का नाम होगा। यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि देश के भरण-पोषण के लिए सबसे अधिक संख्या किसानों ही की होनी चाहिए। ब्राह्मणों और क्षत्रियों की आवश्यकतानुसार अत्यन्त कम शूद्रों अर्थात् मजूरों की संख्या लगभग किसानों अथवा वैश्यों के बराबर होगी।

पुरों में किसान लोग शरण लेते थे। यह 'पुर' एक प्रकार के बाँध का नाम है।"[१] जो हो; तो इसमें सन्देह नहीं मालूम होता कि शहर थे भी तो बहुत कम रहे होंगे। गाँवों की ही गिनती सबसे ज्यादा होगी।

मंत्रों से यह भी पता चलता है कि हल से खेत जोते जाते थे और जौ, गेहूँ, धान, मूँग आदि अनाज और गन्ने की पैदावार बहुतायत से होती थी।[२] लोग गाय, बैल, घोड़े, भेड़, बकरी रखते थे और चराने को लेजाया करते थे। समय-समय पर खेती के सम्बन्ध में नई उपज पर, फ़सल खड़ी होने पर, कटने पर, बोने के समय इत्यादि अवसरों पर किसान यज्ञ करता था और बड़ी अच्छी दक्षिणा देता था। ब्राह्मण के दाहिनी ओर गाय होती थी, जो यज्ञ के अन्त में उसे दी जाती थी। दक्षिणा नाम इसीसे पड़ा है। आजकल पुरोहित जो पद-पद पर गऊ-दान माँगता है वह इस पुराने रिवाज के अनुसार ही

१. शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत्। दिवोदासाय दाशुषे ॥
ऋग्वेद मं० ४ सू० म० २०

तथा प्रो० सन्तोषकुमार दास की पुस्तक पृष्ठ १०-११

इन्द्र ने दिवोदास नामक यजमान को पत्थर के बने हुए सौ 'पुरों' को दिया।

२. युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद्वामिषण्यति।
अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिवधावतु ॥
ऋग्वेद मं० ८ सू० २२ म० ४

हे अश्विनी कुमारो! तुम्हारे रथ का एक चक्र द्युलोक की परिक्रमा करता है, दूसरा तुम दोनों के समीप से जाता है। हे उदकरक्षक! कुमारो! तुम्हारी अच्छी बुद्धि हमारी तरफ़ धनादि देने के लिए उसी प्रकार आवे, जिस प्रकार नव-प्रसूता गौ दूध पिलाने के लिए बच्चे के पास जाती है।

है। किसान कितना धनवान होता था, इसका पता उसकी दक्षिणा से लगता है। किसान की आमदनी खेती से, पशुओं से और बागों और जंगलों की उपज से अधिक होती थी। पर केवल अनाज के ही कारोबार में लोग फँसे नहीं रहते थे। वेदों में सूत, रेशम, ऊन और छाल आदि के बने हुए बारीक और उत्तम कपड़ों का अनेक प्रसंगों में वर्णन हुआ है। इसलिए यह बात बिलकुल ज़ाहिर है कि किसान लोगों में कताई और बुनाई का काम बहुत फैला हुआ था। बचे हुए समय में ये लोग कताई, बुनाई की कला के अभ्यास में लगे रहते थे।[१] ये ऊन का रंग उड़ा देते थे और कपड़ों को सुन्दर-सुन्दर

१. नाहं तन्तुं विजानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः।
कस्य स्वित् पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥
मं० ६। सू० ९। म० २

न मैं तन्तु को और न ओतु को ही जानता हूँ और न इन दोनों से बनने वाले कपड़े को जानता हूँ। किसका सुपुत्र इन वक्तव्य-व्याख्यातव्य ज्ञापनीय बातों को सूर्य से नीचे लोक में रहने वाला पुरुष बतला सकता है अर्थात् कोई नहीं। यदि कोई इन बातों का पता चला सकता है तो सिर्फ वैश्वानर से ही। यह वैश्वानर की स्तुति है।

स इत्तन्तुं स विजानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन् परो अन्येन पश्यन् ॥
मं० ६। सू० ९। म० ३

इस प्रकार तन्तु आदि का जानना अत्यन्त कठिन है परन्तु यदि कोई जानता है तो वह वैश्वानर ही जानता है—और वही व्याख्या करता है, जो कि सूर्य, अग्नि आदि रूपों से द्युलोक और भूलोकादि में स्थित है।

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः।

रंगों में रंगते थे। सिले हुए कपड़े और अच्छे प्रकार की पोशाक पहनते थे। दूध, घी, तेल, मसाले और औषधियाँ काम में लाते थे; शहद इकट्ठा करते थे; शक्कर बनाते थे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि उनके यहाँ तेल और गन्ने पेलने के कोल्हू थे, खंडसाल थीं, करघे थे, चरखे थे। खेत की सिंचाई के लिए कुएँ थे जिनसे रहँट से पानी निकाला जाता था। नाले और नहरों से भी सिंचाई होती थी। कभी-कभी सूखा भी पड़ जाता था और लोग अकाल का

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी १।१०५।८

मुझे कूप की भीतें तकलीफ देती हैं जिस प्रकार सौतें एक पति को दुःख देती हैं तथा जुलाहे को चूहे जो कि आ आकर के तन्तु काट जाते हैं, जिनपर माँड लगा रहता है। हे इन्द्र ! तेरे स्तोता मुझको आधियाँ बहुत ही सताती हैं।

इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुपस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ॥
५।२९।१५

हे बलवत्तर ! इन्द्र ! हमने तेरी नवीन-नवीन स्तुति तैयार की हैं जिस प्रकार अच्छे अच्छे वस्त्रों से रथ तैयार किया जाता है, आप उन्हें स्वीकार कर हमें धनवान् बनाइए।

उचथ्ये वपुषि यः स्वराडुत वायो घृतस्नाः।
अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तदिदं नु तत् ॥
८।४६।२८

इस स्तुत्य शरीर में जो स्वाराट् (अन्न) विद्यमान है वह अश्व गधे, कुत्ते इन सबको अभीष्ट है वह अन्न हमें दे। और वह अन्न सामने ढेरी रूप में विद्यमान है।

भी मुक़ाबला करते थे। उनके वर्तन ताँबे, पीतल, फूल कांसे के होते थे। अमीरों के घर सोने और चाँदी के वर्तन वरते जाते थे। वे गाड़ी, रथ और नाव भी रखते थे और जूते पहनते थे। अच्छे-अच्छे कच्चे, पक्के मकान वनाते थे, चित्रकारी करते थे, मूर्तियाँ वनाते

गावो न यूथमुपर्यन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रयः।

८। ४६। ३७

मुझे गौएँ तथा वधिये वैल प्राप्त हो रहे हैं।

अधयच्चार थे गणे शतमुष्ट्राँ अचिक्रदत्।
अध श्वित्रेषु विंशतिशता।

८। ४६। ३१

जंगलों में झुण्ड रूप में चरने वाले ऊँट हमें प्राप्त हो। और श्वेत-रंग वालों गौओं के सौ वीसे प्राप्त हों। (इस प्रकार के इस मण्डल में वहुत मन्त्र हैं)।

आधीपणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्प च।
वासो वायोऽवीना मावासाँसि मर्मृजत्॥

ऋक् १०। २६। ६

अपने लिए पाली गई वकरी और वकरों का पालक सूर्य हमारे लिए भेड़ों की ऊन के वने हुए वस्त्र (जिनको धोवियों ने धोया है) प्रकाश और उष्णता से शुद्ध करता है।

त्वमग्ने प्रयत दक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः।
स्वादु क्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः॥

ऋक् १। ३१। १५

हे अग्ने! तू प्रयतदक्षिण पुरुष की उस प्रकार रक्षा करता है जैसे ताने, वाने, तुरी, वेमा आदि से वनाया हुआ कवच उससे ढके हुए मनुष्य की रक्षा करता है। जो सुखकारी यजमान जीवयजन सहित यज्ञ

थे, बच्चों को पढ़ाते-लिखाते थे और अच्छे-अच्छे व्यंजन बना कर खाते थे। इन सब बातों से यह ज़ाहिर होता है कि गांव में किसान ही रहते थे और वे खेती के सिवाय और भी काम किया करते थे। ब्राह्मण पुरोहिती करता था और खेती भी करता था। क्षत्रिय रक्षा

को करता है वह स्वर्ग की उपमा होता है। अर्थात् जिस प्रकार स्वर्ग प्रत्येक को सुख देता है उस ही तरह वह भी ऋत्विगादिकों को सुख देने वाला कहलाने से स्वर्ग है।

सयह्वचोऽवनीर्गोप्वर्वा जुहोति प्रधन्यासु सस्त्रिः।
अपादो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वासईरतेघृतंवाः॥

ऋक् १०। ९९। ४

वह घोड़ा (इन्दे) मेघों में जाता है, पृथ्वी पर चलता है। और वह बिना पैर के जहाँ चलते हैं वहाँ, जहाँ रथ से नहीं चलते वहाँ तथा नदियों में भी चलता है।

समु प्र यन्ति धीतयः सर्गासोऽवताँ इव।
क्रतुं नः सोम जीवसे विवो मदे धारया चमसाँ इव विवक्षसे॥

ऋक् १०। २५। ४

हे सोम! हमारी स्तुतियाँ रहट की डोलचियों के समान इकट्ठी ही चलती हैं जिस प्रकार वे कूप में इकट्ठी जाती हैं। तुम भी हमारे लिए यज्ञ को उस प्रकार धारण करो जिस प्रकार तुम्हारे लिए अध्वर्यु चमस को धारण करता है।

वावर्त येषां राया युक्तैषां हिरण्ययी।
नेमधिता न पौंस्या वृथेव विष्टान्ता॥

ऋक् १०। ९३। १३

जिनके धन के कारण हमारी स्तुति बार बार हिरण्यालंकार के समान चित्त को प्रसन्न कर रही है। जिस प्रकार पुरुषों की सेना संग्राम में और

करता था और खेती भी करता था। वनिया व्यापार भी करता और खेती भी करता था। मजूर मजूरी भी करता था और खेती भी। कुम्हार, तेली, भड़भूँजे, चमार, कोरी, ठठेरा, लुहार, वढ़ई, धीवर, ग्वाले,

---

रहट की घटिका यन्त्रमाला कूप में देखने पर चित्त को प्रसन्न करती है।

प्रीणीताश्वान् हितं जयन्थ स्वस्तिवाहं रथमित्कृणुध्वम्।
द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमंसत्रकोशं सिञ्चता नृपाणम्॥

१०। १०१। ७

हे ऋत्विजो! तुम घोड़ों को घासदाना आदि खिला-पिलाकर मोटा ताजा रक्खो और फिर खेत वगैरा वोओ। और चयन नामक रथ को स्वास्तिवाहक वनाओ। वैलों के पीने के लिए चौवच्चे लकड़ी, पत्थर आदि के गहरे वनाओ तथा ऐसे हौज़ भी वनाओ जिनसे मनुष्य जल पी सकें।

सीरायुञ्जन्ति कवयो युगान् वि तन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया॥

ऋक् १०। १०१। ४

मेधावी पुरुष हल जोड़(त) ते हैं, जूओं को अलग-अलग वनाते हैं, जिससे हमें सुख प्राप्त हो।

इस प्रकार इस मण्डल में तथा अन्य मण्डलों में भी इस प्रकार ऋग्वेद में वास्तु विद्या का विस्तृत वर्णन मिलता है।

यत्ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम्।
शिवं ते तन्वे तत् कृण्मः संस्पर्शद्रूक्ष्णमस्तु ते॥

अथर्व० ८। २। १६

हे वालक! तेरा जो ओढ़ने व पहिनने का वस्त्र है यह तेरे लिए सुखकारी हो—और हम उस वस्त्र को मुलायम वनाते हैं। इत्यादि।

इसी प्रकार १०। १०१। ३ में ऋग्वेद मे सातों अनाजों के वोने की भी वेद में आज्ञा मिलती है। इत्यादि इत्यादि॥

धुनिये, सुनार, धोबी, रङ्गरेज़, दर्ज़ी, माली आदि सभी कारबार के लोग गाँवों में रहते थे और अपने कारोबार के साथ-साथ खेती ज़रूर करते थे। श्रम-विभाग के अनुसार जातियाँ बन गई थीं। ये जातियाँ धीरे-धीरे वंशानुगत हो गईं।

सतजुग में गांवों की इस व्यवस्था को देखकर यह कौन कह सकता है कि आजकल की तरह उस समय भी मजूर और किसान भूखों मरते थे। उस समय की चर्चा में भुक्खड़ों का और दुर्भिक्ष पीड़ितों का वर्णन नहीं है। अधिकांश मनुष्य अपने-अपने अधिकार पर बने रहते थे। दूसरों का हक़ छीनने की चाल कम थी। धर्म्म की बुद्धि अधिक थी। हरेक गाँव अपने लिए स्वतंत्र था। पाप बुद्धि कम होने से चोर डाकू या और सत्वापहारियों का डर न था। यह सतजुग का आरम्भ था।

२. राजकर और लगान की रीति

सतजुग के आरम्भ में बहुत काल तक किसी ऊपरी हकूमत या शासन की ज़रूरत न पड़ी होगी, क्योंकि प्रजा में अपने-अपने कर्तव्य पूरे करने का भाव था, और धर्म-बुद्धि थी। पराये धन का लोभ-लालच प्रायः तभी अधिक होता है, जब अपने पास किसी वस्तु की कमी होती है। मनुष्यों की बस्ती घनी न थी, सारी बस्ती पड़ी थी। इसलिए लोग ज़रूरत से ज़्यादा धनी और सुखी थे। यह भी कहना अनुचित न होगा, कि इन्द्रियों के सुख की सामग्री न ज़्यादा तैयार हुई थी, और न उसका उनको ज्ञान था। अज्ञान के कारण भी लोभ उनको नहीं सताता था। ईसाइयों के सतजुग में भी आदम ने जबतक ज्ञान के पेड़ का फल नहीं खाया था, तबतक उसे मालूम न था, कि

मैं नंगा हूँ, और नंगा रहना बुरी बात है। ज्ञान का फल खाते ही उसे इन्जीर के पेड़ को नंगा करके अपना तन ढकना पड़ा। बाग़ में ज्ञान और जीवन के पेड़ थे, जिनका फल खाना उसके लिए वर्जित था। शैतान की दम-पट्टी में आकर उससे यह भारी भूल होगई। मालूम होता है कि ज्यों-ज्यों आबादी बढ़ती गई त्यों-त्यों तैयार की हुई धरती मनुष्य के लिए घटती गई। लोभ रूपी शैतान ने आदमी को बहकाया। वह परमात्मा की आज्ञा को भूल गया।[१] उसे यह ज्ञान हुआ कि मेरे पास सम्पत्ति कम है, और पड़ौसी के पास ज्यादा। या अगर मेरे पास पड़ौसी से ज्यादा सम्पत्ति होजाती तो मैं अधिक सुखी हो जाता। लोभ ने दूसरे की चीज़ हर लेने की ओर उसके मन को झुकाया। धीरे-धीरे धर्म-भाव का लोप होने लगा स्वार्थ और पाप ने अपनी जड़ जमाई। कोई राजा या हाकिम न था जो बल के प्रयोग में बाधा डालता।

"राखै सोई जेहि ते बनै, जेहि बल होइ सो लेइ।"

यही नियम चलने लगा। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली बात चरितार्थ होने लगी, किसी तरह का राज न होने से उस समय प्रजा एक दूसरे का उसी तरह नाश करने लगी थी, जैसे पानी में बड़ी-बड़ी मछलियाँ छोटी-छोटी मछलियों को खाने लगती हैं। इस तरह बलवानों और निर्बलों का झगड़ा जब समाज में उथल-पुथल मचाने

१. ईशावास्यमिदं सर्व्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्। यजु० ४०। १।

यह सब कुछ, जो कुछ की चलायमान् संसार है, वह परमात्मा के रहने की जगह है, परमात्मा सब में व्यापक है। उसके प्रसाद की तरह जो कुछ तुम्हें मिले, उसका भोग करो, किसी और के धन का लालच मत करो।

लगा, उस समय जिन लोगों में थोड़ी धर्म-बुद्धि थी, वे समाज को इस गड़बड़ को मिटाने के लिए लड़नेवालों को समझने-बुझाने लगे, और यह कोशिश करने लगे कि गई हुई धर्म-बुद्धि लौट आवे। इसमें वे सफल न हुए। भले लोगों ने इन पशु-बल वालों से बचने के लिए, यह निश्चय किया कि जो लोग वचन के शूर हैं, लबार हैं, सब पर ज़बर्दस्ती किया करते हैं, पराई स्त्री और पराये धन को हर लेते हैं, उन सबका हम लोग त्याग करेंगे। असहयोग इस तरह सतजुग में ही आरम्भ हुआ था।

जान पड़ता है, कि असहयोग बहुत काल तक नहीं चला। जो ज़बर्दस्त थे, किसीका दबाव नहीं मानते थे, व्यभिचारी थे, और दूसरों का धन हर लेते थे, उनकी गिनती शायद बहुत बढ़ गई थी, और इतनी बढ़ गई थी[1] कि उनसे थोड़ी गिनतीवाले धर्मात्माओं के

१. अराजका प्रजा पूर्व, विनेशुरिति न श्रुतम्।

—महाभारत, शान्तिपर्व।

वाक्शूरो दंडपरुषो यश्च स्यात्पारजायिक:
य: परस्वमथादद्यात्त्याज्या नस्तादृशा इति।
तास्तथा समयं कृत्वा समये नावतस्थिरे॥

म० भा० शा० प०

बिभेमि कर्मण: पापाद्राज्यं हि भृशदुस्तरम्।
विशेषतो मनुष्येषु मिथ्यावृत्तेषु नित्यदा।
तमब्रुवन्प्रजा मा भै: कर्तृनेनो गमिष्यति।
पशूनामधिपंचाशद्धिरण्यस्य तथैव च॥
धान्यस्य दशमं भागं दास्याम: कोषवर्द्धनम्।
यं च धर्म चरिष्यन्ति प्रजा राज्ञा सुरक्षिता:॥
चतुर्थं त्वस्य धर्मस्य त्वत्संस्थं वै भविष्यति।

त्याग का उनपर कोई असर न पड़ा। अच्छों ने मिलकर प्रजापति से शिकायत की। इस पर पितामह ब्रह्मा ने एक बहुत बड़े धर्मशास्त्र की रचना की, जो क्रम से बहुत छोटे रूप में धर्म-भीरू मनुष्यों को मिला। इसका नाम दण्ड-नीति रक्खा गया। परन्तु इतने से काम न चला। दण्ड कौन दे? तब शासन करनेवाले की ज़रूरत हुई। लाचार हो लोग प्रजापति के पास गये; परन्तु प्रजापति अधिकार के लोभी न थे। उन्होंने लोगों को मनु के पास भेजा। मनु बोले, राजा का काम बड़ा कठिन है, और पाप से भरा है। जो लोग झूठ के व्यवहार में लगे रहते हैं उन पर, और ख़ासकर झूठे मनुष्यों पर, शासन करने से मैं डरता हूँ। मनुष्य समाज के सामने यह बड़ी कठिनाई आखड़ी हुई। उसने मनु को प्रसन्न करने के लिए उन्हें ये वचन दिये—"आप पाप के लिए न डरिए। पाप करनेवाला उसके फल को भुगत लेगा। आपका कोप बढ़ाने के लिए हम पशु और सोने का पचासवाँ और अनाज का दसवाँ भाग देते रहेंगे। आपसे रक्षा पाकर हम लोग जो भले कर्म करेंगे, उसका चौथाई फल आपको मिलेगा। उस पुण्य से सुखी होकर आप हमारी रक्षा उसी तरह कीजिए जैसे इन्द्र देवताओं की रक्षा करता है।

जान पड़ता है भगवान् मनु ने राज-भार लेने पर जो बन्दोबस्त किया उसका आधार यही इक़रारनामा था। बन्दोबस्त करने के बदले और रक्षा कराई के वेतन में मनुष्यों को भूमि पर कर देना पड़ता है। मनु का धर्मराज था। जिन लोगों ने जंगल काटकर मेहनत करके जितनी धरती को खेत बनाया था, उतनी धरती उनकी सम्पत्ति

तेन धर्मेण महता सुखं लब्धेन भावितः।
पाह्यस्मान् सर्वतो राजन् देवानिव शतक्रतुः।

होगई। बहुतों के पास ज़रूरत से ज़्यादा धरती थी। बहुतों ने यह चाहा कि हमें धरती को बनाने की मेहनत न करनी पड़े और खेत मिल जाँय। बहुतों के पास इतने खेत थे, कि वे सबको काम में नहीं ला सकते थे। इस तरह लेने और देनेवाले दोनों मौजूद होगये। खेत कुछ काल के लिए या सदा के लिए किराये पर दिये जाने लगे। इसी का नाम लगान पड़ा। राजा का महसूल ज़मीन के मालिक को देना पड़ता था। लगान धरती का मालिक लेता था। इस तरह धरती का मालिक खेतीवाले से जो लगान लेता था, वह इतना होता था कि अनाज का दसवाँ भाग राजा को देने के बाद भी उसे कुछ आय बच जाती थी। खेती करनेवाले को छठे भाग तक लगान में दे डालना पड़ता था। कुछ भी हो, धरती राजा की नहीं थी। प्रजा की थी। राजा रक्षा करता था। जो भूमि-कर उसे मिलता था वह राजा की तनख़्वाह थी। शुक्र नीति में भी ऐसा लिखा है।

जिन राजाओं ने धर्म के तत्त्व को ठीक तरह पर न समझा और अपने को धरती और प्रजा का मालिक समझकर मनमानी करने लगे, दीनों और दरिद्रों पर अन्याय करने लगे तब प्रजा का नाश होने लगा और उन राजाओं का अपने ही कर्तव से विनाश होगया। राजा वेन अपनी ज़बर्दस्तियों के कारण ऋषियों के हाथ मारा गया। राजा पृथु गद्दी पर बैठाया गया। प्रजा की उचित रक्षा करने और धरती से अन्न-धन निकालकर प्रजा को सुखी रखने से पृथु का राज ऐसा मशहूर होगया कि उसीसे सारी धरती का नाम पृथ्वी पड़ गया।

दण्ड-नीति को चलानेवाला राजा होने लगा। वह प्रजापति की ही जगह था। इसलिए संसार की प्रजा उसीकी प्रजा होगई। वह भूप या भूपाल या नरपाल कहलाया, क्योंकि वह धरती और किसान

की रक्षा करता था। उसे तनख़्वाह में राज-कर मिलता था, जिसे वह प्रजा की धरोहर समझता था और रक्षा के काम में लगाता था। उसे अपने लिए बहुत थोड़े अंश की ज़रूरत होती थी। ज़मींदारी, रैयतवारी, लगान, राजा, राज-प्रबन्ध सब कुछ तभी से चल पड़े।

: २ :

सतजुग के बाद के गाँव

१. त्रेता और द्वापर

सतजुग के बाद के समय को विद्वान लोग त्रेता और द्वापर युग कहते हैं। उसीको प्रायः पच्छाहीं रीति से विचार करनेवाले ब्राह्मण-युग कहते हैं। इस युग में भी जितनी बातें सतजुग में होती थीं उतनी सभी बातें पाई जाती हैं। युग बदल गया, बहुत काल बीत गया, लोग वेदों को भूल गये, उनका अर्थ समझना अत्यंत कठिन हो गया। परन्तु लोग धातुओं का निकालना न भूले, सोने-चाँदी के सिक्के बनाना न भूले, अनाज उपजाना, पशु पालना, और व्यापार करना बराबर पहले की तरह जारी था। भगवान् रामचन्द्रजी के राज में, जिसे लिखनेवाले तो १०-११ हज़ार बरस तक का बतलाते हैं, पर जो अवश्य बहुत काल तक रहा होगा, कभी अकाल नहीं पड़ा था और जब एक ब्राह्मण का लड़का जवान ही मर गया तो वह उसकी लाश भगवान् रामचन्द्रजी के दरबार में लाया और राजसिंहासन से विचार कराना चाहा कि लड़का क्यों मरा। क्योंकि उस समय यही समझा जाता था कि अल्पमृत्यु, अकालमृत्यु और दुर्भिक्ष या प्रजा की दरिद्रता ये सब कष्ट जो प्रजा को कभी पहुँचता है, तो इसका दोषी या अपराधी राजा होता है। और यह बात तो बिलकुल साफ़ ही है कि जब सब तरह से रक्षा करना राजा का ही

काम था, तब प्रजा में रोग, दरिद्रता, अल्पमृत्यु तो तभी होगी जब उसकी रक्षा पूरे तौर पर न होगी और राजा अपने धर्म का पालन न करेगा और कर वसूल करता जायगा। इससे यह पता चलता है कि रामराज्य में प्रजा सब तरह से सुखी थी। अर्थात् किसान सुखी, समृद्ध और एक दूसरे की सहायता करनेवाले थे। सतजुग की तरह अब भी खेती में बहुत बड़ा और भारी हल काम में आता था। उसका फाल बहुत तेज़ और पैना होता था और मूठ चिकना होता था। एक-एक हल में चौबीस-चौबीस तक बैल जोते जाते थे खेत की जैसी उत्तम प्रकार की सिंचाई होती थी उसी तरह खाद भी देना ज़रूरी था, और भांति-भांति के अनाज उपजाये जाते थे। आज जितने अनाज उपजाये जाते हैं, प्रायः सभी उस समय भी होते थे।[१]

१. लांगलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु।
उदिद् वपतु गामविं प्रस्थावद्रथवाहनं पीवरीं च प्रफर्व्यम्॥
अथर्व ३।१७।३.

तेज़ फालवाला हल, सोम यज्ञ के साधन सब अन्नों का उत्पादक होने से सुखकर है। वह बैल, भेड़ आदि को गमन-समर्थ, मोटा-ताजा रथादिवाहन समर्थ बनावे।

शुनासीरे ह स्म मे जुषेथाम्।
यद्दिवि चक्रथुः पयस्तेने मामुपसिञ्चतम्॥

अथर्व ३।१७।७

हे शुनासीर देवो! जो मेरे खेत में पैदा हुआ है उसे सेवन करो। और जो आकाश में जल है उससे इस खेत को सींचो।

"चतुरौदुम्बरो भवत्यौदुम्बरः स्रुव औदुम्बरश्चमस औदुम्बर इध्मा औदुम्बर्या उपमन्थिन्यौ। दशग्राम्याणि धान्यानि भवन्ति—व्रीहियवाः

रामायण से पता चलता है कि खेती बड़ी भारी कला समझी जाती थी, क्योंकि उस समय वेदों के साथ-साथ शिक्षा का मुख्य विषय खेती और व्यापार था। श्रीरामचन्द्रजी भरतजी से पूछते हैं कि "तुम किसानों और गोपालों के साथ अच्छा बर्ताव रखते हो या नहीं।" खेती इतने ज़ोरों से होती थी कि अयोध्याजी किसानों से भरी हुई थी। धान की उपज बहुतायत से दिखाई गई है। राजा इस बात का गर्व करता है कि उसका राज्य अन्न-धन से भरा हुआ है। गाँवों वर्णनों में यह कहा गया है कि वे चारों ओर जुती हुई धरती से घिरे हैं।[१]

हर गाँव में ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र और हर पेशेवाले जिनकी जीवन में सबसे ज्यादा ज़रूरत पड़ती है, जैसे नाई, धोबी, दर्ज़ी, कहार, चमार, बढ़ई, लुहार, सुनार, ग्वाले, गड़रिये आदि होते थे। गाँव का सरदार या मुखिया भी कोई होता था, और पञ्चायतों से हर गाँव अपना स्वाधीन बन्दोबस्त किया करता था। रक्षा के

तिलमाषा अणुप्रियङ्गवो गोधूमाश्च मसूराश्च खल्वाश्च खलकुलाश्चेति। बृहदारण्यकोपनिषत् अ० ६। ब्रा. ३। म. १३.

"दस तरह के ग्रामीण अन्न होते हैं—धान, (चावल) जौ, तिल, उड़द, अणु, (साँवा-कगंनी, मसूर, खल्व, कुल्था, गेहूँ।"

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियंगवश्च मे ऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।१८।१२।

इस मन्त्र का अर्थ स्पष्ट है।

१. अयोध्याकांड सर्ग ६८; बालकांड सर्ग ५; अयोध्याकांड, ३।१४; अयोध्याकांड सर्ग ६२।

लिए राजा को उसका उचित कर उगाहकर मुखिया दिया करता था, और उसके बदले राजा बाहरी वैरियों से गाँवों की रक्षा करता था, फिर चाहे वह वैरी मनुष्य हो, कृमि, कीट, पतंग हो, रोग, दोष अकाश, सूखा, पानी की बाढ़, आग, टीड़ी आदि कुछ भी हो। राजा दसवें भाग से लेकर छठे भाग तक कर लेकर भी राष्ट्र की रक्षा नहीं कर सकता था, तो उसे प्रजा का चौथाई पाप लगता था[1]।

किसान को त्रेता और द्वापर में खेती की आजकल की सी साधारण विपत्तियाँ झेलनी पड़ती थीं। चूहे, घूस, छछूंदरें बीज खा जाती थीं, चिड़ियाँ आदि अंकुरों को नष्ट कर देते थे। अत्यंत सूखा या बहुत पानी से फ़सलें बरबाद हो जातीं थी। अच्छी फ़सलों के लिए उस समय भी भांति-भांति के उपाय करने पड़ते थे। परन्तु खेती को जबकभी हानि पहुँचने की सम्भावना होती थी राजा रक्षा का उपाय करने का ज़िम्मेदार था। और जबकभी दुर्भिक्ष पड़ता था राजा के ही पाप से पड़ता था। राजा रोमपाद के राज में उन्हीं के पाप से काल पड़ा बताया जाता है।[2] राजा का कर्त्तव्य था कि दुर्भिक्ष निवारण के सारे उपाय जाने और करे।

१. आदायबलिषड्भागं यो राष्ट्रं नाभिरक्षति।
प्रतिगृह्णाति तत्पापं चतुर्थांशेन भूमिप :॥ —महाभारत

२. बालकांड, सर्ग १; अयोध्याकांड, सर्ग १००; बालकांड, सर्ग ९।७

"एतस्मिन्नेव कालेतु रोमपादः प्रतापवान्॥
अंगेषु प्रथितो राजा भविष्यति महाबलः।
तस्य व्यतिक्रमाद्राज्ञो भविष्यति सुदारुणा,।
अनावृष्टिः सुघोरा वै सर्वलोकभयावहा॥ इत्यादि।
व्यतिक्रमात्तु राजोचितधर्मविलोपनादिति तिलकव्याख्या।

इस युग में भी गोशालायें बहुत उत्तम प्रकार से रक्खी जाती थीं। इस युग में घोप पल्लियां[१] अर्थात् ग्वालों के गांव के गांव थे और ग्वाले बहुत सुखी और धनी थे और दूध, मक्खन, घी आदि के लिए प्रसिद्ध थे। द्वापर के अन्त में नन्दगांव, गोकुल, वरसाना और वृन्दावन तक गोपालों के गांव थे और कंस जैसे अत्याचारी और लुटेरे के राज में भी मथुरा के पास इन गांवों में दूध, दही की नदी बहती थी। और नन्द और वृषभान जैसे बड़े अमीर ग्वाले रहते थे। इस समय में भी कुम्हार, लुहार, ग्वाले, ज्योतिषी, बढ़ई, धीवर, नाई, धोबी, बिनकार, सुराकार (कलवार), इपुकार (तीर बनानेवाले), चमड़ा सिझानेवाले घोड़े, के रोज़गारी, चित्रकार, पत्थर गढ़नेवाले, मूर्ति बनानेवाले, रथ बनानेवाले, टोकरी बनानेवाले, रस्सी बनानेवाले, रङ्गरेज़, सुनार, धातु निकालनेवाले नियारिये, सूखी मछली बेचनेवाले, सुईकार, जौहरी, अस्त्रकार, नक़ली दांत बनानेवाले, दाँत के वैद्य, इतर बेचनेवाले, माली, थवई, जूते बनानेवाले, धनुष बनानेवाले, औषध बनानेवाले और रासायनिक आदि की चर्चा इस समय के ग्रन्थों में आई है।[२]

१. तैत्तिरीय ब्राह्मण, काण्ड १। प्र० ४। अ० ९। ख० २। से मालूम होता है कि गायें तीन बार चरने को भेजी जाती थीं और उनकी अच्छी सेवा होती थी। तथाहि—

"त्रिषु कालेषु पशवः तृणभक्षणार्थं सञ्चरन्ति।
तत्तन्मध्यकाले तु रोमन्थं कुर्वन्तो वर्त्तन्ते। इति।" अर्थ स्पष्ट है।

२. शुक्ल यजुर्वेद अध्याय १६ और ३०, रामायण अयोध्या कांड सर्ग १००, बालकाँड, सर्ग ५। हम वेद के मन्त्रों का उदाहरण नहीं देते क्यों कि सारा अध्याय ही उदाहरणीय है। अतः पाठक किसी भी मन्त्र को

कपड़े की विनाई की कला भी अपनी हद को पहुँच चुकी थी। सोने और चाँदी के काम के कपड़े, ज़री के काम के पीताम्बर आदि भी बनते थे। जिनमें जगह-जगह पर रत्न और नगीने टके हुए थे। ब्राह्मण लोग कौशेय वस्त्र पहनते थे और तपस्वी छाल के बने कपड़े पहनते थे। रंगाई भी अच्छी होती थी। रुई के मैल को उड़ाने के लिए इस युग में एक यन्त्र काम में आता था। ऊन के रेशम के बड़े अच्छे-अच्छे प्रकार के महीन और रंगीन और चमकीले कपड़े बनते और बरते जाते थे।[1]

उठाकर देख सकते हैं। तथा बालकाण्ड का सारा सर्ग ही यहाँ पठन योग्य हैं।

1. "कौशेयानि च वस्त्राणि यावत्तुष्यति वै द्विजः" इत्यादि

अयोध्याकांड अ० ३२। श्लोक १६।

"भूषणानि महार्हाणि वरवस्त्राणि यानि च"

अयोध्याकाण्ड ३०। ४४

"सुन्दर काण्ड का नवाँ सर्ग ही द्रष्टव्य है। पाठक देख सकते हैं।

"साहर्षोत्फुल्लनयनां पाण्डुरक्षौमवासिनीम्" इत्यादि

अयोध्याकांड ७। ७

"जातरूपमयैर्मुख्यैरंगदैः कुण्डलैः शुभैः।
सहेमसूत्रैर्मणिभीः केयूरैर्वलयैरपि। इत्यादि

अयोध्याकांड ३२। ५

"दान्तकाञ्चनचित्रांगैर्वैदूर्यैश्च वरासनैः।
महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनैः। इत्यादि

सुन्दरकांड १०। २

"रौक्मेषु च विशालेषु भाजनेष्वप्यभक्षितान्।
ददर्श कपिशार्दूलो मयूरान् कुक्कुटांस्तथा।

सुन्दरकांड ११। १५

ऐसा जान पड़ता है कि पेशेवालों की पंचायतें भी उस समय अवश्य थीं। जो पंचायत का सभापति होता 'श्रेष्ठ' कहलाता था।[1]

खेती के काम में स्त्रियों का भी भाग था। खेती का काम इतना पवित्र समझा जाता था कि उसके लिए यज्ञ करने में स्त्री पुरुष दोनों शामिल होते थे।[2] जहाँ पुरुष अन्न उपजाता था वहाँ किसान की स्त्री अन्न के काम को पूरा करती थी। उसके स्वादिष्ट भोजन तैयार करती थी। अन्नपूर्णा देवी का आदर्श पालन करती थी।

भारत के जंगलों से लाक्षा आदि रंगने की सामग्री किसान लोग इकट्ठी करके काम में लाते थे और इसका व्यापार इतना बढ़ा-चढ़ा

"तां रत्नवसनोपेतां गोष्ठागारावतंसिकाम्।
यन्त्रागारस्तनीमृद्धां प्रमदामिव भूषिताम्।

सुन्दरकांड ३। १८

१. अथर्व वेद, १।९।३; शतपथ ब्राह्मण, १३।७।१।१; ऐतरेय ब्राह्मण, १३।३९।३, ४।२५।८-९।; ७।१८।८; छान्दोग्य उपनिषद्, ५।२।६; कौषीतकी उपनिषद ४।२०, २।६, ४।१५।; बृहदारण्यकोपनिषद १।४।१२।

२. येनेन्द्राय समभर; पयांस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः।
तेन त्वमग्ने इहवर्धयेमं सजातानां श्रैष्ठ्य आधेह्येनम्॥ अथर्व. १।९।३

हे अग्ने! जिस मन्त्र से तू देवताओं को उत्तम अन्न प्राप्त कराता है उसी मन्त्र से इस पुरुष को "श्रेष्ठ" पद का अधिकारी बना।

"श्रेष्ठो राजाधिपतिः समाज्यैष्ठ्यं श्रैष्ठ्यं राज्यमाधिपत्यं गमयत्वहमेवेदं सर्वमसानीति"। छान्दोग्य अध्याय ५ खण्ड ६०। मंत्र का अर्थ स्पष्ट है।

"श्रैष्ठ्य स्वाराज्यं पर्येति" ४।२०, "भूतानि श्रैष्ठ्याय युज्यन्ते" २।६ "इदं श्रैष्ठ्याय यम्यते" ४।१५ कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषत्॥ अर्थ स्पष्ट है।

"श्रेयांसं हिंसित्वेति" १।४।१२ बृहदारण्यकोपनिषत्।

था कि भारत से बाहर के देशों में भी रंग की सामग्री बिकने को जाया करती थी।

गाँव में अन्न, पशु, आदि से बदलकर और ज़रूरत की चीज़ें लेने की चाल तब भी थी जैसी कि आज अन्न से बदल कर लेने की चाल बाक़ी है। बदलने की यह रीति उस समय इसलिए प्रचलित न थी कि उस समय सिक्कों का चलन न था। सिक्कों का तो उस समय सतजुग से प्रचार चला आया था। हिरण्यपिण्ड निष्क, शतमान, सुवर्ण इत्यादि सोने के सिक्के थे। कृष्णाल एक छोटा सिक्का था, जिसमें एक रत्ती सोना होता था।[१] बात यह है कि उस समय गौएँ सस्ती थीं और उनके पालने का ख़र्च बहुत नहीं था। गौओं की संतान सहज ही बढ़ती थी और उत्तम से उत्तम पोषक भोजन घी, दूध, दही कौड़ियों के मोल था। अनाज देश में ही ख़र्च होता था। रेल की क्रांचियों में लद-लदकर करांची के बंदरगाह से बाहर नहीं जाता था। इस तरह किसान लोग धनी और सुखी थे और व्यवहार-व्यापार में सच्ची अदला-बदली से काम लेते थे। उस समय धन और सम्पत्ति का सच्चा अर्थ समझा जाता था। पर जो भारी-भारी व्यापारी या साहु महाजन थे वे सोने, चाँदी, मोती, मूंगे और रत्नों को इकट्ठा करते थे। राजा और राज कर्मचारी भी अमीर होते थे, जिनके पास सोने, चांदी और रत्नों के सामान बहुत होते थे। परंतु ऐसे लोग भारी संख्या में न थे। भारी संख्या किसानों की ही थी।

सोना, चाँदी, रत्न, टंक, वंग, सीसा, लोहा, ताँवा, रथ, घोड़े, गाय, पशु, नाव, घर, उपजाऊ खेत, दास-दासी इत्यादि इस युग में धन, सम्पत्ति की वस्तुयें समझी जाती थीं। जहाँ कहीं ब्राह्मणों के दान पाने की चर्चा है वहाँसे पता लगता है कि उस समय धन कितना था और किस तरह वँट जाता था। राजा जनक ने साधारण दान में एक-एक वार हज़ार-हज़ार गौएँ, वीस-वीस हज़ार अशर्फियाँ विद्वान् ब्राह्मणों को दी हैं। एक जगह वर्णन है कि एक भक्त ने ८५ हज़ार सफ़ेद घोड़े, दस हज़ार हाथी और अस्सी हज़ार गहनों से सजी दासियाँ यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण को दीं।[१]

इसी युग के सिलसिले में महाभारत का समय भी आता है। यह द्वापर का अंत और कलियुग के आरंभ में पड़ता है। महाभारत के समय में हिन्दुस्तान के जो राज्य थे उन सवकी राज्य-व्यवस्थाओं में खेती, व्यापार और उद्योग के वढ़ाने की ओर सरकार की पूरी दृष्टि थी। इस विषय के लिए एक अलग राजविभाग था। सभा पर्व में नारद ने और वातों के अलावा राजा युधिष्ठिर से यह भी पूछा है कि रोज़गार में सव लोगों के अच्छी तरह से लग जाने पर लोगों का सुख वढ़ता है। इसलिए तेरे राज में रोज़गारवाले विभाग में अच्छे लोग रक्खे गये हैं न ?" इस अवसर पर रोज़गार के अर्थ में वार्ता शव्द आया है। वार्ता या वृत्ति में, वैश्यों या किसानों के सभी धन्धे समझे जाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में, जो महाभारत का ही एक अंश

१. छान्दोग्योपनिषद ४।१७।७; ५।१३।१७ और १९; ७।२।४। शतपथ ब्राह्मण ३।४८; तैत्तरीय उपनिषद १।५।१२; वृहदारण्यकोपनिषद ३।३१।१; शतपथ ब्राह्मण २।३।३।९; ४।१।११; ४।३।४।६; तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१२।५, ११-१२

है, भगवान् कृष्ण ने कहा है कि खेती, बनिज और गोपालन ये तीनों धन्धे स्वभाव से ही वैश्यों के लिए हैं। खेती में वह सब कारबार शामिल है जो खेती की उपज से सम्बन्ध रखते हैं। और गोरक्षा में पशुपालन का सारा कारबार शामिल है। इसी तरह बनिज में सब तरह का लेनदेन और साहूकारी शामिल है इन सबका नाम उस समय वार्ता था और आजकल अर्थशास्त्र है।[1]

२. द्वापर का अन्त

महाभारत काल में व्यवहार और उद्योग-धन्धों पर लिखते हुए-श्री० चिन्तामणि विनायक वैद्य ने अपने अपूर्व ग्रंथ 'महाभारत-मीमांसा' में खेती और बाग़ीचे के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह हिन्दी में ही है इसलिए यहाँ हम उसे ज्यों का त्यों दे देते हैं:—

"महाभारत काल में "आजकल की तरह लोगों का मुख्य धन्धा खेती ही था और आजकल इस धन्धे का जितना उत्कर्ष हो चुका है, कम-से-कम उतना तो महाभारत काल में भी हो चुका था। आजकल जितने प्रकार के अनाज उत्पन्न किये जाते हैं वे सब उस समय भी उत्पन्न किये जाते थे। खेती की रीति आजकल की तरह थी। वर्षा के अभाव के समय बडे-बडे तालाब बनाकर लोगों को पानी देना सरकार का आवश्यक कर्तव्य समझा जाता था। नारद ने युधिष्ठिर से प्रश्न

१. कच्चित्स्वनुष्ठिता तात वार्ता ते साधुभिर्जनैः।
वार्तायां संश्रिते नूनं लोकोयं सुखमेधते ॥

—महाभारत, सभापर्व

उस समय में विद्या के चार विभाग थे। त्रयी, दंडनीति, वार्ता और आन्वीक्षिकी। त्रयी, वेद को कहते थे। दंड नीति, धर्मशास्त्र था। और आन्वीक्षिकी, मोक्ष शास्त्र या वेदांत था। वार्ता, अर्थशास्त्र था।

किया है कि 'तेरे राज्य में खेती वर्षा पर तो अवलंबित नहीं है न? तूने अपने राज्य में योग्य स्थानों पर तालाब बनाये हैं न?' यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि पानी दिये हुए खेतों की फ़सल विशेष महत्व की होती थी। उस ज़माने में ऊख, नीलि (नील) और अन्य वनस्पतियों के रंगों की पैदावार भी सींचे हुए खेतों में की जाती थी। (बाहर के इतिहासों से अनुमान होता है कि उस समय अफ़ीम की उत्पत्ति और खेती नहीं होती रही होगी।) उस समय बडे-बडे पेडों के बाग़ीचे लगाने की ओर विशेष प्रवृत्ति थी और खासकर ऐसे बाग़ीचों में आम के पेड़ लगाये जाते थे। जान पड़ता है कि उस समय थोडे अर्थात् पाँच वर्षों के समय में आम्र वृक्ष में फल लगा लेने की कला मालूम था। यह उदाहरण एक स्थान पर द्रोण पर्व में दिया गया है। 'फल लगे हुए पाँच वर्ष के आम के बाग़ीचे को जैसे भग्न करें'[1] इस उपमा से आजकल के छोटे-छोटे क़लमी आम के बाग़ीचों की कल्पना होती है। यह स्वाभाविक बात है कि महाभारत में खेती के सम्बन्ध में थोड़ा ही उल्लेख हुआ है। इसके आधार पर जो बातें मालूम हो सकती हैं वे उपर दी गई हैं। × × × किसानों को सरकार की ओर से बीज मिलता था, और चार महीनों की जीविका के लिए अनाज उसे मिलता था, जिसे आवश्यकता होती थी। किसानों को सरकार अथवा साहूकार से जो ऋण दिया जाता था, उसका व्याज फ़ी सैकडे एक रुपये से अधिक नहीं होता था। खेती के बाद दूसरा महत्व का धंधा गोरक्षा का था। जंगलों में गाय चराने के खुले साधन रहने के कारण यह धंधा खूब चलता था। चारण लोगों को बैलों की बडी आवश्यकता होती थी, क्योंकि उस जमाने में माल लाने

१. चूतारामो यथाभग्नः पंचवर्षः फलोपगः।

लेजाने का सब काम बैलों से होता था। गाय के दूध-दही की भी बडी आवश्यकता रहती थी। इसके सिवा गाय के सम्बन्ध में पूज्य बुद्धि रहने के कारण सब लोग उन्हें अपने घर में भी अवश्य पालते थे। जब विराट राजा के पास सहदेव तंतिपाल नामक ग्वाला बनकर गया था, तब उसने अपने ज्ञान का वर्णन किया था।[१] उससे मालूम होता है कि महाभारत-काल में जानवरों के बारे में बहुत कुछ ज्ञान रहा होगा। अजाविक अर्थात् बकरों भेडों का भी बड़ा प्रतिपालन होता था। "जाबालि" शब्द "अजापाल" से बना। उस समय हाथी और घोडों के सम्बन्ध की विद्या को भी लोग अच्छी तरह जानते थे। जब नकुल विराट राजा के पास ग्रंथिक नाम का चाबुक-सवार बनकर गया था तब उसने अपने ज्ञान का वर्णन किया था।[२] उसने कहा "मैं घोडों का लक्षण, उन्हें सिखलाना, बुरे घोडों का दोष दूर करना और रोगी घोडों की दवा करना जानता हूँ।" महाभारत में अश्वशास्त्र अर्थात् शालिहोत्र का उल्लेख है। अश्व और गज के सम्बन्ध में महाभारत-काल में कोई ग्रंथ अवश्य रहा होगा। नारद का प्रश्न है कि "तू गजसूत्र, अश्वसूत्र, रथसूत्र इत्यादि का अभ्यास करता है न ?" मालूम होता है कि प्राचीन काल में बैल, घोडे और हाथी के सम्बन्ध में बहुत अभ्यास हो चुका था और उनकी रोगचिकित्सा का भी ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था।[३]

१. क्षिप्रं च गावो बहुला भवंति। न तासु रोगो भवतीह कश्चन ॥

२. अश्वानां प्रकृतिं वेद्मि विनयं चापि सर्वशः।
दुष्टानां प्रतिपत्तिं च कृत्स्नं च विचिकित्सितम् ॥

३. त्रिःप्रसृतमदः शुष्मी षष्टिवर्षी मतंगराट् ॥४॥
म-भा. सभापर्व, अ० १५१

महाभारत-मीमांसा में ऊपर की लिखी बातों से यह ज़ाहिर है कि द्वापर के अंत और कलियुग के आरंभवाले समय में गाँव के रहनेवाले किसान सुखी और धनी थे। उनकी दशा आजकल की-सी न थी। उनके पास अन्न-धन की बहुतायत थी। वे अपना उपजाया खाते और अपना बनाया पहनते थे। बकरा, भेड़, आग और धरती बेचने की चीज़ें नहीं थी।[१] जान पड़ता है कि उस समय तक खेतों के रेहन और बय करने की प्रथा नहीं चली थी। इस रीति का आरम्भ चन्द्रगुप्त के समय से जान पड़ता है। उस समय भी यह अधिकार सबको नहीं मिला था। मुसलमानों के समय में रेहन और बय करने की रीति ज़ोरों से चल पड़ी, और संवत् १८४४ में तो कम्पनी सरकार ने नियम बना दिया, कि क़ानूनगो के यहाँ रजिस्ट्री कराके ज़मींदार अपनी ज़मीन रेहन या बय करा सकता है।

साठवें वर्ष में हाथी का पूर्ण विकास अर्थात् यौवन होता है और उस समय उसके तीन स्थानों से मद टपकता है। कानों के पीछे, गंडस्थलों से और गुह्य देश में। महाभारत के ज़माने की यह जानकारी महत्वपूर्ण है। इससे विदित होता है कि उस समय हाथी के सम्बन्ध का ज्ञान कितना पूर्ण था।

१. अजोऽग्निर्वरुणो मेषः सूर्य्योऽश्वः पृथिवी विराट्।
धेनुर्यज्ञश्च सोमश्च न विक्रेयाः कथञ्चन। —महाभारत

: ३ :

कलजुग का प्रवेश

१. बौद्धकाल

कलजुग के आरम्भ के हज़ार-डेढ़ हज़ार बरस तक वही दशा समझनी चाहिए जो महाभारत के आधार पर मीमांसा में दी गई है। आज से लगभग ढाई हज़ार बरस पहले भगवान बुद्ध का समय था। गाँव के सम्बन्ध में बुद्धमत के ग्रंथों में से बहुत सी बातें निकाली जा सकती हैं। उनसे यह पता चलता है कि भारत का समाज उस काल में भी देहाती ही था। किसान लोग अपने-अपने खेत के मालिक थे और गाँव के किसानों की एक जाति सी बनी हुई थी। अलगायी हुई भारी-भारी रियासतें, ज़मींदारियाँ या ताल्लुके न थे। एक जातक में लिखा है कि जब राजा विदेह ने संसार छोड़कर संन्यास ले लिया तो उन्होंने सात योजनों की अपनी राजधानी मिथिला छोड़ी और सोलह हज़ार गाँव का अपना राज छोड़ा। इससे पता चलता है कि सोलह हज़ार गाँववाले राज्य के भीतर मिथिला नामका एक ही शहर था। उस समय गाँवों के मुकाबले शहरों की संख्या इतनी थोड़ी थी कि अगर हम एक लाख गाँवों के पीछे सात शहरों का औसत मानलें और यह भी मानलें कि आज कल की तरह सारे भारत में सात लाख से ज्यादा गाँव नहीं थे तो सारे भारत में उस समय शहरों की कुल गिनती पचास से अधिक नहीं ठहरती।

शहर की लम्बाई-चौड़ाई भी इतनी ज्यादा वर्णन की गई है कि उसमें न केवल लम्बे-चौड़े मुहल्ले शामिल होंगे बल्कि आस-पास के गाँव भी ज़रूर मिल गये होंगे। आज भी हमारे शहरों में बड़े-बड़े गांव और क़स्बे मिल ही जाते हैं। जातकों में गांवों के रहनेवालों की संख्या तीस परिवारों से लेकर एक हज़ार परिवारों तक थी और एक परिवार की गिनती में दादा, दादी, माँ, बाप, चाचा, चाची, बेटे बेटी, बहुएँ और पोते, पोती, नाती, नतिनी, जितने रसोई के भीतर भोजन करते थे, सब शामिल थे। जिस तरह आज मिले-जुले परिवार गाँव में रहते हैं उसी तरह पहले भी रहा करते थे; और जैसे आज यह नहीं कहा जासकता कि हम इतनी ही बड़ी बस्ती को गाँव कहेंगे उसी तरह तब भी गाँव की कोई नपी तुली परिभाषा न थी।[१]

जब कभी कोई महत्व के सार्वजनिक काम पड़ते थे तो गाँव के सब लोग मिलकर उसमें उचित भाग लेने का निश्चय कर लेते थे। गाँव का एक मुखिया होता था जिसे 'भोजक' कहते थे। भोजक को कुछ कर और दंड मिल जाया करता था। गाँव के सब रहनेवाले मिल कर सलाह करते थे। उसमें भोजक भी शामिल होता था। एक जातक में लिखा है कि बोधिसत्व और गाँववाले मिलकर रम्बे और फावड़े लेकर फिरे। गलियों और सड़कों में जहाँ-कहीं पत्थर या रोड़े थे रम्बों से निकालकर किनारे लगाते गये और जो बेमौक़े राह में पेड़ पड़ते थे, जिनसे रथों के और गाड़ियों के चलने में रुकावट होती थी, उन्हें फरसों से काट डाला, ऊँची नीची, उबड़-खाबड़

१. जातक ३।३६५; ४।३३०; विनयपिटक, कुल्ल ५, अध्याय ५।१२; जातक १।१०६,

जगहों को बराबर कर डाला। उन्होंने सड़कें ठीक कर डालीं, पानी के तालाब बना डाले और एक बड़ा दालान तैयार कर डाला, परन्तु उसकी छत के लिए उनके पास सामान न था। वह एक देवी के पास था, जिससे मोल लेने को उनके पास धन न था। पर उनके काम में शरीक होने को वह राज़ी हो गई और उन्हें वह सब सामान मिल गया। इस कथा से यह प्रकट है कि उस समय के धार्मिक नेता भी गाँव का सुधार कराने के लिए गाँववालों के साथ मिलकर काम करने में शामिल हो जाते थे। साथ ही उस समय गाँव वालों के मन में ऐसा भाव भी था कि अपने खेत में मोटे से मोटा काम करने में किसी तरह की हेठी न थी, पर राजा के यहाँ जाकर बेगार करना नीच काम था।[१]

ग्राम जो जनपद एक अंश था, या सीमा पर होता था या शहर के पास होता था। उसके चारों ओर खेत और गोचर भूमि, वन और उपवन होता था। आज भी आनन्दवन, प्रमोदवन, सीतावन, वृन्दावन आदि वनों के नाम जहाँ-तहाँ बस्तियों में भी पाये जाते हैं। सारन, चम्पारन, सहारनपुर आदि में अरण्य का पता लगता है। इन वनों और अरण्यों में जंगली जानवर और जंगली आदमी भी रहते थे और तपस्वी, संन्यासी अपनी कुटी बनाकर गाँव से दूर रहा करते थे। जंगल प्रायः सबकी सम्पत्ति होती थी। परन्तु कोई-कोई जंगल जो राजधानी से जुड़े हुए होते थे राजा के अधिकार में समझे जाते थे। लोग जंगलों से लकड़ियाँ बे रोक-टोक काट लाते थे और बेचते भी थे। गोचर भूमि में लोग अपने पशुओं को चरने के लिए छोड़ देते थे या कोई चरवाहा होता था जो थोड़ी मजूरी पर

१. जातक १।१९९; १।३४३

सबके पशु चराया करता था और चौमासे भर जंगलों में रहता और पशुओं की रक्षा करता था।[१]

इस काल में गांव के चारों तरफ़ कहीं-कहीं दीवारें भी होती थीं और गाँव के फाटक भी हुआ करते थे। खेतों में बाड़ें लगी होती थीं। जाल भी तने होते थे और खेतों के पहरेदार भी होते थे और हर गृहस्थ की जोत के चारों ओर नाली से सीमा बँधी होती थी। नालियाँ अक्सर साझे की हुआ करती थीं जिनसे दोनों ओर के खेत साझे में सींचे जाते थे। ये नालियाँ और गड्ढे, जिनमें पानी इकट्ठा किया जाता था, सभी रूप और आकार के होते थे। यह ठीक पता नहीं लगता कि किस प्रांत में, औसत जोत का कितना वर्गफल ठहरता था पर जातकों से यह पता चलता है कि एक-एक ब्राह्मण के पास हज़ार-हज़ार करीसों (बीघों) की खेती थी। एक ब्राह्मण काशी भारद्वाज—के यहाँ पांच सौ हलों की खेती होती थी। और वह मजूरों से हल जुतवाता था।[२]

इस युग में लोग दुख भरे शहरों में रहना इस लोक और परलोक दोनों के लिए बुरा समझते थे। एक जगह लिखा है कि धूल भरे शहर में जो रहता है वह मोक्ष नहीं पासकता, और दूसरी जगह लिखा है कि शहर में कभी पवित्र मंत्रों का उच्चारण न करना चाहिए[३]। सूत्रों में शहर के रहनेवाले के लिए कोई संस्कार, यज्ञ

१. जातक १।३१७।; ५।१०३; १।३८८; ३।१४९; ३।४०१; १।२४०; ४।३२६; १।१९४; १।३

२. जातक १।२३९; २।७६।१३५; ३।७; ४।३७०; १।२१५; १।१४३।१५४; २।११०; ४।२७७; ४।१६७; १।३३६; ५।४१२; २।३५७; १।२७७; ३।१६२, ३।२९३; ४।२७६; २।१६५।३००;

३. आपस्तंब धर्मसूत्र, १।३२।२१; बौध्यायनसूत्र; २।३।६,३३

या विधि नहीं दी हुई है। परंतु किसानों के लिए पद-पद पर रीतियाँ और विधियाँ दी हुई हैं। हल जोतने के समय अशनि, सीता, अरदा, पर्जन्य, इन्द्र और भग के नाम से हवन कराया जाता था। बोने के समय, काटने के समय, दँवाने के समय और नये अन्न को लाने के समय यज्ञ कराये जाते थे। यह सब किसानों की क्रिया थी। बार-बार यह आदेश दिया गया है कि चौरस्ते पर, भिटे पर, वल्मीकों (बांबियों) पर, गाँव से बाहर निकलकर यज्ञ या पूजा करनी चाहिए। यह गाँव के रहनेवाले गृहस्थों और विद्वानों के लिए भी आदेश है। शहर के रहनेवालों के लिए नहीं[१]। अंग्रेज़ी के (Buddhist India) "बुद्ध कालीन भारत" नामक ग्रंथ में मालूम होता है कि बौद्ध साहित्य से उस समय के केवल बीस शहरों का पता लगता है जिनमें से ये छः महानगर कहे गये हैं--श्रावस्ती, चम्पा, राजगृह, साकेत, कौशाम्बी और बनारस। कुशीनारा, को जहाँ बुद्ध भगवान् ने शरीर त्याग किया है, थेर आनन्द ने जंगल का एक छोटा सा क़स्बा लिखा है। पाटलिपुत्र अर्थात् आजकल के पटना का उस समय तक पता न था।

राजा को खेत की उपज में से वार्षिक दसवाँ भाग तक कर मिलता था। वह इतने के लिए ही भू-पति समझा जाता था। जो कुछ पैदावार होती थी, उसे गाँव का मुखिया भोजक या सरकारी कर्मचारी महामात्य या तो खलियान के सामने नाप लेता था या खड़ी फसल को देखकर अटकल कर लिया जाता था। कभी-कभी सरकार इस कर को बढ़ाकर किसी-किसी कारण से आठवाँ या छठा अंश तक भी कर देती थी। किसी-किसी का यह कर राजा छोड़ भी देता था, या किसी समूह या गाँव को मुक्त भी कर देता

१. गोभिल गृह्यसूत्र ४।४।२८,-३०; ३।५।३२-३५

था। यह तो राजाओं की बात हुई जिनके कर उगाहने की चर्चा पोथियों में आई। परंतु पंचायती राज जहां-जहां थे वहां-वहां कर उगाहने की कोई चर्चा नहीं है। एक-आध जगह पंचायती राज में चंदे की तरह कर उगाहने की चर्चा भले ही है। एक जगह लिखा है कि मल्लों के पंचायती राज में पंचों ने यह आज्ञा निकाली थी कि जब बुद्ध भगवान् अपनी यात्रा में बस्ती के पास आवें तो हर आदमी को उनका स्वागत करने के लिए जाना चाहिए। जो न जायगा उसको पाँचसौ रुपये दण्ड के होंगे।[१] यद्यपि जंगल पर सार्वजनिक अधिकार था तथापि राजा को जब ज़रूरत पड़ती थी तब वह जंगल की ज़मीन को बेच सकता था और वह अपनी जायदाद में खेती करनेवाले मजूरों और किसानों से बेगार भी ले सकता था। कहीं-कहीं के किसान गांववाले राजा के लिए हरिण के जंगल घेर रखते थे कि उन्हें समय-कुसमय शिकार हांकने के लिए काम-धाम छुड़ाकर बुलाया न जाय।

उस समय मगध के राज में भूमि बेची नहीं जासकती थी पर दान दी जासकती थी। कोसल के राज में बेची भी जा सकती थी। जिस भूमि में बाड़ नहीं लगी होती थी उसमें सब लोग अपने पशु चरा सकते थे, लकड़ी काट सकते थे, फूल चुन सकते थे, फल तोड़ सकते थे। खेती के नियम कड़े थे, परंतु अच्छे थे और विवेक से भरे थे। मिल्कियत सिद्ध करने के लिए दस्तावेज़ (कागज़ पत्र), गवाह और क़ब्ज़ा प्रमाण माने जाते थे।[२]

१. विनय पिटक १।२४७

२. जातक ४।२८१; विनयपिटक २।१५८; आपस्तम्ब २।११।२८ (१)१।६।१८(२०); गौतम १२।२८; १२।१४-१७; वशिष्ठ सूत्र १६।१९

यूनानी लेखकों से पता चलता है कि उस समय भी सियारी और उन्हारी की--रबी और ख़रीफ़ की--दो फसलें होती थीं और जिस तरह आजकल अनाज की खेती होती है उसी तरह तब भी होती थी। जो अनाज आज उपजते हैं वही तब भी उपजते थे। गन्ने की खेती होती थी और खंडसालें चलती थीं। इतनी शकर तैयार होती थी कि संसार के बाहर के सभी सभ्य देशों में यहाँ से शकर जाती थी।[१] सुन्दर और बारीक कपड़े, कपास, ऊन, रेशम, छाल आदि सभी तरह के इस समय भी बनते थे और जंगल की औषधियाँ और तरह-तरह का माल अब भी उसी तरह काम में आता था। वाणिज्य व्यापार उसी तरह बढ़ा-चढ़ा था। जो बातें हम पिछले अध्याय में लिख आये हैं उन बातों का, विदेशियों के बयान से, इस काल में बहुत ऊँची अवस्था में होना पाया जाता है। बौद्ध मत का प्रचार भारत के बाहर के देशों में इसी समय में शुरु हुआ। आना-जाना, बनिज-व्यापार पहले से ज्यादा बढ़ गया। यहाँ के बने कपड़े शकर, चित्रकारी मूर्तियाँ हाथी दाँत की बनी सुन्दर चीज़ें, मसाले आदि भाँति-भाँति की वस्तुयें भारत से बाहर बड़ी मात्रा में जाती थीं और यहाँकी सभ्यता और धन सम्पति की कहानी सुनाती थीं।

दुर्भिक्षों के बारे में जहाँ अपने यहाँ के ग्रन्थों में चर्चा आया करती है वहाँ मेगस्थनीज़ जैसे विदेशी कहते हैं कि भारतवर्ष में अकाल कभी पड़ता ही नहीं। इससे यह अटकल लगायी जा सकती है कि अकाल पड़ते थे ज़रूर, परंतु बहुत जल्दी-जल्दी नहीं पड़ते थे

१. स्ट्राबो १५वीं—६९३, मेगेस्थनीज़ खण्ड ९। स्ट्राबो १५वीं ६९० से ६९२ तक।

और जहां-कहीं पड़ते थे वहीं उनका प्रभाव रहता था। वह सारे भारत में फैल नहीं जाते थे।

२. बौद्धकाल का अन्त

जो काल बुद्धावतार पर समाप्त होता है जातकों में उस काल के सम्बन्ध में एक बड़े महत्व की बात लिखी पाई जाती है। इस समय प्रायः सभी कारीगरी और कलाओं की पंचायतें संगठित थीं। 'मूगपक्ख' जातक (४।४११) में इस तरह की अट्ठारह पंचायतों की चर्चा है जिनमें से बढ़इयों, लुहारों, खाल सिझानेवालों और चित्रकारों की पंचायतों का विशेष उल्लेख है। परंतु 'प्राचीन भारत के आर्थिक इतिहास' (पृ० १०१) में लिखा है—"डाक्टर मजूमदार ने इस काल के जातकों और धर्मग्रंथों से पता लगाया है कि इन नौ प्रकार के पेशेवालों की पंचायतें संगठित थीं—(१) काठ के काम करनेवाले, जिनमें नाव बनानेवाले शामिल थे (२) धातु के काम करनेवाले, जिन में सोना-चांदी साफ़ करनेवाले शामिल थे (३) माली (४) चित्रकार (५) बनजारे[1] (६) साहूकारी करनेवाले (७) खेती करनेवाले (८) व्यापार करनेवाले (९) पशु-पालन करनेवाले"।[2] एक जातक में (२।१८) लिखा है कि एक जगह लकड़ी के काम का भारी केंद्र था जिसमें एक हज़ार परिवार रहते थे। इनकी दो बराबर-बराबर पंचायतें थीं और हर पंचायत का सरपंच जेट्ठक कहलाता था (जेट्ठक का अर्थ है बड़ा भाई)।……इन पंचायतों में तीन विशेषतायें थीं। (१) सरपंच एक जेट्ठक होता था (२) पेशा अपने कुल का

१. जातक ६। ४२७, जातक नं० ४१५, जातक २। २९५

२. गौतम के सूत्र ११।२१

चलता था और (३) धन्धा अपनी जगह में बँध जाता था, (या यों कहना चाहिए कि ख़ास-ख़ास धन्धों के लिए ख़ास-ख़ास जगहें प्रसिद्ध हो जाती थीं।) जातकों से मालूम होता है (२।१२।५२ और ३।२८१) कि पंचायत का सरपंच राज-दर्बार में रहनेवाला एक बड़ा मंत्री होता था। जेट्ठक के सिवाय सरपंच को 'पमुक्क' (प्रमुख या सभापति)" भी कहते थे।

बनारस के राज की यह विशेषता मालूम होती है कि उस समय पंचायत के सरपंच काशिराज के बड़े कृपापात्र होते थे। एक सरपंच तो सारे राज्य का कोषाध्यक्ष ही था।[१] ऐसा अनुमान होता है कि उस समय जो थोड़े से बड़े-बड़े शहर थे उनके आसपास के गाँवों में कारीगरी और कलाओं के काम बढ़े-चढ़े थे। रोज़गार इतना बढ़ गया था कि शहर के पास के गाँवों में किसान लोग खेती के सिवाय हाथ की कलाओं में भी दक्ष हो गये थे। हम जातकों में बारम्बार ऐसे गाँवों का वर्णन पाते हैं जैसे लुहारों के गाँव जिनमें एक हज़ार घर लुहारों के ही थे। इसी तरह ऐसे गाँव भी थे जिनमें पाँच-पाँच सौ घर बढ़इयों के थे। इसी प्रकार कुम्हारों के भी गाँव के गाँव बसे हुए थे। इसी तरह व्याधगाम, निषादगाम इत्यादि पेशेवरों के नाम से भी गाँव बसे थे।[२] इन गाँवों के पेशेवाले शहर में रहनेवाले पेशेवालों से भिन्न थे। वे किसान भी थे और लुहारी भी करते थे। बढ़ई भी थे और खेती भी करते थे। खेती के काम में उनका सारा समय नहीं लगता था। वे खेती का सारा काम अपने हाथों से करते

१. जातक ३।३८७; जातक २।१२।५२

२. जातक ३।२८१-६; जातक २।१८।४०५; जातक ३।३७६।५०८; जातक ६।७१; ३।८९;

थे तो भी उन्हें पेशे का काम करने के लिए काफ़ी समय मिल जाता था, और जिनका पेशे का कारबार बहुत बढ़ा हुआ था वे मजूरों से काम लेते थे। जान पड़ता है कि उस समय बेकारी की बीमारी न थी।

ये पंचायतें क़ानून बनाती थीं, मुक़द्दमे फ़ैसले करती थीं और जो कुछ फ़ैसला होता था, उसको व्यवहार में लाना भी उन्हींका काम था। विनयपिटक में लिखा है कि किसी चोर स्त्री को तबतक संन्यासिनी बनाये जाने का अधिकार नहीं है जबतक पंचायतों की ओर से आज्ञा न मिल जाय। जो लोग पंचायत में शामिल होते थे उनके घरेलू झगड़े भी, स्त्री-पुरुष का वैमनस्य भी, पंचायत के सामने आता था और पंचायत निबटारा करती थी।[१]

किसी लेख से ऐसा नहीं मालूम होता कि उस काल में खेती का काम कोई नीच काम समझा जाता हो। खेती करनेवाला अपने समाज में खेती करने के कारण अपमानित नहीं समझा जाता था। इसमें तो संदेह नहीं है कि खेती, व्यापार और पशुपालन वैश्यों का ही काम था और जो ब्राह्मण पुरोहिती का काम करते थे या जो पढ़ाने का काम करते वे खेती नहीं करते थे। पर ऐसे ब्राह्मण भी थे, जो न तो पुरोहिती का काम जानते थे और न विद्या ही पढ़े होते थे। ऐसे ब्राह्मणों के लिए सबसे उत्तम काम खेती थी, मध्यम काम बनियई थी। सेवा का काम सबसे नीच काम था और भीख तो वही माँगता था जो गया गुजरा अपाहिज था। क्षत्रिय का काम भी राजदरबार या सेना और पुलिस का था। परन्तु जिन्हें इस तरह का काम न मिलता था वे लाचार होकर वैश्य या शूद्र का काम करने लग जाते थे। राजा ययाति की कथा सतजुग की है। यह प्रसिद्ध है

१. विनयपिटक ४।२२६; गौतम; ११।२१,

कि उन्होंने अपने कई बेटों को राज के काम से अनधिकारी बना दिया। उनके वंशवाले लाचार होकर वैश्य और शूद्र का काम करने लगे। नन्द और वृषभानु आदि गोपालक ऐसे ही अधिकारहीन किये हुए यादव थे। परन्तु वैश्य द्विजाति थे और द्विजातियों के सभी अधिकार इन्हें प्राप्त थे और जो ब्राह्मण या क्षत्रिय जन्म से यह (वैश्यों का) काम करने लगते थे उन्हें कोई नीच नहीं समझता था। उनका सम्मान भी ब्राह्मण और क्षत्रिय की तरह ही होता था।[१] यद्यपि वे ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व से गिरे हुए समझे जाते थे तो भी वैश्यों का काम उठा लेने से कोई उन्हें ताने नहीं देता था और किसी तरह का अपमान नहीं होता था। जातकों और सूत्रों में ऐसे ब्राह्मणों की चर्चा बहुत आई है जो खेती करते हैं, गौएँ चराते हैं, बकरी का रोज़गार करते हैं, बनिये का काम करते हैं, शिकार खेलते हैं, बढ़ई और लुहार का काम करते हैं, जुलाहे का काम करते हैं, बाण चलाते हैं, बनजारों की रक्षा करते हैं, रथ हाँकते हैं और सँपेरे का काम करते हैं।[२] इस तरह के ब्राह्मणों और क्षत्रियों के वंशवाले उस समय के वैश्य और शूद्र वंशवालों से ऐसे मिलजुल गये और रोटी-बेटी का ऐसा घना सम्बन्ध हो गया कि आज इन पेशेवालों में से यह भेद करना मुश्किल हो गया है कि कौन ब्राह्मण है, कौन क्षत्रिय है और कौन वैश्य। यह भेद तो उन्हींमें देखा जाता है जो हाल के ही पतित हैं। अनगिनतियों ब्राह्मण और क्षत्रिय आज किसान का काम करते हैं और अपने को किसान कहने और मानने में उन्हें

१. सुत्तनिपात ३।९; मज्झिम निकाय २।१८०, जातक ४।३६३

२. जातक २।१६५; ३।२९३; ४।१६७-२७६।; ३।४०१; ४।१५; ५।२२-४७१; २।२००; ६।१७०; ४।२०७; ४५७; ५।१२७;

उचित गर्व है, वे इसे पतन नहीं मानते। उस काल में भी यही भाव सबसे ऊपर था। कहीं-कहीं ब्राह्मण किसान बड़ा पवित्र आत्मा और भक्त समझा जाता था। एड़ी से चोटी तक बोधिसत्व गिना जाता था।[१] "उत्तम खेती, मध्यम बान; निर्धिन सेवा भीख निदान" यह आजकल की प्रसिद्ध कहावत उस समय भी ब्राह्मणों और क्षत्रियों के लिए राह दिखानेवाली थी।

उस काल में मजूर और शूद्र दो तरह के थे। एक तो किसान आप ही मजूरी करते थे, दूसरे वह मजूर भी थे जिनके पास खेत न थे। जो मजूरी या नौकरी के सिवाय जीविका का और कोई उपाय न रखते थे, वे लकड़ी काटते थे, पानी भरते थे, हल जोतते थे और सेवा के सब तरह के काम करते थे। बड़े-बड़े खेतिहर अपने यहाँ मजूर रखकर खेती का काम कराते थे। मजूरी सब तरह की दी जाती थी। भोजन, कपड़ा और रुपये सबकी चाल थी। इन दो प्रकारों के सिवाय मजूरों का एक तीसरा प्रकार भी था। क़ैदी, ऋणी और प्राणदंड के बदले काम करनेवाले और अपने आप अपने को बेच देनेवाले या न्यायालय से दंड पाकर काम करनेवाले दास या दासी अपनी मीयाद भर या जीवन भर गुलामी करते थे। परन्तु ऐसे लोगों की गिनती भारतवर्ष में बहुत न थी। साधारण मजूरों की अपेक्षा इन दासों के साथ बर्ताव भी अच्छा ही होता था। इनका लाड़-प्यार होता था। इन्हें लिखना-पढ़ना और हाथ की कारीगरी भी सीखने का मौक़ा दिया जाता था। कभी-कभी किसीके द्वारा इनके साथ कड़ाई का बर्ताव भी होता होगा, ऐसा प्रतीत होता है। दास जबतक मुक्त नहीं हो जाता था, तबतक धर्म संघ में वह सम्मि-

१. जातक ३।१६२

लित नहीं होने पाता था। शायद इसलिए कि इससे उसके मालिक के काम में हर्ज होता। इन दासों और दासियों को अपने जीवन से असंतोष नहीं था क्योंकि इनके भाग जाने की चर्चा कहीं नहीं पाई जाती।[१] नित्य की मजूरी करनेवाला किसीका गुलाम तो नहीं था तो भी कभी-कभी ऐसे मौक़े आजाते थे कि उसका जीवन गुलामों की अपेक्षा अधिक कठिन हो जाता था।[२]

इन दिनों रहन-सहन का ख़र्च कैसा था यह कहना तो मुश्किल है। परन्तु जातकों से यह पता लगता है कि एक धेले के तेल या घी से आदमी का काम भरपूर चल सकता था। आठ कहपान में एक अच्छा गधा ख़रीदा जा सकता था। चौवीस मुद्राओं में एक जोड़ी बैल मिल जाते थे। अर्द्धमासक आजकल के धेले या पैसे के बराबर समझा जाय और कहपान या कार्शपण अठन्नी के बराबर माना जाय और उपर्युक्त मुद्रायें एक-एक रुपये के बराबर मानी जायँ तो उस समय का ख़र्च आजकल की अपेक्षा बहुत सस्ता समझा जायगा। परन्तु यह बात अनुमान के आधार पर है। सिक्के का वास्तविक मूल्य कब कितना समझा जाना चाहिए यह अर्थशास्त्र का एक जटिल प्रश्न है। इसपर यहाँ विचार करना हमारा उद्देश्य नहीं है।

१. जातक १।४५१; मज्झिम निकाय १।१२५; जातक १।४०२ विनयपिटक १।७६, जातक ५।३१३, ६।५४७

२. जातक १।४२२; ३।४४४

: ४ :

चाणक्य के समय के गाँव

इतिहास लिखनेवालों के निकट बुद्धकाल का अन्त उस समय समझा जाता है जब चन्द्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठा और शासन की असली बागडोर चाणक्य के हाथ में आई। इस प्रकांड पण्डित ने 'अर्थ-शास्त्र' नाम की एक पुस्तक लिखी। इस पोथी से उस काल के बारे में पता लगता है जिसमें मौर्य्य वंश का राज हुआ था और जो विक्रम के एकसौ तीस बरस पहले समाप्त होता है। 'अर्थशास्त्र' से मालूम होता है कि गाँवों के कई तरह के विभाग किये गये थे। प्रथम कोटि, मध्यम कोटि और सबसे नीची कोटि के सिवाय ऐसे भी गांव थे जिन्हें अन्न, पशु, सोना, जंगल की पैदावार आदि किसी रूप में कोई कर नहीं देना पड़ता था। ऐसे गाँव भी थे जहाँ से कर के बदले बेगार मिलती थी और ऐसे भी थे जिनसे कर के बदले दूध, दही, घी मक्खन आदि मिलते थे।[१] कुछ बातों में तो सभी गाँव समान थे। हर गाँव में बड़े-बूढ़ों की एक पंचायत होती थी। इस पंचायत का जो कोई सरपंच होता था वही सरकार की ओर से गाँव का मुखिया माना जाता था। ज़मींदारी का कोई रिवाज़ नहीं था। हर किसान अपने खेत का मालिक था। गाँव में घर सब एक साथ लगे होते थे बीच में गलियाँ होती थीं। बस्ती के चारों ओर बहुत दूर तक फैली

१. अर्थशास्त्र (पण्डित प्राणनाथ विद्यालंकार का उल्था) पृष्ठ १२९, ३९-४१।

हुई नाज की, विशेष रूप से, धान की खेती होती थी। हर गाँव से मिली हुई पशुओं के चरने के लिए गोचर भूमि होती थी जिसका बन्दोवस्त राजा को करना पड़ता था। गृहस्थों के अपने-अपने पशु अलग होते थे, पर गोचर भूमि सबकी एक ही होती थी। इसी गोचर भूमि में वे खुले हुए मैदान भी होते थे, जिनमें बनजारे और घूमनेवाली जंगली जातियाँ आकर ठहरजाती थीं और आये दिन डेरे डाला करती थीं।[१] गाँवों की हदें बँधी हुई थीं। हर गाँव में चौपाल और दालानें पंचायतों के काम के लिए बनी होती थीं और गाँव का भीतरी अर्थशास्त्र बिलकुल स्वतंत्र होता था। गाँव के भीतरी बन्दोवस्त में किसी बाहरी का हाथ बिलकुल नहीं होता था। गाँववाले सब बातों का निबटारा आप कर लेते थे। घूमनेवाली जातियों या चरवाहों की बस्तियाँ न तो बहुत काल के लिए टिकाऊ होती थीं और न गाँवों की तरह सुसंगठित थीं। गोचर भूमि और गोरक्षा उस समय में ऐसे महत्व की बात समझी जाती थी कि खेती के अध्यक्ष की तरह राज दरबार में गोशाला के अध्यक्ष अलग और गोचर भूमियों के अध्यक्ष अलग होते थे।[२] गोशाला के अध्यक्ष को केवल गाय भैंस की ही खबर नहीं लेनी होती थी, बल्कि भेड़, बकरियाँ, गधे, सुअर, खच्चर और कुत्तों के लिए भी बंदोवस्त करना पड़ता था।

गाँव बसाने के सम्बन्ध में कौटिल्य के अर्थशास्त्र में जो नियम दिये हुए हैं उनसे बहुत कुछ पता चलता है। यहाँ हम पण्डित प्राणनाथजी के अनुवाद से (पृ० ३९-४१) नीचे जो अवतरण देते हैं उससे उस समय के गाँव की राज्य-व्यवस्था का पता लगता है:—

१. मेगेस्थनीज़ (अंग्रेज़ी १, ४७)

२. अर्थशास्त्र पृ० ११५-१६, १२८

"परदेश या स्वदेश के निवासियों के द्वारा शून्य या नवीन जन पद को बसाया जाय। प्रत्येक ग्राम सौ परिवार से पाँच सौ परिवार तक का हो। उसमें शूद्र कृषकों की संख्या अधिक हो और उनकी सीमा एक कोस से दो कोस तक विस्तृत हो। वह इस प्रकार स्थापित किये जाँय कि एक दूसरे की रक्षा कर सकें। नदी, पहाड़, जंगल, पेड़, गुहा, नहर, तालाब, सींभल, पीपल तथा वड़ आदि से उनकी सीमा नियत की जाय। आठसौ ग्रामों के मध्य में स्थानीय, चारसौ ग्रामों के मध्य में द्रोणमुख, दोसौ ग्रामों के मध्य में खार्वटिक तथा दस ग्रामों के मध्य में संग्रहण नामक दुर्ग बनाये जायँ। राष्ट्र-सीमाओं पर अन्तपाल के दुर्ग खडे किये जायँ और प्रत्येक जनपद-द्वार उसके द्वारा सुरक्षित रक्खा जाय। वागुरिक, शबर, पुलिन्द, चंडाल तथा जंगली लोग शेष सम्पूर्ण सीमा की देख-रेख करें।

ऋत्विक्, आचार्य, पुरोहित तथा श्रोत्रियों को अभिरूप फलदायक ब्रह्मदेय[1] दिया जाय और उनको राज्यदंड तथा राज्य कर से मुक्त किया जाय। अध्यक्ष, संख्यायक, गोप, स्थानीक, अनीकस्थ, चिकित्सक, अश्व दमक, जंघारिक आदि राज-सेवकों को भूमि दी जाय परन्तु उनको यह अधिकार न हो कि वह उसको बेच सकें या थाती (गिरवी) रख सकें। राजस्वदे ने वालों को ऐसे खेत दिये जायँ जो कि एक पुरुष के लिए पर्याप्त हों। खेतिहरों को नई भूमि न दी जायँ। जो खेती न करें, उनसे खेत छीन कर अन्यों के सिपुर्द किये जायँ। ग्राम-भृतक या बनिये ही उनपर खेती

१. ब्रह्मदेय वह दान है जो कि ब्राह्मणों को स्थिर रूप से सदा के लिए देदिया जाय। ताम्र पत्र तथा बहुत मे शिलालेख खोदने से मिले हैं जिनमें पुराने राजाओं ने भिन्न-भिन्न भूमि भागों को ब्रह्मदेय के रूप में ब्राह्मणों को दिया था। (प्राणनाथ विद्यालंकार)

करें। जो खेत जोतें वे सरकारी हर्जाना (अपहीन) भरें। जो सुगमता से राजस्व दें उनको धान्य, पशु तथा हिरण्य से सहायता पहुँचाई जाय। साथ ही ख़याल रखा जाय कि अनुग्रह[1] तथा परिहार[2] से कोश की वृद्धि हो और जिससे कोश के नुक़सान की संभावना हो उसको न किया जाय। क्योंकि अल्प कोशवाला राजा नागरिकों तथा ग्रामीणों को ही सताता है। नये वन्दोवस्त या अन्य आकस्मिक समय में ही विशेष-विशेष व्यक्तियों को राजस्व से मुक्त किया जाय और जिनका राज्यकर-मुक्ति या परिहार का समय समाप्त हो गया है उनपर पिता के तुल्य अनुग्रह रखा जाय।"

मौर्य्यकाल में भी देश का सबसे बड़ा कारबार खेती का था। इस पर सरकार का बहुत बड़ा ध्यान था। सब तरह के अनाज तो उपजते ही थे साथ ही गन्ने की खेती बहुत ज़ोरों से होती थी। गुड़, खाँड, मिश्री सभी कुछ तैयार होता था। अंगूर से भी एक प्रकार का मीठा तैयार किया जाता था जिसे मधु कहते थे। खाँड तैयार करने के लिए गाँव-गाँव में खँडसालें थीं।[3] शकर का रोज़गार बढ़ा-चढ़ा था। मेगस्थनीज़ लिखता है :—

"भारतवर्ष में बड़े लम्बे-चौड़े अत्यन्त उपजाऊ मैदान हैं जो

१. अनुग्रह—उत्तम काम करने के बदले में कारीगरों—किसानों को राजा जो धन आदि इनाम में दें उसको 'कौटिल्य' ने 'अनुग्रह' शब्द से सूचित किया है। (प्रा० वि०)

२. परिहार—राज्य कर से मुक्त करना। पुत्रोत्पत्ति, वर्षगाँठ आदि समय में राजा लोग ऐसा करते थे, कौटिल्य ने इन सब समयों को 'यथागतक' शब्द से सूचित किया है। (प्रा० वि०)

३. अर्थशास्त्र पृ० ८५, ८६.

खेतों से हरे-भरे दीखते हैं और जिनकी सिंचाई के लिए नदियों का जाल-सा बिछा दीखता है·········जौ, गेहूँ, चावल आदि के सिवाय ज्वार, बाजरा और अनेक प्रकार की दालें और मनुष्य और चौपायों के भोजन के योग्य नाना प्रकार के पौधे होते हैं······जाड़ों में और गर्मियों में दो वार बरसात होती है और साल में दो फ़सलें होती हैं। विविध प्रकार के स्वाद और मिठास के कन्द, मूल और फल होते हैं जिनसे मनुष्यों का वहुतायत से पोषण हो सकता है············। बुरे-से-बुरे युद्ध में भी किसानों की कोई हानि नहीं होती; फ़सल को, पशुओं को, खेतों को या पेड़ लतादि को कोई नुक़सान नहीं पहुँचता। भारत के किसान बड़े मिहनती होते हैं, बड़े चतुर होते हैं, किफ़ायत से रहते हैं और ईमानदार होते हैं। सरकारी प्रबंध ऐसा अच्छा है कि खेती का व्यापार बड़ी अच्छी दशा में है। जन, धन की पूरी रक्षा है, न्याय और क़ानून बड़े अच्छे हैं"[1]

मेगस्थनीज़ के लेख से मालूम होता है कि सिंचाई का प्रवन्ध वड़ा ही उत्तम था। नहरों का भी एक विभाग था, अर्थशास्त्र से भी इस बात का पूरा समर्थन होता है कि सिंचाई का सरकारी प्रवन्ध था, और जिन लोगों को सरकार की तरफ़ से जल मिलता था उसके लिए कर देना पड़ता था। खेती के लिए एक सरकारी अफ़सर अलग था वह सीताध्यक्ष कहलाता था। उसके लिए अर्थशास्त्र पृष्ठ १०४ में लिखा है--

"सीताध्यक्ष (कृषि का अध्यक्ष या प्रवन्ध कर्ता) कृषि-विज्ञान, गुल्मशास्त्र (झाड़ियों की विद्या), वृक्ष-विद्या तथा आयुर्वेद में पाण्डित्य

१. 'प्राचीन भारत का इतिहास' नामक ग्रंथ में पृ० १३९ पर का अवतरण।

प्राप्त कर, या उन लोगों से मैत्री कर, जो कि इन विद्याओं में पण्डित हैं, धान्य, फूल-फल, शाक, कन्द, मूल, पालक, सन, जूट, कपास, बीज आदि समय पर इकट्ठा करे। बहुत हलों से जोती हुई भूमि पर दास, कर्मकर, अपराधी आदियों से बीज डलवाये और हल, कृषि सम्बन्धी उपकरण तथा बैल उनको अपनी ओर से दे तथा काम हो जाने के बाद लौटा ले। तरखान (कर्मार) खटीक (कुट्टाक), तेली, रस्सी बँटनेवाले, बहेरिये लोगों से उनको सहायता पहुँचाये। यदि काम ठीक न हो तो उनसे हरजाना वसूल किया जाय।"

कताई और बुनाई का काम भी मौर्यकाल में कोई छोटे पैमाने पर नहीं होता था। जिस तरह खेती के विभाग के लिए सरकारी अफ़सर सीताध्यक्ष होता था उसी तरह कताई-बुनाई के काम पर एक सरकारी अफ़सर सूत्राध्यक्ष नियुक्त होता था। वह कारीगरों से सूत, कपड़ा और रस्सी का काम भी करवाता था। उसका काम था कि वैरागिनों, विधवाओं, विकलांग लड़कियों, राज्य दण्डितों, बूढ़ी राजदासियों और मन्दिर के काम से छुटी देवदासियों और साधारणतया सभी लड़कियों से ऊन, रेशे, रुई, जूट सन आदि के सूत कतवाये और सूत की चिकनाहट, मुटाई और उत्तम, मध्यम निकृष्ट दशा देखकर उनका मिहनताना नियत करे। इस तरह सूत की कताई के लिए, उसकी ठीक जांच के लिए और ठीक-ठीक मजूरी देने के लिए बड़े विस्तार से नियम बने हुए थे।[१] और इसके सम्बन्ध में अपराधियों के लिए बड़े कड़े-कड़े दण्ड भी थे, जैसे जो मेहनताना लेकर काम न करें उनका अंगूठा काट दिया जाय। यही दण्ड उनको भी मिले जो कि माल खा गई हों, लेकर भाग गई हों या चुरा ले गई

१. कौटिल्य अर्थशास्त्र पृ० १०२, १२३

हों। जान पड़ता है कि कताई के ये नियम राजधानी के पास के गाँव के हैं जिनका सरकारी विभाग से कपास, रुई और मजूरी पाने का वन्दोवस्त था और यह क़ानून उन लोगों के लिए था जो उस सरकारी विभाग के लिए कातने को वाध्य किये जा सकते थे। परन्तु औरों को कातने की मनाई न थी। शहर से दूसरे गाँव में रहनेवाले लोग, बूढ़े, जवान, बच्चे सभी कातते होंगे। क्योंकि पहले तो पहनने के लिए कपड़े सारी आवादी को चाहिए और दूसरे भारत के वाहर से कपड़े के आने की कहीं चर्चा नहीं है। इसलिए कताई-वुनाई का काम अवश्य ही गाँव में घर-घर होता था। सरकारी तौर से इस कला का प्रवन्ध यह प्रकट करता है कि कताई और वुनाई का रोज़ग़ार खेती-वारी की तरह भारी महत्त्व रखता था। उस समय यह भी कानून था कि किसीके पास खेत हों, और वह खेती न करता हो तो उससे खेत लेकर खेती करनेवाले को दे दिये जायँ। इससे कोई वेकार खेत न रख सकता था।

कोष्ठागाराध्यक्ष के कर्तव्यों की तालिका से[1] पता लगता है कि उस समय खेती के कारवार के साथ ही साथ खण्डसाल के सिवाय, जिसकी चर्चा हम कर चुके हैं, तिलहनों से तेल निकालने का काम वहुत ज़ोरों से होता था। रंग का कारवार भी वहुत चढ़ा-वढ़ा था। यूनानी लेखकों से पता चलता है[2] कि लाख आदि कीड़ों से पैदा होनेवाले रंग भी उस समय निकाले जाते थे और कपड़े रंगने के सिवाय लोग अपनी दाढ़ियाँ भी विविध रंगों में रंगते थे। कुम्हार लोग वड़े उत्तम-उत्तम प्रकार के वासन वनाते थे। वँसफोर वाँस

१. कौटिल्य अर्थ शास्त्र (पं० आणनाथ) पृ० ८४ से ८८ तक
२. नियारकोस (अंग्रजी) खंड ९ व १०।

और बेंत और छाल के सब तरह के सामान तैयार करते थे। नदी किनारे के गांव में धीमर मछलियाँ मारते थे और समुद्र के किनारे मोती और शंख खोज लाते थे। सूखी मछलियाँ और सूखे मांस के व्यापार की चर्चा से यह भी पता लगता है कि ये चीजें बिकने के लिए बहुत दूर-दूर भेजी जाती होंगी। उस समय आटा भी गाँव से पिस कर शहर में बड़े भारी परिमाण में बिकने को आता होगा।

पञ्चायतों का संगठन उस समय इतने महत्त्व का था कि उसके लिए संघ वृत्त नाम का एक अधिकरण ही अर्थशास्त्र में अलग रखा गया है। इस अधिकरण के पढ़ने से[1] यह जान पड़ता है कि उस समय संघों के अधिकार बहुत बढ़े हुए थे। छोटी-छोटी पंचायतों को एकत्र करके लोगों ने संघ बना रखे थे। लिखा है कि काम्बोज, सुराष्ट्र, क्षत्रिय, तथा श्रेणी आदि संघ खेती, पशु-पालन और बनिज से संतुष्ट रहते थे और शस्त्र की जीविका भी करते थे, अर्थात सिपाही का काम भी करते थे। लिच्छविक, वृष्चिक, मद्रक, कुक्कुर, कुरु, पांचाल आदि के संघ भी थे। इनके बारे में यह लिखा है कि ये लोग राजा शब्द से सन्तुष्ट रहते थे। आगे चलकर भेद-नीति का वर्णन किया है, जिससे पता चलता है कि काम्बोज, सुराष्ट्र आदि बड़ी चतुर जाति के थे। लिच्छविक आदि नाम पर मोहित होजाते थे। राजा स्वभावतः इन पंचायतों को निर्बल रखने में अपना अधिक कल्याण समझता था। इसीलिए फोड़-फाँस लगाये रहता था। भेद-नीति का विस्तार करके लिखा है कि जब वह आपस में जुदा हो जायँ तो उनको तितर-बितर कर दे। या सबको एक ही देश में बसाकर उनके

१. अर्थशास्त्र (प्रा० वि०) पृ० ३५ से ३६१ तक

पाँच-पाँच या दस-दस परिवार (कुल) को जोतने-बोने के लिए ज़मीन दे-दे। राजा शब्द से सन्तुष्ट होनेवालों का राजपुत्रों के अनुरूप शासन बनावे।

राजा को जब आवश्यकता होती थी या जब इसमें वह देश का कल्याण देखता था तो वह नए गाँव बसाता था और नई गोचर-भूमि छुड़वाता था। किसी-किसी गाँव को शुद्ध शूद्र गाँव बना देता था और किसीमें केवल ब्राह्मणों को बसाकर उनसे खेती कराता था। इस सम्बन्ध में हम एक लम्बा अवतरण दे आये हैं। इस पर साधारणतया यह अनुमान किया जाता है कि शूद्रों को धीरे-धीरे ऊपर उठाकर वैश्य बनाने और ब्राह्मणों को धीरे-धीरे नीचे उतारकर खेतिहर बनाने में राजा का भी हाथ था। आज जो भारी संख्या में ब्राह्मण, क्षत्रिय, और शूद्र भी खेती में लगे हुए हैं, उनका जहाँ प्रधान कारण भारतवर्ष में एकमात्र खेती के व्यवसाय का प्रधान होना है, वहाँ एक गौण कारण यह भी है कि समय-समय पर राजा वैश्य के सिवाय और वर्णों को भी खेती के काम में लगा देने में सहायक होता था।

मजूरों और गुलामों की दशा भी बड़ी अच्छी थी। अर्थशास्त्र में यह नियम दिया गया है कि जिस मजूर से कोई मजूरी पहले से तय न की जाय उसे "मजूरी काम तथा समय के अनुसार दी जाय। खेतीहरों में हरवाहे, गउओं का काम करनेवालों में ग्वाले और अपना माल ख़रीदनेवाले बनियों में दूकान पर बैठनेवालों में मेहनताना तय न होने पर आमदनी का दसवाँ भाग ग्रहण करें।" मजूरी के नियम ऐसे सुन्दर और नीतियुक्त बनाये गये थे कि काम करनेवाला और करानेवाला दोनों में से किसीका हक़ नहीं मारा जाता था। दासों

के नियम भी बड़े अच्छे थे। इनमें मनुष्यता की रक्षा थी। लिखा है–[१]

"उदर दास को छोड़कर, आर्य जाति के नाबालिग शूद्र को बेचनेवाले सम्बन्धी को १२ पण, वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण को बेचने वाले स्वकुटुम्बी को क्रमशः २४, २६, ४८ पण दंड दिया जाय। यदि यही काम करनेवाला कोई दूर का रिश्तेदार या दुश्मन हो तो उसको क्रेता तथा श्रोता को पूर्व, मध्यम तथा उत्तम साहस दंड के साथ-साथ मृत्यु दंड तक दिया जा सकता है। म्लेच्छ लोग प्रजा वेंच सकते हैं तथा गिरों रख सकते हैं। आर्य्य लोग दास नहीं बनाये जा सकते हैं। पारिवारिक, राज्य दंड तथा उत्पत्ति के साधन विषयक विपत्ति के आपड़ने पर किसी भी आर्य्य जाति के व्यक्ति को गिरों रखा जा सकता है। निष्क्रय का धन मिलते ही सहायता देने में समर्थ बालक को शीघ्र ही छुड़ा लिया जाय। एक बार जिसने अपने आपको गिरों रखा है या जिसको सम्बन्धियों ने दो बार गिरों रखा है, राज्यापराध करने पर या शत्रु के देश में भागने पर वह आजीवन दास बनाया जा सकता है। धन को चुरानेवाले तथा किसी आर्य को दास बनानेवाले व्यक्तियों को आधा दंड दिया जाय। राज्यापराधी, मृतप्राय तथा बीमार को भूल से गिरों रखनेवाला अपना धन लौटा ले सकता है। जो कोई गिरों में रक्खे व्यक्ति से मुर्दा या पाखाना पेशाब उठवाये, या उसको जूठा खिलाये, या कपड़ा पहनने को न देकर नंगा रक्खे, या पीटे या तकलीफ़ दे या स्त्री का सतीत्व हरण करे उसका (गिरों रखने के बदले दिया गया) धन जब्त कर लिया जाय। दायी, दासी, अर्धसीरी तथा नौकरानी सदा के लिए स्वतंत्र कर दी जाय और उच्चकुल के मनुष्य को उसके घर से भाग जाने दिया जाय।"

१. कौटिल्य अर्थशास्त्र (प्रा० वि०) पृ० १६८ से १७१ तक

मजूरों के भी संघ थे। और देश में पूँजीवाले लोग भी ज़रूर थे। खेतिहर और वनिये मिलकर अपने व्यापार संघ वनाते थे और मजूर लोग मिलकर अपने-अपने मजूर-संघ स्थापित किये हुए थे। जहाँ दोनों के सम्वन्ध के नियम दिये गये हैं वहाँ मजूरों की पंचायत (संघ भृताह) के लिए भी नियम हैं। इन सव वातों से पता लगता है कि उस समय मिलजुलकर संघ शक्ति से काम लेने की चाल वहुत काल से दृढ़ हो चुकी थी।

सिक्कों का चलन भी उस समय वहुत निश्चित था। सोने और चाँदी दोनों के सिक्के चलते थे। ताँवे के सिक्के भी थे। रुपया पण कहलाता था। अठन्नी, चौअनन्नी, दुअन्नी भी चलती थी। ताँवे के अधन्ने, पैसे, धेले आदि भी चलते थे, जिन्हें मापक, अर्द्ध मापक, काकिणी और अर्द्ध काकिणी कहते थे।[1] इन सिक्कों के सिवाय व्यापारी लोग एक दूसरे पर हुँडी भी चलाते थे। और इसमें तो तनिक भी संदेह नहीं है कि गाँव में अदला-वदली का नियम पहले की तरह जारी था। गाँव के लोग इतने सुखी थे कि चौपालों में और पंचायतों के दालानों में अक्सर नाटक हुआ करते थे। नाचने और गानेवाले आकर गांववालों का मनोरंजन किया करते थे। अर्थशास्त्र कार ने इस वात को वहुत वुरा वतलाया है क्योंकि इससे गाँववालों के घरेलू और खेत के काम धंधों में वड़ा हर्ज पड़ता था।

प्रोफ़ेसर संतोपकुमार दास लिखते हैं कि इस काल में गाँव के रहनेवालों को आजकल के हिसाव से अमीर तो नहीं कहा जा

१. डाक्टर शमशास्त्री की राय में (अंग्रेज़ी अर्थशास्त्र पृ० ९८) 'रूप्य रूप' और कर्षापण एक ही चीज है। यहाँ पर रुपये के लिए पण शव्द का प्रयोग हुआ है।

सकता, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि उनकी जितनी सीधी सादी ज़रूरतें थीं, सब सहज में पूरी होती थीं। मेगेस्थनीज़ लिखता है कि लोग बहुत सीधी चाल-ढाल के थे। स्वभाव से संयमी थे। और गहने-पाते काम में तो ज़रूर लाते थे परन्तु उनका पहिरावा बहुत सादा था। एक सूती धोती, कंधे पर चद्दर, सफ़ेद चमड़े के जूते एक भले मानस के काफ़ी सामान थे। निर्धन और दरिद्र भी होते थे, परन्तु उनकी गिनती अत्यंत कम थी। और वे थोड़े से निर्धन भी सरकारी आश्रय में रहते थे। अर्थशास्त्र के अनुसार "राजा का कर्तव्य था कि बूढ़े, अपाहिज, पीड़ित और लाचार का पालन करे। और निर्धन, गर्भवती और उनके बच्चों के पालन पोषण का उचित प्रबंध करे।[१]"

दैवी विपत्तियों के उपायवाले प्रकरण में अग, पानी, दुर्भिक्ष, चूहा, शेर, साँप तथा राक्षस इन आधिदैवी जोखिमों से जनपद को बचाने के उपाय बताये हैं। पानी, व्याधि, दुर्भिक्ष और चूहों से रक्षा के सम्बंध में जो-जो उपाय बताये हैं उन्हें हम यहाँ अद्धृत करते हैं—

> पानी—नदी के किनारे के गाँववाले वर्षा की रातों में किनारे से दूर रहकर सोवें। लकडी और बाँस की नावें सदा अपने पास रक्खें। तूंबा, मषक, नाव, तमेड़ तथा वेडे के द्वारा डूबते हुए लोगों को बचावें। जो लोग डूबते हुए मनुष्य को बचाने के लिए न दौडें उनपर १२ पण जुर्माना किया जाय बशर्तेकि उनके पास नाव आदि तैरने का साधन न हो। पर्वों में नदी की पूजा की जाय। माया वेद तथा योग-विद्या को जाननेवाले वृष्टि के विरुद्ध उपाय करें। वृष्टि के रुकने पर इन्द्र, गंगा पर्वत तथा महाकच्छ की पूजा की जाय।

१. अर्थशास्त्र (प्रा० वि०) पृ० ३९ से ४१ तक।

व्याधि—चौदहवें अधिकरण (औपनिषदिक) में विधान किये गये तरीक़ों के द्वारा बीमारी के भय को कम किया जाय। यही बात वैद्य लोग दवाइयों से और सिद्ध तथा तपस्वी लोग शांतिमय साधन तथा प्रायश्चित्तों के द्वारा करें। फैलनेवाली बीमारी (मरक) के सम्बंध में भी यही तरीक़े काम में लाये जायँ। तीर्थों में नहाना, महा-कच्छ का बढ़ाना, गौओं का स्मशान में दुहना, मुर्दे का धड़ जलाना तथा देवताओं के उपलक्ष में रात भर जागना आदि काम किये जायँ। पशुओं की बीमारी के फैलने पर परिवार के देवताओं की पूजा तथा पशुओं के ऊपर से धूप बत्ती उतारी जाय।

दुर्भिक्ष—दुर्भिक्ष के समय में राजा अनाज तथा बीज कम क़ीमत पर बाँटे। लोगों को इधर-उधर देश में भेजदे। नये-नये कठिन कामों को शुरू करे और लोगों को भोजनाच्छादन दे। मित्र-राष्ट्रों का सहारा लेकर अमीरों पर टैक्स बढ़ावे तथा उनका इकट्ठा किया हुआ धन निकाल ले। जिस देश में फ़सल अच्छी हो उसमें अपनी प्रजा को लेकर चला जावे। नदी के किनारे धान, शाक, मूल तथा फलों की खेती करावे। मृग, पशु, पक्षी, शिकारी जन्तु तथा मच्छियों का शिकार शुरू करे।

चूहा—चूहों के उत्पात होने पर बिल्ली तथा नेवलों को छोड़े। जो लोग पकड़कर चूहों को मारें उनपर, १२ पण जुर्माना किया जाय। जो लोग जंगली जानवरों के न होते हुए भी विना कारण ही कुत्तों को छोड़ रखें उनपर भी पूर्ववत् दंड का विधान किया जाय। थूहड़ के दूध में धान को सानकर खेत में छोड़े। ऐन्द्रजालिक तरीक़ों को काम में लावे तथा चूहों के सम्बन्ध में राज्यकर लगावे। सिद्ध तथा तपस्वी लोग शांतिमय उपायों को करें। पर्वों में मूषक-पूजा की जाय।

टिड्डीदल पक्षी, कीड़े आदि के उत्पातों का उपाय भी इसी प्रकार किया जाय।"

परन्तु उसी समय के लेखक मेगेस्थनीज़ का कहना है कि भारतवर्ष में अकाल पड़ने की बात कहीं सुनी भी नहीं जाती। इससे प्रकट है कि चंद्रगुप्त के राज का बंदोबस्त ऐसा अच्छा था कि उस समय भारतवर्ष में लोग अकाल की पीड़ा नहीं जानते थे। इस सम्बन्ध में चाणक्य का प्रबन्ध बड़ाई के योग्य था।

: ५ :

प्राचीन काल का अन्त

१. चाणक्य के बाद के पाँचसौ वर्ष

अब तक गाँव के बारे में जो कुछ लिखा गया है वह अधिकतर उत्तर भारत के सम्बन्ध में है। चाणक्य के काल के अन्त में दक्षिण भारत के आँध्रों और कुशानों का समय आता है जो विक्रम से डेढ़-सौ वर्ष पहले आरम्भ होता है और साढ़े तीनसौ वर्ष पीछे खतम होता है। कुशानों का राज उत्तर में था और आन्ध्रों का दक्षिण में था। जो सिलसिला मौर्य्यकाल तक खेती और व्यापार की उन्नति का चला आया था उसके टूट जाने का अभी तक कोई कारण नहीं हुआ था। भारत की बहुत भारी आबादी पहले की तरह गाँवों में रहती थी। गाँव घोषों और पल्लियों में विभक्त थे। गाँव का मुखिया आँध्रों के राज्य में सरकारी तौर से रखा जाता था वह झगड़ों का निबटारा भी करता था और राजा के लिए कर भी उगाहता था। अधिकारी लोग जो मालगुज़ारी मुक़र्रर कर देते थे वह रक़म जब-तक राजा को मिलती जाती थी तबतक गाँव की बातों में राजा दख़ल नहीं देता था। धर्मशास्त्र भी यही कहता है कि गाँव सभी तरह से स्वतन्त्र हैं।[१] और महाभारत में कुल की रीति[२] भी प्रमाण

१, पारस्कर गृह्यसूत्र १-८।३

२. महाभारत, आदि पर्व ११३-९

मानी गई है। उस समय भी एक ही परिवार में बंधे रहने की रीति सबसे अच्छी समझी जाती थी। और अलग होकर रहना निर्बलता का चिन्ह था। इस काल में राजा अपनेको पृथ्वी का ऐसा स्वामी समझता था कि जब उसे ज़रूरत होती थी प्रजा की राय लिये बिना ही भूमि ले लेता था या किसीको दे देता था। तो भी किसान के जीवन की दो बातें उलट-पुलट करने की उसे मनाही थी, (१) उसका घर और (२) उसका खेत।

किसान या वैश्य काम खेती के सिवाय पशुपालन भी करता था। दान देना, पढ़ना, लिखना, व्यापार करना और लेन-देन करना भी उसका कर्तव्य था। उसे बीज बोना भी आना चाहिए था और अच्छे और बुरे खेतों की परख भी होनी चाहिए थी।[१] उस समय ज़रूरत पड़ने पर किसान या वैश्य को सरकार से बोने को बीज भी मिलते थे और बदले में उपज का चौथाई हिस्सा सरकार लेती थी। सिंचाई के लिए जल का प्रबन्ध भी सरकारी था और ज़रूरत पर तक़ावी बँटती थी।[२]

बुनाई का काम इस काल में अपनी पराकाष्ठा को पहुँच चुका था। सूत, ऊन और रेशम के उत्तम से उत्तम कपड़े बनते थे। ऊन के कपड़ों में एक तरह का कपड़ा चूहों की ऊन से बनाया जाता था जो विशेष रूप से गर्म रहता था। चीनी रेशम के सिवाय तीस प्रकार के

१. "पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदंच वैश्यस्य कृषिमेव च मनु: १। ९०
बीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्र दोषगुणस्य च।
मानयोगं च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः मनु: ९। ३३०

२. महाभारत, शांति पर्व, अ० ८८ श्लो० २६-३०, अ० ८१ श्लोक २३-२४; सभा पर्व अ० ५ श्लो० ६६-७९।

देसी रेशम बरते जाते थे। द्राविड़ कवियों ने कुछ कपड़ों की उपमा "दूध की वाष्प और सांप के केंचुल" तक से दी है और बारीकी का वर्णन करते हुए यह स्पष्ट लिखा है कि इनकी बुनावट इतनी बारीक है कि आंखों को सूत के धागे अलग-अलग दिखाई नहीं पड़ते।

इस काल में भी पेशों और कलाओं के संघ या पञ्चायतें बनी हुई थीं। प्राचीन लिपियों से जुलाहों, कुम्हारों, तेलियों ठठेरों, उद्यांत्रिकों, चित्रकारों और मूर्तिकारों की पञ्चायतें अलग-अलग बनी हुई थीं। जो विद्वान् महाभारत की रचना का काल इसी काल के भीतर समझते हैं वे इस अवसर पर महाभारत का भी प्रमाण देकर कहते हैं कि इस समय पञ्चायतों का बड़ा भारी महत्त्व था। महाभारत में लिखा है कि इन पञ्चायतों से राज की शक्ति को प्रधान रूप से सहारा मिलता था।[१] सरपञ्चों में फूट डालना या बगावत के लिए उभारना, वैरी की हानि करने की मानी हुई रीति थी।[२] जब गन्धर्वों से दुर्योधन हार जाता है तब अपनी राजधानी को लौटना नहीं चाहता। कहता है कि मैं पञ्चायत के मुखियों को कैसे मुँह दिखाऊँगा[३]। उस समय पञ्चायत की रीतियाँ और नीतियाँ धर्मशास्त्र की तरह मानी जाती थीं।[४] अपनी पञ्चायत के

१. आश्रमवासिक पर्व, ७। ७-९

२. शांति पर्व ५९। ४९, १११। ६८

३. ब्राह्मणाः श्रेणिमुख्याश्च तथोदासीन वृत्तयः।
किं मां वक्ष्यंति किम् चापि प्रतिवक्ष्यामि नानहम्।
वनपर्व २४८। १६

४. जातिजानपदान्धर्माञ्छ्रेणी धर्माश्च धर्मवित्
समीक्ष्य कुलधर्माश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत्॥ मनुः ८। ४१

सामने वचन देकर जो तोड़ता था उसे राजा देश निकाले का दण्ड देता था। और पंचायत के विरुद्ध पाप करनेवाले के लिए कोई प्राश्चित्त न था। ऐसे कड़े नियमों के होते कला और कारीगरों में ऊँची से ऊँची दशा को पहुँचना जरूरी था। इन्हीं पेशेवालों की धीरे-धीरे जातियाँ बन गई और उस समय की पञ्चायतें आज भी जातियों की पञ्चायतें बनी हुई हैं। मनुस्मृति में लिखा है कि राजा को चाहिए कि वैश्यों और शूद्रों से उनके कर्तव्यों का पालन करावे। अगर ये दोनों जातियाँ अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करेंगी तो संसार की व्यवस्था ही नष्ट हो जायगी।[1] उस समय वर्ण धर्म की रक्षा बड़े महत्व की बात समझी जाती थी। नासिक की गुफा के शिला-लेख में राजा गौतमीपुत्र बालश्री बड़े गर्व के साथ कहता है कि हम ने चारों वर्ण के एक-दूसरे में मिलकर गड़बड़ करने में रुकावट डाली है। इस प्रथा को बन्द कर दिया है।

इस काल में दासों के पास कोई सम्पत्ति न होती थी। वह मजूरी के रूप में ही कर देता था। शूद्रों का यही कर्तव्य था कि वे विशेष रूप से किसानों की सेवा करें।[2] बाकी दशा दासों की वही थी जो पिछले अध्याय में लिख आये हैं। एक बात इस काल की बड़े मार्के की है कि किसान लोग शूद्रों से अर्थात् मजूरों से लगभग मिलते जारहे थे। मजूर बढ़ते-बढ़ते चरवाहे से गोपालक बन जाता था। बनिये की नौकरी करते-करते आप बनिज करने लग जाता था। बहुत दिनों का किसान का मजूर इनाम में या मजूरी में माफ़ी खेत

१. वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत् ।
तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदं जगत् । मनुः ८ । ४१८

२. महाभारत १२ । ६० । ३६; १ । १०० । १

पाजाता था। इस तरह मजूरी की जाति का आदमी बनिया, ग्वाला या खेतिहर हो जाता था। महाभारत में लिखा है कि छः गायों को चरानेवाला एक गाय का सारा दूध पाने का अधिकारी है और सो गायें चराता हो तो नित्य के दूध के सिवाय बरस के अन्त में एक जोड़ी गाय बैल की मिलती थी। किसान के मजूर को मजूरी में उपज का सातवाँ भाग मिलता था। इस तरह मजूर जाति के लोग भी किसान बनते गये। ब्राह्मण और क्षत्रिय वैश्य तक उतर सकते थे। परन्तु शूद्र नहीं हो सकते थे। इस तरह तीनों वर्णों के लोग धीरे-धीरे किसान होते गये और किसानों की गिनती बढ़ती गई।[1]

मनुस्मृति में राजा को अनाज के ऊपर छठा भाग, पेड़, माँस, मधु, घी, कन्दमूल औषधि, मसाले, फल और फूल पर भी छठा भाग, पशु पर पाँचवाँ भाग कर राजा को मिलता था।[2] महाभारत में साफ़ लिखा है कि कर ज़रूर लगाये जाने चाहिएँ। इसका कारण यह है

१. महाभारत १२।६०।२४, २।५।५४, २।६१।२०

२. पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा॥ ७।१३०
आददीताथ षड्भागं द्रुमांसमधुसर्पिषाम्।
गन्धौषधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च। ७।१३१
पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वैदलस्य च।
मृण्मयानां च भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च॥ ७।१३२
आददीताथ षड्भागं प्रणष्टाधिगतान्नृपः।
दशमं द्वादशं वापि सतां धर्ममनुस्मरन् ८।३३
धान्येऽष्टमं विशां शुल्कं विंशं कार्षापणावरम्।
कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा मनुः १०।१२०

कि प्रजा की रक्षा की जाती है और रक्षा में खर्च लगता है। परन्तु कर बहुत हलका लगना चाहिए। सभी किसानों से और गाँव के सभी लोगों से कर रुपये पैसे के रूप में नहीं लिया जाता था। किसान अनाज के रूप में देता था, व्यापारी अपने व्यापार की वस्तु के रूप में देता था और मजूर और कारीगर अपने काम के रूप में देते थे। केवल शहर के लोग रुपये पैसे के रूप में देते थे। जो चीजें जीवन के लिए अत्यन्त ज़रूरी थीं उनपर कर नहीं लगता था।

धन पैदा करने के सात साधन बताये गये हैं। उनमें साहूकारी भी है, परिश्रम भी है और बनिज भी है। साहूकारी और बनिज तो धन के साधन हैं ही, परन्तु परिश्रम जो अलग साधन दिखाया गया है उसमें खेती-बारी और कारीगरी मुख्य है।[1] सीधी-सादी मजूरी से तो आज कोई धनी नहीं हो सकता। परन्तु मनुस्मृति में केवल परिश्रम का उल्लेख करने से हम यह कह सकते हैं कि शायद उस समय मजूरी बहुत अच्छी मिलती थी और चीजें सस्ती थीं इसलिए मजूर भी धनवान हो सकता था।

सूद, कर, व्यापार और मजूरी इन सबके सम्बन्ध में विस्तार से जो नियम दिये गये हैं उनसे यह पता चलता है कि भारत में इस काल में आर्थिक संगठन जितना उत्तम था उससे अधिक अच्छा हो नहीं सकता। पेशेवर और कारीगर बड़े चतुर और दक्ष देख पड़ते हैं। उस समय का जीवन बड़ा सभ्य और ऊँचा देख पड़ता है। भांति-भांति के अनाज, मसाले, फल-फूल तरकारियाँ जो काम आती थीं, ऊँचे दर्जे की खेती की गवाही देती हैं। भारत का उस समय का

१. सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः।
प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥ मनु: १०।११५

जगद्व्यापी व्यापार वाणिज्य की उत्तम अवस्था बताता है। उस समय की अद्भुत और अपूर्व कारीगरी और कला बहुत ऊँची उन्नति की साक्षी है। सभी घरों में सोना, चांदी, रत्न, गहने और रेशमी कपड़ों के होने की चर्चा है।[१]

२. गुप्तकाल

इसके बाद गुप्तों का समय आता है। गुप्तों के समय में भारतवर्ष के बाहर भी भारतीय लोग जाकर बसे। बंगाल से पूरब बर्मा में जाकर भारतीयों ने बस्तियाँ बसाई और खेतीबारी करने लगे। इससे पहले के काल में भी पता चलता है कि भारत के दक्षिण के हिन्द महासागर में पच्छिम से पूरब तक फैले हुए अनेक टापुओं में बड़े-बड़े जहाज़ों पर भारत के व्यापारी आया-जाया करते थे और बहुत से लोग जाकर वहीं बस भी गये थे और अपनी संस्कृति का प्रचार भी वहाँ कर रक्खा था। परन्तु जहाँ-जहाँ भारतीय गये और बसे, वहाँ उनका मुख्य कारबार खेती का ही था। और अपनी मातृभूमि में तो सतजुग से गाँव में रहना और खेती-बारी करना उनकी विशेपता थी। युग और राज के बदलने से कभी तो राजा का अधिकार कम हो जाता था और कभी बढ़ जाता था। गाँव में उपज के बढ़ जाने से उसे दूर-दूर पहुँचाने के लिए व्यापार का सिलसिला बढ़ाया गया था और धीरे-धीरे व्यापारियों के केन्द्र बनते

१. "तैजसानां मणीनां च सर्वस्याश्ममयस्य च।
भस्मनाद्भिर्मृदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीपिभिः॥ मनुः ५।१११
निर्लेपं काञ्चनं भाण्डमद्भिरेव विशुध्यति।
अब्जमश्ममयं चैव राजतंचानुपस्कृतम्॥ मनुः ५।११२

गये। यही केन्द्र नगर थे और इन्हीं नगरों में प्रजा की और प्रजा की सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए राजधानियाँ बन गईं थीं। ये शहर धीरे-धीरे वहुत वढ़ गये और वलवान राजाओं ने छोटे-छोटे राजाओं को अपने वस में करके अपने अधिकार दूर-दूर तक फैला लिये। इस तरह के राजाओं में मौर्य्यकाल के राजा वढ़े-चढ़े थे। गुप्तकाल के राजा उनसे भी ज्यादा वढ़-चढ़े निकले। पर उन्होंने एक वड़ा महत्व का काम भी किया। वाहरी विदेशी जातियों ने भारत पर हमले किये थे और भारत पर अधिकार कर लिया था। अनेक लड़ाइयाँ हुईं। गुप्तों ने उन्हें परास्त किया और भारत को भारतीयों के हाथ में रक्खा। गुप्तों के समय में व्यापार वहुत वढ़ गया और शहरों को वड़ा लाभ हुआ तो भी भारत की वहुत भारी आवादी गाँवों में ही रहती थी और खेती-वारी ही उनका ख़ास धन्धा था। वे लोग कुओं से, नहरों से, तालावों से और गढ्ढों से पानी लेकर सिंचाई करते थे। उस समय जल संचय के लिए 'निपान' अर्थात् भारी-भारी जलाशय हुआ करते थे। यह नियम था कि प्रजा जव कोई नया धन्धा उठावे या नई ज़मीन जोते, वोवे या नहर, तालाव, कुआँ खोदे और यह सव कुछ अपने काम के लिए करे तो जवतक खर्च का दूना लाभ न होने लगे तवतक राजा उनसे कुछ न माँगे। राजा इस तरह किसान से कर वसूल करे कि किसान नष्ट न होने पावें। जैसे माली फूल चुन लेता है परन्तु पेड़ की पूरी रक्षा करता है उसी तरह राजा भी वरते। राजा उस कोयलेवाले की तरह न वरते जो कोयला लेने के लिए पेड़ को जला डालता है।[1]

१. शुक्रनीतिसार ४।४।८१–११२, १२४–१२७, ४।५।१४१ और २४२–४, २२२–२३,

जंगल में उदुम्बर, अश्वत्थ, इमली, चंदन, वट, कदम्ब, अशोक, बकुल, आम, पुन्नाग, चम्पक, सरल, अनार, नीम, ताल, तमाल, लिकुच, नारियल, केला आदि के फल मिलते थे। खदिर, सागवान, साल, अर्जुन, शमी आदि बड़े-बड़े पेड़ों की भी चर्चा है। रमनों और जंगलों के अध्यक्ष भी हुआ करते थे जिन्हें फल-फूल के जमने और विकसने का पूरा हाल मालूम होता था। वे पेड़ों का लगाना और पौधों का पालन पोषण करना खूब जानते थे और औषधियों का अच्छा ज्ञान रखते थे।[1]

कलाओं का भी अच्छा विकास हुआ था। शुक्राचार्य्य ने तो चौंसठ कलाओं का वर्णन किया है परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि शुक्रनीतिकार के समय में ही ये चौंसठों कलायें चली थीं। उन्होंने केवल सूची तैयार की थी जिससे यह पता लगता है कि बहुत से ऐसे काम भी उस समय होते थे जिन्हें लोग आजकल बिलकुल नई बात समझते हैं। अर्क खींचना, औषधियाँ तैयार करना, धातुओं का विश्लेषण, धातुओं का मिश्रण, नमक का धन्धा, पानी को पम्प करना, चमड़े को सिझाना इत्यादि काम आज से कम से कम डेढ़ हज़ार बरस से पहले हुआ करते थे। हम इस जगह कताई बुनाई की तो चर्चा ही नहीं करते, जो न केवल देशव्यापक काम था बल्कि जिसमें सारे संसार में भारतवर्ष की विशेषता थी। शुक्राचार्य ने ऊन और रेशम के कपड़ों का केवल ज़िक्र ही नहीं किया है बल्कि इनके धोने और साफ़ करने की विधियाँ भी बताई हैं और याज्ञवल्क्य ने तो रूई से बने हुए कागज़ की भी चर्चा की है।[2]

१. शुक्रनीतिसार ४।५। ९५–१०२, ११५–१२२; २२०–३२४

२. शुक्रनीतिसार ४।३।१।१८०

जो गाँव समुद्र के किनारे थे उन गाँवों में अधिकांश मरजीवे रहते थे और समुद्र से मोती, मूँगे, सीप आदि निकालने का काम बहुत ज़ोरों से होता था। सीपों के सिवाय मछलियों, सीपों, शंखों और बाँसों से भी मोती मिलते थे। सबसे अधिक सीपों से मिलते थे।[1] लङ्का के रहनेवाले नक़ली मोती भी बनाया करते थे। उन दिनों साधारण लोग इतने सुखी थे कि सोना, चाँदी और रत्नों के गहने पहनने का आम रिवाज था। इससे यह भी पता चलता है कि उस समय गाँव-गाँव में बड़े होशियार सुनार होंगे।[2]

बंसफोर बाँस की चीज़ों के बनाने में ऐसे कुशल थे कि उत्सव के अवसरों पर शुद्ध बाँस के बने हुए चार पहियों के रथ तैयार करते थे जिनमें तीन-तीन गुम्बद होते थे और चौदह-पन्द्रह हाथ तक ऊँचे होते थे। इन रथों को वे बड़ी सुन्दरता से बनाते, रंगते और सजाते थे। इन पर बड़ी अच्छी चित्रकारी भी करते थे।[3]

उस समय भी पंचायतें बनी हुई थीं। किसानों की, कारीगरों की, कलावन्तों की, साहूकारों की, नटों की और संन्यासियों तक की पंचायतें संगठित थीं।[4] इन पंचायतों के नियम बंधे हुए थे और वह सरकारी क़ानून के अन्तर्गत समझे जाते थे; और उनके अधिकार और उनके नियम उस समय की सरकार भी मानती थी। जो लोग पंचायत के सदस्यों में फूट डालने के अपराधी होते थे उन्हें

१. शुक्रनीतिसार ४। २। ११७-११८

२. मृच्छकटिक नाटक और गरुड़ पुराण में अनेक अंशों में इन बातों का प्रमाण मिलता है।

३. बील, फ़ाहियान—(अंग्रेज़ी) पृष्ठ ५६, ५८

४. शुक्रनीतिसार ४।५।३५–३६

सरकार की ओर से बड़ा कड़ा दंड मिलता था। "क्योंकि यदि ऐसों को दंड न दिया गया तो यह फूट की बीमारी महामारी की तरह बड़ा भयानक रीति से फैल जायगी।"[१] याज्ञवल्क्य संहिता में लिखा है कि जो कोई पंचायत की चोरी करे या वचन तोड़े तो उसे देश निकाला दिया जाय और उसकी सारी जायदाद ज़ब्त करली जाय।[२] पंचायतों के पास पंचायती जायदाद हुआ करती थी, और पंचायत के संगठन के नियम विस्तार से बने हुए थे। परन्तु नियमों के बनाने में यह बात बराबर ध्यान में रक्खी जाती थी कि उस समय के क़ानून से और धर्मशास्त्र के नियमों से किसी तरह विरोध न पड़े। पंचायतों की नियमावली का नाम 'समय' था और पंचायत के काम करनेवाले 'कार्य्य चिन्तक' कहलाते थे पंचायत में जो लोग ईमानदार और पवित्र आचरण के समझे जाते थे। वही कार्य चिंतक बनाये जाते थे। और वही पंचायत के नाम से सरकारी दरबारों में भी काम करते थे। सरकार में उनकी बड़ी इज्ज़त की जाती थी। पंचायत के सदस्यों पर भी उनका अधिकार था। उनके फैसले जो न माने उन्हें वे दंड दे सकते थे। परन्तु वे भी पंचायत के नियमों से इतने बँधे होते थे कि जब वे आप चूक जाते थे या उनमें और सदस्यों में जब झगड़ा पड़ जाता था तब राजा ठीक निर्णय करता था।[३] परन्तु पंचायत को पूरा अधिकार था कि यदि कार्य-

१. नारदस्मृति १०।६

२. याज्ञवल्क्य संहिता २।१८७-

३. नारद स्मृति १०।१, म. म. मित्रमिश्र विरचित वीरमित्रोदय (जीवानन्द विद्यासागर सम्पादित) पृ० ४२८.
याज्ञवल्क्य ने तो मुखिया को भी दंड दिलाया है—

चिन्तकों से कोई भारी अपराध हो जाय या वे फूट डालनेवाले ठहर जायँ या वे पंचायत का धन नष्ट करें तो उन्हें निकाल बाहर करे और राजा को केवल इस बात की सूचना दे दे। और अगर कोई कार्य चिन्तक इतना प्रभाववाला निकले कि पंचायत उसे निकाल न सके तो मामला राजा तक आता था और राजा दोनों पक्षों की बातें सुनकर निश्चय करता और उचित दण्ड देता था।

पंचायत के होने और उसकी रीति पर काम होने का एक पुराना उदाहरण इन्दौर में मिले हुए स्कंदगुप्त के एक ताम्रपत्र से मिलता है।[1] इस लिपि में एक जायदाद के दान किये जाने की बात है कि उसके ब्याज से सूर्य देवता की पूजा के लिए मन्दिर में नित्य एक प्रदीप जला करे। सूर्य देवता के मन्दिर में इस काम के लिए एक ब्राह्मण जो जायदाद दान में लिख देता है, उस जायदाद पर तेलियों की उस पञ्चायत का क़ब्ज़ा सदा के लिए कर दिया जिसका सरपंच इन्द्र-पुर का रहनेवाला जीवन्त है, और इस जायदाद पर उस पञ्चायत का क़ब्ज़ा उस समय तक रहेगा जब तक कि, इस बस्ती से चले जाने पर भी, उसमें पूरा एका बना रहे।

और समयों की तरह इस समय भी यही बात प्रचलित थी

साहसी भेदकारी च गणद्रव्यविनाशकः।
अच्छेद्यः सर्व एवैते विख्याप्यैव नृपे भृगुः॥
गण द्रव्यं हरेद्यस्तु संविदं लंघयेच्च यः।
सर्वस्वहरणं कृत्वा तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत्॥

याज्ञवल्क्य स्मृतिः॥ २।१८७

१. फ्लीट (अंग्रेज़ी में) गुप्त लिपियाँ नं० १६ (संवत् ५२१ विक्रमीय)

कि बेटा प्रायः अपने बाप का पेशा करता था। इसीसे पेशेवरों की भी जाति बन गई थी। जो अपने बाप दादों का पेशा छोड़ देता था उसे राजा दण्ड भी दे सकता था। परन्तु यह अकारण छोड़ देने वाले की बात थी। बाप दादों के पेशे को छोड़ देने के लिए प्रबल कारण होने पर पेशा छोड़ने में हर्ज भी नहीं समझा जाता था। मंदसोर के शिलालेख में, जो कुमारगुप्त और बन्धुवर्म्मन का लिखा है,[१] यह उल्लेख है कि रेशम बुननेवालों की एक पंचायत पहले लाट पर ठहरी थी, फिर दशपुर में वहाँ के राजा के गुणों पर मुग्ध होकर चली गई। वहाँ जाकर कुछ लोगों ने धनुर्विद्या सीखी, कुछ धार्मिक जीवन बिताने लगे, कुछ ज्योतिषी हो गये, कुछ कवि होगये, कुछ संन्यासी हो गये और बाक़ी बाप दादों की तरह रेशम बुनते रहे। इस पंचायत ने संवत् ४९२ (विक्रमी सम्वत्) में दशपुर में सूर्य का एक बहुत सुन्दर बड़ा मन्दिर बनाया। और छत्तीस बरस बाद जब वह मरम्मत के योग्य हुआ तब उसी पंचायत ने सम्वत् ५२८ वि० में उसकी पूरी मरम्मत कराई। इस उदाहरण से दो बातें सिद्ध होती हैं। एक तो यह कि पंचायत में बंधकर भी लोगों को इतनी आज़ादी थी कि वे अपने मनमाने काम कर सकते थे, अपनी योग्यता बढ़ा सकते थे और अपना पारिवारिक पेशा छोड़ सकते थे। दूसरी बात यह मालूम होती है कि जातियों या पेशों की पंचायतों का संगठन बराबर पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता था और काम करता रहता था। मजूरों का भी ऐसा ही संगठन था और दासों और मजूरों की दशा भी वैसी ही थी जैसी पहले वर्णन की गई है। किसानों की सुख समृद्धि गुप्त काल में भी घटी नहीं थी।

१. फ्लीट (अंग्रेज़ी में) गुप्त लिपियां नं० १८

: ६ :

पूर्व माध्यमिक काल

१. हर्षकाल और पीछे

गुप्तकाल के बाद ही हर्ष का समय आता है। गुप्त सम्राटों का बड़ा भारी साम्राज्य मध्य एशिया के जंगली लुटेरों की चढ़ाई से तहस-नहस हो गया। जिस तरह गुप्त साम्राज्य बरबाद हुआ उसी तरह भारतवर्ष के भारी व्यापार को भी धक्का पहुँचा। परन्तु गाँव और गाँव के खेती आदि व्यापार इन धक्कों से भी नष्ट नहीं होते थे। यही सारी मुसीबतों में बेड़ा पार लगाते थे। हर्ष के समय में भी खेती-बारी के सम्बन्ध के सारे काम बराबर ज्यों के त्यों होते रहे। इस समय पच्छाँह के देशों में क्या किसानी के काम में, और क्या व्यापार में, और क्या सामुद्रिक यात्राओं में जाटों का बोलबाला रहा। भारतवर्ष में, जैसे सदा से होता आया, जन समुदाय गाँवों में ही रहता था और सबसे बड़ा कारबार खेती का था। गाँव-गाँव खण्डसालें चलती थीं, चरखे और करघे चलते थे, गाँव में सभी जाति और पेशे के मनुष्य रहते थे, सब तरह की कारीगरी और कला पहले की तरह बराबर समुन्नत अवस्था में थी। कश्मीर अपने चावलों और केशर के लिए प्रसिद्ध हो गया था। मगध भी अपने चावलों के लिए मशहूर था। ह्युएनत्सांग ने लिखा है कि बहुत भारी अमीर लोग मगध के ही चावल खाते थे।[1] लिखा है कि मथुरा से १००

१. बील—ह्युएनत्सांग, (अंग्रेज़ी) जिल्द २, पृ० ८२

मील पश्चिम पार्यात्र नाम के स्थान में इस तरह का चावल होता था जो साठ दिनों में ही पकता था (इसे साठी का चावल कहते हैं और बरसात में अब भी साठ दिन में ही पकता है) ह्युएनत्सांग ने लिखा है कि लोगों का साधारण भोजन घी, दूध, मक्खन, मलाई, खाँड, मिश्री, रोटियाँ, तेल आदि था। और जो मांस खाते थे वे हरिण का मांस और ताज़ी मछलियाँ खाते थे। फलों में, उसने लिखा है कि, इतने हैं कि नाम नहीं गिने जा सकते। आम्र, कपित्थ. आमलकी, मधूक, भद्रआमला, टिंडक, उदुम्बर, मोचा, पंस्य, नारियल, खजूर, लुकाट, नासपाती, बेर अनन्नास, अंगूर इत्यादि-इत्यादि अनेक नाम गिनाये हैं। लिखा है कि कश्मीर फल-फूल के लिए मशहूर था।[१] शिक्षा के विषय में लिखा है कि सात और सात बरस से अधिक के लड़कों को पाँच विद्यायें सिखाई जाती थीं जिनमें से दूसरी विद्या शिल्पस्थान विद्या थी, जिसमें कलाओं और यंत्रों का वर्णन है। कपड़ों के बारे में ह्युएनत्सांग ने भारत के कारीगरों की बड़ी प्रशंसा की है। सूती, रेशमी, छालटी, कम्बल और कराल इन पांच प्रकार के वस्त्रों का वर्णन किया है। इनमें से कम्बल से अभिप्राय था बहुत बारीक ऊनी कपड़े से जो बकरी के बहुत बारीक रोयें से बनते थे। कराल एक जंगली जानवर के बारीक रोयें के बने कपड़े होते थे। ऐसे कपड़े अमीरों की फरमाइश पर ही बनते थे। बरोच या महाकच्छ की रुई सदा की तरह हर्ष के समय में भी मशहूर थी, उसके बारीक कपड़े भी मशहूर थे। बुनाई की कला किस ऊँचे दर्जे को पहुँच चुकी थी इस बात का थोड़ा सा अन्दाज़ा बाण द्वारा वर्णित राज्यश्री के विवाह प्रकरण से हो सकता है। लिखा है कि "महल

१. बील—ह्युएनत्सांग, (अंग्रेजी) जिल्द २, पृ० २३२

क्षौम, बादर, दुकूल, लाला तन्तुज, अंशुक और नैत्र से सुशोभित था जो सांप के केचुल की तरह चमकते थे और अकठोर केले के पेड़ के भीतर के छिलके की तरह कोमल थे और इतने हलके थे कि सांस से उड़ जासकते थे। छूने से ही उनका पता लगता था। चारों ओर हज़ारों इन्द्रधनुष की तरह चमक रहे थे।[1] क्षौम छाल के कपड़ों को कहते हैं बादर रूई के कपड़ों को कहते हैं, लाला तन्तुज उस कौशेय वस्त्र को कहते हैं जिसके तन्तु कीड़े की लाला या राल से बनते हैं। नैत्र किसी वृक्ष विशेष की जड़ के रेशों से बने वस्त्र को कहते हैं और दुकूल गरम, महीन, रेशमी कपड़े होते थे और अंशुक वह रेशमी कपड़े थे जिनके धागे किरणों की तरह बारीक और चमकीले होते थे। कपड़ा अनेक प्रकार के रेशों और तन्तुओं से बनता था। आज जिनका हमें पता भी नहीं है और वह भी इतना बारीक बनता था कि छूने से ही पता लगता था कि कपड़ा है। उस बारीकी को मिल के कपड़े क्या पहुंचेंगे बुनने की कला इस हद को पहुंच चुकी थी तो साथ ही कातने की कला भी उसी हद तक पहुँच चुकी थी कि सूत के तार मुश्किल से देख पड़ते थे।

बृहस्पति संहिता से पता चलता है कि गांववाले मिलकर पंचायत बनाते थे, या जब कारीगर अपनी पञ्चायत स्थापित करते थे तो एक पञ्चायतनामा लिख लेते थे, जिसमें कोई खटके की बात न रहे और सब लोग अपने कर्तव्यों में बंधे रहें। जब कभी चोरों लुटेरों

१. हर्षचरित, चौथा उच्छ्वास, राज्यश्री के विवाह प्रकरण में।
"क्षौमैश्च बादरैश्च दुकूलैश्च लालातन्तुजैश्चांशुकैश्च नेत्रैश्च निर्मोकनिभैरकठोररम्भागर्भकोमलैर्निःश्वासहार्यैः स्पर्शानुमेयैर्वासोभिः सर्वतः स्फुरदिन्द्रायुधसहस्रैरिव संच्छादितं।

या बेक़ायदा सेनाओं का डर होता तो उसे सार्वजनिक विपत्ति समझा जाता था और उस जोखिम का मुकाबला सब मिलकर करते थे।[१] जब कोई आम फ़ायदे का काम किया जाता था, धर्मशाला, बावड़ी कुए, मन्दिर, बाग़ बग़ीचे आदि सबके लाभ के लिए बनवाने होते थे या कोई सार्वजनिक यज्ञ करना होता था तब पञ्चायत या गाँव की सभा ही इन कामों को सम्पन्न करती थी।[२] पञ्चायत की स्थापना के आरम्भ में पहले परस्पर विश्वास दृढ़ करके किसी पवित्र विधि या लिखा-पढ़ी, या मध्यस्थ से निश्चय कराकर पञ्चायत का काम आरम्भ किया जाता था। पञ्चायत का काम करनेवाले उसके श्रेष्ठी और दो या तीन या पाँच और सहायक होते थे।[३] जो लोग इस तरह कार्यचिन्तक चुने जाते थे वे वेद के धर्म को और अपने कर्तव्य को जानते थे, अच्छे कुल के होते थे और सब तरह के कारोबार जानते थे। पञ्चायतों के सम्बन्ध में प्रायः वही नियम अब भी बरते जाते थे। जिनकी चर्चा हम पहले कर आये हैं। उनको यहाँ दुहराना व्यर्थ होगा। इस काल में कारीगरों की ऐसी कम्पनियाँ भी बनी हुई थीं जिनमें पूंजी के बदले सदस्यों के कारीगरी के काम लगे हुए थे। बेगारी की चाल उस समय न थी। ज़रूरत पड़ने पर सरकार या पञ्चायत काम भी लेती थी और पूरी मजूरी देती थी।

ह्युएन्त्सांग ने भारतवर्ष को बहुत समृद्ध और सुखी पाया। यहाँ पर सब तरह के लोगों में धरती का ठीक-ठीक रीति से बंटवारा था खेती से थोड़े ख़र्च में बहुत-सा अनाज पैदा होता था और देश की

१. बृहस्पति स्मृति १७। ५-६
२. बृहस्पति संहिता १७। ११-१२
३. बृहस्पति संहिता १७। ७ १७। १७ १७। ९

बची हुई पैदावार व्यापारी लोग देश के बाहर ले जाते थे और बदले में सोना, रत्न और उत्तम-उत्तम वस्तुयें लाते थे। संसार के सभी सभ्य भागों से व्यापार बड़े सुभीते से जारी था। सोने-चाँदी की अटूट धारा व्यापार के द्वारा भारत में उमड़ी चली आती थी। इसी धन की प्रसिद्धि से मुसलमान कासिम ने सिन्धु देश पर चढ़ाई की और उसे अपने अधीन कर लिया। मुसलिम अधिकार का यही आरम्भ था और विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में इसी धन के लोभ से महमूद गजनवी के आक्रमण पर आक्रमण हुए और उसने लूट-लूट कर खजाने भरे। उसके बाद शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने तो विदेशी लुटेरों के लिए खैबर का मार्ग ही खोल दिया और भारत में मुसलिम साम्राज्य की नींव डाली। सैकड़ों बरस बाद भारत की इसी धन की प्रसिद्धि ने कोलम्बस को अमेरिका भेजा और पाताल का पता लगवाया, और वास्कोडीगामा से उत्तमाशा अन्तरीप पार कराया और खैबर की राह से लाखों तातारियों, पठानों और मुगलों से भारत पर आक्रमण कराया।

२. मुसलिम चढ़ाई के आरंभ तक

विक्रम की लगभग दसवीं शताब्दी में भारतवर्ष अनेक राज्यों में बंटा था उनका राज्य प्रजा के लिए बड़ा सुखदायक था। उनको कर बहुत हलका देना पड़ता था, लगान बहुत कम देना पड़ता था क्योंकि खेती के लिए धरती बहुत थी और प्रजा को किसी तरह का कष्ट न था। राजा लोग आपस में लड़ते थे, एक दूसरे पर विजय कर लेते थे परन्तु प्रजा को वैरी राजा से भी कोई कष्ट न मिलता था। किसान शान्ति से हल जोत रहा है, खेती कर रहा है और उसके

पड़ोस में घोर युद्ध हो रहा है। युद्ध करनेवाले खेती को कोई हानि न पहुँचाते थे। व्यापारी अपना माल लादकर देश-विदेश में बेचने को लेजाता था। युद्ध करनेवाले सैनिक उनको नहीं छूते थे। सिन्ध के सिवाय और कहीं भी अहिन्दू राज न था। कन्नौज, मालखेड़ और मुंगेर ये तीन बड़े-बड़े साम्राज्य थे, पर ये अपने-अपने स्थान के साम्राज्य थे। ऐसा भी न था कि राजपूतों पर मराठों या मराठों पर बंगालियों का राज हो। जहाँ कहीं भारत के और किसी प्रान्त का दूसरे प्रान्त पर अगर कोई आधिपत्य भी था तो वह इतना थोड़ा था कि विदेशी राज-सा प्रतीत न होता था। किसानों की रक्षा और शन्ति जीवन ने उन्हें राज के मामलों से इतना निश्चिन्त कर दिया था कि उनकी खेती-बारी अगर आज एक राजा के अधीन है और कल दूसरे राज्य में चली जाती है तो इस हेर-फेर से उनके कारबार में कोई बाधा नहीं पड़ती थी। उनके भूमिकर और ग्राम-स्वराज्य में कोई अन्तर नहीं पड़ता था। इस कारण देश में क्रान्ति भी होजाय और राज्य कितना ही बदल जाय वे इस बात से बिलकुल बेपरवाह रहने लगे। उनकी बान पड़ गई कि कोई भी राज हो उसकी अधीनता स्वीकार कर लेते थे। अलबेरुनी ने लिखा है कि राजा ज्यादा से ज्यादा छठा भाग कर लेता था। खेतों से, मजूरों से, कारीगरों से, व्यापारियों से सबसे उनकी आमदनी पर कर लिया जाता था। केवल ब्राह्मणों से कर नहीं लिया जाता था।

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक यहाँ के गाँवों का जैसा संस्थान था, पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने कुछ अधिक विस्तार से दिया है। हम उसे ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं:—

१. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति पृ० १५३–१५५।

"शासन की सुविधा के लिए देश भिन्न-भिन्न भागों में बँटा हुआ था। मुख्य-विभाग भुक्ति (प्रांत), विषय (जिला) और ग्राम थे। सबसे मुख्य संस्था ग्राम-संस्था थी। बहुत प्राचीन काल से भारतवर्ष में ग्राम संस्थाओं का प्रचार था। ग्राम के लिए वहाँ की पंचायत ही सब कुछ कार्य करती थी। केंद्रीय सरकार का उसीसे संबंध रहता था। ये ग्रामसंस्थायें एक छोटा सा प्रजातंत्र थीं, इनमें प्रजा का अधिकार था। मुख्य सरकार के अधीन होते हुए भी ये एक प्रकार से स्वतंत्र थीं।

प्राचीन तामिल इतिहास से उस समय की शासन-पद्धति का विस्तृत परिचय मिलता है, परन्तु हम स्थानाभाव से संक्षिप्त वर्णन ही देंगे। शासन कार्य में राजा को सहायता देने के लिए पाँच समितियाँ होती थीं। इनके अतिरिक्त जिलों में तीन सभायें होती थीं। ब्राह्मण सभा में सब ब्राह्मण सम्मिलित होते थे। व्यापारियों की सभा व्यापारादि का प्रबंध करती थी। चोल राजराज (प्रथम) के शिलालेख से १५० गांवों में ग्राम-सभाओं के होने का पता लगता है। इन सभाओं के अधिवेशन के लिए बड़े-बड़े भवन होते थे, जैसे तंजोर आदि में बने हुए हैं। साधारण गाँवों में बड़े-बड़े वटवृक्षों के नीचे सभाओं के अधिवेशन होते थे। ग्राम-सभाओं के दो रूप—विचार-सभा और शासन-सभा—रहते थे। संपूर्ण सभा के सभ्य कई समितियों में विभक्त कर दिये जाते थे। कृषि और उद्यान सिंचाई, व्यापार, मंदिर, दान आदि के लिए भिन्न-भिन्न समितियाँ थीं। एक समय एक तालाब में पानी अधिक आने के कारण ग्राम को हानि पहुँचने की सम्भावना होने पर ग्राम-सभा ने तालाब-समिति को इसका सुधार करने के लिए बिना सूद रुपया दिया और कहा कि इसका सूद मंदिर-समिति को दिया जाय। यदि कोई किसान कुछ वर्ष तक कर न देता था, तो उससे भूमि छीन

ली जाती थी। ऐसी जमीन फिर नीलाम कर दी जाती थी। भूमि बेचने या ख़रीदने पर ग्राम-सभा उसका पूरा विवरण तथा दस्तावेज़ अपने पास रखती थी। सारा हिसाब-किताब ताड़पत्रादि पर लिखा जाता था। सिंचाई की तरफ विशेष ध्यान दिया जाता था। जल का कोई भी स्रोत व्यर्थ नहीं जाने पाता था। नहरों, तालाबों और कुओं की मरम्मत समय-समय पर होती थी। आय-व्यय के रजिस्टरों का निरीक्षण करने के लिए राज्य की ओर से अधिकारी नियुक्त किये जाते थे।

"चोल राजा परांतक के समय के शिलालेख से ग्राम-संस्थाओं की निर्माण-पद्धति पर बहुत प्रकाश पड़ता है। उसमें ग्राम-सभा के सभ्यों की योग्यता अयोग्यता संबंधी नियम, सभाओं के अधिवेशन के नियम, सभ्यों के सार्वजनिक चुनाव के नियम, उपसमितियों का निर्माण, आय-व्यय के परीक्षकों की नियुक्ति आदि पर विचार किया गया है। चुनाव सार्वजनिक होता था, इसकी विधि यह होती थी कि लोग ठीकरियों पर उम्मीदवार का नाम लिखकर घड़े में डाल देते थे, सबके सामने वह घड़ा खोलकर उम्मीदवारों के मत गिने जाते थे और अधिक मत से कोई उम्मीदवार चुना जाता था।

"इन संस्थाओं का भारत की जनता पर जो सबसे अधिक व्यापक प्रभाव पड़ा वह यह था कि वह ऊपर के राजकीय कार्यों से उदासीन रहने लगी। राज्य में चाहे कितने बड़े-बड़े परिवर्तन हो जायँ, परन्तु पंचायतों के वैसे ही रहने से साधारण जनता में कोई परिवर्तन नहीं दीखता था जन साधारण को परतंत्रता का कटु अनुभव कभी नहीं होता था। इतने विशाल देश के भिन्न-भिन्न राज्यों के किए यह कठिन नहीं कि वे गाँवों तक की सब बातों की तरफ़ ध्यान रख सकें।

भारतवर्ष में इतने परिवर्तन हुए, परन्तु किसीने पंचायतों को नष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया।"

मुग़ल बादशाह अपने पतनकाल में जब भूमिकर अत्यधिक और बेदर्दी, कड़ाई और पशुता से वसूल करने लगे और ब्रिटिश सरकार ने भी वही नीति बराबर जारी रखी तो वही पंचायतें अत्याचार और हृदयहीनता के साथ सहयोग न कर सकीं और अन्ततः टूट गई। पटवारी जमींदार, तहसीलदार उसके शहने, सिपाही सभी मनमानी करने लगे। प्रजा की सुननेवाला कोई न रह गया। अदालतें, वकील, मुख़्तार, पेशकार, मुंशी, मुहर्रिर, दलाल, सबके सब किसान को बेतरह चूसने लगे और वह बेचारा बरबाद हो गया।

परमाध्यमिक काल

१. मुग़लों से पहले

तारीख़ फ़ीरोज़शाही में बरनी ने अलाउद्दीन ख़िलजी के राज में उन भावों का विवरण दिया है, जिन पर कि उस समय के अनाज, तेल, घी, नमक आदि बादशाही हुक्म से बिकते थे। उसने जो भाव दिये हैं उनको आजकल के संयुक्तप्रान्त के माने हुए तौल में नीचे दिया जाता है।

गेहूँ	एक पैसे में	दो सेर
जौ	"	साढ़े तीन सेर
धान	"	तीन सेर
खडी माश	"	तीन सेर
चने की दाल	"	तीन सेर
मोठ	"	एक पसेरी
खांड	"	साढ़े चार छटाँक
गुड़	"	अठारह छटाँक
मक्खन	"	साढ़े चौदह छटाँक
तिल्ली का तेल	"	साढ़े सत्रह छटाँक
नमक	"	नौ सेर

यह भाव बादशाह के हुक्म से दिल्ली के लिए मुकर्रिर होगये थे। कोई एक धेला भी बढ़ा नहीं सकता था। यह इतना सस्ता है

कि जल्दी विश्वास नहीं होता; पर उस समय खाने-पीने की सब चीज़ें इतनी सस्ती थीं कि इस भाव से लोग सन्तुष्ट थे। यह भाव उस समय सस्ते नहीं समझे जाते थे। यह इतने ऊँचे भाव थे कि सूखे के समय में भी दिल्ली में गल्ला भरा रहता था। भाव महँगा करने के लिए गल्ले की बिक्री रोक लेना या नाज को जमाकर रखना घोर अपराध था जिसके लिए बड़ा दण्ड मिलता था। किसानों को अपना लगान देने के लिए अनाज का एक भाग दे देना पड़ता था। अपने ख़र्च से ज्यादा बचा हुआ अनाज जहाँ पैदा होता था वहीं किसानों को बेच देना पड़ता था। कपड़े, खाँड, शकर, चीनी, घी और तेल सबके भाव बाज़ारों में ठहरा दिये जाते थे। सब व्यौपारियों को चाहे वह हिन्दू हों या मुसलमान, ठहराये हुए भाव पर लेना-देना पड़ता था। व्यापारी लोग उसी बाज़ार में अत्यन्त सस्ता खरीद कर उसके आस-पास अत्यन्त महंगा बेच नहीं सकते थे। इस तरह बादशाहत के अन्दर सब बाजार क़ायदे कानून के अन्दर जकड़े हुए थे। शहन-ए-मण्डी जिस किसीको क़ायदे के ख़िलाफ़ चलते हुए देखता था कोड़े लगाता था। दुधार गाय तीन-चार रुपये में और बकरी दस-बारह या चौदह पैसों में मिल जाती थी। कोई दुकान पर जो कम तौलता था तो वज़न में जो कमी होती थी, उसके चूतड़ों का माँस काटकर पूरी की जाती थी। जो दूकानदार ज़रा भी गड़बड़ करता पाया जाता था, लात मारकर बाजार से निकाल दिया जाता था। इसका फल यह होता था कि बनिये कुछ ज्यादा ही तौलते थे। बरनी ने इसके चार कारण बताये हैं। (१) बाज़ार के कायदों की सख़्त पाबन्दी (२) करों का कड़ाई से उगाहा जाना। (३) लोगों में सिक्कों का बहुत कम प्रचार। (४) कर्मचारियों की निष्पक्षता और ईमानदारी।

फ़ीरोज़शाह के समय में कर और भी घटा दिया गया। जिन खेतों की सरकारी नहरों से सिंचाई होती थी उनसे पैदावार का दहियक अर्थात पैदावार का दसवाँ भाग लिया जाता था। खाने पहनने की चीज़ें इतनी सस्ती थीं कि अकाल के दिनों में भी लोग सहज में विपत्ति काट देते थे। महसूलों और लगानों की कमी से खेती और व्यापार को बहुत लाभ हुआ। शम्स सिराज अफ़ीफ़ ने नीचे लिखे भाव दिये हैं—

गेहूँ	एक पैसे में	पौने दो सेर
जौ	,,	साढ़े तीन ,,
और अनाज	,,	,, ,, ,,
दाल	,,	,, ,, ,,
घी	,,	पौने तीन छटांक
चीनी	,,	ढाई ,,

कहते हैं कि उस समय बिना खेती के धरती का एक टुकड़ा नहीं बचा था।

मध्यभारत में बहमनी राज्यों के समय में दशा कुछ बुरी न थी। इतिहास से पता चलता है कि जैसा प्राचीन काल से बराबर चला आता था उस समय गाँव-गाँव अपना स्वतंत्र शासन रखते थे; हरेक गाँव में पंचायत रहा करती थी जिसका सरपंच उत्तर भारत में मुखिया या चौधरी कहलाता था और दक्षिण भारत में अयगर कहलाता था। मुखिया या अयगरों को या तो पंचायत की ओर से खेत मिल जाता था या फसल पर किसान लोग उपज का कुछ अंश दे देते थे। यह अयगर या मुखिया पंचायत की ओर से छोटे-छोटे मुकदमे फैसल करते थे, मालगुजारी उगाहते थे। अमन और शान्ति

रखते थे। इन्हीं लोगों के द्वारा राजा और किसान के बीच सम्बन्ध बना रहता था। जान पड़ता है कि यही मुखिया या अयगर काल पाकर जमींदार बन गये। उस समय लगान ज़रूर बढ़ गया था परंतु जितना बढ़ा हुआ था उस हिसाब से वसूल किया जाना सिद्ध नहीं होता। लगान के सिवाय पचासों तरह के और महसूल मुसलमान बादशाहों ने लगा दिये थे जिनका व्यवहार शहरों से अधिक था। चाहे इन सब उपायों से राज्य की आय बहुत बढ़ जाती रही हो परन्तु पूरा महसूल वसूल होकर शाही ख़ज़ाने तक पहुँचने में सन्देह है। यह बात सचाई से कही जा सकती है कि आमदनी के इन उपायों में मुसलमान बादशाह भी किसान की भलाई का बराबर ख़याल रखा करता था, तो भी किसान से अब बेगार ली जाने लगी। चराई और विवाह का महसूल भी लिया जाने लगा। आज-कल के मोटरावन, हथियावन, नचावन आदि भाँति-भाँति के 'आवनों' का अभी किसीने सपना भी नहीं देखा था। लोगों को चुंगी के रूप में नाज, फल, तरकारी तेलहन और जानवरों पर भी महसूल देना पड़ता था। शहर में आने का रास्ता एक ही था और फाटक पर पहरा रहता था। इसलिए शहरवाले महसूल से बच नहीं सकते थे।

शुरू-शुरू में जब मुसलमानों ने भारत पर चढ़ाई की तो यहाँ से बहुत-सा धन लूट ले गये। पहले के मुसलमान बादशाहों में विजय की लालसा इतनी रहती थी कि वे बन्दोबस्त की ओर ध्यान नहीं देते थे। देश के भीतर अमन-चैन लाने का काम बलबन ने किया। उसने ठगों और लुटेरों से देश की रक्षा की और उनका दमन किया। मुसलमानों के राज में कहीं-कहीं किसानों की दशा बिगड़

गई थी परन्तु अब किसान शान्ति से खेती करते थे और व्यापारी अपना माल एक देश से दूसरे देश में बिना लुटे लेजाने लगे। फ़ीरोज़शाह के समय में जब घोर काल पड़ा तो दिल्ली में अनाज तीन पैसे सेर तक[1] चढ़ गया। अलाउद्दीन के समय में शाही भण्डारों और खत्तों में अनाज रक्खा जाता था और अकाल के समय में सस्ता बिकता था। परन्तु उसके बाद उसके बनाये कानून टूट गये और चीजें मनमाने भाव पर बिकने लगीं। मुहम्मद तुग़लक के समय में नक़ली सिक्कों ने बहुत नुक़सान पहुंचाया। कोई दस बरस तक घोर अकाल रहा। दो बरस में सत्तर लाख रुपये तकावी के लिए किसानों को बाँटे गये। बादशाह ने शाही खत्तों से नाज निकलवा-कर बँटवाया और फक़ीहों और क़ाजियों को हुक्म हुआ कि मुहताजों की फ़ेहरिस्त बनावें। मुहर्रिरों के साथ क़ाज़ी और अमीर गाँव-गाँव घूमकर अकाल-पीड़ितों को आदमी पीछे तीन पाव अनाज बाँटते थे। बड़ी-बड़ी ख़ानक़ाहें मदद बाँट रही थीं और कुतुबुद्दीन की ख़ानक़ाह में जिसमें चार सौ साठ आदमी नौकर थे हजारों आदमी नित्य खिलाये जाते थे। हाथ की कारीगरी को बहुत बढ़ावा मिला। चार सौ रेशम बुननेवाले सरकारी कारख़ाने में काम करते थे और सब तरह की चीजें तैयार की जाती थीं। वासफ़ के लिखने से मालूम होता है कि विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में गुजरात एक बड़ा अमीर प्रांत था जिसकी आबादी घनी थी। इसमें सात हज़ार

१. आजकल अच्छी फसलों पर जो भाव होता है उससे उस समय के घोर अकाल का भाव तिगुना-चौगुना सस्ता था। अनाज की भी आज कमी नहीं है, पैसा तो उस समय की अपेक्षा बहुत सस्ता है। परन्तु किसान के पास पैसे कहाँ हैं ?

गाँव और कस्बे थे और लोग धन सम्पत्ति में रँजे-पुँजे थे। खेती से पैदावार बड़ी अच्छी होती थी। अंगूरों की दो फसल हुआ करती थी। धरती इतनी उपजाऊ थी कि कपास की शाखायें झाड़ की तरह फैल जाया करती थीं और एक बार के लगाने में वही पौधे कई साल तक बराबर कपास की ढोंड़ियाँ दिया करते थे। मारकोपोलो ने तो लिखा है कि कपास की खेती सारे भारत में फैली हुई थी और कपास के पेड़ छः-छः हाथ ऊँचे होते थे, और बीस-बीस बरस तक कपास होती थी। मिर्च, अदरक और नील बहुतायत से होती थी। लाल और नीले चमड़े की चटाइयाँ बनती थीं जिसमें कि चाँदी और सोने के काम के पक्षी और पशुओं के चित्र कढ़े हुए होते थे। मारकोपोलो ने यहाँके निवासियों को सुखी और समृद्ध पाया। व्यापार में कुशल और कारीगरी में दक्ष देखा।

चौदहवीं शताब्दी में बंगाल को इब्नबतूता ने बहुत सुखी और समृद्ध देश लिखा है। उसके समय में वहाँ चीज़ें अत्यन्त सस्ती थीं और बहुत थोड़ी आमदनी का आदमी बड़े ऐश आराम से गुजर करता था। इस समय के लगभग सारे भारत में सम्पत्ति और समृद्धि बढ़ी हुई थी। दिल्ली और आसपास के प्रांतों की आमदनी सात करोड़ के लगभग थी और अकेले दुआबे की आमदनी पचासी लाख थी। चीज़ें इतनी सस्ती थीं कि आदमी दो चार पैसे लेकर एक जगह से दूसरी जगह की यात्रा कर सकता था। दिल्ली से फ़ीरोज़ाबाद तक जाने के लिए गाड़ी में एक आदमी की जगह के लिए दो आने देने पड़ते थे। एक खच्चर किराये पर कराने के लिए तीन आने देने पड़ते थे। छः आने में किराये का एक घोड़ा मिल जाता था और एक अठन्नी देने पर एक पालकी मिल जाती थी।

काम के लिए कुली बहुत आसानी से मिल जाते थे और वे अच्छी कमाई भी कर लेते थे। सबके पास सोने और चाँदी की बहुतायत थी, हर औरत गहनों से लदी हुई थी[१] और कोई घर ऐसा न था जिनमें बड़े अच्छे बिछौने, गद्दे, मसहरियाँ और कोच न होते।

परन्तु १४ वीं शताब्दी से देश की दशा बिगड़ने लगी। व्यापार और खेती दोनों की दशा कुछ उतार पर हुई। चौदहवीं शताब्दी के अन्त में महवान नामक यात्री, जो चीनी च्वांगहो के साथ आया था, लिखता है कि बंगाल में चावल की दो फसलें होती हैं और गेहूँ, तिल, तरह-तरह की दालें, ज्वार, बाजरा, अदरक, सरसों, प्याज, भंग, बैंगन और भाँति-भाँति की साग-सब्जी बंगाल में बहुतायत से होती है। केला और बहुत से फल बहुतायत से होते हैं। इस देश में चाय नहीं होती और मेहमानों को चाय के बदले पान दिया जाता है। नारियल, चावल, ताड़, आदि से शराब बनती है और बाज़ार में बिकती है। इस देश में पाँच-छः तरह के बहुत बारीक सूती कपड़े बुने जाते हैं। रेशमी रूमाल और टोपियाँ जिन पर सोने का काम होता है। चित्रकारी किये हुए सामान, खुदे हुए बरतन, कटोरे, इस्पात के सामान जैसे तलवार, बंदूक, छुरी, कैंचियाँ सभी तरह की चीज़ें इस देश में तैयार होती हैं। एक तरह का सफेद कागज़ भी एक पेड़ की छाल से बनता है जो हरिन की खाल की तरह चिकना और चमकदार होता है।

१. धन की बहुतायत थी। सिक्कों की बहुतायत न थी। चाँदी सोने के गहने बनते थे। यह बहुमूल्य धातुयें उचित रीति पर कला के काम में आती थीं। आज इस दरिद्र देश में जब आदमी दानों को तरस रहा है, गहने कहाँ पावे। परन्तु गहनों का जहाँ थोड़ा बहुत रिवाज है वहाँ उसी प्राचीन कला की छाया समझनी चाहिए।

अकबर का राज्यकाल पिछले दो हज़ार बरसों के भीतर सब तरह से बहुत अच्छा समय समझा जाता है। यह समय आजसे केवल साढ़े तीन सौ बरस पहले हुआ है। हम इस काल से अपने काल का मुकाबला कर सकते हैं। हम गेहूँ के भाव को प्रमाण मानलें तो आज कल उसे पन्द्रह-सोलह गुना बढ़ा हुआ पाते हैं। दूध का भाव ग्यारह गुना बढ़ा हुआ है। घी सोलह गुना ज्यादा मँहगा है। परन्तु मजूरी का भाव कितना बढ़ा? पहले एक रुपया रोज़ में बीस मजूर या बीस कुली मिल जाते थे। आज शहरों में ज्यादा से ज्यादा बड़ा रेट दस रुपये में बीस कुली है। इस तरह चीज़ों का भाव जितना ऊँचा चढ़ गया है उतनी ऊँची मजूरी नहीं चढ़ी। होशियार से होशियार बढ़ई सवा रुपये रोज़ में मिलता है। उस समय ग्यारह पैसे रोज़ में मिलता था। बढ़ई की मजूरी साढ़े सात गुनी से ज्यादा नहीं बढ़ी। यह नतीजा निकालने में किसी अर्थशास्त्री को संकोच नहीं होसकता कि उस समय से इस समय मँहगी सोलह गुनी बढ़ गई है और मजूरी उसके मुकाबले में बहुत कम बढ़ी है। इससे मजूरों की दशा उस समय के मुक़ाबले में बहुत गिरी हुई है। लगान उस काल में अधिकांश पैदावार का ही एक अंश लिया जाता था। किसान प्रायः रुपये नहीं देता था इसलिए जब जितनी पैदावार हुई उतने का निश्चित अंश ही देना पड़ा। आज तो ऐसा नहीं है। आज देने की रक़म बन्दोबस्त के समय में अन्धाधुन्ध बढ़ जाती है; फिर चाहे सूखा पड़े या चाहे टिड्डी लग जायँ या बाढ़ बहा लेजाय, पर किसान को सरकारी लगान उतना ही देना पड़ता है। किसी खेत से, जहाँ बीस मन अनाज होता था वहाँ दो मन लगान में दे दिया जाता था। उसी खेत में जब केवल दस मन होता तो लगान भी मन ही भर दिया जाता था और इतने

ही में किसान का देना चुकता समझा जाता था। आज अगर किसी खेत के लगान के बीस रुपये देने हैं तो वह रकम देनी ही पड़ेगी, चाहे पैदावार कितनी ही कम हो। इस तरह उस समय के मुकाबले इस समय किसान की हालत बिलकुल रद्दी है।

तीसरी बड़ी बात यह है कि बादशाहों की ओर से जो कुछ लगान मुकर्रर होता था, वह सबका सब वसूल नहीं हो सकता था। आज लगान जिस कड़ाई से वसूल किया जाता उससे भी किसानों की बिलकुल बरबादी है।

२. मुग़लों का समय

अकबर के समय में खेती और किसानों की दशा वैसे ही अच्छी थी जैसी कि पठान बादशाहों के समय में थी। अलाउद्दीन के समय में खाने-पीने, पहिनने की चीज़ों के जो भाव मुकर्रर कर दिये गये थे, उनकी पाबन्दी बड़ी कड़ाई से होती थी। परन्तु अकबर के समय में वह कड़ाई नहीं थी, तो भी सभी चीज़ें बहुत सस्ती थीं। इससे पता चलता है कि उस समय लोग बहुत सुखी और धनवान थे। उसके समय में जो सिक्का चलता था और जिस मन के तौल का प्रमाण माना जाता था उसका वर्णन आईने-अकबरी में मौजूद है। आजकल जो सिक्के चलते हैं और जो तौल का प्रमाण है वह तब से बहुत भिन्न है। हिसाब लगाकर हमने नीचे आजकल के हिसाब से उस समय के हिसाब दिये हैं—

गेहूँ	एक पैसे में	तेईस छटांक
जौ	,,	पैंतीस ,,
उत्तम से उत्तम चावल	,,	ढाई ,,

अत्यन्त मामूली चावल	,,	चौदह	,,
मूंग की दाल	,,	साढ़े पंद्रह	,,
मांश की दाल	,,	सत्रह	,,
मोठ की दाल	,,	तेईस	,,
चना	,,	साढ़े सोलह	,,
ज्वार	,,	अट्ठाइस	,,
सफेद चीनी	,,	सवा दो	,,
शकर	,,	पांच	,,
घी	,,	पौने तीन	,,
तिल का तेल	,,	साढ़े तीन	,,
नमक	,,	सत्तर	,,
दूध	,,	ग्यारह	,,

इस तरह गेहूँ रुपये में सवा दो मन से ज्यादा मिलता था और मामूली चावल डेढ़ मन के लगभग मिलता था। सबसे उत्तम प्रकार का चावल दस सेर का था। घी रुपये में साढ़े दस सेर पड़ता था। दूध का भाव एक रुपये में नौ पसेरी था। और सब तरह की चीज़ें भी इसी तरह के भाव पर मिलती थीं। मामूली भेड़ रुपये डेढ़ रुपये में मिल जाती थी। भेड़ का मांस एक रुपये में अठारह सेर मिलता था। मजूरी भी बहुत सस्ती थी। रुपया रोज में बीस मजूर काम कर सकते थे। बड़ा ही होशियार बढ़ई ग्यारह पैसे रोज में काम करता था। एक मर्द के लिए एक महीना भर के अनाज का ख़र्च साढ़े तीन आने से ज्यादा नहीं था। उस समय का अमीर से अमीर आदमी अपने भोजन में आठ आने महीने से ज़्यादा ख़र्च नहीं कर सकता था। शहर के रहनेवाले पांच आदमियों के एक अमीर परिवार का

सारा खर्च तीन रुपये महीने से ज्यादा नहीं होता था। यह शहर के रहनेवालों का खर्च हुआ। देहात के रहनेवालों को तो पैसे खर्च करने का कोई काम न था। खेत की पैदावार से ही जब शहरवाले जीते थे, तब देहातों के क्या कहने हैं।

कताई और बुनाई का काम पहले की तरह सारे भारत में फैला हुआ था और अब इन कामों में मुसलमान भी पूरा हिस्सा ले रहे थे। राजधानी आगरे में और फतहपुर-सीकरी में बारीक कपड़ों के सिवाय शतरंजी, कालीनें और बहुत अच्छे-अच्छे फ़र्श और पर्दों के कपड़े भी बुने जाते थे। गुजरात में पाटन और खान देश में बुरहान-पुर और ढाके में सुनारगाँव सूती कपड़ों के लिए मशहूर थे। इन कपड़ों का नाम ही ढाका, पाटन, बुरहानपुरी और महमूदी आदि मशहूर था। सब तरह के सूती माल का खास बाजार बनारस था। पटने में भी कपास, खद्दर, खाँड, अफ़ीम आदि का बड़ा भारी व्यापार था। फैजाबाद जिले का टाँडा रुई के माल का बहुत बड़ा बाज़ार था। गाँव के उद्योग-धन्धे जैसे युगों से चले आते थे अकबर के समय में भी उसी तरह से बराबर होरहे थे। उसमें किसी तरह की कमी नहीं आई थी। गाँव और किसान और उसके जान-माल की रक्षा कुछ तो किसान आप ही कर लेता था, कुछ पञ्चायत के प्रबन्ध से होता था और कुछ सरकारी बन्दोबस्त भी था। कोई ऐसा कारण समझ में नहीं आता कि हम किसान को आज के मुकाबले उस समय कम सुरक्षित समझें। आज भी लुटेरों से किसान उसी तरह सुरक्षित है जैसे उस समय था। परन्तु अकबर सहृदय शासक था और आज का शासन निष्प्राण हृदयहीन यंत्र है, जो निस्सहाय किसान को चूसकर उसका सारा तेल निकाल लेता है

और उसे रक्तहीन छोड़ देता है। किसान की क्या रक्षा हुई? इस यंत्र से उसकी रक्षा करनेवाला कौन है?

जहांगीर और शाहजहाँ तो अकवर के पद चिन्ह पर चलते थे। उनके समय में गावों की दशा, भारत की आर्थिक और सामाजिक दशा वैसी ही रही जैसी अकवर के समय में। औरंगजेव के समय में अवनति का कुछ आरम्भ हुआ। उसके वाद के वादशाहों ने तो लुटिया ही डुवोई।

३. औरंगज़ेव काल और ब्रिटिशों का चूसनेवाला रोज़गार

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक वोल्ट्स नामक कर्मचारी ने लिखा है कि संवत् १६४७ में मलवार के समुद्रतट पर अंग्रेज़ी वेड़े ने हिन्दुस्तानी जहाजों की अन्धाधुन्ध लूट की और अपार धन इकट्ठा कर लिया। वंगाल में जाव चानाक नाम के अफ़सर के अधीन, जो कि हुगली में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सवसे वड़ा कारखानेदार था, अंग्रेज सेना के भाग्य ने वहुतसे पल्टे खाये। वम्वई में कम्पनी के गवर्नर सर जान चाइल्ड ने अपने नासमझी के व्यवहार से सम्वत् १७४७ के आषाढ़ के महीने तक युद्ध जारी रखा। यह व्यवहार कम्पनी के लिए घातक ठहरा क्योंकि इसमें कम्पनी के साठ लाख से अधिक रुपये का नुक़सान हुआ। उनके साथ जो रिआयतें की गई थीं वे छिन गईं और भारतीयों और मुगलों के वीच से उनकी साख उठ गई। सूरत के सूवेदार सैदी याकूव ने वम्वई पर दखल कर लिया, कम्पनी के कारखानेदारों को क़ैद कर लिया और उनकी गर्दनों में ज़ंजीर वंधवाकर सड़कों पर फिराया।

इस युद्ध में हार जाने के कारण अंग्रेजों को संधि की प्रार्थना करनी पड़ी और उस समय के सम्राट औरंगजेब से इस प्रकार क्षमा माँगनी पड़ी। उन्होंने अंग्रेज राजदूत के नाम से अपने दो कारखानेदारों को दिल्ली भेजा। एक तो जार्ज वैल्डन था और दूसरा अब्राह्मनवार नाम का यहूदी था। दोनों औरंगजेब के हुजूर में लाये गये। दूतों के लिए यह एक बिलकुल नया ढंग था। उनके दोनों हाथ बँधे हुए थे और उनको सम्राट के सामने साष्टांग दण्डवत् करना पड़ा। सम्राट ने बड़ी लानत मलामत की और तब पूछा कि तुम क्या चाहते हो? उन्होंने बड़ी दीनता से अपने कसूरों को कबूल किया और माफी माँगी। फिर यह प्रार्थना की कि जो फरमान हुजूर से ज़ब्त किया गया है वह फिर जारी किया जाय और सैदी को सेना सहित बम्बई के टापू से लौटा लिया जाय।

औरंगजेब बड़ा दयालु और बुद्धिमान राजा था। उनकी प्रार्थना स्वीकार करली और इस शर्त पर माफ कर दिया कि नौ महीने के अन्दर गवर्नर चाइल्ड हिन्दुस्तान छोड़ दे और फिर न लौटे। फरमान इस शर्त के ऊपर जारी किया गया कि जिस रिआया को लूटा गया है, जिनसे कर्ज लिया गया है और जिनका जो कुछ अंग्रेजों से नुक़सान हुआ है उन सबको धन देकर सन्तुष्ट कर दिया जाय। मुग़ल सम्राट की कृपा से मामला तय हो गया और बङ्गाल में कम्पनी के एजेण्ट जाबचानाक ने अंग्रेजों को फिर से अपने कारखानों में आने के लिए आज्ञा प्राप्त कर ली। इसके बाद कम्पनी ने भारत के कई भागों में अपने कारखाने खोल लिये। ये कारखाने अधिकांश कपड़े के थे। कपड़े का रोज़गार औरंगजेब के समय में बहुत बढ़ा-चढ़ा था। उत्तर भारत में भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक

गाँव-गाँव में चरखा कतता था और खद्दर बुना जाता था। मुगलों के राज के अन्त तक और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य के आरम्भ तक वाफ़ता के लिए पटना, टाँडा, चटगाँव, इलाहाबाद, खैराबाद, वीरभूम और लखीमपुर मशहूर थे। इन स्थानों के सिवाय खासे के लिए हरियल, शान्तिपुर, मऊ और लखनऊ का नाम था। चन्दरकोना, शान्तिपुर और हरीपाल की डोरिया सबसे अच्छी समझी जाती थी। महमुदी के लिए टाँडा, इलाहाबाद खैराबाद, जोहाना और लखनऊ का नाम था। ढाका, पटना, शांतिपुर, मेदनी-पुर, गाजीपुर, मालदह और बनारस आदि स्थान मशहूर थे। सन्नो के लिए और तरींदम के लिए इन सब स्थानों के सिवाय हरीपाल, बुढ़ावल, कासिमाबाद, शान्तिपुर, बालासोर और कोहाना खास जगह समझी जाती थी। ये सब इन कपड़ों के बाजारों के नाम हैं। इन बाजारों के आसपास के गाँवों में बड़े जोरों से इन कपड़ों का काम होता था। इन गाँवों की संख्या अनुमान से कई लाख की होगी। क्योंकि उस समय विदेशों में यहाँ के बने कपड़े जाया करते थे। सम्वत १८६२ के लगभग बंगाल के व्यापार के सम्बन्ध में डाक्टर मिलबर्न के Oriental Commerce (पूर्वी वाणिज्य) की जिल्दों से बड़े काम की गवाही मिलती है। उत्तरी भारत भर में ये कपड़े बड़ी मात्रा में तैयार होते थे। इसमें ये अंक मिलते हैं:—

सम्वत् १८६२ के लिए

बंगाल का वाणिज्य किस स्थान से था।	आयात रुपयों में: जिसमें प्रधानतः सोना, चाँदी आदि कोष शामिल था।	निर्यातकपडे के थानों का
१ लंदन	६७७२२)	३३१५८२
२ डेनमार्क	२१३५)	३३७६३२

३ लिसवन		१२१३३५३
४ अमेरिका (संयुक्तराज्य)	२५०९६)	४७६३१३२
५ लंका		१०३९४४
६ सुमात्रा		८५०८९
७ कारोमण्डल का किनारा	११५३९०)	(विशेषतःमाल) ४०१७९२
८ खलीज, फारस और अरब		८४५७८८
९ पेगू		८२२५४
१० पूलोपिनेंग पूर्ववर्ती देश		८१६६१२
११ वटेविया		९१५९९६
१२ चीन	१८२१२७)	३७९४६९

नोट—चीन को २८८४६१६) की रूई भेजी गई।

ऊपर लिखी सारिणी में जो वाहरी व्यापार का प्रमाण मिलता है वह इतना तो स्पष्ट कर देता है कि भारत के गाँवों में कताई-वुनाई का काम वड़े ज़ोरों से चल रहा था। दक्षिण भारत में भी इस काम में किसी तरह की ढिलाई न थी। दक्षिण भारत के वने कपड़े मछलीपट्टम के वन्दरगाह से वाहर के देशों में जाया करते थे। दक्षिण में वुरहानपुर में कपड़ों के शाही कारखाने थे और मछलीपट्टम में और उसके आसपास के अनगिनत गाँवों में भाँति-भाँति की छींटें तैयार होती थीं और संसार में भारत का नाम फैलाती थीं। गोलकुण्डा के राज में खान से हीरे, जवाहिर की खुदाई होती थी और गाँव-गाँव में इस तरह के कारवार थे। राजधानी हैदरावाद के पास के दो गाँव निर्मल और इन्दूर में लोहे का कारवार इस दर्जे को पहुँचा हुआ था

कि निर्मली और इन्दूरी तलवारें, बरछे और खंजर यहीं से सारे भारत में जाते थे। और दमिश्क की मशहूर तलवार के लिए यहीं से लोहा जाता था और शमशीर हिन्द का नाम मशहूर करता था। हीरे और सोने के लिए गोलकुण्डा का राज संसार में प्रसिद्ध था। और मछलीपट्टम के बन्दरगाह से भारत के जहाज संसार के समुद्रों में आते-जाते थे। खेती उसी तरह वहाँ भी उपजाऊ थी जैसी कि उत्तर भारत में। और जंगलों की पैदावार उसी तरह धन-धान्य देनेवाली थी। सारे भारत में जहाँतक किसानों का सम्बन्ध है निरन्तर शान्ति का साम्राज्य था। किसानों का इतना आदर था कि कड़ाई करनेवाले हाकिमों की जब लोग शिकायत करते थे तो वह बहुत करके बरखास्त कर दिये जाते थे। शाहजहाँ ने दाराशिकोह को राजगद्दी पाने के लिए अपनी बीमारी में यही उपदेश किया कि किसानों को और सेना को खुश रखना। औरंगज़ेब ने अपने लड़कों को रैयत को खुश करने के लिए बारम्बार उपदेश किया है। इन बादशाहों का जैसा उपदेश था वैसा ही अपना आचरण भी था। औरंगजेब की बादशाहत के ज़माने में प्रजा को कुछ कष्ट होने लगा। प्रजा पर ज़ुल्म होने लगा। औरंगजेब अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक कट्टर था। हिन्दुओं पर उसकी कड़ी निगाह थी। उसने सारी हिन्दू प्रजा पर ज़जिया लगाया और मुसलमानों का पक्षपात किया। साधारणतया कई प्रकार के महसूल जो हिन्दुओं को देने पड़ते थे, मुसलमानों को नहीं देने पड़ते थे। अनेक अपराधों में मुसलमान छोड़ दिया जाता था क्योंकि काफिर हिन्दुओं के विरुद्ध अपराध करने में मुसलमान दोषी नहीं समझा जाता था। किसान साल के साल मेहनत करता था परन्तु लड़ाई के कारण शत्रु या बलवान जमींदार उसे

लूट लेता था या उसके धन का अपहरण कर लेता था। सम्वत १७१५ और १७१६ के लगभग इन्हीं कारणों से अनाज मँहगा बिकने लगा था। नाके-नाके पर, घाटों पर, पहाड़ी गुजरगाहों पर और सरहदों पर जो माल गुजरता था उस पर राहदारी का माल का दशमांश महसूल देना पडता था। यह कहलाता था राहदारी का महसूल। परन्तु महसूल लेनेवाले लोग जुल्म करते थे और कड़ाई करते थे और कई गुना अधिक वसूल कर लेते थे। इससे किसानों के ऊपर सारा बोझ आ पड़ता था। औरंगजेब ने पीछे इस तरह के महसूल उठा दिये तब कहीं जाकर भाव सुधरे और अनाज ठीक तरह से बिकने लगा।

इन सब बातों के होते हुए भी मुगलों के साम्राज्य के अन्त में भी गल्ले का भाव प्रायः अकबर के समय के ही लगभग रहा।

: ८ :

कम्पनी का कठोर राज्य

ईस्ट इंडिया कम्पनी संवत् १६५७ में ७० हज़ार पौंड की पूँजी के साथ भारत से रोज़गार करने के लिए क़ायम हुई थी। उस समय इंगलैण्ड की सरकार ने उसे एक हुक्मनामा देकर भारत के साथ रोज़गार करने का इजारा दे दिया था। कम्पनी के सिवाय इंग्लैण्ड का कोई वाशिन्दा भारत के साथ रोज़गार नहीं कर सकता था। कम्पनी का यह हुक्मनामा हर बीसवें बरस बदला जाता था। भारत में अशान्ति और बदइन्तज़ामी होने से, कम्पनी भारत की मालिक बन गई, किन्तु इंग्लैण्ड में उसका वही पहला ही पद बना रहा। उसके हुक्मनामे का हर बीसवें वर्ष बदला जाना जारी रहा।

विक्रम की अठारहवीं शताब्दी तक भारत के गाँव जैसे अनाज उपजाते थे, वैसे ही हाथ की कलाओं में भी कुशल थे। भारत के करघों से बने हुए कपड़े एशिया और यूरोप के बाज़ारों को भरे हुए थे। परन्तु देश की इस कोमल कला को आर्थिक कूटनीति और लूट की भारी भुजाओं ने दबा लिया। युगों के ठोस उद्योग और रोज़-गार को कुचल डाला। देश को विदेशी कपड़ों के सबसे बड़े मोहताज की दशा को पहुँचा दिया। इस प्रलयकारी फेरफार से, भारत का दरजा सबसे बड़े बेचनेवाले से, सबसे बड़ा खरीदनेवाला हो गया। बात यह थी कि पार्लमेण्ट और ईस्ट इंडिया कम्पनी ने व्यापार में हर तरह अपना स्वार्थ देखा। पहले तो उन्होंने भारतवर्ष में कार-

ख़ाने खोले, और इन कारखानों में यहाँ के दस्तकारों को काम करने के लिए मजबूर किया। धीरे-धीरे उन्होंने जहाँतक बन पड़ा, देश के भारतीय कारख़ानों को हथिया लिया अथवा बन्द करा दिया। परन्तु जब विलायत में वहाँके कारीगरों ने बहुत हल्ला मचाया, तब बाधक कर लगाये गये।

विक्रम की उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भिक काल में, विलायत की दस्तकारियों को बढ़ाने के लिए उन्होंने हिन्दुस्तानी माल को विलायत जाने से रोकनेवाले क़ानून बनाये। उनकी यह निश्चित नीति रही कि भारत विलायत की दस्तकारियों की उन्नति का एक साधन बन जाय और वहाँ के कारख़ानों तथा करघों के लिए कच्चा माल तैय्यार करनेवाला एक देश ही रह जाय।

इस नीति का पालन सख़्ती से किया गया और इसमें उन्हें सफलता प्राप्त हुई। भारत में रहनेवाले गोरे अधिकारियों को कम्पनी के कारख़ानों में काम करने के लिए, भारतीय दस्तकारों को लाचार करने की आज्ञा दी गई। भारतीय जुलाहों के गाँवों तथा उनकी जातियों के ऊपर, कम्पनी के व्यापारिक रेज़िडेण्टों को बहुत बढ़े-चढ़े अधिकार दिये गये। अधिक महसूल लगाकर भारत के सूती और रेशमी कपड़ों का विलायत जाना रोका गया। अंग्रेज़ी चीज़ें बिना महसूल दिये ही, या कुछ नाम भरके महसूल पर भारत में आने दी गईं।

इतिहासवेत्ता विलसन के शब्दों में, ब्रिटिश दस्तकार ने राजनीतिक हथियारों से अपने मुक़ाबलेवाले हिन्दुस्तानी कारीगर को दबाया। क्योंकि दोनों को बराबर सुभीते होते तो ब्रिटिश कारीगर हिन्दुस्तानी का सामना न कर सकता। फल यह हुआ कि यहाँ के

लाखों दस्तकारों की रोज़ी मारी गई और यहाँ की सम्पत्ति के उप-जाने का एक द्वार ही वन्द हो गया।

इस देश के ब्रिटिश कालीन इतिहास में इस दुःखद घटना का वर्णन इसलिए ज़रूरी है कि हम समझें कि हम इतने दरिद्र क्यों हैं। और हमें खेती का ही अकेला सहारा क्यों रह गया है। यूरोप में भाप के वल से चलनेवाले करघों के चल पड़ने से हमारे कारीगर वरवाद हो गये और जब हमारे यहाँ कल कारखाने चले तो इंग्लिस्तान अन्याय और डाह से काम लेने लगा। उसने हमारी सूत की कारीगरी पर कर वैठा दिया। इसका फल यह हुआ कि हमारे कारीगर जापानी और चीनी दस्तकारों के मुक़ावले के भी नहीं रहे। तबसे यह कर हमारी भाप से चलनेवाली नई कलों का गला घोंटता रहा है। जिन लाखों करोड़ों दस्तकारों की रोज़ी मारी गई, वे वेचारे अपने-अपने गाँवों में मजूरी और खेती आदि धंधों पर टूट पड़े, जिसे जो रोज़गार पेट पालने को मिला कर लिया। वेचारे लाचार होकर भंगी डोम तक का काम करने लगे। ज़मीन वढ़ी नहीं, खेतिहर वढ़ गये। पैदावार घट गई, खानेवाले वढ़ गये। हट्टे-कट्टे काम करने-वाले ज्यादा रोटी के लालच से विदेशों में काम करने चले गये, गाँव उजड़ गये। संसार के अनेक निर्जन टापू गुलामों से वस गये। आज अव दशा यह है कि हमारे देश की राष्ट्रीय सम्पत्ति का एक ही द्वार खेती रह गई है और आज हमारे देश के हर पाँच आदमी में चार तो खेती पर ही दिन काटते हैं। परन्तु ब्रिटिश सरकार द्वारा जो भूमि कर वसूल किया जाता है वह एक तो वहुत ज्यादा है, दूसरे कई प्रान्तों में तो वह इतना अनिश्चित है कि उसमें खेती की तरक्की करने का कभी किसी को हौसला नहीं हो सकता। कर वढ़ता ही जाता है।

इंगलिस्तान में संवत् १८५५ तक भूमिकर लगान के सैकड़ा पीछे ५ और २० के बीच में था। उस समय के प्रधान मंत्री पिट ने उसको सदा के लिए ठहरा दिया। यहाँ संवत् १८५० और १८७६ के बीच में बंगाल में भूमिकर लगान का सैकड़ा पीछे ६० और उत्तरी भारत में सैकड़ा पीछे ८० रक्खा गया। यह सच है कि इतना भारी भूमिकर लगाने में अंग्रेज़ी सरकार ने अपने पहले के मुसलमान बादशाहों की ही नक़ल की थी। परन्तु इन दोनों में यह अन्तर था कि मुसलमान शासक जितना माँगते थे उतना कभी वसूल नहीं कर पाये। परन्तु अंग्रेज़ी सरकार जो कुछ माँगती रही है उसे कड़ाई के साथ वसूल भी करती आई है। बंगाल के अन्तिम मुसलमान हाकिम ने अपने राज के आखिरी साल संवत् १८२१ में सवा करोड़ से कम ही रुपये मालगुज़ारी वसूल की थी। बंगाल से अंग्रेज़ी सरकार तीस वर्ष के अन्दर ही ४ करोड़ २ लाख रुपये साल की मालगुज़ारी वसूल करने लगी। संवत् १८५६ में अवध के नवाब ने इलाहाबाद और कुछ और ज़िले अंग्रेज़ी सरकार को दिये, जिनसे वह २ करोड़ २॥ लाख रुपये वार्षिक मालगुज़ारी मांगता था। तीन वर्ष के भीतर अंग्रेज़ी सरकार ने इनकी मालगुज़ारी बढ़ाकर २ करोड़ ४७॥ लाख रुपये से भी अधिक करदी। मद्रास में पहले पहल ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भूमिकर नियत किया। बम्बई में संवत् १८७४ में मराठों से जीती हुई भूमि की मालगुज़ारी १ करोड़ २० लाख रुपये थी। कुछ ही वर्षों के अंग्रेज़ी शासन के पीछे वह बढ़ाकर सवा दो करोड़ रुपये करदी गई और तब से वह लगातार बढ़ती ही जा रही है। पादरी हेबरन ने समस्त भारत में यात्रा करने और सब अंग्रेज़ी तथा देशी राज्यों का निरीक्षण करने के पीछे संवत् १८८३ में लिखा था कि "कोई

देशी शासक इतना भूमिकर नहीं मांगता जितना हम मांगते हैं।" संवत् १८८७ में कर्नल ब्रिग्ज़ ने लिखा था कि "भारत का वर्तमान भूमिकर प्राय: समस्त लगान के बराबर है। इतना भूमिकर एशिया अथवा यूरोप में किसी भी शासक के समय कभी नहीं सुना गया।"[1]

बंगाल और उत्तरी भारत के मनुष्यों के लिए अंग्रेजी शासन के प्रारम्भिक समय के इस भारी भूमिकर का बोझ धीरे-धीरे कुछ हलका हुआ। बंगाल में भूमिकर स्थायी नियत कर दिया गया और इसलिए कृषि की वृद्धि के साथ-साथ उसमें वृद्धि नहीं हो पाई है। अब वह लगान का केवल ३५ प्रतिशत रह गया है। (इसी में कुछ अन्य कर भी सम्मिलित हैं।) उत्तरी भारत में भूमिकर स्थायी तो नहीं किया गया परन्तु सम्वत् १९१२ में वह घटाकर लगान का ५० प्रति सैकड़ा कर दिया गया। परन्तु पीछे कुछ नवीन कर और भी लगा दिये गये, जिनके कारण भूमिकर बढ़कर लगान का ६० प्रति सैकड़ा हो गया। ज़मीदारों ने अपना सारा बोझ इज़ाफ़ा लगान करके दरिद्र किसानों पर डाल दिया। अन्त में सब तरह से किसानों की ही बरबादी हुई।

मद्रास और बम्बई की अवस्था और भी ख़राब है। वहाँ कृषक लोग सरकार को भूमिकर सीधे अदा करते हैं। उनके तथा सरकार के बीच कोई ज़मींदार मालगुजार या ठेकेदार नहीं है। सम्वत् १९२१ में सरकार ने आर्थिक लगान का आधा मालगुज़ारी के स्वरूप में वसूल करने की अपनी इच्छा प्रकट की थी, परन्तु सरकार लगभग सारा आर्थिक लगान वसूल कर लेती है, और बेचारे किसानों को

१. श्री रमेशचन्द्रदत्त के प्रसिद्ध ग्रंथ "ब्रिटिश भारत के आर्थिक इतिहास" की भूमिका से संकलित

अपने मेहनत मज़दूरी और औज़ारों, चौपायों इत्यादि में लगे हुए धन पर लाभ के सिवा कुछ भी नहीं बचता। हर तीसवें बरस नया बन्दोबस्त होता है। किसान जान भी नहीं पाता कि उसका लगान किस कारण से बढ़ाया जा रहा है। उसके सामने बस दो रास्ते रह जाते हैं, या तो वह बढ़े हुए लगान को मान ले या अपने बाप दादों के खेत को छोड़कर भूखों मरे। लगान की यह आये दिन की घट बढ़ खेती को बढ़ने नहीं देती। किसानों को कुछ बचत भी नहीं होने देती और उन्हें दरिद्र और कर्ज़दार बनाये रखती है।

भारत में भूमिकर केवल भारी और डावांडोल ही नहीं है, बल्कि जिन सिद्धान्तों पर लगान बढ़ाया जाता है वे जग से निराले हैं। और देशों की सरकार जनता का धन बढ़ाने में सहायता देती है, अपनी प्रजा को धनी और रंजी-पुंजी देखना चाहती है और फिर उसकी आय का बहुत थोड़ा अंश उसकी रक्षा के लिए माँगती है। भारत की सरकार कर लगाकर धन के इकटठा होने में बाधा डालती है। किसानों की आय को रोकती है और लगभग हर नये बन्दोबस्त के समय अपनी मालगुज़ारी बढ़ाकर किसानों को सदा ही दरिद्र रखती है इंग्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, संयुक्तराज्य आदि देशों में सरकार अपनी प्रजा की आय बढ़ाती है, उनकी वस्तुओं की खपत के लिए नये-नये बाज़ार ढूँढती है, भरसक बाज़ारों के ऊपर अधिकार जमाने की चढ़ा-ऊपरी में महासमर तक हो जाते हैं, उनकी आय के लिए नवीन द्वार खोलती है उनकी भलाई के लिए मर मिटती है, और उनके बढ़ते हुए ऐश्वर्य के साथ आप भी ऐश्वर्यशाली बनती है। भारत में अंग्रेजी सरकार ने न तो नई दस्तकारियों के चलाने में सहायता दी; और न उसकी पुरानी दस्तकारियों को ही नया जीवन दिया है

उलटे वह हर बन्दोवस्त के समय भूमि की पैदावार से मनमानी आमदनी करने के लिए उलट-फेर किया करती है। मद्रास और बम्बई में लोग हर नये बन्दोवस्त को अपने और सरकार के बीच एक युद्ध समझते हैं, जिसमें सरकार और प्रजा के बीच परस्पर स्वार्थों की छीना झपटी होती रहती है। और इस लड़ाई का निर्णय करने के लिए कानून में कोई ठीक विधान या सीमा नहीं है। माल के हाकिमों का फ़ैसला आख़िरी होता है जिसकी कहीं अपील नहीं है। सरकार की आय और प्रजा की दरिद्रता नित्य बढ़ती ही चली जाती है।

धरती से जल खींचकर सूर्य्य मेघ बनाता तो है परन्तु वह मेघ अपने लिए नहीं बनाता। वर्षा के रूप में हज़ार गुना अधिक फैला कर उसी धरती को लौटा देता है।[1] कवि ने अपने यहाँ कर या लगान लेने की नीति का इसी तरह हज़ारों गुना अधिक बखान किया है। परन्तु भारतभूमि से खींचा गया कर रूपी जल आज विदेशों में ही बरसता और विदेशों को उपजाऊ बनाता है। हरेक देश उचित रीति से यही चाहता है कि उसके देश से वसूल किया गया टैक्स या कर वहीं खर्च किया जाय। अंग्रेजों के आने से पहले भारत के बुरे से बुरे हाकिमों के समय में भी यही बात थी। पठान और मुग़ल बादशाह जो अपार धन सेना में ख़र्च करते थे पर उससे तो यहीं के बहुत से बड़े-बड़े घरानों का और लाखों परिवारों का पालन

१. प्रजानामेव भूत्यर्थं सताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥ रघुवंश । १ । १८

रवि जैसे हजारगुना बरस देने के लिए रस लेता है, वह (राजा) प्रजाओं का धन बढ़ाने के लिए ही उनसे कर लेता था।

होता था। वे जो बड़े-बड़े सुन्दर महल बनाने में या सुख और भोग-विलास की चीज़ों में या दिखावटी ठाट-बाट में धन लगाते थे, वह धन इसी देश के कारीगरों और दस्तकारों के हाथ में जाता था और उनका हौसला बढ़ाता था। सरदार, सूबेदार, सेनापति, दीवान, काज़ी और उनसे छोटे हाकिम भी अपने मालिकों की देखादेखी वैसा ही बरताव करते थे, और अनेकों मस्जिद, मन्दिर, सड़कें, नहरें और तालाब उनकी उदारता के गवाह हैं। वे धन को बेहिसाब उड़ाते भी थे तो वह उड़कर भी भारत के ही वायुमण्डल में फैल जाता था, कहीं बाहर न जाता था। बुद्धिमान और मूर्ख दोनों तरह के शासकों के समय में भी कर के रूप में वसूल किया हुआ धन लौट कर प्रजा के ही व्यापार और दस्तकारियों को बढ़ाता था। पर भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य का आरम्भ होते ही दशा बदल गई। कम्पनी भारत को एक बड़ी जागीर या बड़ा खेत समझती थी, जिसका लाभ यहाँ से जाकर यूरोप में जमा होता था। भारत की सरकार में मोटी तनख्वाहोंवाले और आमदनी के जितने ओहदे थे, कम्पनी अपने देशवालों को ही देने लगी। भारत की आय से व्यापार की वस्तुयें मोल लेती थी और फिर उन्हें अपने निजी लाभ के लिए योरप में लेजाकर बेचती थी। व्यापार में लगी हुई अपनी पूँजी का भारी ब्याज वह भारत से कड़ाई के साथ वसूल करती थी। सारांश यह कि भारत में भारी कर से जो कुछ वसूल किया जा सकता था, उसमें-से बहुत ज़रूरी बन्दोबस्ती खर्चों के पीछे जो कुछ बचता था, वह किसी न किसी तरह योरप पहुँचाया जाता था।

: ६ :

विक्टोरिया के राज से वर्त्तमान काल तक

१. भारत का रक्त चूसा जाना

जब सम्वत् १८९४ में अंग्रेज़ी राजगद्दी पर विक्टोरिया बैठी उस समय कम्पनी ने भारत की जितनी हानि करनी थी करली थी। भारत के रेशमी रूमाल यूरोप में अब भी बिक रहे थे, और यहाँ के तैयार रेशमी माल पर अब भी वहाँ कड़ा महसूल लगता था। पार्लमेण्ट ने कमीशन बैठाकर इस बात की जाँच की कि ब्रिटिश करघों के लिए भारत में रूई कैसे उपजाई जा सकती है, यह न पूछा कि भारतीय करघों की बढ़ती कैसे कराई जाय। लगातार डेढ़ सदी से लगभग भारत के गोरे प्रभुओं की नीति यही रही है, कि ब्रिटिश कारखानों की बढ़ती भारत के द्वारा कैसे की जाय। भारत के कारीगरों की भलाई का कोई ख़याल नहीं रहा। भारत की बनी चीजें जो जहाज़ों में भर-भर कर विलायत भेजी जाती थीं वह धीरे-धीरे सपने का धन होती गई।

हम पिछले वर्षों में यह देख चुके, कि कम्पनी इस्तमरारी बन्दोबस्त और प्रान्तों में बढ़ाना नहीं चाहती थी। उत्तर भारत में उसने पहले लगान का सैकड़ा पीछे ८३ भाग मालगुज़ारी लगाई, फिर उसे ७५ प्रति सैकड़ा और फिर ६३ प्रति सैकड़ा घटाया। यह भी जब ठीक न ठहरा तब संवत् १९१२ में उसे लगान का आधा

कर दिया। सम्वत् १९२१ में यही लगान की आधी मालगुज़ारी का हिसाब दक्षिण भारत पर भी लगा दिया गया। संसार के किसी सभ्य देश में खेती के मुनाफे के ऊपर आधों आध आय कर का लगाना आज तक सुना नहीं गया। पर इतने पर भी सन्तोष होता, तो भी बड़ी बात थी।

सम्वत् १९१५ में कम्पनी का राज समाप्त हो गया। पार्लमेण्ट के अधिकार में आजाने पर भी भारत को लेने के देने ही पड़े। पार्लमेण्ट ने कम्पनी के हाथों से भारत की जागीर को ख़रीद कर अपने हाथ में कर लिया और इसी जागीर के मत्थे ऋण लेकर कम्पनी का देना चुका दिया। कम्पनी ने जो टोटा उठाया था, वह भी भारत के मत्थे मढ़ा गया। साल-साल भारत ही के मत्थे सूद भी चढ़ने लगा। लड़ाई चाहे संसार में अंग्रेज़ों को कहीं भी लड़नी पड़ी तो किसी न किसी तरह बादरायण सम्बन्ध जोड़कर उसका ख़र्च भी भारत की ही जागीर पर लादा गया। रेलें निकलीं तो मुनाफ़ा विलायत गया, और टोटा भारतीय जागीर को सहना पड़ा। इस तरह पार्लमेण्ट के राज ने भारत की जागीर को और भी अधिक निठुराई से चूसना शुरू किया। भूमि और नमक इन दोनों के ऊपर कड़े से कड़ा महसूल लगने लगा।

सम्वत् १९३२ में स्वर्गीय लार्ड सैलिसबरी भारत मंत्री थे। उन्होंने उसी साल अपनी एक रिपोर्ट में इस प्रकार लिखा था—

"भारतीय राजस्व-पद्धति के बदलने की जहाँ तक गुंजाइश है, वहाँ तक इस बात की भारी जरूरत है, कि किसान को जितना देना पड़ता है उससे कुछ कम ही, कुल देश के राजस्व के नाते वह दिया करे। नीति की ही दृष्टि से यह कोई किफ़ायत की नीति नहीं है कि राजस्व

की प्रायः सारी मात्रा उन देहातों से ही निकाली जाय, जहाँ पूंजी अत्यन्त महँगी हैं, और उन शहर के हिस्सों को छोड़ दिया जाय, जहाँ धन बेकार पड़ा हुआ है, और ऐशोआराम में बर्बाद होता है। भारत के सम्बन्ध में तो बड़ी हानि पहुँचाई जाती है, क्योंकि वहाँ से माल गुजारी का इतना बड़ा अंश बदले में बिना कुछ मिले हुए देश के बाहर चला जाता है। जब भारतवर्ष का लोहू बहाना ही है, तब नश्तर उन हिस्सों में लगाना चाहिए जिनमें लोहू जमा हो, या कम से कम काफ़ी हो। उन अंगों में नहीं लगाना चाहिए, जो लोहू के बिना दुबले और कमज़ोर हो चुके हैं।"

लार्ड सैलिसबरी की चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। वही पुरानी कहानी बार-बार दोहराई जाती रही। हर बीसवें और तीसवें बरस बन्दोबस्त होता रहता है, और हर नये बंदोबस्त पर मालगुज़ारी बढ़ती ही रहती है। कहने को तो लगान की आधी ही मालगुज़ारी ली जाती है, परन्तु असल में तो बम्बई और मद्रास में इससे तो बढ़ी ही रहती है। मालगुज़ारी में और कई तरह के महसूल भी जोड़ दिये गये हैं, जिनको बढ़ाने में सरकार को तनिक भी संकोच नहीं होता। संसार में कौन ऐसा देश है जिसके धन की इस निठुरायी से चुंसायी हो, तब भी उसकी खेती बर्बाद न हो जाय। भारत के किसान थोड़े में गुज़र करनेवाले होते हैं, परन्तु तो भी वे दरिद्र हो गये हैं, खोखले हो गये हैं, और सदा दुर्भिक्ष और भूख की भयानक सूरत उनके द्वार पर खड़ी रहती है। श्री रमेशचन्द्रदत्त लिखते हैं—

"घर के देने के नाम से भारत की सारी आमदनी का चौथाई हिस्सा हर साल इंगलिस्तान चला जाता है। और अगर उसके साथ

वह धन भी जोड़ लिया जाय जो यहाँ के विलायती अफ़सर हर साल अपने वेतन से बचाकर इंगलिस्तान भेजा करते हैं, तो यह रक़म तीस करोड़ से कहीं अधिक हो जाती है। संसार का सबसे धनी देश संसार के सबसे दरिद्र देश से यह धन चूसने की बेहयाई करता है। आदमी पीछे १२६०) साल कमानेवाले उन लोगों से आदमी पीछे ७) माँगते हैं, जो लोग आदमी पीछे ३०) साल कमाते हैं। यह सिर पीछे ७॥) रुपया जो भारत के लोगों से अंग्रेज लोग लेते हैं, भारत को दरिद्र कर देता है। और इस तरह भारत में अंग्रेजों के व्यापार को भी हानि पहुँचती है। इस देने से अंग्रेजी व्यापार और व्यवसाय को कोई लाभ नहीं पहुँचता, परन्तु तो भी भारत के शरीर से लगातार लोहू की अटूट धारा बहती चली जाती है।"

यह बात बिलकुल सच है। सम्वत् १९५७ में भारत से मालगुज़ारी की सारी आमदनी सवा छब्बीस करोड़ रुपये हुई थी। घर के देने के नाम से साढ़े पचीस करोड़ उसी साल विलायत भेजे गये थे। यह तो साफ़ ज़ाहिर है, कि धरती की लगभग सारी आमदनी एक न एक ढँग से विलायत चली जाती है। विलायती अफ़सर अपनी तनख्वाह की बचत जो भेजते हैं, वह इससे अलग है। प्रजा से जो कर किये जाते हैं, वह यदि देश में ही खर्च किये जाते, जैसा कि संसार के सब देशों में होता है, तो वह रक़म प्रजा में ही फैलती। पेशे, व्यवसाय और खेती को बढ़ाती और किसी न किसी रूप में प्रजा का ही धन बढ़ाती। देश के बाहर निकल जाने पर एक कौड़ी भी देश के काम में नहीं आती।

रानी विक्टोरिया का राज ६४ वर्ष के लगभग चला। इतने समय में भारतवर्ष पर अँग्रेज़ों का फौलादी पंजा बराबर जकड़ता

गया। महसूल बढ़ते गये। करों का भार अन्त में देश की दरिद्र प्रजा के ही सिर पड़ता गया। नमक का महसूल दरिद्रों को अत्यन्त खला, परन्तु उसे बढ़ाने में हृदय-हीन विदेशी सरकार को कभी तरस न आया। विदेशी माल ने बाज़ार को भर दिया। देश के आदमियों की दस्तकारी और कारीगरी का काम छिन गया। खेती से बची हुई घड़ियों में किसान खद्दर सम्बन्धी काम किया करते थे। वह सारा काम छिन गया। साल में ६ महीने से लेकर ३ महीने तक किसान बिलकुल बेकार रहने लगे। पछाहीं रोज़गार की कठिन चढ़ा ऊपरी ने यहांके एक रोज़गार के बाद दूसरे रोजगार को चौपट कर दिया। कच्ची धातुओं से पक्की धातु बनाना खानों की खुदाई, लोहे आदि की ढलाई के काम बन्द हो गये। नमक बनानेवाली एक जाति नोनिया थी, जिनका काम नमक और शोरा तैयार करना था। यह जाति तो बिलकुल बे-रोज़गार हो गई। नोनिये कभी-कभी कुआं खोदने का काम करते हैं। अधिकांश लोग मोटी मजूरी करने लगे। कोष्टी, बुनकर, कोरी, जुलाहों का रोजगार मारा गया। बढ़ई, लुहार आदि शिल्पी अपनी ऊँची कला भूल गये। सूत कातने की अत्यन्त प्राचीन कला इस कठिन चढ़ा-ऊपरी से नष्ट हो गई। लोगों ने चरखे उठाकर घरों पर फेंक दिये, मचानों पर डाल दिये, या लकड़ी की जगह चूल्हों में लगा दिये। लाखों की गिनती में बुनकर आदि कारीगर जब बेकार हो गये, तो उनका जहां सींग समाया वहीं चले गये। जिनसे हो सका, खेती करने लगे, अनेक मोटी मज़दूरी से ही पेट पालने लगे। गुजरात के हज़ारों बुनकर भङ्गी का काम करने लगे। हथियार बारूद आदि का बनाना एकदम बन्द हो गया। इधर पैने इतने सस्ते कर दिये गये कि ज़रूरत की सारी चीज़ें अत्यन्त मंहगी हो चलीं।

२. पैसे की माया

पैसों के भाव की कमी-बेशी करके विक्टोरिया के राज के पिछले २५ वर्षों में भारत की विदेशी सरकार ने शकुनी का कुटिल और निर्दय खेल खेला। भारत की दरिद्र और मोहग्रस्त जनता इस कुटिलाई को कैसे समझ सकती थी। समझती भी तो कर क्या सकती थी; सरकार बारम्बार नया बन्दोबस्त करके मालगुजारी बराबर बढ़ाती गई और किसानों को लाचार होकर ज्यादा-ज्यादा पैसा देना पड़ने लगा। पहले उसको थोड़ा पैसा जुटाने के लिए बहुत अनाज देना पड़ता था, यह उसे खलता था। सरकार ने पैसे का अधिक प्रचार करके एक निशाने से दो शिकार मारे। एक तो अपनी अपनी आमदनी बढ़ाई, और दूसरे किसानों में जो असंतोष फैलता उसपर परदा डाला। किसान पैसे की माया में फाँसे गये। अँग्रेज़ों ने पैसे को कुछ थोड़ा सस्ता कर दिया। किसानों ने देखा कि पैसा बहुत सस्ता हो रहा है, अनाज दे-दे लगे पैसे जुटाने। जब पैसे इकट्ठे होने लगे तब महीन और चमक दमकवाले कपड़े, खिलौने, लम्प, लालटेन तसवीरें, इत्र, सुगन्ध, फुलेल और भाँति-भाँति की विदेशों की बनी शौकीनी चीज़ें उन्हीं पैसों के बलपर ख़रीदने लगे, और दरिद्र किसान शौक़ीन रईशों की नक़ल करने में अपनी बड़ाई मानने लगे। जो शहर के बच्चे रूखी रोटी और नमक कलेवा करते थे, और नंगे पाँव लँगोटी बाँधे पढ़ने या काम करने जाने में संकोच नहीं करते थे, वही माँग काढ़ने, बाल सँवारने, फ़ैशन बनाने और रईसों की-सी लम्बी ढीली धोती बाँधने लगे। यह सब शौक़ीनी की चीज़ें विलायती चल गईं, जो अनाज से नहीं मिलती थीं। इनके लिए पैसों की बहुत

ज़रूरत पड़ी। फिर शादी, व्याह, मूड़न छेदन की तरह गिरस्ती में आये दिन हौसले बढ़ने लगे, चढ़ा ऊपरी होने लगी। बेकार खर्चा बढ़ गया। अब हरेक को पैसे की लत लग गई। अनाज देकर अब सौदा मिलना मुश्किल हो गया। सुई, डोरा, नमक, हल्दी, सूत, रुई सब तरह की ज़रूरी चीज़ें, जो अनाज देकर मिलतीं थी, पैसे पर मिलने लगीं।

मुसलमानों के राज में किसान जो चाहता था, मालगुजारी में दे सकता था, चाहे अनाज दे, चाहे रुपया। विदेशी सरकार ने देखा कि अनाज लेने में झंझट है, और जब पैदावार मारी जायगी तब तो घाटे में रहेंगे। इसलिए मालगुजारी में अनाज लेने की रीति उठा दी गई। फिर भी जमींदार असामियों से अक्सर लगान में अनाज का अंश ले लिया करते थे। सरकार की नीति से यह भी चलने न पाया। जब ज़मींदारों से मालगुज़ारी के रुपये लिये जाने लगे, तो उन्हें भी अनाज के बदले रुपया लेने में सुभीता पड़ा। माल-गुजारी और लगान की दरें ठहराई गईं। और ठहराई हुई रक़में किस्तों में वसूल की जाने लगीं। अब ज़मींदार या राजा का महसूल अनाज की पैदावार पर नहीं रहा। खेत में अनाज उपजे, चाहे न उपजे, पर राजा और ज़मींदार अपना महसूल बिना लिये नहीं रहते। किसान चाहे भूखों मर जाय, पर उसे लगान की रकम देनी होती थी। इसमें पैसेवालों की और भी बन आई थी। साहूकारों ने टका रुपया और आना रुपया व्याज लगाकर किसानों को चूसना शुरू किया। किसानों को क़र्ज़ लेने की बान पड़ गई, और एक बार जिस किसान ने क़र्ज़ लिया, समझो कि वह खड़ा लुट गया। क्योंकि एक तो इतना भारी व्याज ही देना पड़ता था, दूसरे व्याज-पर-व्याज लगाया जाता था। किसान की खेती-बारी धीरे-धीरे साहूकारों के

पास चली गई। इस तरह देश में ज़मीदार और साहूकार तो बसे और किसान उजड़ गये। कलकत्ता, वम्बई, करांची, हैदरावाद, मद्रास, लाहौर, अहमदावाद, इन्दौर, आदि वड़े-वड़े शहरों में उजड़े हुए किसान कुलीगीरी करने लगे, और लाखों इसी तरह के वे-खेत और वे-घर के मर्द औरत गिरिमिट की गुलामी करने के लिए मिरिच के देश, ट्रिनीडाट, फ़ीजी आदि विदेशी टापुओं में चले गये। किसानों की सिधाई और भोलेपन के कारण आरकाटियों को उनके वहकाने में वड़ी आसानी हुई। आरकाटी गाँव में आया और किसान का वड़ा हितैपी वनकर रहने लगा। दुखी किसानों के जिनके खेत साहूकारों की ठगी के कारण चले गये थे, उसने वहकाना शुरू किया "तुम हमारे साथ कलकत्ते चलो, हम तुम्हें ३) रु० रोज़ की मज़दूरी दिला देंगे, मज़े में खाना और वचाना, और रुपये जमा करके अपने खेत छुड़ा लेना। कुछ दिनों में तो तुम ज़मीदारी खरीद लोगे। यहाँ क्यों अपनी मिट्टी ख़राव करते हो? कलकत्ते जाने को ख़र्च नहीं है, तो किराया हम दिलवा देंगे। नौकरी चाकरी ख़र्च-वर्च हम सव कुछ दिलवा देंगे, मौज काटौ।" आरकाटी ने पैसों का जो जाल विछाया उसमें रोटियों को तरसनेवाला किसान फँस गया। कलकत्ते जाकर गिरमिट लिखाकर सदा के लिए गुलाम वन गया। इन वेचारे किसानों में से अपने जीवन में हज़ारों में से कोई एक मुश्किल से जीते जी फिर अपनी मातृ-भूमि के दर्शनों के लिए लौट सका।

वे लौटे क्यों नहीं? इसीलिए कि वे पैसे के मायाजाल में वेतरह फँस गये। पच्छाहीं सभ्यतावाले देशों में पैसा रुपया वहुत सस्ता है। खाने-पीने पहिरने की चीज़ें वहुत मँहगी हैं। और कोई वाहरी लूटनेवाला नहीं है, क्योंकि वहाँ के लोग आप ही कल-वल से जगत

को लूटते रहते हैं। इसीसे वे धनवान हैं। वे तीन-तीन रुपये रोज़ मजूरी भी देते हैं। हमारे दरिद्र किसान उनके यहाँ मजूरी करने लगे तो उन्हीं-की तरह खाने-पीने भी लगे। अपने देश में जैसा खाते थे उसमें मान लो कि चारों आने भी खर्च हो जाते थे तो भी चार आने रोज़ की मजूरी करनेवाला कारीगर घाटे में नहीं रहता था, क्योंकि उसका अपने घर का घर होता था, खेत-बाड़ी भी होती ही थी। परन्तु वहाँ के तीन रुपये यहाँ के चार आने से ज़्यादा क़ीमत नहीं रखते, क्योंकि वहाँ पैसा सस्ता है और सब चीज़ें महँगी हैं। वहाँ के असुरों की बुरी लतें भी लग जाती हैं। तीन रुपये में दो ढाई रुपये रोज़ तो खर्च ही हो जाते हैं, बचता बहुत कम है। फिर जब वह गुलामी से छूटता है तो जो कुछ बचाया होता है वह इतना ज़्यादा नहीं है कि आने-जाने का भारी खर्चा सहकर भी इतना बच जाय कि अपने लिए भारत में खेत ख़रीद ले। वह अभागा इस देश में किस बिरते पर लौटेगा ? यहाँ विदेशी सरकार ने पैसों का जो मायाजाल बिछाया उसमें फंसाकर ज़मींदार ने किसान को चूसा, साहूकार ने किसानों को चूसा और जब उसमें खून नहीं रह गया, जब वह बिलकुल बे-घर द्वार होकर बरबाद होगया, तब उसकी बची हुई भूखी हाड़ की ठठरी को आर-काटी ने रेल का किराया और भोजन देकर मोल ले लिया। अपने भाई को पैसे लेकर राक्षसों के हाथ बेच दिया। यह सब कुछ विदेशी लुटेरों के लिए किया गया। जानकर नहीं अनजान में, और पैसों की माया मोह में फंसकर। जिसके खेती-बारी, जगह-ज़मीन नहीं रह गई, और रगों में खून भी नहीं रहा, वह बेचारा इस देश में रह कर भूखी ठठरी में प्राणों को किस सहारे रखता।

यह तो कथा हुई सबसे नीची श्रेणी के लोगों की जो खेती भी

करते थे, और मजूरी भी करते थे। जो उनसे अच्छे थे और भूखों नहीं मरते थे, वे भी पैसों के मायाजाल में फँसकर बरबाद हुए। ये लोग अपने को ऊँची जाति के समझते थे। इनकी मोटी समझ में भी जो ज़्यादा ख़र्च करे वही बड़ा इज़्ज़तदार समझा जाता। इसी-लिए यह अपने को समाज में ज़्यादा इज़्ज़तदार सिद्ध करते रहे। इसमें उन्हें रुपयों की ज़रूरत पड़ा करती थी। राली ब्रदर्स के एजेण्ट फसल तैयार होने के पहले से ही घूमा करते थे। राली ब्रदर्स विला-यत का एक भारी व्यापारी है। जो लाखों मन अनाज भारत से खींच ले जाता है। इसके कारिन्दे रुपया लेकर गाँव-गाँव घूमते हैं; खड़ी फसल कूत करके ख़रीद लेते हैं। या नाज का भाव पहले से ठहरा कर किसान को पहले से रुपया दे देते हैं, और सस्ता अनाज और रुपये का सूद किसान से वसूल कर लेते हैं। पैसों की माया में पड़कर किसान अपने खाने के लिए काफ़ी अनाज तक नहीं रखते। यह देखकर कि रुपया ज़्यादा मिलेगा, भूखों मरकर भी अन्न बेच डालते हैं। यह ख़ूब जानते हैं कि पैसों से पेट नहीं भरना, फिर भी पैसों पर लट्टू हो रहे हैं।

हमारे देश में पैसों की माया में फंसकर बे-ज़रूरी चीज़ों की खेती अगर न की जाती और पहले की तरह अनाज और कपास का ही अधिकार खेतों पर रहता तो भी हमारी दरिद्रता इतनी अधिक न होती। हमारे किसान पैसों की माया में फँसकर विदेशी सरकार से दादनी लेने लगे, और खेतों से जहाँ अमृत उपजाते थे, ज़हर बोने और उपजाने लगे। पोस्ते की खेती करके अफ़ीम बेचने लगे, तम्बाकू की खेती करके देश में ज़हर फैलाने का उपाय करने लगे। तम्बाकू और अफ़ीम ने किसानों को मोह में फंसाकर कहींका न रक्खा। ताड़ी से, शराब से, गाँजा, भंग, चरस आदि जितनी नशीली

चीज़ हैं, सब से विदेशी सरकार को आमदनी होने लगी। इसलिए इन सब चीज़ों का प्रचार किया गया, और किसान लोग पैसे की माया में फंसकर उस महापातक के काम में भी पैसा-पूजकों की मदद करने लगे। पैसे की माया ने किसान को बरबाद कर डाला।

पैसे की माया अपार है। पैसा अंग्रेज़ों का देवता है, असुरों का परमात्मा है। उसकी माया में जिसे देखो वही फंसा हुआ है। किसान का तो सारा रोज़गार पैसे ने छीन लिया है। बारीक, चिकना, चमकीला, सस्ता मलमल देखकर किसान लट्टू होगया। मोटा खद्दर उसके बदन में चुभने लगा। कारिन्दे ने ज़्यादा पैसे देकर कपास की फ़सल ख़रीद ली। उसने भी ख़ुशी से बेच दिया। सोचा कि "इन्हीं पैसों से महीन मलमल ख़रीद लूंगा। ओटने, धुनने, कातने, बुनने की मेहनत से बच जाऊंगा। और इन्हीं कपड़ों से महीन कपड़ा भी मिल जायगा। मेरे घर की औरतें बारीक सूत नहीं कातती।" इस तरह जो पैसा विलायत ने अनाज और कपास के लिए किसान को दिया था, वही पैसा बारीक कपड़ा पहनाकर फिर लौटा लिया। देखो पैसे की माया में डालकर किसान को कैसा बेवक़ूफ़ बनाया। किसान के घर में दरिद्र का वास होगया। चरख़ा, चक्की और रई का चलना बन्द होगया। चीनी का रोज़गार, पटसन, सन, सूत, ऊन की कताई-बुनाई का रोज़गार उसके हाथ से छिन गया। देश के लाखों बुनकर, कोली जुलाहे बेरोज़गार होगये। जब कोई रोज़गार न रहा, लाचार हो, कुली, भंगी, डोम आदि का काम करने लगे या विदेश चले गये। जिन लोगों को खेत मिल सके वे खेती करने लगे, या खेती मजूरी दोनों करने लगे। इस तरह खेती करनेवाले बहुत बढ़ गये, और उनके पेट का भी बोझा खेती के ही कन्धों पर आपड़ा।

अब खेत की ज़मीन बढ़ानी पड़ी। वह कहाँ से आये ? गाँवों की गोचर भूमि जो गउ-बैलों के लिए छूटी रहती थी वह खेती के काम में आने लगी। बेचारी गउओं को उनकी मिल्कियत से निकाल बाहर किया गया। पैसों की माया ने उनकी रोजी छीनकर भी उन्हें कुशल से न रहने दिया। उनकी जान के लिए बड़ी-बड़ी क़ीमत लगने लगी। जीती गऊ का कम दाम मिलने लगा, पर उसकी लाश पर ज़्यादा पैसे मिलने लगे। जीती गऊ का दाम १०) था, तो उसके चमड़े का दाम १३) मिलने लगा। और मारी हुई का मांस और उसकी हड्डी का दाम अलग खड़ा होने लगा। पैसे की माया में फँसकर किसान ने अपना तन बेच दिया, घर-द्वार बेच दिया, अब उसने अपनी गऊ माता को भी बेचकर नरक का रास्ता साफ़ कर लिया। गोरी सेना को खिलाने के लिए हज़ारों गायें इसी तरह ख़रीद ख़रीद कर काटी जाने लगीं। पैसे की माया ने न गोचर-भूमि रहने दी और न गोचर-भूमि के भोगनेवालों को जीता छोड़ा। दही, दूध, घी पहले ख़ास खाने की चीज़ें थीं। यह आज अमीरों को भी जितना चाहिए उतना नसीब नहीं। पैसे की माया हमारे सामने की परसी थाली छीन ले गई। बच्चों के मुंह से दूध की प्याली हटा ले गई। और नक़ली घी, रेशम, चीनी आटा आदि सभी चीज़ें उसने फैलाईं। उसने हमें हड्डी, चरबी, मांस खिला और चबवा कर छोड़ा। एड़ी से चोटी तक हमें हिंसा का अवतार ही नहीं बल्कि भूखा, नंगा राक्षस बना डाला।

हिसाब करनेवालों ने पता लगाया है, कि इन्हीं पैसों की माया में फँसकर आज किसान के सिर पर सात आठ अरब रुपयों का क़र्ज़ा है। जबतक किसान इस भयानक क़र्ज़ के बोझ से पिस

रहा है, तबतक गाँव का सुधार क्या होगा। जबतक ग्यारह करोड़ किसान साल में नौ से तीन महीने तक बेरोज़गार रहेंगे, जबतक हमारा अन्न दूसरे खाते रहेंगे, और हम मुँह ताकते रहेंगे, जबतक हम अपने तन ढकने के लिए मंचेस्टर के मुहताज रहेंगे, जबतक गोरों का पेट भरने के लिए हमारा गोधन बरबाद होता रहेगा, जब तक हम ठंडे रहेंगे और हमारे हृदयों में अपने को पच्छाहीं सभ्यता की गुलामी और पैसों की मायाजाल से छुटकारा पाने के लिए आग न लग जायगी, तबतक गाँवों का सुधार न होगा।

भारत में जहाँ-जहाँ रैयतवारी ढंग हैं, वहाँ तो सरकार से सीधा सम्बन्ध है। पर जहाँ-जहाँ ज़मींदारी की चाल है वहाँ बीच में ज़मींदार के पड़ जाने से किसान के साथ ज़मींदारों से रगड़ा-झगड़ा लगा रहता है। आपस के झगड़े भी बटवारे हक़ीयत आदि के लिए लगे रहते हैं। आये दिन नोन सत्तू लेकर खेती के उपजाऊ कारबार को छोड़कर, अपना लाग हरज करके, अपने भूखे बीबी-बच्चों को बिलखते छोड़कर बेचारे किसान को बीसों कोस की दौड़ लगानी पड़ती है। वकीलों मुख़्तारों के दरवाजों पर ठोकरें खानी पड़ती हैं। बेचारे को आधे पेट खाने को नहीं मिलता, पर वकीलों मुख़्तारों, अहलमदों, पेशकारों और अदालत के अमलों को और अनगिनत ऐसे ही रिश्वतखोरों को, क़र्ज़ लेकर, खनाखन रुपये गिनने पड़ते हैं। नालिश करते ही रसूम तलबाना वगैरा के लिए ख़र्च करना पड़ता है, और अन्त में फल यह होता है कि हारनेवाले और जीतनेवाले दोनों के दोनों क़र्ज़े से लद जाते हैं, और जायज़ और नाजायज़ ख़र्च दोनों मिलाकर मुक़दमा जीतनेवाला भी घाटे में ही रहता है। पुराने ज़माने की पंचायतें इसीलिए टूट गईं कि उनके अधिकार विदेशी

सरकार ने छीन लिये और देहातों के कोने-कोने तक अपना अख्तियार फैलाने के लिए गांववालों को कचहरी के अर्थात् मूड़ने वालों के मातहत कर दिया।

इसी तरह मिलों और कारखानों में जहाँ मजूरों और मालिकों का सम्बन्ध है, वहाँ भी पैसे की माया अजब खेल खिला रही है। पैसा सस्ता हो जाने से सारी चीजें महंगी तो हो गई, पर मजूरी उसी हिसाब से नहीं बढ़ी। हम यह बात और जगह दिखा आये हैं। पैसे की माया के कूटनेवाले बैलट के नीचे दरिद्र मजूर और किसान कंकड़ और पत्थर के टुकड़ों की तरह पिस गये। और पैसे के पुजारियों की ठंडी सड़क बन गई।

अभी कुछ ही बरस हुए कि ब्रिटिश सरकार की ओर से पंचायतें बनने के लिए क़ानून बना, परन्तु इन पंचायतों में वह बात कहाँ है, जो पुरानी पंचायतों में थी। पंचायतों के प्रकरण में हम देखेंगे, कि पहले कैसी पंचायतें होती थीं, आज ब्रिटिश सरकार ने जो पंचायतें बनाई हैं वे कैसी हैं, और जैसी पंचायतों से हमारे देश का कल्याण हो सकता है, वैसी पंचायतें कैसे क़ायम हो सकती हैं।

२. आज कैसी दशा है ?

महारानी विक्टोरिया के राज में भारत की जितनी दुर्दशा हो चुकी थी, वह यूरोप के महासमर तक बराबर बढ़ती ही गई थी, और युद्ध के बाद तो वह इस हद तक पहुँच गई कि, भारत के अत्यन्त शान्त, अत्यन्त सहनशील, और अहिंसा के भक्त, भिक्षा माँगने तक के विनयी भारतवासी अत्याचारों से इतने व्याकुल हो गये कि उन्होंने

स्वतंत्रता का शान्त निरस्त्र युद्ध आरम्भ कर दिया। विदेशी सरकार मुद्दत से इस बात को जानती थी, कि जितने भारी अत्याचारों को भारतवासी चुपचाप सह रहे हैं, उनको संसार की सभ्यता के इतिहास में किसी भी देश ने बर्दाश्त नहीं किया है। इसी अपडर से संवत् १६१४ के असफल भारतीय युद्ध के कुछ बरसों बाद ही सारे ब्रिटिश भारत के हथियार क़ानून बनाकर अपने क़ब्जे में कर लिये। एक तरह से सारे देश को निहत्था कर दिया, और पासपोर्ट के क़ानून से भारत के अन्दर बाहर से आना या भारत से बाहर को जाना अपने क़ब्ज़े में कर रक्खा है।

भारतवर्ष एक बहुत भारी क़िला है, जिसके भीतर अंग्रेज़ नव्वाबों की जागीर है, जहाँ करोड़पती से लेकर भिखमंगे तक उनके क़ैदी हैं, इन क़ैदियों की कई श्रेणियाँ हैं, जिसमें पहिली श्रेणी में बड़ी-बड़ी रियासतों के शासक महाराजा, राजा, नव्वाब ताल्लुक़ेदार और भारी-भारी उपाधियोंवाले ज़मींदार आदि हैं। उसके बाद बीच की श्रेणी के लोग हैं। परन्तु इन दोनों की गिनती बहुत थोड़ी है। सैकड़ा पीछे निन्यानबे वे दरिद्र क़ैदी हैं, जिन्हें इज़्ज़त के लिए मज़दूर और किसान कहते हैं। उन बेचारों को भर पेट मिट्टी मिली हुई वे रोटियाँ और कीचड़ सी वह दाल और घास का वह भुरता भी भरपेट नसीब नहीं होता, जो इस बड़ी जागीर के मालिक लोग डाकुओं, चोरों, हत्यारों, लठबाज़ों और अत्याचारी गुण्डों को इस क़िले के भीतर की जेलों में खुशी से देते हैं। क्या संसार में ऐसी दुर्दशा किसी सभ्य देश की सुनी गई है ?

इस संसार के अनुपम और विशाल क़िले के भीतर, इन क़ैदियों की जो दशा है, अगर उसका पूरा और सच्चा चित्र इन्हीं क़ैदियों के

सामने रक्खा जाय और उन्हें उनके कष्टों की गम्भीरता का पूरा ज्ञान करा दिया जाय तो शायद उसका फल अत्यन्त भयङ्कर हो, जिसका अनुमान करना बड़ा कठिन है। भूल और अज्ञान ऐसे मौक़ों पर बहुत बड़ी चीज़ है, उससे लाभ भी है, और हानि भी। भूल और अज्ञान की बेहोशी में भारतवर्ष को नश्तर पर नश्तर लगते जाते है, खून का चूसा जाना लार्ड सैलिसूबरी की राय के विरुद्ध अन्धाधुन्ध जारी है। इस बेहोशी को क़ायम रखने के लिए भारत के रहनेवाले सौ में चौरानवे आदमियों को सब तरह की शिक्षा से विदेशी सरकार ने अलग रक्खा है, और कहा यह जाता है कि आम तालीम पहले कभी दी ही नहीं जाती थी। पहले के किसान खेती के काम में जितने होशियार थे उसकी गवाही में पुराने विदेशी लेखक लाख-लाख मुँह से सराहना करते थे। परन्तु गिरमिट की ग़ुलामी ने हमारे यहाँ से कुछ तो खेती की कला में कुशल मजूरों और किसानों को विदेशों में भेज दिया, और अधिकांश भारी लगान कर्ज़ आदि के बोझ से लदकर उजड़ गये। नये ढँग की मुक़दमेबाज़ी में फँस-फँस कर मर-खप गये, और महामारी हैज़ा आदि दुर्भिक्ष के रोग उन्हें उठा ले गये। अकाल बारम्बार पड़ने लगे, और इतनी जल्दी-जल्दी पड़े कि भारतवर्ष में आज अकाल सदा के लिए ठहर गया है। इन सब बातों ने भारत के किसानों की खेती की कला को चौपट कर दिया। जब बेटे को सिखाने का समय आया, बाप चल बसा। भाई-भाई में मुक़दमेबाज़ी हुई, बँटवारे में चार-चार पक्के बीघे खेत लेकर अलग हो गये। अब हर भाई को अपना-अपना हल-बैल अलग रखना पड़ा। उधर मुक़दमेबाज़ी ने घर की सम्पत्ति को स्वाहा कर दिया, इधर साहूकार के दिये हुए ऋण ने ब्याज और सूद पर

सूद मिलाकर सुरसा की तरह अपना मुँह बढ़ाया, और अन्त में रहे-सहे वह चार बीघे मय हल-बैल के निगल गया। घर-घर किसानों के यहाँ यही कहानी आज तक दोहराई जा रही है। गाँवों का उजड़ना आज तक जारी है।

आज भारतवर्ष में बच्चों की मौतें जितनी ज्यादा होती हैं, संसार में कहीं नहीं होतीं। दरिद्रता के कारण माँ-बाप न तो बच्चों को दूध दे सकते हैं और न उनके पालनपोषण की ओर ध्यान देते हैं। बच्चों के होते समय न तो किसी तरह की सहायता पा सकते हैं और न सफ़ाई रख सकते हैं। सफ़ाई और तन्दुरुस्ती भी कुछ अंश तक धन के सहारे ही होती है। इसीलिए दरिद्रता और दुर्भिक्ष ने पहले रास्ता साफ़ करके रोगों के खेमे खड़े किये, और जब मौत का पड़ाव बन गया यमराज ने आकर डेरे डाले। आज भारतवासियों की औसत उम्र २८ बरस की हो गई है। जितने आदमी भारतवर्ष में मरते हैं, उतने संसार में और कहीं नहीं मरते। और देशों की हुकूमतें अपनी आबादी बढ़ाने की चिन्ता में रहती हैं, सुख-समृद्धि बढ़ाती रहती हैं, और इन बातों के लिए ज़रूरत पड़ती है, तो खून की नदियाँ बह जाती हैं। यहाँ की हुकूमत भी खून की नदियाँ बहाती है, परन्तु खून होता है भारतवासियों का, और नदियाँ बह कर विलायत के सुख-समृद्धि को सींचती हैं, और बढ़ाती हैं। इस क़िले के महाप्रभुओं की यह मंशा नहीं है, कि क़ैदियों की ठठरियों में जो खून बने, वह उनके पास रह जाय। मंचेस्टरवालों को तो शायद इस बात से खुशी होगी कि भारत में मौतें ज्यादा होती हैं, और कफ़न की बिक्री अच्छी होती है।

हाथ-पैर के मज़बूत और खेती के काम में कुशल किसान जब

देश से एक वार उजड़ जाते हैं, तो देश के सम्भालने मे युगों का समय लग जाता है। भारतवर्ष की उजड़ी खेती को फिर पहले की तरह अच्छी दशा में लाने के लिए अवसे सैंकड़ों वरस लगेंगे, शर्त यह है कि सुधार के काम में भारत के लोग प्राणपण से लग जायं। विदेशी सरकार हमारी उन्नति के लिए अपनेको वहुत चिन्तित प्रकट करती है परन्तु यह दम्भ मात्र है। उसे वस्तुतः चिन्ता यह रहती है कि पैदावार घटकर हमारी आमदनी को न घटा दे।

आज भारतवर्ष में वेकारी का डंका वज रहा है। यह वात जग-ज़ाहिर है कि खेती में कहीं भी वारहों मास के लिए किसान या मजूर को काम नहीं मिल सकता। वंगाल के फ़रीदपुर ज़िले को भारतवर्ष में आदर्श समृद्ध ज़िला वताते हुए जैक नामक एक सिवि-लियन लिखता है कि यहाँ के किसान तीन महीने की कड़ी मेहनत के वाद नौ महीने विलकुल वेकारी में विताता है। "अगर वह धान के सिवाय पटसन भी उपजाता है तो जुलाई और अगस्त के महीनों में उसे छः हफ्ते का काम और रहता है।"[१] इस तरह कम से कम साढ़े सात महीने वंगाल के किसान वेकार रहते हैं। श्री कैलवर्ट का[२] कहना है कि पंजाव के किसान ३६५ दिनों में अधिक से अधिक १५० दिन पूरी मेहनत करते हैं। वाक़ी सात महीने वेकार रहते हैं। संयुक्तप्रान्त के लिए श्री इडाई का वयान है कि दो वार वोवाई, दो फसलों की कटाई, वरसात में कभी-कभी निराई और जाड़ों में तीन वार सिचाई—किसान के लिए कड़ी मेहनत का काम इतना ही है,—

१. J. C. Jack : The Economic life of a Bengal District, Oxford, 1916, PP. 39.

२. Calvert's Wealth Welfare of the Punjab. PP. 245

बाकी साल भर किसान बिलकुल बेकार रहता है। बिहार और उड़ीसा के लिए श्री टाल्लेंट्स और मध्यप्रान्त के लिए श्री राउटन भी ऐसा ही कहते हैं। श्री गिलबर्ट स्लेटर का कहना है कि मद्रास प्रान्त में जहाँ एक फसल होती है वहाँ किसान को केवल पाँच महीने काम पड़ता है और जहाँ दो, फसल होती हैं वहाँ कुल ८ महीने इस तरह कम से कम चार महीने किसान को दक्षिण देश में बेकार रहना पड़ता है।[१] इस तरह भारतवर्ष भर में कम से कम चार महीने से लेकर नौ महीने तक किसान बिलकुल बेकार रहता है। श्री ग्रेग ने भारत के पक्ष को अत्यन्त दबाकर औसत बेकारी कम से कम तीन महीने रक्खी है। अपने ही पक्ष में अटकल की ऐसी कड़ाई वर्तमान लेखक अन्याय समझता है। यह औसत साढ़े छः महीने होता है परन्तु समीक्षा की कड़ाई और हिसाब के सुभीते के लिए हम इसे छः महीना रखते हैं।

भारतवर्ष की खेती पर निर्भर करनेवाली आबादी सैकड़ा पीछे ७५ के लगभग है। इसमें भी जो लोग खेतों पर मेहनत का काम करते हैं उनकी गिनती लगभग पौने ग्यारह करोड़ है। हम बिना किसी अत्युक्ति के यह कह सकते हैं कि यही पौने ग्यारह करोड़ आदमी औसत छः महीने बिलकुल बेकार रहते हैं। कड़े अकाल के दिनों में विदेशी सरकार सहायता के रूप में भारत के भुक्खड़ों से पत्थर काम लेती है और दो आने रोज़ मजूरी देती है। हिसाब के सुभीते के लिए हम पौने ग्यारह करोड़ की जगह दस ही करोड़ लें

१. Prof. Gilbert Slater : Some South Indian Villages-Oxford University Press, London p. 16., and Census Reports pp. 270, 271 and 274, for Bihar & Orissa, U. P., and C. P. respectively.

और केवल एकसौ अस्सी दिनों की मजूरी दो आने रोज़ के हिसाब से रक्खें तो आदमी पीछे साढ़े बाईस रुपये होते हैं। छः महीने में दस करोड़ आदमियों की मजूरी के इस हिसाब से सवा दो अरब रुपये होते हैं, या सवा करोड़ रुपया रोज़ाना होता है इन पौने ग्यारह करोड़ मनुष्य रूपी मशीनों को बेकार रखकर विदेशी सरकार सवा करोड़ रुपये रोज़ और सवा दो अरब रुपये सालाने का घाटा कराती है। अगर इसे बेकारी का टैक्स समझा जाय, तो भारतवर्ष को इस भयानक बेकारी के पीछे सिर पीछे सात रुपये के लगभग खोना पड़ता है। जिस आदमी की आमदनी साल में छत्तीस रुपये हों, वह क्या सात रुपये या अपनी आमदनी का पंचमांश खो देना सह सकेगा?

संवत् १६७८ की मालगुज़ारी की रकम जो सरकार ने वसूल की, सवा अरब से कुछ अधिक थी। भारत की सारी आमदनी संवत् १६८१ की एक अरब अड़तीस करोड़ के ऊपर थी। भारत सरकार का कुल खर्च जो उस साल हुआ, एक अरब साढ़े बत्तीस करोड़ से कम था। यही मदें विदेशी सरकार की आमदनी और खर्च की मेदों में सबसे बड़ी है। बेकारी के कारण भारतवर्ष को जितना हर साल खोना पड़ता है, वह इनमें बड़ी-से-बड़ी मद का पौने दो गुने से ज्यादा है। यह तो किसानों की मजूरी की रकम का हिसाब रक्खा गया, परन्तु यही मजूर लोग काम करके जो माल तैयार करते वह उनकी मजूरी से कई गुना ज्यादा कीमत का होता। तैयार माल की कीमत अगर मज़दूरी की दूनी भी लगाई जाय तो पौने सात अरब सालाना का घाटा होता है। हर साल पौने सात अरब का घाटा उठानेवाले किसान अगर कुल आठ ही अरब के कर्ज़दार हों तो यह कर्ज़ा कुछ ज्यादा नहीं है। परन्तु जैसे संसार के

किसी सभ्य देश के किसान अपनी जिंदगी के आधे दिन न तो इस तरह बेकार खोते हैं, और न कई करोड़ की संख्या में पेट पर पत्थर बाँधकर सो रहते हैं, और न इस तरह भयानक रूप से ऋणासुर के डाढ़ों के बीच पिस रहे हैं।

इस भयङ्कर बेकारी का भयानक परिणाम भी देखने में आरहा है। ख़ाली दिमाग़ में शैतान काम करता है। जिन लोगों को कोई काम नहीं है वे ज्यादातर हुक्का पीते हैं और तमाखू फूँक डालते हैं। तमाखू का ज़हर हमारे समाज के अंग के रोयें-रोयें में फैल गया है। तमाखू आदर-सत्कार की चीज़ बन गई है। जो तमाखू ख़ून को ख़राब कर देता है, हृदय और आँतों को बिगाड़ देता है, आँख की रोशनी को ख़राब कर देता है, अच्छे ख़ासे मर्द को नामर्द बना देता है, क्षय रोग पैदा करता है, और आदमी के जीवन को घटा देता है, उसी ज़हर की खेती कमाई करने के लिए नहीं तो अपना नाश करने के लिए किसान करता ही है। परन्तु वह इस तरह पर केवल अपने तन-मन को ही नहीं ख़राब करता, बल्कि अपने देश के धन का भी नाश करता है। अगर हम मान लें, कि भारत के बत्तीस करोड़ प्राणियों में केवल आठ करोड़ प्राणी धेले की तमाखू रोज़ खाते, पीते, सूँघते और फूँकते हैं तो इस ज़हर के पीछे सवा छः लाख रुपये रोज़ फूँक देते हैं। साल में तेईस करोड़ के लगभग तमाखू में खर्च कर देते हैं। ताड़ी और शराब की आमदनी से सरकार अंधाधुन्ध फ़ायदा उठाती है, वह तो इसका ख़ासा प्रचार करती है। रहे सहे किसान इन ज़हरों के कारण उजड़ते जाते हैं। हमारे देश में लगभग बारह लाख एकड़ में तमाखू की खेती होती है। "शैतान की लकड़ी" के लेखक ने तो अटकल लगाया है, कि पचास करोड़ रुपये

की तमाखू हमारे देश में ख्प जाती है। सन् १९२० ई० में सरकार को शराब से बीस करोड़ से ज्यादा की आमदनी हुई। अफ़ीम से सन् १९१९-२० में सरकार को ढाई करोड़ से अधिक आमदनी हुई। गाँजा, भाँग, चरस, चाय काफ़ी आदि नशे की चीज़ें भी बेकार किसान को तबाह कर रही हैं।

यह भुक्खड़ जिन्हें आधा पेट खाना भी नहीं नसीब होता नशा किसलिए सेवन करते हैं। भूखा आदमी पापी पेट को भरने के लिए लाचार होकर ऐसे काम भी कर डालता है, जिनके करने में उसे शर्म आती है। जब वह होश में रहता है तब भीतरवाला ऐसे कामों के करने में रुकावट डालता है, परन्तु शरीर का बाहरी काम कैसे चले। भुक्खड़ भीतरवाले की आवाज़ सुनना नहीं चाहता, इसलिए नशे से अपने को बेहोश कर देता है। भूखे बाल-बच्चे कष्ट से तड़फ रहे हैं, कमानेवाला बाप उनके मुँह में अन्न नहीं रख सकता। जी तोड़कर मेहनत करता है, परन्तु मजूरी काफ़ी नहीं मिलती। घोर अकाल के समय में भी भारत में काफ़ी अन्न मौजूद रहता है, परन्तु दरिद्र भुक्खड़ के पास पैसे कहाँ है, कि मोल ले सके। वह बेचारा चिन्ताओं से व्याकुल हो जाता है, तड़पते बाल-बच्चे देखे नहीं जा सकते, नशा उसे बेहोश कर देता है। इसीलिए वह किसी न किसी ढंग से अपने को बेहोश कर लेता है। पाप करने के लिए जिस तरह आदमी नशा पीता है, पाप कराने के लिए भी उसी तरह दूसरों को नशा पिलाता है। विदेशी सरकार अपने स्वार्थ-साधन के लिए इस विशाल क़िले के क़ैदियों को बेहोश रखने के लिए भाँति-भाँति से नशा पिलाती है। हमारे किसान नशे के पीछे भी बेतरह बरबाद हो रहे हैं।

गायों से ज्यादा सीधा कोई पशु नहीं है, परन्तु चारा थोड़ा हो,

और गायें अधिक हों, तो वह भी आपस में लड़ जायँगी। दरिद्रता की जैसी विकट दशा में हमारा देश है। वह तो प्रकट ही है खाने को थोड़ा मिलता है, और बेकारी हद से ज्यादा है, तो उसका नतीजा झगड़ा-फ़साद के सिवा कुछ नहीं हो सकता। यही बात है कि कोई गाँव ऐसा नहीं है। और किसी गाँव में एक घर भी ऐसा नहीं है, जिसमें में झगड़ा-फ़साद का बाज़ार गर्म न हो, और जहाँ आये दिन लोगों में लट्ठबाज़ी न होती हो, और फ़ौजदारी या दीवानी तक जाने की नौबत न आती हो। गाँव का पटवारी और चौकीदार और थाने के दारोगा, सिपाही हमेशा इसी फ़िक्र में रहते हैं, कि कोई झगड़ा खड़ा हो और उनकी जेबें गर्म हों। झगड़े में झगड़नेवालों का नुक़सान ही नुक़सान रहता है। और अपनी शान में ही कोरे रह जाते हैं, और सरकारी लोमड़ियाँ शिकार का वारा-न्यारा करती हैं। गाँव-वालों में कचहरी की दलाली का रोज़गार दरिद्रों की इसी कफ़न खसोटी ने पैदा कर दिया है। जहाँ गाँवों के मुखिया बिना एक कौड़ी ख़र्च कराये सच्चा और शुद्ध न्याय कर देता था, वहाँ आज गाँव के दलाल उकसा-उकसा कर चिड़िया लड़ाते हैं, और भुक्खड़ों तक को अदालत के दरवाज़े पर पहुँचाकर उनका सर्वस्व हर लेने में कोई कोर कसर नहीं रखते।

४. गाँव का सरकारी प्रबन्ध और लगान-नीति

गाँव के प्रबन्ध के लिए सरकार की ओर से प्रत्येक गाँव में मुख्यतः दो मुलाज़िम रहते हैं, एक पटवारी और दूसरा चौकीदार। पटवारी को ज़मीन की नाप-जोख खेतों का लगान और ज़मीन के बटवारे आदि का रेकार्ड रखना पड़ता है। पटवारी इसलिए रखना

जाता है कि उससे गांव का पूरा हाल हुकूमत को मिले। चौकीदार पुलिस की ओर से रहता है कि किसी तरह का उपद्रव हो तो वह उसकी खबर ऊपरी अफ़सरों को दे। विदेशी सरकार की वर्तमान लगान-नीति को समझने के लिए 'टाइम्स' की 'इण्डियन इयर बुक' में जो लेख है उसका सार यह है :—[१]

सरकार की जमीन के लगान-सम्बन्धी नीति यही है कि जमीन की मालिक सरकार है और जमीन का लगान एक तरह से उसे मिलने वाला किराया है। सरकार इस बात को अनुभव करती है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से इस व्याख्या पर आपत्ति की जा सकती है, पर वह कहती है कि सरकार और किसान के बीच अभी जो सम्बन्ध है उसको स्पष्ट करने के लिए यही शब्द उपयुक्त हैं। किसान अपनी जमीन की हैसियत के अनुसार सरकार को लगान देता है। लगान पर समय-समय पर पुनः विचार करने के लिए जो सरकारी कार्यवाही होती है, उसे सेटलमेण्ट या बन्दोबस्त कहा जाता है। भारत में दो तरह के बन्दोबस्त हैं, स्थायी और अस्थायी। स्थायी बन्दोबस्त में तो लगान हमेशा के लिए स्थिर कर दिया जाता है, जो किसान से नहीं बल्कि जमींदार से वसूल किया जाता है। लार्ड कार्नवालिस ने सन् १७९५ में स्थायी बन्दोबस्त कर दिया। अवध और मद्रास के प्रान्तों के कुछ हिस्सों में भी स्थायी लगान निश्चत कर दिया गया था। शेष सारे देश में अस्थायी बन्दोबस्त की प्रथा जारी है। सरकार के सरवे विभाग द्वारा की गई सरवे के आधार पर तीस-तीस वर्ष में प्रत्येक जिले की जमीन की पूरी जाँच होती है। प्रत्येक गाँव की जमीन नापी जाती है। नक़शे बनते हैं। हरेक किसान के खेत को उसमें पृथक-

१. 'विजयी बारडोली' : प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली।

पृथक बताया जाता है, और उनके अधिकारों का रजिस्टर रक्खा जाता है, जिसमें जमीनों का लेन-देन आदि लिख लिया जाता है। इस पुस्तक को 'वाजिबुल अर्ज़' (रेकर्ड ऑव राइट्स) भी कहते हैं। यह सब जांचकर उसके अनुसार लगान क़ायम करने का काम भारत सरकार की सिविल सर्विस के ख़ास तौर पर नियुक्त सभ्यों द्वारा होता है, जिन्हें सेटलमेण्ट अफ़सर कहा जाता है। मि० स्ट्रेची अपनी पुस्तक (इण्डिया के संशोधित संस्करण १९११) में सेटलमेण्ट अफ़सर के कार्यों का नीचे लिखे अनुसार दिग्दर्शन कराते हैं—

सेटलमेण्ट अफ़सर का काम

"सेटलमेण्ट अफ़सर को सरकार की माँग निश्चित करनी पड़ती है, और जमीन सम्बन्धी तमाम अधिकारों, हक़ों और जिम्मेदारियों को रजिस्टर कर लेना पड़ता है। उसकी सहायता के लिए इस काम के अनुभवी सहायक भी दिये जाते हैं। जो प्रायः सब देशी ही होते हैं। एक जिले का इंतजाम करना एक बड़ी जिम्मेदारी का और भारी काम है, जिसमें दिन-रात काम में लगे रहने पर भी बरसों लग जाते थे। खेती-विभाग की स्थापना तथा अन्य सुधारों के कारण अब तो सेटलमेण्ट अफ़सर का काम बहुत कुछ आसान हो गया है, और वह पहले की अपेक्षा बहुत जल्द समाप्त हो जाता है। जितना भी काम सेटलमेण्ट अफ़सर द्वारा होता है, उसकी उच्चाधिकारियों द्वारा जांच होती है, और लगान-निर्णय सम्बन्धी उसकी सिफारिशें तभी अन्तिम समझी जाती है। उसके न्याय-सम्बन्धी निर्णयों की जाँच दीवानी अदालतों में हो सकती है सेटलमेण्ट अफ़सर का यह कर्तव्य है कि वह जमीन सम्बन्धी उन तमाम अधिकारों और हक़ूक़ात को नोट करले, जिनपर आगे चलकर किसान और सरकार के बीच झगड़ा होने

की सम्भावना हो। मतलब यह कि वह किसी बात में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। जो कुछ भी बात हो, उसीको वह ठीक-ठीक लिख ले।"

दो प्रणालियाँ

अस्थायी बन्दोबस्त में भी लगान दो प्रणालियों से वसूल किया जाता है; एक रैयतवारी और दूसरी जमींदारी। जहांतक लगान से सम्बन्ध है, दोनों में स्थूल रूप से यह भेद है कि रैयतवारी प्रणाली से जिन प्रदेशों में लगान वसूल किया जाता है, वहाँ काश्तकार सीधा सरकार को लगान देता है, जहाँ जमींदारी प्रणाली है, वहां जमींदार अपने इलाक़े का लगान खुद वसूल करके देता है। अवश्य ही इसमें उसे भी कुछ हिस्सा मिलता है।

रैयतवारी प्रणाली भी दो तरह की होती है। एक तो वही जिसमें किसान खुद सरकार को लगान देता है, और दूसरी वह जिसमें गाँव या जाति का मुखिया गाँव से लगान वसूल करने देता है। सरकार के प्रति जिम्मेदार तो मुखिया ही होता है इस तरह की रीति उत्तर भारत में अधिक है और पहिले प्रकार की रैयतवारी प्रणाली मद्रास, बम्बई, ब्रह्मा और आसाम में प्रचलित है।

पहले की अपेक्षा आजकल की लगान नीति सब प्रकार की जमीनों पर, किसानों के लिए अधिक अनुकूल है। पहले तो आगामी सेटलमेण्ट की अवधि में जमीन की जो औसत कूती जाती थी, उसीपर लगान लगा दिया जाता था। अब तो लगान कूतते समय जमीन की जो उपज प्रत्यक्ष पाई जाती है, उसीके आधार पर लगान का निश्चय किया जाता है। इसलिए किसान अगर अपनी मेहनत से जमीन की पैदावार को कुछ बढ़ा लेता है, तो उसका सारा फायदा उसीको मिलता है। हाँ, नये बन्दोबस्त में इस जमीन को किस वर्ग में रक्खा

जाय, इसपर पुनः विचार करके, यदि किसान का लाभ नहर, रेल, जैसी सार्वजनिक लाभ की वस्तु के कारण अथवा बाज़ार भावों में वृद्धि होने के कारण बढ़ गया हो, तो उस ज़मीन को नये वर्ग में डाला जा सकता है। पर सरकार ने इस सिद्धान्त को अब मान लिया है कि किसी ख़ास तरीक़े पर कोई किसान अगर अपनी ज़मीन की उपज बढ़ा लेता है, तो उसपर लगान न बढ़ाय जाय। इस विषय में उसने कुछ नियम भी बना लिये हैं।

लगान की तादाद

भारत में ज़मीन पर जो लगान लिया जाता है, उसकी एक निश्चित दर नहीं है। वह स्थायी बन्दोबस्तवाले सूबों में एक प्रकार का है तो अस्थायी बन्दोबस्तवाले सूबों में दूसरे प्रकार का। फिर ज़मींदारी तथा रैयतवारी प्रदेशों में और भी अलग-अलग। रैयतवारी में भी वह ज़मीन की क़िस्म उसके अधिकार आदि के अनुसार न्यूनाधिक है। बंगाल में लगभग १६०००००००) रुपये ज़मींदार लोग अपनी रैयत से वसूल करते हैं, परन्तु चूंकि वहाँ स्थायी बन्दोबस्त हो गया है, इसलिए सरकार उसमें से केवल ४००००००) रुपये लेती है। अस्थायी बन्दोबस्तवाले प्रदेशों में ज़मींदारों से, अधिक-से-अधिक लगान का ५० फ़ी सैकड़ा सरकार वसूल करती है। कहीं-कहीं तो उसे फ़ी सैकड़ा ३५ बल्कि २५ ही पड़ता है। पर यह निश्चित है कि वह फ़ी सैकड़ा ५० से कभी अधिक नहीं होता। रैयतवारी प्रणाली में सरकार का हिस्सा कितना होता है यह ठीक-ठीक बताना ज़रा कठिन ही है। पर ज़मीन की पैदावार का अधिक-से-अधिक पाँचवाँ हिस्सा सरकार का भाग समझ लिया जाय। इससे कम तो कई प्रकार के रेट मिलेंगे, पर इससे अधिक तो कहीं नहीं है।

लगभग सोलह सत्रह वर्ष पहले भारत के कुछ प्रतिष्ठित लोगों ने भारत सरकार को अपने दस्तख़त से इस आशय की एक दरख़्वास्त (Memorial) भेजी थी, कि वह जमीन की उपज के पाँचवें हिस्से से ज्यादा लगान कभी न ले। उस समय लार्ड कर्जन वाइसराय थे। उन्होंने इस 'मेमोरियल' तथा अन्य 'रिप्रेज़ेन्टेशेन्स' के जवाब में अपनी लगान-नीति के बचाव में एक प्रस्ताव प्रकाशित किया था। उसमें लिखा था कि "सरकार को जितना लगान लेने को अभी कहा जा रहा है, उससे तो इस समय वह बहुत कम ले रही है। प्रत्येक प्रान्त में औसतन् लगान इससे कम ही है।" यह प्रस्ताव तथा उन प्रान्तीय सरकारों के बयान भी, जिनपर यह कथन आधार रखता था, बाद में पुस्तकाकार छपा दिये गये थे। आज भी सरकार की लगान-नीति के नियमों को प्रकट करनेवाली वही सबसे प्रामाणिक पुस्तक समझी जाती है। उपर्युक्त प्रस्ताव में अनेक सिद्धांत निश्चित किये गये हैं, उनमें से मुख्य-मुख्य बातें नीचे दी जाती हैं :—

लगान नीति

"(१) जमींदारी प्रदेशों में सरकार की नीति की कुंजी यही है कि धीरे-धीरे लगान कम किया जाय। अधिक-से- अधिक फ़ी सैकड़ा ५० मालगुजारी ली जाय। इस समय तो यदि ग़लती होती है, तो लगान कम वसूल किया जाता है, अधिक नहीं।

(२) इन प्रदेशों में जमींदारों के अत्याचारों से काश्तकारों को बचाने के लिए क़ानून बनाकर या अन्य तरह से हस्तक्षेप करनें में सरकार कभी हिचकिचाती नहीं।

(३) रैयतवारी प्रदेशों में बन्दोबस्त की मीयाद दिन-ब-दिन अधिक बढ़ाने की कोशिश हो रही है। नये बन्दोबस्त के समय जो-जो

कार्यवाहियाँ होती हैं उनको अधिक सरल और सस्ती बनाने की नीति है।

(४) ज़मीन सम्बन्धी स्थानीय कर बहुत ज्यादा और भारी नहीं हैं।

(५) जैसा कि कहा जा रहा है, ज़मीन से इतना कर वसूल नहीं किया जा रहा है कि उसके कारण लोग दरिद्र और कंगाल हो रहे हों। उसी तरह अकालों का कारण भी लगान नीति नहीं है। तथापि सरकार ने आगे के कार्य की सुविधा के लिए कुछ सिद्धांत क़ायम कर लिये हैं।

(अ) अगर लगान में इज़ाफ़ा करना है तो वह क्रमशः और धीरे-धीरे किया जाय।

(ब) लगान वसूल करने में कुछ उदारता से काम लिया जाय। मौसिम तथा किसानों की दशा को ध्यान में रखते हुए, कभी-कभी लगान वसूल करने की तारीख़ बढ़ा दी जाय और लगान माफ़ भी कर दिया जाय।

(इ) स्थानीय कठिनाई के समय लगान बड़े पैमाने पर घटाया भी जा सकता है।"

ऊपर की प्रकाशित नीति हाथी के दिखाने के दाँत हैं। खाने के दाँत और ही हैं। इस अवतरण से तो ऐसा जान पड़ता है कि प्रजा का दरिद्र होना, बार-बार अकाल का पड़ना, करोड़ों की संख्या में भारतवासियों का मरना सब कुछ भारतवासियों के अपने कसूर से है। लगान और मालगुज़ारी की सारी शिकायतें झूठ हैं। उसका एक अच्छा सा उदाहरण यह है कि गवर्नमेण्ट कहती तो है कि हम मुनाफ़े का ज्यादा-से-ज्यादा आधा लेते हैं परन्तु मातार ताल्लुक़ा (गुजरात) में लगान का ३-४ गुना कर लगाया गया। दो एक गाँवों में ५४

प्रतिशत था, परन्तु बाक़ी सब गांवों में ७१ से लेकर ९४ प्रतिशत तक कर लगाया गया था।[१] जो बातें इस सम्बन्ध में सरकार के ही बताये हुए अंकों के आधार पर हम पहले दिखा आये हैं उनके ऊपर इस अवतरण से कैसी सफ़ेदी हो जाती है। ज़्यादा टीका-टिप्पणी की ज़रूरत नहीं है। सारांश यह कि इस सफ़ेदी के होते हुए भी अत्यन्त कठोर और किसी प्रकार न मिटनेवाला सत्य यह है कि संसार में कोई देश न तो भारत-सा दरिद्र है, और न ऐसे भारी भूमि-कर की चक्की में पिस रहा है। इस भारी कर के बोझ को सहना भी हमारे देश के लिए लाभकर होता, अगर यह धन हमारे देश के भीतर ही ख़र्च किया जाता। एक तो भारी कर का अत्याचार था ही, दूसरे उससे भी कहीं भारी अत्याचार यह है, कि देश का धन बाहर चला जाता है। इसपर बड़े भोलेपन से यह जवाब दिया जाता है कि आख़िर हुकूमत का ख़र्च और सेना का ख़र्च कैसे चले ? दरिद्र किसान इस जवाब से कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकता। "अगर आप किफ़ायत से ख़र्च नहीं कर सकते, तो आपमें बन्दोबस्त की योग्यता नहीं है। आपने हमसे कब पूछा कि हम इतना ख़र्चीला बन्दोबस्त करें या न करें। हमें आपकी सेवा नहीं चाहिए। आपके लुटाऊ कलेक्टर और कमिश्नर नहीं चाहिए। हमें तो चाहिए रोटियां, जिनके लिए हम तरस रहे हैं।"

१. "An Economic Survey" Young India, 1929, page 389 para 6

: १० :

किसानों की बरबादी

१. क्या थे क्या हो गये ?

हम जब अपने पहले की सुख-समृद्धि के इतिहास से आज की अपनी दशा का मुक़ाबला करते हैं, तो चकरा जाते हैं कि हम क्या थे आज क्या हो गए। हम सुख से रहते आए। मेहमानों से जी खोलकर मिलते रहे। मेहमान आते थे तो हम अपना परम सौभाग्य मानते थे। उनके साथ हमारे घरों में कल्याण आता था। लक्ष्मी आती थी। परन्तु जबसे ये विदेशी व्यापारी मेहमान आए तभी से हमारा दुर्भाग्य शुरू हो गया। पहले भी विदेशियों से सम्बन्ध था। परन्तु वे सचमुच व्यापारी थे। लुटेरे न थे। ये कैसे मेहमान आये जिनकी निगाह सदा हमारे माल पर रहीं और आज भी, जब हम बरबाद हो गए हैं, उनकी लूट-खसोट घटने का नाम नहीं लेती।

२. लुटेरों की मेहमानी

जिस समय विदेशियों से हमारा अधिक सम्बन्ध न था उस समय भारतवासियों की खत्ती बखारियों में अन्न समाता न था, पशु यथेष्ट थे, दूध घी अच्छी तरह मिलता था, लोगों के शरीर पर मज़बूत कपड़े भी अच्छी तरह दिखाई देते थे और महंगी का तो कहीं नाम भी न था। उन दिनों हृदय में कंजूसी को जगह न मिलती थी। कोई मेहमान आ जाता था तो वह भार नहीं होता था। उसके आने

से किसान फूले नहीं समाता था। देशवासियों में सादगी, सन्तोष तथा आजादी दिखाई देती थी। किन्तु जबसे हम शिकारियों के जाल में उलझ गए, तबसे हमारा धन और माल जहाजों में लद-लदकर यहाँ से जाने लगा। पहले यहाँ की अनमोल कारीगरी की चीज़ें ही जाती थीं, परन्तु अब कच्चा माल ढो-ढो कर जाने लगा। आज तो विदेशियों का बस चले तो वे भारत भूमि की आँतें तक निकाल-कर रेल में लादकर ले जायँ। और यही हो भी रहा है। सोना, चाँदी और मेंगनीज आदि धातुओं की खानों से जो माल निकलता है, वह कहाँ जाता है? अन्न, रुई, तेलहन यहाँ तक कि हड्डियाँ तक बिनवा-बिनवा कर कहाँ जाती हैं? साथ ही मजेदार बात यह है, कि हमें बतलाया जाता है, कि अंग्रेजों को यह सब लूटने का परिश्रम हमारे ही लाभ के लिए करना पड़ता है। पाँच करोड़ की रुई जाती है और साठ करोड़ का कपड़ा आता है। बीच के पचपन करोड़ कहाँ चले जाते हैं? इस लूट से तो नादिरशाह की लूट अच्छी थी। उस लूट को हम लूट तो कह सकते हैं। यह कप्पड़शाह की लूट तो लूट भी नहीं कहलाती। वह तो यही कहता है कि भारतवासियों के शरीर की शोभा बढ़ाने के लिए उन्हें सस्ते कपड़े देने और उन्हें भाँति-भाँति के लाभ पहुंचाने के लिए ही वह यहाँ आया है। यही तो उसका जादू है। और सबसे बढ़कर अचरज की बात तो यह है कि भारत के किसान उसकी लूट में शामिल होते हैं और उसमें अपना लाभ समझते हैं।

३. उनका जादू

विदेशियों ने कहा कि तुम्हें खेती करना नहीं आता। तुम्हारे हल और औज़ार बहुत पुराने हैं, तुम्हारा खेती का ढंग पुराना है—जंगली

है। अब तुम्हें विलायती ढंग के लोहे के हल काम में लाना चाहिए। हमारा कृषि विभाग उसका प्रयोग करके दिखावेगा। हमारे अनेक सीधे-सादे किसान इस भ्रम में पड़कर, कि साहब जो कहते हैं ठीक होगा, उनके कहे पर चले, परन्तु नतीजा उलटा ही हुआ। साहब कहते हैं कि किसानों के खेत विस्तार में बहुत छोटे-छोटे हैं। इस तरह के खेतों में वैज्ञानिक ढंग से खेती नहीं हो सकती। भाफ़ के इंजन से चलनेवाले औज़ार इनमें काम नहीं दे सकते। इसलिए छोटे-छोटे किसानों को उजाड़ कर ज़मीन के बहुत बड़े टुकड़ों में खेती करनी चाहिए। ठीक है, घर-घर में छोटे-छोटे चूल्हे रखने में हरेक घर की स्त्रियों को रोटी-पानी में फँसना पड़ता है, और उनका बहुत समय नष्ट होता है। यदि इनके स्थान में बड़े-बड़े भठियारखाने खोल दिये जायं, तो अनेक स्त्रियों को फ़ुरसत मिल जाय, उनका समय बचे और आर्थिक दृष्टि से भी लाभ हो। अंक रखकर भी यह लाभ सिद्ध किया जा सकता है, इसलिए छोटे-छोटे चूल्हों को नष्ट करके रोटी-पानी के झंझट से भी पीछा क्यों न छुड़ा लिया जाय? भारतवासी जंगली हैं। उनका उत्तराधिकार का क़ानून भी पुराने ढंग का है। उसके कारण ज़मीन छोटे-छोटे टुकड़ों में बटती जाती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए एक नया क़ानून बनाकर छोटे-छोटे किसानों से ज़मीन छीनली जानी चाहिए, और किसी बड़े ज़मींदार को—चाहे वह गोरा हो या काला—दे देनी चाहिए। इससे पैदावार बढ़ेगी, वैज्ञानिक ढंग से खेती हो सकेगी और आधुनिक औज़ार काम में लाये जा सकेंगे। औज़ार सब विलायत से आवेंगे, टूटे फूटेंगे तो उनके कल पुर्जे भी वहीं से मंगाने पड़ेंगे। वैज्ञानिक खाद भी काम में लाई जाय ताकि उसे बनाने और बेचनेवालों

कम्पनियों को लाभ हो। उपाय तो बहुत बढ़िया है। इसकी बदौलत छोटे-छोटे किसान ज़मीन छोड़कर मज़े के मजूर बन सकते हैं। यह सब अर्थशास्त्र है। न गृहशास्त्र न नीतिशास्त्र, केवल अर्थशास्त्र—अर्थशास्त्र !!!

अर्थशास्त्र की दृष्टि से पशुपालन भी हानिकर है, इसलिए पशुओं को बेच देना चाहिए। कोई गाहक न मिले तो उन्हें क़साईख़ाने में भेज दीजिए। वहाँ उनकी हड्डियाँ और चमड़े आदि की अच्छी क़ीमत खड़ी हो जायगी। इसके बाद ले आइए पम्प और तेल के इञ्जन और छोड़िये पुर चलाकर खेत सींचने का झंझट! कम्पनी-वाले ख़ुद आकर इञ्जन चालू कर जायँगे इसका वे मेहनताना भी आपसे न माँगेंगे। आपको केवल किरासिन तेल लाना होगा, और कुछ नहीं। बस फिर जितनी जी चाहे उतनी सिंचाई कीजिए। किसान इस तरह की बातें सुनकर अचम्भे में पड़ जाता है, और इञ्जन लाने का विचार करने लगता है। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। वह सोचता है कि जो सबकी गति होगी, वही मेरी भी होगी।

४. हर बात में उन्होंने अपना फ़ायदा सोचा

पहले खेत में जो पैदावार होती उसीमें सरकार का भाग रहता था। यदि फ़सल पैदा होती थी, तो सरकार लगान लेती थी और फ़सल न होती थी तो न लेती थी। बाद को इसमें झंझट दिखाई दी, इसलिए नगद मालगुजारी या लगान लेना स्थिर हुआ। किस ज़मीन का कितना लगान होना चाहिए यह निश्चित करना सरकार का काम है, इसमें किसान की सम्मति लेना ज़रूरी न रहा। वह इन बातों को क्या जाने? प्राचीन काल में भारत के राजा और बादशाह पैदावार

का छठा भाग बतौर मालगुज़ारी के लेते थे, परन्तु अँग्रेज़ बहादुर ने इसे खूब बढ़ाया। किसान की मजूरी और लागत निकल आये तो गनीमत, बाक़ी सभी मालगुज़ारी में चला जाता है। स्वर्गीय दत्त महोदय ने सरकारी प्रमाणों से ही साबित कर दिया है, कि सरकार फ़ी सैंकड़ा पचास से भी अधिक मालगुजारी लेती है और दिन पर दिन इसमें भी इज़ाफ़ा होता जा रहा है। किसान के सिर का बोझ इस तरह धीरे-धीरे बढ़ता ही जाता है। मालगुजारी तै करनेवाले अफ़सरों के ख़िलाफ़ कोई शिकायत सरकार में सुनी ही नहीं जाती। किसान अगर खेत का सुधार कर खेती की बढ़ती करता है, कुआँ खुदवाता है और पैदावार बढ़ाता है; तो उसके कारण भी मालगुजारी बढ़ जाती है। ऐसी दशा में किसान को खेती की दशा सुधारने की इच्छा कैसे हो सकती है? इस तरीक़े के कारण किसान की माली हालत दिन-पर-दिन ख़राब होती गई, और कोई सहारा न रहने के कारण अकाल में डटे रहने की ताक़त घट गई। इसका नतीजा यह हुआ कि वह क़र्जदार होगया। जिसकी प्रतिष्ठा जितनी कम और अवस्था जितनी लाचार होती है, उसको ब्याज भी उतना ही अधिक देना पड़ता है। इस कारण से किसानों की देनदारी धीरे-धीरे बढ़ती ही गई। इस समय उनके सिरपर क़र्ज का बोझ इतना ज़्यादा होगया है, कि वे इससे दबे जा रहे हैं और उनके छुटकारे का प्रश्न बहुत ही कठिन बन गया है।

किसानों को इस देनदारी से छुटकारा दिलाने के लिए दक्षिण भारत में एक क़ानून बनाया गया है, उसका नाम है "दक्षिण के किसानों को आराम पहुंचानेवाला क़ानून" इस क़ानून के मुताबिक पहले महाराष्ट्र में और फिर गुजरात में काम किया गया। इस

कम्पनियों को लाभ हो। उपाय तो बहुत बढ़िया है। इसकी बदौलत छोटे-छोटे किसान ज़मीन छोड़कर मज़े के मजूर बन सकते हैं। यह सब अर्थशास्त्र है। न गृहशास्त्र न नीतिशास्त्र, केवल अर्थशास्त्र—अर्थशास्त्र !!!

अर्थशास्त्र की दृष्टि से पशुपालन भी हानिकर है, इसलिए पशुओं को बेच देना चाहिए। कोई गाहक न मिले तो उन्हें क़साईख़ाने में भेज दीजिए। वहाँ उनकी हड्डियाँ और चमड़े आदि की अच्छी क़ीमत खड़ी हो जायगी। इसके बाद ले आइए पम्प और तेल के इञ्जन और छोड़िये पुर चलाकर खेत सींचने का झंझट! कम्पनी-वाले ख़ुद आकर इञ्जन चालू कर जायँगे इसका वे मेहनताना भी आपसे न माँगेंगे। आपको केवल किरासिन तेल लाना होगा, और कुछ नहीं। बस फिर जितनी जी चाहे उतनी सिंचाई कीजिए। किसान इस तरह की बातें सुनकर अचम्भे में पड़ जाता है, और इञ्जन लाने का विचार करने लगता है। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। वह सोचता है कि जो सबकी गति होगी, वही मेरी भी होगी।

४. हर बात में उन्होंने अपना फ़ायदा सोचा

पहले खेत में जो पैदावार होती उसीमें सरकार का भाग रहता था। यदि फ़सल पैदा होती थी, तो सरकार लगान लेती थी और फसल न होती थी तो न लेती थी। बाद को इसमें झंझट दिखाई दी, इसलिए नगद मालगुजारी या लगान लेना स्थिर हुआ। किस ज़मीन का कितना लगान होना चाहिए यह निश्चित करना सरकार का काम है, इसमें किसान की सम्मति लेना ज़रूरी न रहा। वह इन बातों को क्या जाने? प्राचीन काल में भारत के राजा और बादशाह पैदावार

का छठा भाग बतौर मालगुज़ारी के लेते थे, परन्तु अंग्रेज़ बहादुर ने इसे खूब बढ़ाया। किसान की मजूरी और लागत निकल आये तो गनीमत, बाक़ी सभी मालगुज़ारी में चला जाता है। स्वर्गीय दत्त महोदय ने सरकारी प्रमाणों से ही साबित कर दिया है, कि सरकार फी सैकड़ा पचास से भी अधिक मालगुजारी लेती है और दिन पर दिन इसमें भी इज़ाफ़ा होता जा रहा है। किसान के सिर का बोझ इस तरह धीरे-धीरे बढ़ता ही जाता है। मालगुजारी तै करनेवाले अफ़सरों के खिलाफ़ कोई शिकायत सरकार में सुनी ही नहीं जाती। किसान अगर खेत का सुधार कर खेती की बढ़ती करता है, कुआं खुदवाता है और पैदावार बढ़ाता है; तो उसके कारण भी मालगुजारी बढ़ जाती है। ऐसी दशा में किसान को खेती की दशा सुधारने की इच्छा कैसे हो सकती है? इस तरीक़े के कारण किसान की माली हालत दिन-पर-दिन खराब होती गई, और कोई सहारा न रहने के कारण अकाल में डटे रहने की ताक़त घट गई। इसका नतीजा यह हुआ कि वह क़र्जदार होगया। जिसकी प्रतिष्ठा जितनी कम और अवस्था जितनी लाचार होती है, उसको व्याज भी उतना ही अधिक देना पड़ता है। इस कारण से किसानों की देनदारी धीरे-धीरे बढ़ती ही गई। इस समय उनके सिरपर क़र्ज का बोझ इतना ज़्यादा होगया है, कि वे उससे दबे जा रहे हैं और उनके छुटकारे का प्रश्न बहुत ही कठिन बन गया है।

किसानों को इस देनदारी से छुटकारा दिलाने के लिए दक्षिण भारत में एक क़ानून बनाया गया है, उसका नाम है "दक्षिण के किसानों को आराम पहुँचानेवाला क़ानून" इस क़ानून के मुताबिक पहले महाराष्ट्र में और फिर गुज़रात में काम किया गया। इस

क़ानून से सरकार की लगान नीति की सख़्ती में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई। इसका नतीजा सिर्फ़ यही हुआ है, कि सङ्कट के समय किसानों को उधार देनेवाला भी अब कोई नहीं रहा। सरकार ख़ुद किसानों को रुपया उधार देती है और तक़ाविया बाँटती है। इसकी किस्तें, नियम और ब्याज आदि बातें इस तरह गढ़ी गई हैं, कि किसान पानी से निकलकर आग में जा गिरा है। किसान को अपने पिता का प्रेत कर्म करना हो या कन्या का विवाह करना हो तो उसे तकावी नहीं मिल सकती। वह सिर्फ़ खेती के काम के लिए ही मिल सकती है। उसे वसूल करनेवाले भी माल मुहकमे के अफ़सर ही होते हैं। पत्रं-पुष्पं से उनकी भली भाँति पूजा करनी होती है, एक ओर तकावी लेते समय किसान लूटा जाता है और दूसरी ओर उसे चुकाते समय कठिन से कठिन क़ायदों की पाबन्दी करनी पड़ती है। इससे किसान निराश हो जाता है। एक ओर महाजन ने रुपया देना बन्द कर दिया, दूसरी ओर सरकार सख़्ती करने लगी। किसान को किसीका भी सहारा न रहा। उसे खेती या गृहस्ती के ख़र्चे के लिए वक़्त बेवक़्त कुछ-न-कुछ रुपयों की ज़रूरत पड़ती ही है, लेकिन अब वे कहाँ से लाये? किसानों की इस बेबसी से एक तीसरे ही दल ने लाभ उठाया। यह दल काबुली पठानों का था। हाथ में छुरा लेकर यह दल कार्यक्षेत्र में उतरा। काबुलियों के ब्याज ने महाजन और सरकार को भी भुला दिया। रुपये दो या हड्डियाँ तुड़वाओ। यही काबुलियों का नियम था। महाजन किसान को एकदम चूसता न था। वह आँखें दिखाता था, नरम-गरम होता था, किन्तु किसान को ज़िन्दा रहने देता था। एक तो पुश्त दर पुश्त से लेनदेन, दूसरे हिन्दू समाज, इसलिए वह

अधिक सख्ती कर भी न सकता था। किन्तु कावुली को क्या? महाजनों का लेन-देन वन्द होने पर इस समय देहात में कावुली जो लूट मचा रहे हैं, उससे किसानों की हालत का पता अच्छी तरह चल सकता है। किसान खेत छोड़कर कहाँ जाय और क्या करे? किसानों को आराम पहुँचानेवाले सरकारी क़ानून ने ही यह हालत पैदा की है। डाक्टर भंडारकर जैसे सरकार के खैरख्वाह ने भी एक वार व्यवस्थापिका परिषद में कावुलियों की इन ज़्यादियों का वर्णन कर, प्रजा के प्रति सरकार के उपेक्षा भाव की निन्दा की थी। एक ओर मालगुज़ारी का वोझ दिन-पर-दिन वढ़ता जा रहा है, क्योंकि विना उसके गोरे हाकिमों की वड़ी-वड़ी तनख्वाहें और भारतवासियों को क़ब्जे में रखने और विदेशों पर चढ़ाई करने के लिए रक्खी हुई फौज़ का खर्च चलाना कठिन है और दूसरी ओर किसानों की देनदारी और लाभदायक कहे जानेवाले क़ानूनों का भयङ्कर परिणाम दोनों के वीच में वेचारे किसान पिसे जा रहे हैं।

किसान को रुपयों की ज़रूरत तो पड़ती ही है। इसके लिए उसे ऐसी चीज़ें वोनी पड़ती हैं जिससे रुपये मिल सकें। वच्चों के लिए अन्न और पशुओं को चारा चाहिए। किंतु सरकार और कावुलियों के आगे वह इन चीज़ों का विचार तक नहीं करता। वच्चे और पशुओं का चाहे जो हो, सरकार का लगान और कावुली का पावना तो चुकाना ही होगा। इस प्रकार लगान देने के लिए, कावुली को खुश रखने के लिए, महाजन से कुछ अन्न पानी लिया हो तो उससे उऋण होने के लिए, किसान को अपनी पैदावार—समूचे वर्ष के कठिन परिश्रम का फल वेच देना पड़ता है। न वह अनुकूल भाव की राह देख सकता है, न अनुकूल समय की। फल यह होता है कि उसे

अपने माल का पूरा दाम भी नहीं मिलता। मजबूर होकर सब मिट्टी के मोल बेच देना पड़ता है। चैत में जिस समय गेहूँ पैदा होता है, उस समय उसे चार रुपये मन बेच देना पड़ता है, किन्तु बरसात में खाने या कातिक में बोने के लिए जब उसे उसकी ज़रूरत पड़ती है, तब वही छः रुपये मन ख़रीदना पड़ता है। नक़द रुपये तो उसके पास रहते ही नहीं, इसलिए उसे यह भी उधार लेना पड़ता है। इन रुपयों का ब्याज जोड़ने पर उसे पहले के भाव से दूना या इससे भी अधिक देना पड़ता है। इस तरह माली मुसीबत के कारण किसान को दूनी चोट सहनी पड़ती है। जिस समय किसानों को सरकारी किस्त चुकानी होती है, उस समय किसी हाट में जाकर देखने से, किसान किस प्रकार अपना अन्न मिट्टी मोल बेचते हैं, इसका पता चल सकता है। सरकार की किस्त महाजन या काबुली से भी भयङ्कर होती है। काबुली तो अन्त में मनुष्य ठहरा, किस्त मनुष्य थोड़े ही है जो मान जायगी। किस्त माने मशीन। मशीन चलाने के लिए आकाश ढूंढ कर या पाताल फोड़कर कहीं न कहीं से तेल लाना ही होता है। किस्त की बदौलत किसान के यहाँ साक्षात् यमराज आ पहुंचते हैं। जिस समय उनका आगमन होता है उस समय किसान को अपनी प्यारी-से-प्यारी वस्तु बेंच देनी पड़ती है। पशुओं का चारा बेच देना पड़ता है, जी जिलाने के लिये रक्खा हुआ अन्न तक बेच देना पड़ता है और वह भी मिट्टी के मोल। बाज़ार भाव तो व्यापार के अनुसार घटता बढ़ता है। उससे फ़ायदा उठाने के लिए वक्त का इन्तज़ार करना पड़ता है, किन्तु किस्त के समय में घटा-बढ़ी न हो सकने के कारण किसान को तत्काल अपनी चीज़ें बेच देनी पड़ती है। किसान को इन सब दुःखों से बचाने के लिए सरकार ने सहयोग समितियों की

स्थापना की। जिन किसानों की पंचायतें तोड़कर उनका आपसी मेल-जोल नष्ट किया गया था, उन्हींमें इन समितियों द्वारा आपसी मेल-जोल की कोशिश की गई। लेकिन इस उपाय का परिणाम भी शून्य में ही आया। जिन गाँवों में ऐसी समितियाँ क़ायम की गईं, उन गाँवों को इनसे लाभ होना तो दूर रहा, उलटे किसान इन नई किस्म के सरकारी अफ़सरों के नीचे इस तरह दब गये कि जिन गाँवों में ये समितियाँ अभी तक क़ायम हैं उनमें कोई दूसरा आन्दोलन चल ही नहीं सकता। अनुभव ने बतलाया है कि जिन गाँवों में सहयोग समितियाँ हैं उन गाँवों में खादी के आन्दोलन की जड़ नहीं जमने पाती। जम भी कैसे सकती है? किसान उस सहयोग समिति के नीचे कुछ-न-कुछ दबे ही रहते हैं। ऊपर से सुपरवाईज़र और आर्गनाइज़र उन्हें लाल पीली आँखें दिखलाया करते हैं। ऐसी अवस्था में बेचारा किसान क्या कर सकता है? सहयोग समितियों से क्या-क्या लाभ हुए इसका वर्णन हम यहाँ करना नहीं चाहते। इस सम्बन्ध में सिर्फ इतना ही कहना काफी है कि उनका व्याज, उनमें होनेवाली धूर्तता, उनकी किस्तें, उनकी सख़्त निगरानी और उनकी गोलमाल से जहाँ-जहाँ वे क़ायम हैं वहाँ लोग बेतरह ऊब उठे हैं।

५. मालगुज़ारी की तहसील

सरकार ने क़ानून बनाकर, सरकारी मालगुजारी साल में दो किस्तों में लेना तय किया है, किन्तु देहात में मालगुजारी वसूल करनेवाले हाकिम या पटवारी उसे एक ही बार में—एक मुश्त, वसूल करने की कोशिश करते हैं। वे किसान पर निजी तौर से दबाव डालकर उसे समझाते हैं कि, 'भविष्य में शायद रुपये रहें न

रहे, सरकार का लगान तो आख़िर देना ही होगा, सब एकसाथ ही क्यों नहीं दे देते ?" सरकार ने कानून बनाया कि फ़सल चार आने से कम हो तो लगान उस साल मुल्तवी रखकर अगले साल लिया जाय। किन्तु पटवारी और सर्कल इन्स्पेक्टरों की यह हालत है कि पैदावार कम होने पर भी वे अधिक ही लिख मारते हैं। इस सम्बन्ध में न तो वे किसानों से पूछते हैं न कोई जाँच ही करते हैं। क़ानून आल्मारियों की किताबों में ही रह जाते हैं। ऊँचे अधिकारियों को छोटे कर्मचारियों की बात माननी ही पड़ती है। न मानें तो देहात में सरकार की प्रतिष्ठा नष्ट हो जाय। गुजरात के खेड़ा ज़िले में यही हुआ था। पहले सरकार को छोटे कर्मचारियों की बात रखनी पड़ी थी, किन्तु बाद को आन्दोलन के कारण उसे अपना विचार बदलना पड़ा।

छोटे कर्मचारी अक्सर रिश्वतख़ोर होते हैं। किसान को जब कोई काम पड़ता है तो उनकी पूजा अवश्य करनी पड़ती है। सरकारी क़ानून है किसी मिसिल की नक़ल ज़रूरी हो, तो एक आना देने से मिल सकती है, किन्तु चाहे जिस किसान से पूछिये, कि एक आना देनेपर क्या कभी समय पर काम हुआ है ? नाम बदलवाना हो, तो पहले पटवारी साहब को एक रुपया दक्षिणा देनी होगी। पटवारी की लड़की या तहसीलदार के लड़के का व्याह होने पर किसान क्या-क्या सौगात नज़राना देते हैं, सो सुनिए। सरकारी नौकरों को तरकारी, दूध और घी में कितने पैसे ख़र्च करने पड़ते हैं ? उनके सफ़र के लिए सवारी का इन्तज़ाम कौन करता है ? घोड़े की लगाम टूट गई तो मोची हाज़िर है, तम्बू के लिए खूँटों की ज़रूरत हुई तो बढ़ई बसूला लिये खड़ा है, घोड़े के लिए घास की ज़रूरत हुई तो किसान

की लांक (दानों समेत अन्न के पौधों के गट्ठे) मौजूद हैं, शीतल जल के लिए घड़ा या सुराही चाहिए तो कुम्हार लिये खड़ा है, हजामत या चम्पी करवानी हुई तो नाई हाज़िर है, किसी दूसरे गाँव को चिट्ठी या ख़बर भेजना है तो वेगार के लिए चमार या भंगी मौजूद है, दूध की जरूरत हुई तो अहीर खड़ा है। घी दूसरों को रुपये सेर नहीं मिलता, किन्तु हुजूर को रुपये का दो सेर देना होगा, क्योंकि उनसे किसी दिन काम पड़ सकता है। इस तरह छोटे-बड़े सभी हुजूर मौज करते हैं, तब मुखिया और पटवारी ही क्यों बाक़ी रह जायँ? मुखिया का खेत निराना है, सभी मजूरी पेशा लोगों को दो-दो दिन मुफ़्त काम करने का हुक्म निकाल दिया गया। खेत जोतना है तो किसी के हल-बैल पकड़ मँगाये गये, काटने का वक़्त हुआ तो मजूर वेगार में पकड़ लाये गये, और घोड़ी के लिए चारे की आवश्यकता हुई तो किसी कुरमी काछी को रोज हरियाली का गट्ठर पहुँचाने की फ़रमाइश की गई। यह एक प्रकार का कर है। जिसतरह देसी रियासतें सरकार को कर देती हैं, उसी तरह किसानों से यह कर लिया जाता है। सरकार उन्हें जमीन पर रहने देती है, यह क्या कोई मामूली मेहरबानी है? सरकार की यह हुकूमत की रीति बड़े से लेकर छोटे कर्मचारियों तक छन-छन कर चलती है। हरेक काम के लिए बड़े से लेकर छोटे कर्मचारी तक का अहसान सिरपर चढ़ाना पड़ता है। इसका देशवासियों की माली हालत के सिवा चाल-चलन पर भी असर पड़ता है। जब इंग्लैण्ड और भारत के आपसी सम्बन्धों का इतिहास लिखा जायगा, तब, इंग्लैण्ड क्या-क्या लूट ले गया, यह लिखा जायगा। किन्तु जो गाँव के गाँव नष्ट होगये हैं, लोगों की नीति छिन्न-भिन्न होगई है, जनता भी डरपोक बन गई

है, लोग झूठ बोलना सीख गये हैं, लोग मारनेवाँ को पूजने लग गये हैं, यह थोड़े ही लिखा जायगा। देश के ही मनुष्य शिक्षा प्राप्त कर कुल्हाड़ी के बेंट की तरह देशवासियों पर जो चोटें कर रहे हैं, वह थोड़े ही लिखा जायगा। इस देश की सभ्यता का नाश कर अंग्रेज़ी शासन-पद्धति ने जो बुराइयाँ की हैं, और देशवासियों को जिसतरह लोभी, डरपोक और नालायक बना दिया है, उससे लूट और क़त्ल लाख दरजे अच्छे थे! तैमूर की लूट, नादिरशाह की क़त्ल और अहमदशाह अब्दाली की चढ़ाई सभी इससे अच्छे थे।

६. पशुओं की जायदाद छिन गई

अब हम लोग जरा पशुओं पर दृष्टिपात करें। मनुष्य तो प्रलोभन में पड़ गये किन्तु पशुओं ने कौनसा अपराध किया था? जिस प्रकार गेहूँ के साथ घुन पिस जाता है और सूखी चीजों के साथ हरी चीज़ें भी जल जाती हैं, वही अवस्था इनकी भी हुई। पशुओं को चरने के लिए भारत में गोचरों की कमी नहीं थी, किन्तु ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के किरानी और डिरेक्टरों से लेकर आजतक जहाँ रूपयों के लिए हाय-हत्या मची हुई है उसपर भूखे राज्य के पास गोचर कैसे रह सकते हैं? गोचरों की ज़मीन लाट की लाट बेच दी गई, नीलाम करदी गई। धनवान व्यापारी और जमींदार पतंग की तरह इन लाटों पर टूट पड़े। बेचनेवाले साहबों की मेमों को सोने की जंजीरें पहनाई गईं और लाल हाथ किये गये। इन लाटों की जोताई साधारण बैलों से कैसे हो सकती थी? हजारों बीघा जमीन कितने दिनों में जोती जाती? घास की जड़ें भी खूब गहराई तक जमी हुई थीं। बस विलायत से स्टीम प्लाऊ—इञ्जन से चलनेवाला

हल—मंगाया और बात की बात में जमीन जोतकर बराबर करदी गई। जिन लोगों के पशु इन जमीनों में चरकर आशीर्वाद दिया करते थे, जिन गांवों के निकट ये गोचर थे, और दूर-दूर के अहीर गड़रिये जो इन गोचरों से लाभ उठाकर भारतभूमि को सुजलां सफलां कहते थे, वे इस पैशाचिक हल को देखकर दंग रह गये। इस हल को चलाने के लिए एक गोरा साहब आया था। उसके साथ में अनेक काले लोग भी थे, किन्तु वे सब साहब की टोपी पहनकर नकली साहब बन गये थे। इन सबको देखकर देहातियों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

ख़ैर किसी तरह ये लाट जोते गये, घास की जड़ें उखाड़ फेंकी गईं और उनके स्थान में कपास बोई गई। इस कपास के बोनेवाले मालामाल होगये और सरकार को भी काफी आमदनी हुई। पहले तो नालाम में लाभ हुआ, फिर मालगुजारी में बढ़ती हुई। किन्तु दूसरी ओर लाटवाले और आसपास के ग्रामवासियों में झगड़ा होने लगा। जो लोग वहाँ पशु चराने जाते, उन्हींसे लड़ाई होती। लाट-वालों ने देहातियों को दबाने के लिए पठानों को नौकर रक्खा। इसके फलस्वरूप वहाँ दंगे और हत्यायें हुईं। किन्तु इनका कौन हिसाब? हत्याओं की ओर कौन देखता है? जिन लोगों के पुश्तैनी हक़ छिन गये, उनमें से कुछ लोगों ने लूटमार का पेशा इख़्तियार करके मौक़े-बे-मौक़े लाटवालों को तंग करना शुरू किया। जिन साहबों ने यह आग लगाई थी, वे शाही महलों में बैठे हुए चैन की मज़ा रहे थे और देशवासियों की इस प्रकार दुर्गति हो रही थी।

ा हुई मनुष्यों की बात। वे पशु कहाँ गये, जिनके लिए प्रकृति ने ोजन सुरक्षित रक्खा था? चारे की कमी के कारण किसान ने

उनका ज्यादा तादाद में रखना उचित न समझा। उसे मजबूर होकर दो बैल और एक आध भैंस रखनी पड़ी। शेष सभी पशु उसने बेच दिये। दुबले पशु क़साईख़ाने और अच्छे पशु ब्रेजिल चले गये। किसान को रुपये काफ़ी मिले, पर वे दो ही दिन में काफ़ूर होगये। इस प्रकार पशु भी चले गये और रुपये भी न रहे। रह गये केवल एक दूसरे को आँखें दिखाते हुए ग्रामीण और लाटवाले। इस योजना का सुन्दर नाम रक्खा गया—डेवेलपमेण्ट स्कीम अर्थात् खेती की उन्नति करनेवाली योजना। इसने सारे गोचरों और पड़ी हुई जमीन को खेत बना डाला। इस अमरीकन तरीक़े को प्रचलित करने के लिए सरकार को धन्यवाद दिया गया। भारत के पशु मर मिटे, किन्तु इस योजना से भारतमंत्री को आनन्द हुआ। भारत की उन्नति हुई। यह सब आजकल के अर्थशास्त्रों के फेर में पड़कर हुआ।

सरकार पाँच-पाँच वर्ष में पशुओं की गिनती के अंक प्रकाशित करती है। उन्हें देखने से इस बात का पता चल सकता है, कि भारत में पशुओं की संख्या दिनों दिन किस प्रकार घटती जा रही है। किसी किसान के यहाँ बैल ही नहीं होते। वह माँग-जाँच कर या भाड़े पर लाकर काम चलाता है। किसीके पास एक ही बैल होता है वह दूसरे को साझीदार बनाकर काम चलाता है, किन्तु इससे खेत बोने का काम ठीक समय पर नहीं हो पाता। किसी किसान के यहाँ बैलों की अच्छी जोड़ी होती है, तो उसका मूल्य दो ढाई सौ रुपये आंका जाता है। सब किसान ढाई सौ की जोड़ी कैसे ले सकते हैं? बैलों की अच्छी जोड़ी रखना आजकल हाथी बाँधना समझा जाता है। अच्छी नस्ल के पशु घटते जा रहे हैं। कुछ दिनों में उनका पता भी न रहेगा। जिस प्रकार कई क़िस्म के भारतीय घोड़ों का निशान

संसार से मिट गया है, उसी तरह, यह हुकूमत चलती रही तो, वैलों की भी अच्छी नस्लें लोप हो जायँगी। केवल गुजरात का उदाहरण लीजिए। वहाँ अब सिन्धी लोग बैल बेचने जाते हैं। जो गुजरात किसी समय एक उद्यान रूप था, जिस गुजरात में गोचरों की कोई कमी न थी, जिस गुजरात के बैल बढ़िया माने जाते थे, उसी गुजरात के लोगों को अब सिन्धियों से बैल ख़रीदने पड़ते हैं।

आजकल एक गाय रखना भी भारी पड़ता है। पहले किसी ब्राह्मण का घर बिना गाय का न रहता था, किन्तु अब महँगे दाम की घास और दाना खिलाकर गाय रखना नहीं बन सकता। पशुओं को खिलाने में भी अर्थशास्त्र देखा जाता है। अहीर गायें पालकर क्या करें? उन्हें क्या खिलाएँ? उन्हें बेच देने के सिवाय और कोई चारा ही नहीं दिखाई देता। बेचने से अच्छी रक़म मिलती है। मांस का भी मूल्य मिलता है, चमड़े का भी मूल्य मिलता है, हड्डियों का भी मूल्य मिलता है, खुर और सींगों का भी मूल्य मिलता है। पशु को ज़िंदा रखने में जितना लाभ है, उसको मार डालने में उससे कहीं अधिक लाभ है। इस प्रकार घर में अर्थशास्त्र दाख़िल हुआ। सरकार ने इसके लिए क़साई खाने खुलवा दिये। अकेले बम्बई का ही उदाहरण लीजिए। कोई कह सकता है, कि वहाँ क़साईख़ाने में प्रति वर्ष कितने पशुओं की हत्या की जाती है? सरकार की ओर से इसका विवरण प्रकाशित होता है। पाठक उसे देख सकते हैं। बतलाइए, अब घी और दूध कहाँ से लाया जाय? कैसे खाया जाय? खाइए घी के स्थान में वेजीटेबिल प्रोडक्ट (वनस्पति घी) और दूध के स्थान में नेल्सन आदि का जमाया हुआ दूध। भारत के बच्चे बिना दूध के तड़प रहे हैं, किन्तु किससे शिकायत की जाय? गोचरों को नीलाम

करने का साहबों से या उन्हें खेत बनाकर मालदार बननेवाले देश वासियों से ? गोचरों की कौन कहे, गुजरात के मातर तालुके में तुलसी के वन थे। वहाँ की तुलसी प्रति वर्ष गोकुल-मथरा और काशी के देवताओं पर चढ़ाई जाती थी, किन्तु वे गोड़-गोड़ कर बराबर कर दिये गये और तुलसी के स्थान में वहाँ कपास के पौधे लहराने लगे। यह कपास मन्चेस्टर और टोकियो गई। वहाँ से उसके रुपये आये। उन रुपयों से हमने विलायती कपड़ा ख़रीदा और जो बचा उससे साबुन, तेल, फुलेल और मौज शौक़ की हज़ारों चीज़ें लीं। दूध की क्या आवश्यकता है ? भारत के सुकुमार तपड़ते हैं तो उन्हें तड़पने दीजिए।

७. जंगल भी लुट गये

मनुष्य और पशुओं की अवस्था देख चुके। चलो, अब ज़रा वृक्षों के पास चलें। बताओ भाई तुम्हारे क्या हाल हैं ? वृक्ष माने प्रकृति का बनाया हुआ बँगला। उसमें नजाने कितने जीव जन्तु विश्राम करते हैं। किन्तु ज़रा सोचिए कि प्रतिवर्ष इस प्रकार के कितने वृक्ष कटते हैं ? माना कि मिल और जिनों के लिए लकड़ी की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु क्या इनके लिए नए वृक्ष भी रोपे जाते हैं ? अँग्रेज़ी में एक कहावत है कि "वृक्ष रोपने से स्वर्ग मिलता है।" ज़रा इस सूत्र के अर्थ पर विचार कीजिए। बड़े शहरों में रहनेवाले लोग देहातों से लकड़ियाँ और कोयला माँगते हैं। ख़ैर कोई हर्ज़ नहीं, किन्तु क्या शहरातियों को कभी यह बात भी सूझती है कि वर्ष में कम से कम एक वृक्ष तो कहीं लगवा दें ? सम्भव है कि सूझती हो पर वे वृक्ष कहाँ लगायें ? तिम-ज़िले पर, जहाँ रहते हैं वहाँ ? उनके पास तो बिस्वा भर भी ज़मीन

नहीं है। वे तो विना मकान के रईस हैं। वे तो यह भी नहीं जानते कि कोयले के जो बोरे पर बोरे चले आ रहे हैं ये कहाँ से आ रहे हैं? बम्बई सरकार ने महुओं के संबन्ध में एक क़ानून बनाया है। महुओं से शराब बनती है, इसलिए घरों में उनका रखना जुर्म क़रार दिया गया है। जब महुए घर में नहीं रक्खे जा सकते तब वृक्ष ही रख कर क्या किया जाय? रुपयों के लिए तो हाय-हत्या सदैव मची ही रहती है। ऐसी दशा में महुओं के वृक्ष कब तक अपनी खैर मना सकते हैं? केवल खेड़ा ज़िले में पाँच-सात वर्षों में जितने महुए काटे गये हैं, उनकी कल्पना करना भी कठिन है। इनके स्थान में नए वृक्ष कितने लगाये गये? विज्ञान हमें बतलाता है कि जहाँ वृक्ष कम होते हैं वहाँ वर्षा भी कम होती है। और जहाँ वृक्ष अधिक हैं वहाँ वर्षा भी अधिक होती है। वर्षा क्यों नहीं होती? इस सम्बन्ध में भली भाँति विचार करने पर यही मालूम होता है कि हमारे देश में जितने वृक्ष काटे जाते हैं उतने लगाये नहीं जाते। जर्मनी में इस आशय का एक क़ानून है कि जिस दिन राजा का जन्म दिन हो उस दिन प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री को एक वृक्ष अवश्य रोपना चाहिए। किन्तु इस देश में ऐसे क़ानून कौन बनाए? लावारिस देश में किसे किसकी ग़रज़ है? जंगलों से सरकार को आमदनी होती है। कुछ जंगल रिज़र्व रखकर बाक़ी काटे जाते हैं इनका व्यापार करने के लिए टिम्बर मर्चेण्ट (चीरी हुई लकड़ी के सौदागर) पैदा हुए हैं। रेल का विस्तार दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। पटरी के नीचे रखने के लिए स्लीपरों की ज़रूरत पड़ती है। इसके लिए भी जंगलों पर ही शनि दृष्टि डाली जाती है। ज्यों-ज्यों जंगल कटते जायँगे और ज़मीन साफ़ होती जायगी, त्यों-त्यों खेती की उन्नति के लिए डेवेलप-

मेण्ट स्कीमें बनती जायँगी। इसे ग़नीमत ही समझना चाहिए कि कुछ जंगल रिज़र्व रक्खे जाते हैं, किन्तु यह भी केवल इसलिए किया जाता है कि लकड़ी की मांग होने के कारण सरकार को इन जंगलों से लाभ होता है जिस दिन सरकर को मालूम हो जायगा, कि इसमें कोई लाभ नहीं है, वल्कि ज़मीन के लाट वनाकर देने में ज़्यादा लाभ है, उसी दिन ये भी साफ़ हो जायँगे।

यह सब रोना रोने का तात्पर्य यह है कि हमारा देश अनाथ हो गया है। लोग अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार अपना-अपना ढोल बजा रहे हैं। वेचारा किसान इन सबों के बीच में मृत्यु शैय्या पर पड़ा है।

एक ज़रूरी बात कहनी रह गई। भारत का माल विदेश चले जाने के कारण भूमि की उपजाने की ताक़त भी बहुत घट गई है। साधारण नियम यह है कि ज़मीन से जितना लिया जाय, दूसरे प्रकार से उनमें उतना ही डाला जाय। भारत के प्रति वर्ष अंडी, सरसों, तेलहन, चमड़ा, हड्डियाँ और गेहूँ आदि क़ीमती वस्तुएं लाखों टन विलायत जाता है, परन्तु उनके वदले ज़मीन में क्या पड़ता है? अनेक स्थानों में तो किसानों को लकड़ियां नहीं मिलतीं इसलिए वे गोवर के कंडे वनाकर जलाते हैं। ऐसा करने से सोने-चाँदी जैसी यह खाद भी नष्ट हो जाता है। इन्हीं सब कारणों से ज़मीन की उपजाने की ताक़त दिन-दिन घटती जाती है। एक तो किसान की माली हालत ख़राव, दूसरे उसके वैल अधमरे, तीसरे उसकी पैदावार का एक आना भी घर में न रहने पाये, ऐसी अवस्था में किस प्रकार क्या डालकर वह ज़मीन की उपजाने की ताक़त क़ायम रख सकता है? सरकार का कृषि विभाग कहता है, कि उसे विदेशियों से कृत्रिम खाद ख़रीदनी चाहिए जिससे कि और भी पैसे विदेशियों के हाथ लगें।

: ११ :

दरिद्रता के कड़ुए फल

१. दरिद्रता की हद

अभी संवत् १६८६ में ही एक समाचार छपा था कि पार्लमेण्ट का कोई मजूर सदस्य भूख से व्याकुल होकर सभा-भवन में ही बैठे-बैठे बेहोश होगया। यह मजूर सदस्य बड़ा दरिद्र था। क्योंकि इसकी सालाना आमदनी कुल ४०० पौंड अर्थात् ५३३३) रुपये थे। पार्लमेण्ट के प्रभुओं ने तरस खाकर ५० पौंड अर्थात् ६६७) रुपये और बढ़ा दिये, क्योंकि शायद इस ग़रीब सदस्य को पाँच-छः प्राणियों के बड़े परिवार का ख़र्च उठाना पड़ता था।[1] ब्रिटिश पार्लमेण्ट की निगाहों में यह मजूर सदस्य जिसकी आमदनी ४४४) मासिक थी, बहुत दरिद्रता था, और उसकी आमदनी ख़र्च के लिए काफ़ी न थी। यहाँ के लोगों की आदमनी संसार के सभी देशों से अत्यन्त कम है। सिर पीछे ३७) रुपये सालना से कम नहीं है। अगर १४–१५ रुपये रोज़ कमानेवाला पार्लमेण्ट की नज़रों में ग़रीब है तो ६–७ पैसे रोज़ कमानेवाला क्या होगा? उसे किस कोटि में रक्खेंगे? दरिद्रता की भी एक हद होती है। हमारी समझ में जिस आदमी को जीवन की रक्षा के लिए खाना कपड़ा और रहने की जगह भर

१. यह समाचार कई पत्रों में छपा था, परन्तु न तो मैंने इसका कोई खण्डन देखा, और न इसके अधिक वृत्तान्त मिले।

मुश्किल से मिले, वह बिना ऋण लिये कभी अपने यहाँ आये हुए मेहमान को खिला न सके, या किसी मंगन को भिक्षा न दे सके वह 'दरिद्र' है। परन्तु यह दरिद्रता की हद आजकल की नहीं है। यह ब्रिटिश राज में इस दर्जे पर पहुँच गई है कि हम पहले ज़माने में दरिद्रता की जो परिभाषा करते थे वह भारत के आजकल के मध्यमवर्ग पर लगती है। जिनकी आमदनी साल में पाँच छः सौ रुपये से कम नहीं है, या यों कहिए कि जो लोग सालभर में लगभग उतना कमा सकते हैं, जितना कि पार्लमेण्ट का दरिद्र मजूर सदस्य हर महीने पाता है। जिन लोगों की आमदनी साल में ५००) से कम है उनके लिए 'दरिद्र' से भी अधिक दरिद्रता की हद बतानेवाला शब्द होना चाहिए। हमारी समझ में यह शब्द 'कंगाल' है।

हर आदमी यह अधिकार लेकर दुनिया में पैदा होता है, कि वह अपने शरीर को भला-चङ्गा रक्खे और अपने परिवार को और समाज को, देश को और साथ ही अपने को मन, वचन, कर्म, से अधिक-से-अधिक लाभ पहुँचावे और अधिक-से-अधिक सुख दे, और इन बातों को पूरा करने के लिए उसे पूरी-पूरी योग्यता और स्वतंत्रता का अवसर मिले। समाज में इन जन्म-सिद्ध अधिकारों को काम में लाने के लिए उसका रहन-सहन एक निश्चित ऊँचाई और अच्छाई का होना चाहिए। हमारे देश का रहन-सहन अनादि काल से बहुत सादा चला आया है। हमारे मजूर और किसान मोटर और विमान रखनेवाले कभी न थे, परन्तु ब्रिटिश राज्य से पहले इस दर्जे की दरिद्रता भी न थी। किसान लोग खाने-पीने से खुश थे।

अमेरिका का एक प्रामाणिक लेखक 'दरिद्रता' की परिभाषा यों

करता है:--"दरिद्रता जीवन की वह दशा है जिसमें आदमी, अपने कम आमदनी के या बेसमझी के खर्च के कारण ऐसे रहन-सहन से गुजर नहीं कर सकता जिसमें कि अपने समाज की हद के अनुसार वह आप और उसके परिवारवाले उपयोगी काम कर सकें। और वह आप शरीर से और मन से पूरा-पूरा उपयोगी बन सके।" वही लेखक कहता है कि "कंगाल होना जीवन की वह अवस्था है जिसमें आदमी पूरा-पूरा या थोडा-बहुत अपने खाने-कपडे के लिए ऐसे किसी आदमी का मोहताज हो जो स्वभाव से या क़ानून से उसका सहायक न समझा जाता हो।"[१]

हमारी समझ में श्री गिलिन की ये परिभाषायें बिलकुल साफ़ हैं। अगर उन्होंने कम आमदनी या बेसमझी के ख़र्च की शर्त न लगाई होती तो 'दरिद्रता' की उनकी पारिभाषा हमारे गुलाम देश के लिए भारतीय धन कुबेरों पर भी लग सकती थी। स्वर्गीय गोखले ने कहा था कि भारतवर्ष में ब्रिटिश राज ने तरक्की के रास्ते को ऐसा बन्द कर रक्खा है कि यहाँ के ऊँचे-से-ऊँचे आदमी को झुक जाने को लाचार कर देता है। यहाँ कोई आदमी पूरी उपयोगिता को पहुँच ही नहीं सकता परन्तु गिलिन की परिभाषा हमारे यहाँ के पहली श्रेणी के लोगों छोड़कर बाक़ी सारे देश पर लग जाती है। इस तरह भारतवर्ष की साढ़े नन्यानबे प्रति सैकड़ा आबादी दरिद्र है। जिनको अपनी मेहनत मजूरी से आधे पेट या दूसरे तीसरे दिन भी भोजन मिल जाता है, उन दरिद्रों में भी इज्ज़त का ख़याल इस दरजे का है कि वे किसीके सामने हाथ पसारने से मर जाना ज़्यादा क़बूल करते हैं।

१. Gillin, J. L., "Poverty and Dependeney" Pp. 24, The Century Company New york, 1926. (A. W. Hayes की Rural Sociology, Longmans, 1929. Pp. 430 पर उद्धृत)

वे अपनी आँखों के सामने अपने प्यारों का भूख से तड़पना देखते हुए भी भिक्षा मागने का अधम काम क़बूल नहीं करते। इतना होते हुए भी बत्तीस करोड़ की दरिद्र आबादी में तीस लाख से कुछ ही ज़्यादा भिखमंगों, अवारों, वेश्याओं आदि लाचार निर्लज्जों का होना कोई अचरज की बात नहीं है।

दरिद्रता के इस स्थूल रूप पर विचार करने के बाद हम आगे क्रम से इस बात पर विचार करेंगे कि इस घोर अनुपम दरिद्रता के क्या-क्या बुरे असर राष्ट्र पर पड़ चुके हैं, हम किन-किन कड़ुवे फलों का अनुभव कर चुके हैं।

२. आबादी पर प्रभाव

दरिद्रता का सबसे बुरा असर आबादी पर पड़ता है।

१. भूख के सताये हट्टे-कट्टे काम करनेवाले गाँवों से भागकर, नज़दीक और दूर के शहरों में चले गये और कुली का काम करने लगे, चाय के बाग़ों में ग़ुलामी करने लगे या दूर-दूर विदेशों में चले गये; और वहीं मर खप गये। इस तरह जो खेती के काम में कुशल थे गाँवों से निकल गये, और जो काम में कुशल नहीं थे रह गये, जिससे खेती का काम दिन-ब-दिन बिगड़ता गया। ग़रीबी के कारण बालकों को शिक्षा न मिल सकी, और गाँवों में पढ़ाने का बन्दोबस्त न हो सका।

२. कुछ तो शिक्षा न मिलने से और कुछ पूरी सफ़ाई और तन्दुरुस्ती का बन्दोबस्त न हो सकने से, जिसमें धन बिना काम नहीं चल सकता था, अनेक तरह के रोग फैल गये, जिनसे आये दिन अनगिनत आदमी मरते जाते हैं, और आबादी घटती जाती है।

३. दरिद्रता के कारण अकाल पड़ जाता है, और लोग भूखों मर जाते हैं। अन्न के न होने से लोग नहीं मरते। अड़ोस-पड़ोस के बाज़ारों में गाड़ियों अन्न आता है, और बराबर बिकता रहता है, परन्तु अकाल से पीड़ित भुक्खड़ों के पास ख़रीदने को दाम नहीं होता, इसीलिए भूखों मर जाते हैं। पैसे सस्ते हैं, फिर भी किसानों को कोई काम ही नहीं मिलता, जिससे वे पैसे कमा सकें। जिस साल अच्छी फसल होती है, उस साल तीन महीने से लेकर छः महीने तक उन्हें काम रहता है, और खेत मजूरी देता है। जिस साल फ़सल नहीं होती, उस साल बारह मास की बेकारी है। मजूरी कौन दे? असल में अन्न का अकाल नहीं है। मजूरी के थोड़े अकाल में तो किसान सारा जीवन बिताता है, पूरा अकाल तो उस समय होता है, जब फ़सल भी जवाब दे देती है।

३. दरिद्रता के कारण आपस के लड़ाई झगड़े होते हैं, परिवारों में अलग गुज़ारी हो जाती है, और अलग होनेवाले अपना-अपना खर्च न सँभाल सकने के कारण उजड़ जाते हैं, खेती-बारी टूट जाती है, इस तरह गाँव की आबादी घटती जाती है।

३. आदमियों पर प्रभाव

दरिद्रता सब दोषों की जड़ है, जिसके पास धन है वही कुलीन समझा जाता है, वही धर्मात्मा माना जाता है, वही विद्वान और गुण-ग्राहक होता है, उसीकी बात सब लोग चाव से सुनते हैं, लोग उसके दर्शनों को जाते हैं। दरिद्र को कोई नहीं पूछता।

दरिद्रता के कारण—

१. हौसले के साथ लोगों में किसान मिलता-जुलता नहीं, उसमें बेढङ्गापन आ जाता है।

२. धूर्तों के बहकाने में जल्दी आ जाता है। जितनी चाहिए उतनी सफ़ाई नहीं रख सकता।

३. खाने को न वक्त़ से पाता है और न उचित मात्रा में पाता है इससे दुबला और कमज़ोर हो जाता है। उसकी चाल सुस्त हो जाती है, भरपूर मेहनत नहीं कर सकता, थोड़े से काम में थक जाया करता है, भाँति-भाँति के रोगों का शिकार होता है, उसका जीवन कम हो जाता है।

४. उसका हौसला दिन-ब-दिन पस्त होता जाता है और रहन-सहन का परिणाम घटता जाता है।

५. बाल-बच्चों के सांसारिक बोझ से जल्दी छुटकारा पाने के लिए थोड़ी ही उम्र में ब्याह कर देता है और पास की नातेदारियों में ही ब्याह करके वंश को और भी ख़राब कर देता है।

६. ब्याह न कर सकने के कारण व्यभिचार में फंस जाता है और वर्णसंकर पैदा करता है। बच्चे बहुत पैदा होते हैं परन्तु पैदाइस के समय काफ़ी मदद न मिलने के कारण बहुत से बच्चे सौर में ही मर जाते हैं और दूध आदि पालन-पोपण का सामान न मिलने से छुटपन ही में बच्चे माता की गोद सूनी कर देते हैं।

७. अनेक दुखिया भुक्खड़ नातेदार, जिनको कहीं ठिकाना नहीं लगता, ग़रीब किसान के घर ज़बरदस्ती आकर रह जाते हैं। इस तरह उसके कष्ट और भी बढ़ जाते हैं।

८. उसका कुटुम्ब अक्सर बड़ा होता है। जितना ही बड़ा कुटुम्ब होता है सिर पीछे उतनी ही बेकारी भी बढ़ती है।

९. वह ज़्यादा पोतवाला अच्छा खेत नहीं ले सकता। ख़राब खेत ज़्यादा मेहनत चाहते हैं जो वह बेचारा कर नहीं सकता।

१०. चिन्ताओं से उसका दिमाग़ खराब हो जाता है।

११. उसमें धर्म-भाव और देश-भक्ति के हौसले नहीं रह सकते।

१२. उसे देश की दशा का और अपनी दशा का ज्ञान नहीं रहता, इसलिए चुपचाप दुःख में घुलता रहता है, और कर्म ठोंककर रह जाने के सिवा कोई उपाय नहीं कर सकता।

१३. स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, आये दिन परिवार के भीतर और बाहर झगड़े होते रहते हैं, जिसका फल होता है फ़ौज-दारी मुक़दमेबाज़ी और गृहस्थी का सत्यानाश।

१४. भाँति-भाँति की चिन्ताओं से छुटकारा पाने के लिए तरह-तरह के नशों की कुटेव लग जाती है। तमाखू, गाँजा, भङ्ग, शराब, ताड़ी, अफ़ीम आदि के पीछे तबाह हो जाता है।

१५. औरों की निगाहों में उसकी इज़्ज़त घट जाती है।

४. रहन-सहन पर असर

हमारे देश के किसानों का रहन-सहन कितना नीचे गिर गया है इसे सब जानते हैं। उसके पास जैसे खाने का टोटा है वैसे ही पहनने का भी। उसके पुरखों के समय में जब चरखा चलता था तब उसे कपड़ों का टोटा न था, आज खाना कपड़ा दोनों का टोटा है। तीसरी ज़रूरी चीज़ घर है। अब वह घर भी अपने लिए दरिद्रता के कारण अच्छा नहीं बना सकता। वह जीते जी नरक भोगकर रहा है।

अपनी दरिद्रता के कारण——

१. अपनी उपज का सबसे अच्छा माल बेच डालता है और ख़राब-से-ख़राब अपने ख़र्च के लिए रख लेता है। जो शायद बिक ही नहीं सकता या लाचारी उसे बेचने नहीं देती।

२. धूर्तों के बहकाने में जल्दी आ जाता है। जितनी चाहिए उतनी सफ़ाई नहीं रख सकता।

३. खाने को न वक्त से पाता है और न उचित मात्रा में पाता है इससे दुबला और कमज़ोर हो जाता है। उसकी चाल सुस्त हो जाती है, भरपूर मेहनत नहीं कर सकता, थोड़े से काम में थक जाया करता है, भाँति-भाँति के रोगों का शिकार होता है, उसका जीवन कम हो जाता है।

४. उसका हौसला दिन-ब-दिन पस्त होता जाता है और रहन-सहन का परिणाम घटता जाता है।

५. बाल-बच्चों के सांसारिक बोझ से जल्दी छुटकारा पाने के लिए थोड़ी ही उम्र में ब्याह कर देता है और पास की नातेदारियों में ही ब्याह करके वंश को और भी ख़राब कर देता है।

६. ब्याह न कर सकने के कारण व्यभिचार में फंस जाता है और वर्णसंकर पैदा करता है। बच्चे बहुत पैदा होते हैं परन्तु पैदाइस के समय काफ़ी मदद न मिलने के कारण बहुत से बच्चे सौर में ही मर जाते हैं और दूध आदि पालन-पोषण का सामान न मिलने से छुटपन ही में बच्चे माता की गोद सूनी कर देते हैं।

७. अनेक दुखिया मुक्खड़ नातेदार, जिनको कहीं ठिकाना नहीं लगता, ग़रीब किसान के घर ज़बरदस्ती आकर रह जाते हैं। इस तरह उसके कष्ट और भी बढ़ जाते हैं।

८. उसका कुटुम्ब अक्सर बड़ा होता है। जितना ही बड़ा कुटुम्ब होता है सिर पीछे उतनी ही बेकारी भी बढ़ती है।

९. वह ज़्यादा पोतवाला अच्छा खेत नहीं ले सकता। ख़राब खेत ज़्यादा मेहनत चाहते हैं जो वह बेचारा कर नहीं सकता।

१०. चिन्ताओं से उसका दिमाग़ ख़राब हो जाता है।

११. उसमें धर्म-भाव और देश-भक्ति के हौसले नहीं रह सकते।

१२. उसे देश की दशा का और अपनी दशा का ज्ञान नहीं रहता, इसलिए चुपचाप दुःख में घुलता रहता है, और कर्म ठोंककर रह जाने के सिवा कोई उपाय नहीं कर सकता।

१३. स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, आये दिन परिवार के भीतर और बाहर झगड़े होते रहते हैं, जिसका फल होता है फ़ौज-दारी मुक़द्दमेबाज़ी और गृहस्थी का सत्यानाश।

१४. भाँति-भाँति की चिन्ताओं से छुटकारा पाने के लिए तरह-तरह के नशों की कुटेव लग जाती है। तमाखू, गाँजा, भङ्ग, शराब, ताड़ी, अफ़ीम आदि के पीछे तबाह हो जाता है।

१५. औरों की निगाहों में उसकी इज़्ज़त घट जाती है।

४. रहन-सहन पर असर

हमारे देश के किसानों का रहन-सहन कितना नीचे गिर गया है इसे सब जानते हैं। उसके पास जैसे खाने का टोटा है वैसे ही पहनने का भी। उसके पुरखों के समय में जब चरखा चलता था तब उसे कपड़ों का टोटा न था, आज खाना कपड़ा दोनों का टोटा है। तीसरी ज़रूरी चीज़ घर है। अब वह घर भी अपने लिए दरिद्रता के कारण अच्छा नहीं बना सकता। वह जीते जी नरक भोगकर रहा है।

अपनी दरिद्रता के कारण—

१. अपनी उपज का सबसे अच्छा माल बेच डालता है, और ख़राब-से-ख़राब अपने ख़र्च के लिए रख लेता है। जो शायद बिक ही नहीं सकता या लाचारी उसे बेचने नहीं देती।

२. उसका भोजन अक्सर बे-नमक का होता है। बेचारा नमक तक ख़रीदने की सामर्थ्य नहीं रखता। जिसकी आमदनी ६ पैसे रोज़ से भी कम हो, वह नमक मिर्च कहाँ पावे।

३. उसके भोजन में पालन-पोषण का तत्त्व बहुत कम होता है।

४. वह काफ़ी भोजन नहीं पाता, कभी आधा पेट पाता है, और कभी वह भी नहीं।

५. उसे दूध, घी, मठा, तो क्या मिलेगा, उसके बच्चों को छाछ भी नसीब नहीं होती।

६. उसके ढोर भूखों मरते हैं, उनके लिए घर नहीं होता।

७. उसके घर उसे धूप बरसात आँधी तूफ़ान और जाड़े से बचाने के लिए काफ़ी नहीं होते।

८. जङ्गलों और पेड़ों पर कोई अधिकार न होने से उसे जाड़े के लिए काफ़ी ईंधन नहीं मिलता, और वह लाचार हो उपले जलाने का आदी हो गया है, जिससे खेत के लिए उत्तम से उत्तम खाद वह चूल्हे में जला देता है। परिस्थिति ने उसे भुलवा दिया है।

९. उसके पास काफ़ी कपड़ा नहीं है, और जो है वह विला-यती है, जो काफ़ी टिकाऊ नहीं होता, मगर सस्ता होने के कारण लिया जाता है।

१०. उसकी खेती का सामान बढ़िया नहीं है, पूरी मेहनत करके भी उससे वह उतना अच्छा काम नहीं ले सकता, जितना कि अच्छे हल बैल से होता।

११. उसे अपने रोजगार के बढ़ाने का कोई साधन प्राप्त नहीं होता।

१२. मजूरी की दर बहुत कम होने से किसान को ऐसे काम

के लिए मज़दूर नहीं मिल सकते जिन्हें वह अकेला नहीं कर सकता और वहाँ लड़कों और औरतों की मदद काफ़ी नहीं होती।

१३. अपने खेतों पर जो मजूरी की जाती है उसका बदला भी बहुत थोड़ा मिलता है।

१४. वह गाय पाल नहीं सकता और न छोटे-मोटे घरेलू रोज़-गार कर सकता है, और करे भी तो दशा ऐसी है कि रोज़गार में सफलता नहीं मिलती।

घर गृहस्थी में किसान और उसका परिवार अपने दादा के के समय में आज की तरह बेकार नहीं रहता था। खेती से जो समय बचता था उसमें मज़बूत हाथ-पैरवाला किसान और मेहनत के काम किया करता था। गाड़ी चलाकर थोक का थोक माल बाज़ार ले जाना, खँडसालें चलाना, रूई धुनना, गाय भैंस आदि बड़े ढोर पालना, सन पटसन आदि बटना, टोकरियाँ बनाना आदि उनके तरह के काम देहातों में सब तरह के लोग करते थे। इसके सिवा पेशेवाले किसान, कुम्हार, लुहार, बढ़ई आदि तो अपने काम करते ही थे, ये पेशेवाले तो थोड़ा बहुत अब भी अपना काम करते ही हैं। इनके सिवा इनके घर की स्त्रियाँ और लड़के भी तरह तरह के काम करते थे। घर की गाय, बकरी, भेड़ आदि की सेवा में लड़के बड़ी मदद पहुँचाते थे। स्त्रियाँ और लड़कियाँ दूध, दही, मक्खन आदि के काम करती थीं, आटा पीसतीं थीं, धान आदि कूटती थीं, मक्खन निकालती थीं, चर्ख़ा कातती थीं। कपड़े सीना, रँगना और बच्चों का लालन-पालन चौका-बासन रसोई ये सारे काम घर में होते थे। परन्तु आज गौवों का पालन करने का सामर्थ्य न होने से दूध, दही, मक्खन, घी का काम उठ गया है। चर्ख़ा और ओटनी को उठ गये

दो पीढ़ी के लगभग हो गये। घी दूध और कपास का काम जो घर में होता था, किसान के लिए बड़े लाभ की चीजें थीं। घी दूध से परिवार भी तृप्त होता था और पैसे भी आते थे। ओटनी और चर्खे से परिवार का तन भी ढकता था और पैसे भी आते थे। इसके सिवा पेशेवालों के गाँव के गाँव होते थे जो आज उजड़ गये हैं। जहाँ कहीं खद्दर बनाने की कला बढ़ी हुई थी, वहाँ कोरी, कोष्टी, ताँती और जुलाहे आदि बुनकरों की बड़ी-बड़ी बस्तियाँ थीं। ये बस्तियाँ उजड़ गईं। जो थोड़ी बहुत बची हुई हैं विलायती सूत में उलझी हुई हैं। ग्वालों के गाँव के गाँव थे, जिनके यहाँ दूध घी का भी रोज़गार था और खेती भी होती थी। बहुत से ऐसे गाँव उजड़ गये और जो बचे हुए हैं उनकी दशा दरिद्रता से आँखों में खून लाती है। यों गाँव-गाँव में जहाँ सभी जाति और पेशे के किसान मिलजुलकर रहते थे, वहाँ दो एक घर खद्दर बुननेवालों के भी थे, और हफ्ते के दिनों में जहाँ बाज़ार लगा करते थे, सूत कपास और खद्दर का लेनदेन और बिक्री हुआ करती थी। रोज़गार के अच्छा होने से लोगों के रहन-सहन का परिमाण बढ़ा हुआ था। रोज़गार टूट जाने से रहन-सहन का परिमाण गिर गया।

५. शिक्षा पर प्रभाव

पहले गाँव-गाँव में टोल थे, पाठशालायें थीं। गाँव के भय्याजी सब बालकों को पढ़ाते थे। गाँव के सभी किसान बालक थोड़ा लिखना-पढ़ना और हिसाब-किताब सीखते थे। टोलों, पाठशालाओं के खर्च के लिए माफ़ी के खेत थे। उनकी आमदनी से पढ़ाई का खर्च चलता था। गाँववाले मास्टरों को सीधे देते थे। और अधिकांश

पञ्चायत के द्वारा सारा खर्च दिलवाया जाता था। पढ़ाई के लिए कहीं-कहीं घर होते थे, कहीं चौपालों में जगह होती थी, कहीं मन्दिरों और मठों में और कहीं-कहीं बागों में। जब पंचायतों का अधिकार छिन गया, माफ़ी खेत छिन गये, किसान दरिद्र हो गये, तब सारा बन्दोबस्त टूट गया। कुछ काल तक शिक्षा का महत्व समझनेवाले किसानों ने, अधिकांश इक्कों दुक्कों ने, अपनी ओर से बच्चों के पढ़ाने का प्रबन्ध जारी रक्खा। कहीं-कहीं बेहरी लगाकर कुछ समय तक पाठशालायें ठहरीं, परन्तु ठीक संगठन न होने से इस तरह के निजी उद्योग भी समाप्त हो गये। दरिद्रता के कारण--

१. गाँववाले बच्चों के पढ़ाने का बन्दोबस्त नहीं कर सकते। जो स्कूल डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने कायम किये हैं वे बहुत कम हैं, दूर-दूर पर हैं, जहाँ छोटे-छोटे बच्चे नहीं पहुँच सकते, इसलिए देश के बच्चों की बहुत थोड़ी गिनती तालीम पा सकती है।

२. जिन थोड़े से बच्चों को तालीम दी जाती है, उन्हें किसानों के काम की कोई शिक्षा नहीं मिलती, क्योंकि किसानों को डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में शिक्षा के बारे में अपनी नीति चलाने का कोई अधिकार नहीं है, और उनके पास वे साधन नहीं हैं कि काम की शिक्षा दे सकें।

३. वे अपने पढ़नेवाले बच्चों को खेती का काम नहीं सिखा सकते। पढ़नेवालों को ऐसी शिक्षा दी जाती है कि वह शिक्षा पाकर खेती आदि के कामों को नीच समझने लगते हैं। क़स्बों और शहरों में हलकी नौकरियों के पीछे ठोकर खाते फिरते हैं।

४. खेती की शिक्षा न होने से खेती का काम दिन पर दिन खराब होता जा रहा है।

५. किसान इतने गरीब हैं कि बच्चों के लिए किताबें मोल नहीं ले सकते।

६. वे अपने लिए कोई अखबार नहीं खरीद सकते, जिससे खेती का, रोज़गार का या दुनिया का कुछ हाल जान सकें।

७. वे देश के आन्दोलनों की खबर नहीं रखते।

८. वे अपनी ही दशा नहीं जानते, और न उसके सुधारने के लिए कोई आन्दोलन कर सकते हैं।

९. वे अपनी ओर से शिक्षक नहीं रख सकते जो उनके नेता का काम करसके और प्रजाहित के कामों में मदद दें।

१०. वे आपस में से किसीको नेता के काम के लिए तैयार नहीं कर सकते।

११. उनकी बहुत बड़ी संख्या निरक्षर हो गई है, और निरक्षरता के जितने बुरे परिणाम हैं वे सब भोग रही हैं।

११. बालकों को ऊँची शिक्षा का कभी अवसर नहीं मिलता।

१३. खेती की शिक्षा न मिलने से लाभ कम होता है। लाभ न होने से खेती का सुधार नहीं होता, सुधार न होने से दरिद्रता बढ़ती जाती है। दरिद्रता बढ़ते जाने से आगे शिक्षा की भी कोई आशा नहीं हो सकती। यह बड़ा ही दूपित भ्रामक चक्र है, जिसमें सारा देश फँसा हुआ है।

६. जायदाद पर प्रभाव

जब किसान खुशहाल था, तब उसकी गृहस्थी बड़ी होती थी, घर बड़े और हवादार थे, सब ऋतुओं के अनुकूल बने हुए थे। गोशाला थी, बाग, कुएँ, तालाब, मन्दिर, चौपाल सब कुछ था। पशुओं

के चरने के लिए गोचर-भूमि अलग होती थी। किसान और उसके पशु खुश रहते थे। आज सारी दशा विपरीत है।

दरिद्रता के कारण—

१. वह हवादार और अच्छे घर नहीं बना सकता। जीवन के आवश्यक सामान नहीं जुटा सकता।

२. वह लाचार होकर उपले जलाता है, क्योंकि लकड़ी न खरीद सकता है, न निर्धनता के कारण पेड़ मोल ले सकता है, न ज़मींदार से पेड़ लगाने या काटने के लिए आज्ञा मोल ले सकता है और न विदेशी सरकार की बाधा के कारण जङ्गल से लकड़ी काट सकता है। इस तरह उसे खेत के लिए सबसे उत्तम खाद खोना पड़ता है।

३. उचित खाद के बिना खेत की पैदावार दिन-पर-दिन घटती जाती है।

४. वह खेत का मालिक नहीं है, और जानता है कि खेत की दशा बहुत अच्छी हो गई तो लगान बढ़ जायगा, या बे-दखली हो जायगी, या बन्दोबस्त पर सरकारी मालगुज़ारी बढ़ जायगी। इसलिए खेत में सुधार करने का उसे हौसला नहीं हो सकता।

५. वह अपने गाय, भैंस, बैल का ठीक-ठीक पालन-पोषण नहीं कर सकता।

६. जो पहले गोचर-भूमि थी वह अब खेत हैं। ढोरों की चराई का बन्दोबस्त अच्छा नहीं है जिससे ढोर बहुत दुबले हो गये हैं।

७. लोग गोपालन के रोज़गार में टोटा होने से उस ओर ध्यान नहीं देते, इससे यह कारोबार चौपट हो गया है।

८. गो-वंश-सुधार की रीतियाँ भूल जाने से ढोरों की नसल खराब हो रही है।

९. फलों का रोज़गार ठीक रीति से न होने कारण लोगों का ध्यान अच्छे बाग़ लगाने या बाग़ की रक्षा पर नहीं है।

१०. आपस में लड़ाई-झगड़ा होने के कारण बहुत छोटे-छोटे हिस्सों में बँटवारा हो रहा है, एक खेत घर के पास है तो दूसरा मील भर दूर, तीसरा उससे एक फर्लाङ्ग पर, इस तरह इकट्ठी खेती करने का मौका नहीं है। दूसरे सब मदों में खर्च बढ़ता है, और रखवाली ठीक तौर पर नहीं हो सकती।

११. खेती के औज़ार पुराने और दक़ियानूसी हो गये हैं, और नये और अच्छे ख़रीदे या बनवाये नहीं जाते।

माली हालत किसानों की इतनी ख़राब है कि वे बाप-दादों की जायदाद को धीरे-धीरे खोते जाते हैं, उनके पास धन नहीं है कि अपनी भागती हुई जायदाद को चतुर साहूकार के चङ्गुल से बचा सकें।

७. तन्दुरुस्ती पर असर

पहले के किसान शहर के लोगों के मुक़ाबले अधिक हृष्ट-पुष्ट और तन्दुरुस्त समझे जाते थे, पर आज वह चलती-फिरती हुई ठठरियाँ हैं, जिनके चेहरे पर उदासी है। जान पड़ता है कि उन्होंने हँसी-खुशी के दिन नहीं देखे है, और सीधे स्मशान की ओर चले जा रहे हैं। दरिद्रता के कारण—

१. अपनी तन्दुरुस्ती पर वे उचित ध्यान ध्यान नहीं रख सकते।

२. कभी-कभी उन्हें खेतों में कमर तोड़ परिश्रम करना पड़ता है, परन्तु साल में अधिक बेकार ही रहना पड़ता है। इस असंयम से वे बच नहीं सकते।

३. पोषण काफी नहीं होता, इसलिए जीवनीशक्ति कम होती है और रोग का मुक़ाबला नहीं कर सकती।

४. रोग के कीड़े उनके शरीर में जल्दी फैलते और घर कर लेते हैं।

५. पेट के कीड़े और चुनचुने उन्हें ज्यादा होते हैं।

६. ठीक भोजन न मिलने से तरह-तरह के चर्म रोग होजाते हैं।

७. फैलनेवाले रोग जब फैलते हैं तो क़ाबू में नहीं आते।

८. किसान लोग रोग की भयानकता समझते हुए भी उससे बचने का उपाय नहीं कर सकते।

९. कपड़ा काफ़ी न होने से फ़सली बीमारियाँ होती रहती हैं।

१०. घरों में काफ़ी बचाव नहीं होता।

११. मलेरिया से बचने के लिए वे मसहरियाँ इस्तेमाल नहीं कर सकते।

१२. घरों में हवा और रोशनी का काफी बन्दोबस्त नहीं हो सकता।

१३. खाने-पीने के लिए पानी बहुत गन्दा आता है। साफ़ और शुद्ध जल का बन्दोबस्त अनेक स्थानों पर नहीं हो सकता। तालाब का पानी हर तरह पर गन्दा होता है और कुएँ गहरे नहीं होते तो परनालों की गन्दगी कुएँ के पानी में मिल जाती है। शुद्ध पानी का ख़र्चीला बन्दोबस्त नहीं किया जा सकता।

१४. स्वास्थ्य-रक्षा की शिक्षा उन्हें नहीं मिलती।

१५. बच्चे बड़ी संख्या में मरते हैं।

१६. दवा-इलाज की सहायता नहीं मिलती।

१७. अच्छे वैद्य-हकीम गाँवों में नहीं मिलते। बीमार होने पर दवा-इलाज का खर्चा उठा नहीं सकते।

१८. अस्पताल बहुत दूर पड़ते हैं।

१९. देहातों में घूमनेवाले डाक्टर न तो समय पर पहुँच सकते हैं, न काफ़ी मदद करते हैं, और न इस अनमोल मदद का लाभ ज्यादा लोग उठा सकते हैं।

२०. लोगों की औसत उमर घटकर २८ वर्ष हो गई है।

२१. शरीर के पोषण के लिए जितने पदार्थ चाहिएँ उनमें मुख्य नमक है। जो अनेक रोगों से रक्षा करता है, यह नमक आदमी को काफ़ी नहीं मिलता, और ढोरों को तो बिलकुल नहीं मिलता, क्योंकि किसानों की थोड़ी आमदनी के लिए वह बहुत महँगा है।

२२. ढोरों में बीमारियाँ फैल जाती हैं, मगर किसान इलाज नहीं कर सकता।

२३. जहाँ ढोर बाँधे जाते हैं वहाँ की काफी सफ़ाई किसान नहीं कर सकता।

२४. बीमारियों से ढोर मर जाते हैं और दूसरे ढोरों में बीमारी फैला जाते हैं, इस तरह किसान का कई तरह का नुक़सान होजाता है।

२५. ढोरों की बीमारी में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से मदद का लाभ बहुत कम उठा सकता है।

जब गाँव का बन्दोबस्त पंचायत के हाथ में था, गाँव में वैद्य भी होते थे, और दवा-इलाज का बन्दोबस्त अपना होता था। उसके सिवाय शिक्षा ऐसी थी कि ग्वाले और गृहस्थ किसान शालिहोत्री और डाक्टर का बहुतेरा काम जानते थे। धाय का काम तात्कालिक चिकित्सा और दवा-दर्पण घर-घर बूढ़े किसान और घर की बाल-बच्चों वाली लुगाइयाँ इतना काफ़ी जानती थीं, कि डाक्टर और अस्पताल की मोहताज न थीं। परन्तु पुरानी शिक्षा की विधि उठ गई, और बस्ती के उजड़ने से भी परम्परा और अभ्यास दोनों की हानि हुई।

८. माली दशा पर प्रभाव

इस विषय में तो पिछले पृष्ठों में हम 'सरकारी लगान नीति', उसकी रक़में और उसके वसूल करने की विधि इत्यादि पर विचार कर चुके हैं। सारी दरिद्रता का कारण तो वह स्वार्थी नीति है जिसका व्यवहार भूमि-कर के सम्बन्ध में किया जाता है। वही तो किसान की दरिद्रता का प्रधान कारण है। दरिद्रता के कारण--

१. सिंचाई का वह काफ़ी प्रवन्ध नहीं कर सकता, और वर्षा के भरोसे रह जाता है। वर्षा न हुई तो फसल गई।

२. वह अकेले मेहनत करता है। मजूरी न दे सकने के कारण या मजूर न मिलने के कारण उसकी खेती जितनी चाहिए उतनी सफल नहीं होती।

३. पैदावार के मुक़ावले लागत ख़र्च खेती में ऊँचा पड़ता है, क्योंकि वह अच्छे औज़ार नहीं काम में ला सकता। उसके खेत दूर-दूर हैं और टुकड़े टुकड़े हैं। उसके वैल दुवले हैं, और अनाज इसीलिए कम उपजता है।

४. ज़रूरत पड़ने पर उसके पास कोई जमा नहीं है, जो लगा सके। पहले ज़माने में उसकी औरत के गहने उसके लिए वैंक के समान थे। अव वह गहने भी नहीं वनवा सकता।

५. लगान या मालगुज़ारी देने के समय उसे लाचार होकर साहूकार से क़र्ज़ लेना पड़ता है, और खेत रहन रखना पड़ता है। किसानों पर लगभग आठ अरव के क़र्ज़ लदा हुआ है।

६. आये दिन की मुक़दमेवाज़ी में किसान परेशान रहता है, और अधिक से अधिक लुटता जाता है।

७. गांजा, ताड़ी शराब की कुटेव में फँसता है, और तन मन धन और धर्म सब खो देता है।

८. शादी-ग़मी, काम-काज में वह अपनी हैसियत से ज़्यादा ख़र्च करता है, और क़र्ज़ से लद जाता है।

९. वह अपने लिए ज़रूरी कपड़े भी नहीं ख़रीद सकता। उसकी ख़रीदने की ताक़त बहुत कम हो गई है।

१०. काबुली, बलूची, पठान और दूसरे व्यापारी उसे जाड़े के शुरू में दूने-तिगुने दामों पर उधार कपड़े देकर ठगते हैं, और जाड़ा बीत जाने पर बड़ी कड़ाई से वसूल कर लेते हैं।

११. खेती के और सामान भी वह नक़द नहीं ख़रीद सकता। उधार के कारण उसे बहुत ठगाना पड़ता है।

१२. खेत की उपज़ दिन-दिन घटती जाती है। वह उपज़ बनाये रखने के लिए उपाय नहीं कर सकता।

१३. लगान की दर इतनी ऊंची है कि आधे से ज़्यादा खेत का मुनाफ़ा निकल जाता है, और उसे अपनी लागत का ख़र्चा और उस-पर का सूद मुश्किल से मिलता है। फ़सल अच्छी न हुई तो वह भी गया।

१४. वह कांग्रेस का चन्दा नहीं दे सकता, और अपना प्रति-निधि कांग्रेस में नहीं भेज सकता।

१५. गांव में शिक्षा रक्षा और मन-बहलाव के लिए जो उपाय वह पहले कर सकता था, अब नहीं कर सकता।

१६. बुढ़ापे के लिए और अनाथों और विधवाओं के लिए कोई बन्दोबस्त नहीं कर सकता।

१७. आग लगने पर, बाढ़ आने पर और ओले पड़ने पर वह कोई उपाय नहीं कर सकता। बीमे के लिए उसके पास धन कहां है?

१८. उसकी औसत आमदनी छः पैसे रोज़ है। इतनी थोड़ी आमदनी पर वह आधा पेट मुश्किल से खा सकता है, और ज़रूरतों की कोई चरचा नहीं।

१९. वह साल में औसत छः महीने तक बेकार रहता है। उस बेकारी की दशा को 'फ़ुरसत' नहीं कह सकते। दरिद्रता के कारण इससे फ़ुरसत का सुख वह नहीं उठा सकता।

२०. उसके अनेक रोज़गार छिन गये हैं। विदेशियों की चढ़ा-ऊपरी से, विदेशी सरकार होने के कारण उसके रोज़गारों की रक्षा होने के बदले विनाश हो गया है। कपास की खेती, ओटना, धुनना, कातना, बुनना बन्द हो गया है। खँडसालें बन्द हो गई हैं, गोचर-भूमि के खेत बन जाने से और जीते हुए गाय-बैल के मुक़ाबले में चमड़ा, मांस, चर्बी, हड्डी, सींग आदि से ज़्यादा दाम मिलने के कारण गोवंश का नाश हो गया, और ग्वालों का रोज़गार चौपट हो गया। ये सारे रोज़गार नष्ट हो जाने से किसान के आधे जीवन की बेकारी पर मोहर लग गई।

किसान की माली हालत लिखने लायक़ नहीं है। देखने को आँखें नहीं रह गई हैं। सोचने से कलेजा मुँह को आता है। इस माली हालत को हम शून्य नहीं कह सकते। यह शून्य से इतना कम है, कि आठ अरब रुपयों के आगे ऋण का एक बहुत मोटा-सा चिन्ह लगा हुआ है। यह माली हालत दरिद्रता के कारण नहीं है, बल्कि सारी दरिद्रता का कारण है।

९. धर्म पर प्रभाव

धन का उपभोग करते हुए जो आदमी संसार को असार समझ कर उसका त्याग करता है वह विरक्त कहलाता है, परन्तु संसार में

विरक्त बहुत थोड़े हैं और होने भी चाहिएँ। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी संसार में थोड़े ही होते हैं। सबसे ज़्यादा संख्या संसार में गृहस्थों की होनी चाहिए, जिनसे बाक़ी सबका पालन-पोषण होता है। धर्म की सबसे अधिक ज़िम्मेदारी गृहस्थों पर आती है। भारतीय किसान किसी समय बड़ा ही धार्मिक था। उसके द्वार से मंगन निराश होकर नहीं लौटता था। होम, जप, तीर्थ, पूजा, त्यौहार और उत्सव उसके जीवन के अङ्ग थे। संसार में उसके बराबर सफ़ाई से रहनेवाला कोई न था। उसकी ईमानदारी और सचाई जगत् में प्रसिद्ध थी। वह अपनी बात पर मर मिटता था। उसके यहाँ स्त्री जाति का पूरा सम्मान था। पराई स्त्री को मां, बहन, बेटी समझता था। नशेबाज़ी की तरफ़ कभी आँख उठाकर भी न देखता था। जहाँ संसार के किसान मांस खाने के लिए पशु पालते थे, वहाँ भारतीय किसान अहिंसा—किसी प्राणी का जी न दुखाना और प्राणिमात्र से अपना आपा समझकर सच्चा प्रेम रखना—अपना परम धर्म मानता था। गाँवों की विशेष रूप से और पशुओं की साधारण रीति से रक्षा करता था। हम यह नहीं कहते कि भारत में मांस खानेवाले न थे। परन्तु संसार में और देशों के मुक़ाबले हमारे देश में मांस खाने की चाल बहुत कम थी, और इस कमी के कारण हमारे यहाँ के किसान ही थे। परन्तु आज क्या दशा है? दरिद्रता के कारण धर्म-बुद्धि नष्ट हो गई, और सदाचार के बदले कदाचार ने अपनी हुकूमत जमाई। दरिद्रता के कारण—

१. वह आवश्यक दान नहीं कर सकता।

२. तीर्थाटन नहीं कर सकता।

३. व्रत, होम, जप आदि भी नहीं कर सकता।

४. पूजा आदि नहीं कर सकता। और इन कामों में शिथिलता आने से उसके मन से धीरे-धीरे श्रद्धा उठ गई, इसलिए वह मन्दिरों में दर्शनों और जल चढ़ाने के लिए बहुत कम जाता है।

५. खेती के सम्बन्ध में होनेवाले अनेक यज्ञ वह नहीं करता।

६. पुरोहितों की रोज़ी उनका मान कम होने से बहुत करके जाती रही।

७. कथा-पुराण से उसे बड़ी शिक्षा मिलती थी, परन्तु व्यास को दक्षिणा देने के लिए अब उसके पास कुछ नहीं है।

८. मन्दिरों और शिवालयों की दशा अश्रद्धा के कारण ख़राब है। आजकल के सुधारक सम्प्रदायों ने जो धार्मिक ख़र्च घटा दिया है, केवल इसी कारण वह बिना उन धार्मिक सम्प्रदायों में सम्मिलित हुए, उनकी किफ़ायती रीति वर्तने लगा है। धार्मिक बातों में उसपर किसी का दबाव नहीं है। सामाजिक बातों में समाज के दबाव के कारण ही वह काम-काज में बहुत ख़र्च करने को लाचार हो जाता है।

९. गाँव में अब पुरोहित का होना ज़रूरी नहीं रह गया है।

१०. धार्मिक मेलों और पूजाओं में दिन-पर-दिन इकट्ठे होने वालों की गिनती घटती जाती है।

११. मेलों में जाकर वह केवल धार्मिक काम नहीं करता था। वह मनबहलाव भी करता था और पशु और अपने खेती के सामान आदि भी ख़रीदता था। पर आज पैसे बिना उसका मेला फीका है।

१२. वह मुकदमाबाज़ी में फँसकर धूर्त, झूठा, दग़ाबाज़ और बेईमान हो गया।

१३. उसे अपने स्वार्थ के लिए आज हत्या करने आग लगाने ज़हर देने आदि पापों से हिचक नहीं है। वह भूख के मारे खूँखार

हो गया है। किसी का दिल दुखाना उसके निकट कोई पाप नहीं रह गया है। देखने में वह अहिंसक अब भी है, परन्तु उसका कारण प्रेमभाव नहीं है। उसका कारण है उसकी अत्यन्त कमजोरी।

१४. किसान का अन्तरात्मा अभीतक जीता नहीं गया है। वह अब तक उसे बुरे कामों से रोकता है, परन्तु वह अन्तरात्मा का शब्द न सुनने के लिए अपनेको तमाखू, भाँग, गाँजा, अफ़ीम, ताड़ी, शराब आदि नशों से बेहोश कर लेता है, और तब दुराचार में लगता है।

१५. वह व्यभिचारी हो गया है, और स्त्रियों का उसकी निगाहों में पहले का सा सम्मान नहीं रह गया है।

१६. स्त्रियाँ बेचारी उसकी पूरी अवस्था नहीं समझतीं, और कुछ दरिद्रता और कुछ अशिक्षा के कारण उसकी पूरी सहायता नहीं कर सकतीं। आये दिन घर में झगड़े होते रहते हैं, और उनका निरादर होता रहता है।

आजकल नास्तिकता के ज़माने में धर्म के ह्रास की इस गिनती पर अनेक पंडितम्मन्य पाठक मुस्करायेंगे। परन्तु जहाँतक लेखक को मालूम है, रूस को छोड़कर संसार के सभी देशों में किसान के कल्याण के लिए उसमें धार्मिकता और नैतिकता का भाव आवश्यक समझा जाता है। हम साम्प्रदायिकता के विरोधी हैं, परन्तु धार्मिकता को राष्ट्रीयता का आवश्यक अंग समझते हैं।

१०. कला पर प्रभाव

कला तो सब तरह से सुख और समृद्धि पर निर्भर है। जहाँ पेट भर खाने को नहीं मिलता, वहाँ तो कला की चर्चा ही वृथा है।

ऐसा भी कोई न समझे कि कला की ज़रूरत ही नहीं है। मनबहलाव और व्यायाम—सामाजिक शिष्टाचार, मेले-तमाशे और मनोरंजन की सारी सामग्री कला में शामिल है। इन सब बातों का आदमी की आयु की कमी-बेशी पर प्रभाव पड़ता है। दरिद्रता के कारण—

१. खेल-कूद का सब तरह से अभाव हो गया है। बड़े तो खेल को भूल ही गये हैं। भूखे पेट खेल क्या होंगे ?

२. बच्चे भी भूखों बिल्लाते हैं, कबड्डी आदि खेलने को इकट्ठे नहीं होते।

३. बालजीवन सुखमय नहीं है।

४. बच्चों को खिलौने नहीं मिलते।

५. मेले-तमाशे बहुत कम होते हैं।

६. पैदल दूर की यात्रा करने का हौसला नहीं है, क्योंकि खाने को नहीं है, और मार्ग का सुभीता नहीं है।

७. शाम को कथा-वार्ता नहीं होती, क्योंकि लोग न शिक्षित हैं और न अनुभवी।

८. लोगों को जीवन में रस नहीं रहा, लोग फूल के पेड़ नहीं लगाते, गमले नहीं रखते और घर-द्वार सँवारने का शौक़ नहीं रहा।

९. स्त्रियों को चौक पूरने और भीत पर चित्र लिखने का शौक़ नहीं रहा।

१०. तीज-त्योहारों पर गाने-बजाने का शौक़ घट गया है, दीवाली और फाग में अब वह पहले की-सी उमङ्ग नहीं है।

११. संसार की वस्तुओं के सौन्दर्य की ओर ध्यान कम है, गाने-बजाने का रिवाज घट गया है।

१२. अपने शरीर को सुन्दर और स्वच्छ रखने की ओर ध्यान नहीं है, और हृष्ट-पुष्ट बनाने का हौसला नहीं है।

१३. जीवन की गाड़ी को घसीटकर मौत की मंज़िल तक किसी तरह पहुँचाना ही कर्तव्य मालूम होता है।

वैराग्य में भी ऐसा निर्वेद हो जाता है कि आदमी सांसारिक जीवन में कोई रस नहीं पाता और ऊबकर परमात्मा में चित्त लगा लेता है। परन्तु वह बात दूसरी है। किसान भी अपने जीवन से ऊब गया है, परन्तु इसलिए नहीं कि उसका चित्त परमात्मा में लग गया है। उसके निर्वेद का कारण भक्ति नहीं है, उसका कारण है भूख। जो जीवन की सब से बड़ी ज़रूरत है—अर्थात् भोजन, वही उसे लाख जतन करने पर भी नहीं मिलता। भारत का किसान आजकल कुराज्य के प्रभाव से नरक-यातना भोग रहा है।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी,
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।

अच्छे राजा को प्रजा प्यारी होती है, क्योंकि प्रजा (प्रकृति) को प्रसन्न रखने से (रञ्जनात्) ही राजा कहलाता है। विदेशी राजा को यहाँ की प्रजा उसी तरह प्यारी है जिस तरह माँस खानेवाले को बकरी। परन्तु विदेशी हुकूमत की नीति उसीके लिए अन्त में घातक है। मुर्ग़ी से एक सोने का अंडा नित्य लेना लाभकारी है। मारकर सब अंडे एकसाथ ले लेना, अथवा अंडे देने की ताक़त को नष्ट कर देना, बुद्धिमानी का काम नहीं है। विदेशी हाकिमों में अंधे स्वार्थ के मुक़ाबिले दूरदर्शिता अधिक होती तो वे अपनी सारी कोशिश इस बात में लगा देते कि भारत की ख़रीदारी की ताक़त नित्य बढ़ती जाय, और हमारा माल खपता जाय। वे अपने यहाँ

के स्वार्थी सिविलियनों के द्वारा भारत के धन को फ़िज़ूलख़र्ची में न लगाते। भूमि-कर बहुत हलका लेते। किसान सुखी रहता, वह विलायत का बहुत अच्छा ग्राहक होता, और इस तरह विलायत के माल तैयार करनेवाले शायद आजकल से अधिक धन खींच ले जाते। शुद्ध और सच्चे व्यापारी की नीति बुरी नहीं है, परन्तु बेईमान और ठग व्यापारियों की नीति अन्त में उन्हींके लिए घातक होती है। इस घड़ी किसान के सिर पर दरिद्रता का बोझ असह्य होगया है। दम नाकों में आगया है। एक-एक क्षण की देर उनके लिए दूभर है। उनकी ख़रीदारी की ताक़त नष्ट होजाने से देश का भीतरी व्यापार भी बुरी दशा में है। दरिद्रता की दशा में पाप और व्यभिचार का परनाला देहातों से बह-बहकर चारों ओर से शहरों में आकर सिमटता है, जहाँ बस्ती घनी है और आदमी व्यसनी हैं। फल यह होता है कि दरिद्र देहातों से घिरे हुए शहर गन्दगी की खान होजाते हैं।[१] शहरवालों पर प्रत्यक्ष कर कम लगे हुए हैं, उनकी

१. मिस मेयो ने अपनी अमर अपकीर्ति "मदर इण्डिया" में जो भारत के गंदे चित्र खींचे हैं उनकी अत्युक्ति को भी हम सच मानलें तो वह विदेशी शासन की घोरतम निन्दा होजाती है। इसके लिए मिस मेयो के ही देश के खेती के सम्पत्तिशास्त्र के भारी-भारी विद्वान और प्रामाणिक लेखक एक स्वर में यही कहते हैं कि दरिद्रता के कारण सभी तरह के पातक और गन्दगियाँ होती हैं, जो शहरों को भी खराब कर डालती हैं। इनके महाकारण—अर्थात् दरिद्रता—के लिए देश की सरकार ही ज़िम्मेदार होती है। जो पाठक स्वयं इस विषय को देखना चाहें वे इन प्रमाणों को स्वयं पढ़लें—Articles Contributed by

(1) Richard T. Ely, Research Professor of Economics and Director of the Institute for Research in Land Economics and Public Utilities.

दशा इसीलिए कुछ अच्छी है। इसीलिए वे व्यसनों में सहज ही फँस जाते हैं। साथ ही यह बड़े दुःख की बात है कि किसानों की गाढ़े पसीने की कमाई उन शहरों को सजाने और सब तरह सुखी बनाने में विदेशी सरकार आसानी से खर्च कर देती है, जिनसे असल में किसानों को लाभ नहीं होता। एक ओर तो करोड़ों किसान दाने-दाने को तरसते हों, और दूसरी ओर १४ करोड़ रुपये लगाकर बिना आवश्यकता के नई दिल्ली के महल बनते हों, यह हद दर्जे की निठुराई है। शहरों में पानी के बन्दोबस्त के लिए या बिजली का बन्दोबस्त करने के लिए रुपये पानी की तरह बहा दिये जाते हैं। किसान का बोझ हलका करने के लिए एक अंगुली भी नहीं उठाई जाती।

हमने ऊपर विस्तार से दरिद्रता से पैदा होनेवाले दोष दिखाये हैं। एक दरिद्रता दूर हो जाय, तो ये सारे दोष दूर हो सकते हैं। सुधारक लोग हर दोष को दूर करने के लिए अगल-अलग उपाय करते रहते हैं, पर उन्हें सफलता नहीं होती। जगह-जगह पैबन्द लगाने से काम नहीं चलता। पत्ते-पत्ते पर जल देने से पूरे पेड़ का पोषण नहीं हो सकता। या तो विदेशी सरकार इस दरिद्रता को दूर करे या भारत की प्रजा इस दरिद्रता को पैदा करनेवाली सरकार को दूर करे और अपना बन्दोबस्त आप ही करके अपनी पुरानी सुख-समृद्धि को लौटा लावे।

---

(2) O. F. Hall, Professor of Sociology, Purdue University.

(3) John A. Ferrell, M. D, International Health Board, and

(4) C. E. Allred, Professor of Agricultural Economics, University of Tenessee,

in "Farm Income & Farm Life" published by the University of Chicago Press, 1927, pages 155-189.

A. w. Hayes: *Rural Sociology*, Longmans, Green & Co. : 1929, Chap XVIII, P P. 430-457

: १२ :

और देशों से भारत की खेती का मुक़ाबिला

१. सुधारकों की भूल

भारत की खेती की दशा अत्यन्त गिरी हुई है इस बात से किसी को भी इनकार नहीं है, परन्तु जो लोग सुधार के उपाय बताते हैं वे अक्सर जापान और योरप का नमूना पेश करके चाहते हैं कि हमारा देश भी इन्हीं देशों की तरह उन्नति के उपाय करके कम-से-कम समय सुखी और समृद्ध हो जाय। वे देखते हैं कि हमारे संयुक्त-प्रान्त में गेहूं सींचे हुए खेत में १२ मन प्रति एकड़ और बिना सींचे हुए में ८ मन प्रति एकड़ पैदा होता है। वही कनाड़ा में १३ मन और जर्मनी में १७ मन होता है। इंग्लिस्तान में एकड़ पीछे भारत का दूना होता है। परन्तु वे इस मुख्य बात को बिलकुल भूल जाते हैं कि इनमें से किसी देश में विदेशी राज नहीं है। किसी देश का धन चूसकर पराये देश में नहीं चला जाता, अपने देश की सरकार तन, मन, धन से अपने देश के ही हित में लगी रहती है। जिस दिन सरकार और प्रजा में हितका विरोध होता है, प्रजा तुरन्त सरकार को बदल देती है। फिर इन देशों में सुधार के होने में देर क्यों लगे? इसमें सन्देह नहीं कि खेती की कला में संसार में किसी समय भारत सबसे आगे था, परन्तु आज विदेशी हुकूमत की बदौलत सबसे पिछड़ गया है। जो मूल कारण उसके पिछड़ जाने का है उसके होते अपनी खोई दशा को पा जाना कैसे सम्भव है? फिर भी इस प्रकरण

में सुधारकों की शंकाओं के समाधान के लिए हम कुछ देशों से मुक़ाबिला करेंगे। खेती के सम्बन्ध में अमेरिका संसार में सबसे बढ़ा-चढ़ा समझा जाता है। पहले हम अमेरिका पर विचार करेंगे।

२. अमेरिका की खेती

'अमेरिका' साधारण बोलचाल में अमेरिका के संयुक्तराज्यों को कहा जाता है। किसी ज़माने में, जिसको आज तीन सौ बरस के लगभग हुए, इंग्लिस्तान में किसानों पर अत्याचार होने लगे थे, और ईसाइयों के 'भाई सम्प्रदाय' पर उनके भाई ईसाई तरह-तरह के जुल्म ढाने लगे थे। उस समय 'भाई सम्प्रदाय' वाले हज़ारों परिवार पहले-पहल हाल के मालूम किये हुए महाद्वीप अमेरिका में चले गये और बस गये। जिस प्रदेश में बसे उसका नाम 'नया इंग्लिस्तान' रक्खा। उसके बाद अपना देश छोड़-छोड़ सताये हुए कुटुम्ब अमेरिका में जाकर बसने लगे। धीरे-धीरे 'नये इंग्लिस्तान' की तरह अनेक नये उपनिवेश बन गये, जिनमें अंग्रेज़ी बोलनेवालों की संख्या ज्यादा थी। इसीलिए ये सभी उपनिवेश अंग्रेज़ों की जायदाद बन गये और ब्रिटेन उनसे लाभ उठाने लगा। जब धन चूसने की क्रिया अपनी हद को पहुँच गई तब वहाँ स्वदेशी और बहिष्कार का आन्दोलन चला, और अन्त में स्वतंत्रता का युद्ध हुआ, जिसमें इंग्लिस्तान एक तरफ़ था और बहुत-से संयुक्तप्रदेश वाशिङ्गटन के नेतृत्व में दूसरी तरफ़ थे। अन्त में वाशिङ्गटन विजयी हुआ और संवत् १८३३ में ये संयुक्त राज्य स्वतंत्र हो गये। इस तरह इनको स्वतंत्र हुए डेढ़ सौ बरस हो गये। मोटे तौर से यों समझना चाहिए कि उन्हें स्वतंत्र हुए जितना समय बीता, हमें परतंत्र

हुए भी उतना ही समय बीता है। साथ ही मशीनों की उन्नति का आरम्भ हुए भी लगभग ७५ बरस बीते हैं, और लगभग ६० बरस पहले अमेरिका की खेती प्रायः उतनी ही उपजाऊ थी जितनी आज भारतवर्ष की खेती है। स्वतंत्र अमेरिका को इस तरह अपनी वर्तमान उन्नत दशा को पहुँचने में ६० बरस लगे हैं। भारतवर्ष की बात जाने दीजिए, क्योंकि वह पराधीन है। परन्तु इंग्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, रूस तो अमेरिका से पहले के स्वतंत्र देश हैं, परन्तु उन्होंने भी उतनी उन्नति नहीं कर पाई है जितनी अमेरिका ने की है। इसका कारण क्या है? अमेरिका की परिस्थिति पर विचार करने से इस सवाल का जवाब मिल जायगा।

अमेरिका की आबादी प्रायः गोरों की है, वह शहरोंवाला देश है। उसका क्षेत्रफल ३०,१३,००० वर्गमील है और आबादी साढ़े ग्यारह करोड़ है। इस तरह वहाँ मील पीछे आज ३८ आदमी के लगभग बसते हैं। भारतवर्ष का क्षेत्रफल १३ लाख वर्गमील के लगभग और आबादी पैंतीस करोड़ के लगभग है। इस तरह यहाँ वर्गमील पीछे २६९ आदमी बसते हैं। इस तरह भारतवर्ष की बस्ती लगभग सात गुना ज्यादा घनी है। किसानों की आबादी भारतवर्ष में तीन-चौथाई है, और जितने लोग खेत के सहारे गुज़र करते हैं वे सैकड़ा पीछे नब्बे के लगभग हैं। इस तरह अकेले किसानों की आबादी अगर ली जाय तो मील पीछे हमारे देश में २३४ किसान बसते हैं। यह बात बिलकुल प्रत्यक्ष है कि हमारे यहाँ अमेरिका के मुक़ाबिले खेती के लिए धरती कम है और खेती के सहारे जीनेवाले अत्यधिक हैं। संवत् १९७८ की मर्दुमशुमारी में खेती करनेवालों की गिनती बाईस करोड़ साढ़े नब्बे लाख के लगभग थी। कुल ज़मीन जिसमें खेती

होती है, लगभग साढ़े बाईस करोड़ एकड़ के हैं। इस तरह भारत में किसानों के सिर पीछे मुश्किल से एक एकड़ की खेती पड़ती है। संवत् १९६९ में अमेरिका में किसानों के पास सिर पीछे औसत ५५ एकड़ के खेत थे और सिर पीछे २० एकड़ परती। वहाँ किसानों की गिनती धीरे-धीरे घटती जा रही है। सम्वत् १९०७ में कुल आबादी के ६३ प्रति सैकड़ा किसान थे, संवत् १९७७ में आबादी २९ प्रतिशत हो गई है। इतनी उन्नति होते हुए भी वहाँ किसानों की संख्या क्यों घटती जाती है ? इसलिए कि उद्योग-व्यवसाय के मुक़ाबिले में खेती की आर्थिक स्थिति बराबर गिरी हुई रहती है। "इसका अर्थ यह है कि इस संसार की बड़ी-बड़ी मण्डियों में अमेरिका के उद्योग-व्यवसाय को बढ़ा-चढ़ा रखने के लिए वहाँ की खेती का बलिदान करना पड़ेगा।"[१]

भारत में सिर पीछे जो एक एकड़ की खेती का औसत बैठता है उसमें भी छोटे-छोटे टुकड़े हैं और वे टुकड़े दूर-दूर पर हैं। अमेरिका में सैकड़ों एकड़ की इकट्ठी खेती एकसाथ है जिसकी जुताई-बुवाई के लिए इकट्ठी मशीनों से काम लेने में किफ़ायत होती है। यह बात तो प्रत्यक्ष है कि रोज़गार का फैलाव जितने अधिक विस्तार का होगा उतनी ही अधिक लागत भी बैठेगी और उसी हिसाब से मुनाफ़ा भी ज्यादा होगा। यूरोप के स्वतन्त्र देशों में भी जिन देशों की आबादी घनी है और किसान को सिर पीछे खेती करने को कम ज़मीन मिलती है वहाँ के किसानों ने भी अमेरिका के किसानों के मुक़ाबिले कम उन्नति की है, यद्यपि न तो उनके

१. Farm Income & Farm Life : The University of Chicago Press, 1927. P. 106.

यहाँ भारत की तरह औसत जोत इतनी कम है और न पराधी-नता है और न उससे उपजी हुई घोर दरिद्रता।

इस बात को भी भूल न जाना चाहिए कि अमेरिका आदि देशों के किसानों को लगान के बढ़ने या खेत से बेदखल हो जाने का उस तरह का डर नहीं है जिस तरह भारत में है। खेती की सुरक्षा तो भारत के मुक़ाबिले उन उपनिवेशों में ही अच्छी है जहाँ गिरमिटवाली गुलामी करने बहुत-से भारतीय गये और सुभीता देखकर वहीं बस गये और खेती करने लगे। विदेशों की-सी सुरक्षा यहाँ भी हो जाय तो पैदावार बढ़ सकती है।

अमेरिका में पहले आबादी भी थोड़ी थी और मशीनों की चाल भी नहीं चली थी, तब वे अफ़रीका के हबशियों को ग़ुलाम बनाकर ले गये और काम लेने लगे। विस्तार से खेती का काम बिना कल के सहारे करने के लिए बहुत ज़्यादा आदमियों की ज़रूरत होती है, इस-लिए वहाँ मशीनों की चाल चल जाने से आदमियों की ज़रूरत घटती गई। पिछले साठ बरसों में से पहले तीस बरसों में अधिक काम मशीनों के प्रचार ने किया। यह प्रचार और शिक्षा का काम कृषि-विभाग करता रहा। विक्रमी की बीसवीं अर्धशताब्दी के बीतते-बीतते अमेरिका वालों का जो जोश ठण्डा पड़ गया था वह धीरे-धीरे जगने लगा। पिछले तीस बरसों में यह जागृति ज़ोरों से इसलिए हो गई कि कच्चे माल की दर बहुत जोरों से चढ़ने लगी और लोग खेती की ओर झुकने लगे, जिससे भय हुआ कि अन्न घट जायगा। तब फिर से कृषि महा-विद्यालय और कृषि-विभाग की जाँचवाले दफ़्तर खुल गये। आवाज़ उठी कि वैज्ञानिक प्रयोग किसान तक ज़बरदस्ती पहुँचाये जाने चाहिएँ। खेती के विशेषज्ञ ज़िले के एजेण्ट और खेती के संवादपत्रों

ने इस काम को उठा लिया। रेल की गाड़ियों में और मोटरों में सिखानेवाले और कर दिखानेवाले बैठकर गाँव-गाँव का दौरा करने लगे। हर तरह की सरकारी सहायता बड़ी उदारता से मिलने लगी। क्यों न हो; अपने देश की खेती के बढ़ाने की बात जो थी। खेती की योग्यता के बढ़ाने के प्रश्न पर अमेरिका में मनुष्य का जितना दिमाग़ और जितनी ताक़त पिछले १५ वर्षों में लगाई गई है, इतिहास में कहीं कभी नहीं लगाई गई थी।' पंजाब के गुड़गाँव के डिपुटी-कमिश्नर मिस्टर ब्रेन ने थोड़ी बहुत उसी ढंग पर कोशिश की थी, परन्तु उन्हें सफलता न हो पाई। कौवा चला हंस की चाल, अपनी चाल भी भूल गया। अमेरिका में जो काम होता है उसपर किसानों का पूरा विश्वास है। यहाँ सरकार में और किसान में भेड़िया और भेड़ का सम्बन्ध है। किसानों को सरकारी अफ़सरों का विश्वास नहीं है। जो कुछ ब्रेन साहब कर पाये, वह अफ़सरी के ज़ोम पर। उनकी नीयत बड़ी अच्छी थी, परन्तु वह सरकारपने का कलङ्क अपने व्यक्तित्व से मिटा न सकते थे। उन्होंने ज्योंही पीठ फेरी, उनका सारा प्रभाव मिट गया और सुधार की दशा फिर ज्यों-की-त्यों हो गई। बात यह थी कि उनके अधिकार में मालगुज़ारी का बोझा घटाना नहीं था। वह बहुत कुछ शोरगुल करके रह गये, इसीलिए अधिक-से-अधिक वह भी पैवन्द लगाने का काम ही कर सकते थे, और हम दिखा आये हैं कि जहाँ जड़ ही ख़राब है वहाँ पत्ते-पत्ते की सिंचाई काम नहीं दे सकती। वह चाहते थे कि सरकार की ओर से माली सहायता मिले, मालगुज़ारी कम की जाय, जंगल बढ़ाये जायँ और

१. Farm Income and Farm Life: The University of Chicago Press 1927, P. 115.

किसानों का उनपर अधिकार रहे।'[1] लाट साहब हेली ने उनकी पुस्तक की भूमिका लिखी, परन्तु व्यवहार में ब्रेन के दिमाग़ की अवहेलना की।

अमेरिका में जितने सुभीते हैं, उतने सुभीते जिस देश में हो जायं उसी देश की खेती दिन-पर-दिन बढ़ती जा सकती है। अमेरिका के सुभीते संक्षेप से ये हैं:—

(१) वह स्वाधीन राज्य है और वहां खेती से मिला हुआ कर देश के भीतर ही ख़र्च होता है।

(२) खेती पर किसान का सदैव का स्वार्थ है, उसे बेदखली का या इज़ाफ़ा लगान का कोई भय नहीं है।

(३) थोडे-से-थोडे कर में उसे ज्यादा-से-ज्यादा रक्षा मिलती है।

(४) जीवन की जितनी ज़रूरी चीज़ें हैं वे उसके पास क़ाफ़ी से ज्यादा हैं।

(५) उसके पास रोजगार का काम लगातार साल भर के लिए है, और वह अपने लिए क़ाफ़ी कमाई करके फ़ुरसत की घड़ियों का सुख भी लेता है।

(६) सारे परिवार के लिए मन-बहलाव का उपाय है और मेहनत करने के बाद नित्य उसे मन-बहलाव का सुभीता मिलता है।

(७) खेती के सम्बन्ध की सब तरह की शिक्षा के सुभीते उसे मिलते हैं।

(८) सफ़ाई, मकान और तन्दुरुस्ती की रक्षा के सारे उपाय उसे प्राप्त हैं।

१. F. L. Brayne. Village uplift in India. Pion Allahabad, 1927, Pp. 64-66, & 71.

(९) बाहर की आमद-रफ्त पत्र-व्यवहार और व्यापार के सब तरह के सुभीते उसे मिलते हैं।

(१०) जैसे उसका सारा देश स्वराज्य है उसी तरह उसका गाँव या बस्ती उस महास्वराज्य का एक स्वाधीन टुकड़ा है।

(११) उसके केन्द्रीय स्वराज्य से उसकी बस्ती का सम्बन्ध उसकी बस्ती के लिए सर्वथा हितकर है।

हमने जान-बूझकर मशीन के सुभीते और इकट्ठी बड़े रक़बे की खेती ये दोनों बातें शामिल नहीं कीं। हमारे देश में बड़े रक़बे मिल नहीं सकते और जो लोग आजकल मशीनों के चमत्कार को देख-कर उनपर हज़ार जान से फ़िदा हो रहे हैं हम उन्हें यह याद दिलाना चाहते हैं कि जो मशीन दो सौ आदमियों की जगह केवल एक आदमी को लगाकर काम कर सकती है वह एकसौ निन्यानवे आदमियों को बेकार भी रखती है। ऐसी मशीनों की ज़रूरत वहाँ पड़ सकती है जहाँ आदमी कम हों और काम ज्यादा हो। हमारे देश में इसका बिलकुल उलटा है। आज तो हमारे यहाँ आदमी ज्यादा हैं और उनके लिए काफ़ी मजूरी नहीं है। इसके सिवा मशीनों का काम बड़े पैमानों पर होता है। हमारा देश ऐसी स्थिति में है कि खेती का काम बड़े पैमाने पर नहीं हो सकता। इस रोज़गार को बड़े पैमाने पर करने में भी भारत की जनता की हानि है। जिस तरह कपड़े का कारोबार बड़े पैमाने पर होने से भारत में बेकारी का रोग फैल गया, उसी तरह खेती का कारोबार भी बड़े पैमाने पर होने से बेकारी बढ़ती ही जायगी। यदि सम्पत्तिशास्त्र को संसार के कल्याण की दृष्टि से देखें और परस्पर लूटनेवाली राष्ट्रीयता का दुर्भाव हटादें तो हमें यह कहना पडेगा कि कलों का प्रयोग वहीं तक कल्याणकारी है

जहाँतक वह अधिक-से-अधिक मनुष्यों को काम और दाम देकर अधिक-से-अधिक अच्छाई और मात्रा में माल तैयार कर सके। हम ऊपर प्रमाण के साथ यह दिखा आये हैं, कि ऐसे उत्तम सुभीते के रहते भी किसानों की गिनती घटती जाती है और अधिक लोग संसार को लूटनेवाले उद्योग-व्यवसाय की ओर चले जा रहे हैं। मिल की माया से मोहित मनुष्य इस झूठी कल्पना में उलझे हुए हैं कि औद्योगिक लूट बराबर जारी रहेगी और लुटनेवाले संसारी जीव जगकर इस लूट का द्वार कभी बन्द न कर सकेंगे, परन्तु यह भारी भ्रम बहुत काल तक न रह सकेगा।

फिर भी अमेरिका से हमको जो बातें सीखने लायक हैं हम ज़रूर सीख लेंगे। हम जितने सुभीते गिना आये हैं, भारत के लिए हम वे सभी सुभीते चाहते हैं।

वर्तमान समय में हम मोटरों पर चलनेवाले किसानों और मजूरों की तरह अपने यहाँके किसानों और मजूरों को विमानों का भोग-विलास करते देखने की स्पर्धा नहीं रखते। "भोजन सादा हो परन्तु भरपेट मिले, और पशुओं और अतिथियों तक के खिलाने के लिए बच जाय। भरसक खेतों की ही उपज हो, मोटा चाहे कितना ही हो और भाँति-भाँति का चाहे न भी मिल सके। खद्दर सस्ता हो जिसमें शरीर की रक्षा हो सके और सर्दी से बचाव हो, चाहे महीन मुलायम और सुन्दर न हो परन्तु ज़रूरत से किसी तरह कम न हो। छाया के लिए मकानियत काफ़ी हो, चाहे उसमें सजावट और सुघराई न हो तो भी सफ़ाई पूरी रह सके। बहुत थोड़े से खर्च में शिक्षा मिले, पुस्तकें मिलें और सब तरह के मनबहलाव का सामान हो जायँ। सामाजिक काम भी बिना बाधा के हो सकें। जोखिमों का बीमा भी

होता रहे और धरती पर के जीवन के लिए और भी कुछ थोड़ी-बहुत बे-ज़रूरी बातें भी सुलभ हों। संसार के अधिकांश किसानों को इससे ज्यादा सुभीते नहीं हैं। अधिक लोगों को तो असल में इनसे बहुत कम हैं। यह एक बहुत दिनों से पक्की बात है कि पीढ़ियाँ-पर-पीढ़ियाँ गुज़रती गई हैं, और जीवन के इन परिमाणों से सन्तुष्ट रहकर वे केवल किसान ही नहीं बने रहे बल्कि जितना हमें चाहिए था उतने से अधिक उपजाते भी रहे। इससे बढ़कर इस बात की कोई गवाही हो नहीं सकती कि जीवन के इससे अधिक ऊँचे परिमाणों की असल में ज़रूरत न थी, या यों कहना चाहिए कि खेती की परिस्थिति में इससे ऊँचे परिमाण की रक्षा नहीं की जा सकती थी।"[१] हम उस सादगी को ज्यादा पसन्द करते हैं जिसमें कि ईमानदारी से रहकर किसान अपने आत्मिक जीवन की पूरी ऊँचाई तक उभर सके। वह विज्ञापनबाज़ी के फन्दों में न फँसे, सूचीपत्रों से अपने को न ठगावे, ठगों की तस्वीरों और मोहिनी बातों पर लुभा न जाय। इश्तिहारी रोज़गारों का शिकार न बने, और विलासिता में न फंसे। अमेरिका के किसानों के ये थोड़े से दोष हैं जिनसे बचना होगा। दलाली, मुक़दमे-बाज़ी, जुआ, चोरी, नशा, आलस्य, गुण्डापन, व्यभिचार आदि से,जो हमारे किसानों में दिन-पर-दिन बढ़ते चले जा रहे हैं, उसे बचना होगा।

३. डेनमार्क की खेती

संसार में अमेरिका की खेती सबसे बढ़ी-चढ़ी है, परन्तु जैसा

१. Alexander E. Cance, Professor of Agricultural Economics, Massachusetts Agricultural College, in "Farm Income and Farm Life," The University of Chicago Press, New York, 1927. P. 78.

हम देख आये हैं यह उन्नति हाल की ही है। अमेरिका ने अपने कृषि-विभाग की जानकारी बढ़ाने के लिए कृषि-विज्ञान के बड़े-बड़े विद्वानों को यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों में पर्यटन कराया। यूरोप में खेती के व्यवसाय में अमेरिका वालों ने डेनमार्क को सबसे अधिक बढ़ा-चढ़ा पाया, और अनेक बातें इस छोटे से देश से सीखीं। यों कहना भी अनुचित न होगा कि जब हम डेनमार्क की चर्चा करते हैं तो असल में उस देश की चर्चा करते हैं जो अमेरिका के लिए भी आदर्श है। इस तरह समझना चाहिए कि संसार में खेती की उन्नति के लिए डेनमार्क ही सबसे उत्तम आदर्श है। यूरोप के 'लीग ऑफ़ नेशन्स' (राष्ट्र संघ) की ओर से (दी रूरल हाईजीन इण्टर चेञ्ज) कृषि-स्वास्थ्य—परस्पर विनिमय विभाग ने स्वास्थ्य-संगठन पर कई उपयोगी पुस्तिकायें निकलवाई हैं। डेनी सरकार के खेती के विभाग के मंत्री श्री एस०. सोरन्सेन ने डेनी खेती पर एक बड़ी अच्छी पुस्तिका लिखी है। उसकी भूमिका में डाक्टर बूद्रो ने लिखा है, कि जहाँ की आर्थिक दशा बहुत अच्छी और पक्की नींव पर जमी हुई नहीं है वहाँ तन्दुरुस्ती की रक्षा के लिए उपाय नहीं किये जा सकते। तात्पर्य यह है कि जिन राष्ट्रों को स्वास्थ्य-रक्षा पूरी तौर पर मंजूर हो वे अपनी आर्थिक दशा सुधारें, और डेनमार्क की तरह खेती और किसानों की उन्नति करें। स्वास्थ्य-विभाग ने इसीलिए कृषि-विभाग सम्बन्धी पुस्तिका छपवाई है। इस प्रसंग में हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि पिछले पृष्ठों में हमने जो दरिद्रता का सम्बन्ध रोगों और मौतों की बढ़ी हुई संख्या से दिखाया है वह संसार में निर्विवाद बात मानी जाती है।

परन्तु डेनमार्क खेती में जितना ही बढ़ा-चढ़ा हुआ है, उतना ही

विस्तार में छोटा है। यह समुद्र-तट पर बसा हुआ केवल १६,५३६ वर्गमील का क्षेत्रफल रखता है। उसकी आवादी ३४,६७,००० प्राणियों की है। इस देश से क्षेत्रफल के हिसाब से भारत का अवध प्रान्त ड्योढ़ा वड़ा है, और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त बराबर है। भारत में इससे छोटे प्रान्त केवल दिल्ली और अजमेर के हैं। आबादी में सीमा प्रान्त का ड्योढ़ा है, और सिन्ध प्रान्त से कुछ कम हैं। अमेरिका के मुक़ाबले में यहाँ की आवादी ज़्यादा घनी है। ये अङ्क हमने संवत् १९८५ के दिये हैं। डेनमार्क में देहातों की आबादी सैकड़ा पीछे ५७ है। इसमें से सभी खेती नहीं करते। खेती के सम्बन्ध के सारे काम करने वालों को गिनें तो किसानों की आवादी सैकड़ा पीछे ३३ ही ठहरती है। इनमें से खेत के मालिकों के क़ब्ज़े में १,७७,००० खेत हैं। पट्टे पर २,२०७ हैं। लगान पर ८,५५१ हैं। इस तरह कुल खेती में ९४ प्रति सैकड़ा लोगों की अपनी मिल्कियत है, बाक़ी ६ प्रति सैकड़ा पट्टे या लगान पर हैं। छोटे-से-छोटे खेत आठ एकड़ तक के हैं, परन्तु सबसे बड़ी संख्या २५ एकड़वाले खेतों की है। उनके बाद ७५ एकड़वालों की संख्या लगभग उतनी ही है जितनी कि आठ एकड़वालों की संख्या है, इस तरह असल में वहाँ थोक खेती ज़्यादा है। किसानों की आवादी के हिसाब से जितने क्षेत्रफल पर किसान अधिकार रखता है वह हमारे यहाँ से कहीं ज़्यादा है। सत्तरह-सत्तरह एकड़ की जोतें छोटी जोतों का औसत क्षेत्रफल समझी जाती है।[१] हमारे यहाँ जिनके पास १७ एकड़ खेत हैं वे १७ भिन्न-भिन्न

१. 'Small Holdings in Denmark' by L. Th. Arnskov, Danish Foreign office Journal, 1924. (Dyioa and Jeppesen). Danish Agriculture (Statistics), The Agricultural Council of Denmark vestre Boulevard 4-Copenhagen V.

जगहों में बटे हुए भी हैं। थोक के थोक इकट्ठे नहीं हैं। संवत् १९७७-७८ और ७९ में वहाँ एकड़ पीछे लगभग १२०३) रुपये दाम देने पड़ते थे। जिन लोगों के पास छोटी-छोटी जोत थी उन्हें बढ़ाने के लिए, और जिनके पास पट्टे थे या जो रय्यत की तरह लगान पर खेत लेकर खेती करते करते थे, उन्हें खेतों को ख़रीद लेने में वहाँ की सरकार ने बहुत कम ब्याज पर और उन खेतों की ही ज़मानत पर उधार रुपये दिये, और किसानों को खेतों का मालिक बनाया। यह उधार के रुपये भी वसूल करने का ढंग ऐसा अच्छा रक्खा कि छोटी-छोटी किस्तों में साल-साल पर किसान लोग अदा करें, जिसमें कई बरसों में वह सरकारी उधार भी चुकता हो जाय और किसानों की मिल्कियत भी पक्की पोढ़ी होजाय। डेनी सरकार ने किसानों के साथ केवल इतनी रिआयत ही न की बल्कि उनका संगठन कराने में, सहयोग समितियों के बनाने में उनकी उपज को चोखा बनाने में, और संसार की मण्डियों में, उनके माल के अच्छे-से-अच्छे दाम खड़े कराने में पूरी मदद दी और कोई बात उठा न रक्खी।

बाहर के लोग यह देखकर आश्चर्य करते हैं कि डेनों के देश की समाई इतनी कम होने पर भी संसार की मण्डियों में एक-तिहाई मक्खन, एक-चौथाई सुअर का मांस, और दसवाँ भाग अंडे वह कहाँसे लाकर बेचता है। श्री सोरन्सेन इस रहस्य को थोड़े ही में खोल देते हैं। डेढ़ सौ बरस के संगठन और घनी खेती का यह फल है, और इतना कह देने में ज़रा भी ग़लती का डर नहीं है कि डेनी किसान अपने काम में बड़े कुशल और शिक्षित हैं और उनका सामाजिक और मानसिक परिमाण बहुत ऊँचा है।

हमारा भी तो इन्हीं डेढ़सौ बरसों का रोना है। जो देश स्वाधीन

थे या स्वाधीन हो गये, जैसे डेनमार्क और अमेरिका, उन्होंने उसी समय अपना संगठन और उत्थान आरम्भ किया; उसी समय भारत के पाँवों में बेड़ियाँ पड़ गईं, और उसके शरीर में खून चूसकर बाहर जानेवाली जोंकें लग गईं। डेनमार्क की उन्नति की बुनियाद भी बहुत पुरानी है। पुराने डेन्मार्क में उसी समय उसी तरह का ग्राम-संगठन था जैसा कि भारत में। हरेक गाँव एक प्रकार की सहयोगी-समिति थी जिसमें गाँव का हर आदमी शामिल था। वे अपना क़ानून खुद बनाते थे। उनकी क़ानून की किताब में खेती, पशुपालन आदि के नियम लिखे रहते थे। गाँववाले साल भर के लिए या तीन साल के लिए अपना मुखिया चुन लेते थे। गाँव में हरी घास पर यही मुखिया सभा किया करता था। हर मेम्बर के बैठने के लिए उसकी जायदाद की हैसियत के अनुसार मंच हुआ करता था। मुखिया काम शुरू करता था और फिर ऐसी बातें तय करली जाती थीं कि जोताई-बोवाई किस-किस दिन की जायगी, घास कब कटेगी, फसल कब काटी जायगी, कौन-कौन से दरख़्त कटेंगे और कब कटेंगे, ढोरों का क्या बन्दोबस्त होगा, ग्वाले को क्या दिया जायगा। इस तरह के छोटे-छोटे प्रश्नों से लेकर गाँव के सब तरह के बन्दोबस्त इसी पंचायत में होते थे। दीवानी और फ़ौजदारी दोनों तरह के मुक़-दमे फ़ैसल होते थे। जुर्माने होते थे और लिये जाते थे। ये पंचायतें बड़े अदब-क़ायदे से होती थीं। कड़े अनुशासन से काम लिया जाता था। पंचायती पाठशाला आदि पंचायत की चीज़ें थीं। किसीके लड़का हो या न हो, पर हर गाँववाला पढ़ानेवाले के भोजन के ख़र्च में हिस्सा देता था। इसके सिवा हर पढ़नेवाला लड़का फ़ीस भी देता था, जिससे मास्टर की तनख़्वाह निकलती थी। बहुत विस्तार करना

व्यर्थ है, इतना कह देना काफ़ी होगा कि हरेक गाँव अपने स्थानीय स्वराज्य का उपभोग करता था। परन्तु इसके साथ-साथ एक दोष यह था कि ज़मींदारी और काश्तकारी का भी सम्बन्ध था और मजूरों और आसामियों के साथ गुलामों का-सा बर्ताव होता था। परन्तु इस प्रथा में धीरे-धीरे सुधार होने लगा, और पिछले पचास वर्षों में सुधारों का वेग बहुत बढ़ता गया। जहाँ-जहाँ ज़मीन रेतीली थी और खेती नहीं हो सकती थी, वहाँकी ज़मीनों पर जंगल लगा दिये गये। जहाँ-जहाँ हो सका पशुओं का चारा उपजाया जाने लगा। घासों के उगने की जगह आलू, गाजर, शलजम आदि कन्दमूल उपजाये जाने लगे। बाज़-बाज़ फ़सलें पाँचवें, बाज़ छठवें और बाज़ सातवें साल अच्छी होती थीं। अदला-बदली करके इस तरह पर वहाँ खेती होने लगी कि जिस साल जिस चीज़ की उपज सबसे ज्यादा होनेवाली थी उस साल वही चीज़ बोई जाती थी। यह तो खेती की बात हुई, जिसमें कि उन्होंने ऐसी तरक्की की कि बढ़ते-बढ़ते एकड़ पीछे सोलह मन गेहूँ उपजाने लगे। डेनों का गाहक पहले इंग्लिस्तान था, परन्तु मण्डी में और मुल्कों की चढ़ा-ऊपरी से डेनों की अनाज की खपत कम होगई। उस समय डेन हताश नहीं हुए, वे गोवंश को पहले ही से सुधार रहे थे। जब अनाज की बिक्री कम हुई तो उन्होंने मक्खन का रोज़गार करना शुरू किया, गायें पालीं और बछड़े भी पालने लगे। भारत में बैल बड़े काम के जानवर हैं, खेती उन्हींके बल पर होती है; परन्तु डेनमार्क में ढुलाई और जुताई आदि का काम घोड़ों से लेते हैं, इसलिए गोमांस-भक्षी अंग्रेज़ ग्राहकों को वे बैलों का माँस देने लगे। मांस, चर्बी आदि के लिए वे पहले से सुअर भी पालते थे, और

अंडों के लिए मुर्ग़, वत्तक़ आदि भी रखते थे। इस तरह उन्होंने अनाज की बिक्री घटने पर गोमांस, शूकर-मांस, चर्बी, चमड़ा, मक्खन, अंडे इत्यादि की बिक्री वढ़ाई। इस वात में डेनी सरकार से उन्हें वहुत वड़ी मदद मिली। आज सिवाय अनाज के इन सव चीजों की बिक्री डेनमार्क की वहुत ज़्यादा है। और ये सव चीज़ें खेती की उपज समझी जाती हैं। भारतवर्ष शायद ऐसी खूँख़ार तिजारत के लिए ठीक न होगा, परन्तु हमारे देश की शिक्षा के लिए वहाँ की सवसे वड़ी चीज़ें दो हैं:—एक तो सहयोग-समितियाँ और दूसरे खेती की शिक्षा देनेवाले मदरसे।

सहयोग-समितियों की चर्चा भारतवर्ष में वहुत चल रही है। उसके क़ानून भी वने हुए हैं। देश में गवर्मेण्ट की ओर से उसका आन्दोलन चल रहा है। परन्तु हमारे देश में और डेनमार्क में यह भारी अन्तर है कि डेनों की सहयोग-समितियाँ गांव की पंचायतों से पैदा हुई हैं, और वहाँ की सरकार ने उन्हें अपना लिया है। यहाँ की सरकार ने पहले गाँव की पंचायतों को नष्ट कर डाला, जिसको वहुत जल्दी सौ वरस के लगभग हो जायंगे, और कोई छव्वीस वरस हुए कि विदेशी सरकार ने सहयोग-समितियों की वुनियाद डाली और उन्हें अपने ज़ोर से फैलाया, परन्तु उनमें इतने वंधेज रक्खे कि हमारे ग़रीव किसान उनको अपना न पाये। वहाँ सहयोग समितियों की वुनियाद नीचे से पड़ी थी, और यहाँ शिमले की ऊँचाई से। यह साफ़ है कि कौनसी वुनियाद मज़वूत हो सकती है। वहाँ के किसानों ने सव तरह की समितियाँ वनाई हैं, जिनका आरम्भ पहले पहल 'मक्खन निकालनेवाली समिति' से हुआ। संवत १९३९ में कुछ दरिद्र किसानों ने मिलकर मक्खन निकालने के लिए पहले

पहल समिति बनाई। वहाँ आजकल ऐसी चौदह सौ समितियाँ हैं। इनके सिवा खरीदने की, बेचने की, लेनदेन की, सब तरह की सहयोग-समितियाँ बन गई हैं। इन पर सरकारी नियंत्रण नहीं है, परन्तु सरकार में इनकी साख मानी जाती है, इनको उधार रुपये दिये जाते हैं, और इनके विरुद्ध सरकारी अदालतों में मुक़दमे नहीं चलाये जा सकते।

डेनमार्क की सारी उन्नति की पूँजी वहाँ की 'लोक-पाठशालाओं' में है। पादरी ग्रुण्ट फ़िग ने ६० बरस से ऊपर हुए इन पाठशालाओं का आरम्भ किया था। उसने एक बार इस प्रकार अपनी इच्छा प्रकट की थी--"यह मेरी परम अभिलाषा है कि डेनों के लिए ऐसी पाठशालायें खुलें जिनमें देश के युवक पढ़ सकें। वहाँ वे मानव-स्वभाव और मानव-जीवन से अच्छा परिचय पा सकें, और विशेष कर अपने को खूब समझ सकें। वहाँ वे गाँवों में रहनेवाले के कर्तव्य और सम्बन्ध अच्छी तरह समझ सकें, और देश की ज़रूरतें भी अच्छी तरह जानें। मातृ-भाषा की गोद में उनकी देशभक्ति पलेगी, और डेनी गीतों में उनके राष्ट्र का इतिहास पुष्ट होगा। हमारे लोगों को सुखी बनाने के लिए ऐसे मदरसे अमृत के कुण्ड होंगे।"[1]

सचमुच इसी अमृत के कुंड से डेनी किसानों का नया जीवन निकला। वहाँ ऐसे साठ मदरसे हैं, जिनमें लगभग सात हज़ार शिक्षार्थी हैं। ये १८ बरस से लेकर २५ बरस तक के युवक और युवतियाँ हैं। पाँच महीने में युवकों की पढ़ाई समाप्त होती है, और तीन महीनों में युवतियों की। ये लोग प्रायः थोड़े लिखे-पढ़े मदरसों

१. Quoted from S. Sorensen : Danish Agriculture, League of Nations. 1929. P. 26-27

में भर्ती होते हैं, और खेती की ऊँची-से-ऊँची विद्या इस थोड़े काल में पढ़कर पण्डित हो जाते हैं।

संक्षेप से डेनमार्क में भी हम वही सब सुभीते पाते हैं जिन ११ सुभीतों की चर्चा हम अमेरिका के सम्बन्ध में कर आये हैं। यहाँ दोहराने की ज़रूरत नहीं है। अमेरिका से फ़र्क़ इतना ही है कि अमेरिका की अनाज और फल की खेती बढ़ी हुई है और डेनी लोग पशु की खेती में बढ़े-चढ़े हैं। अमेरिका में खेतों का विस्तार सिर पीछे डेनमार्क की अपेक्षा बहुत ज़्यादा है। इन दोनों देशों में बैलों से काम नहीं लिया जाता, बल्कि लोग उन्हें खा जाते हैं; हाँ, वे गऊ के पालने में बड़े होशियार हैं और दूध मक्खन की भारी तिजारत करते हैं।

संसार के सबसे बड़े खेती करनेवाले देशों में जो बातें हम देखते हैं उनमें सीखने की बातें लोहे की मशीनें नहीं हैं बल्कि मनुष्यों के संगठन और प्रबन्ध हैं, जो हम भी कर सकते हैं अगर हमारे हाथ-पाँव खुले हों।

'लोक साहित्य माला'

'सस्ता साहित्य मण्डल' की स्थापना इस उद्देश्य को लेकर हुई थी कि जन साधारण को ऊँचा उठानेवाला साहित्य सस्ते-से-सस्ते मूल्य में सुलभ कर दिया जाय। हम नहीं कह सकते कि 'मण्डल' इस उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुआ है; लेकिन इतना निश्चित है कि उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति की ओर नेक नीयती से बढ़ते रहने की कोशिश की है और हिन्दी में राष्ट्रनिर्माणकारी और जन-साधारण के लिए उपयोगी साहित्य देने में उसने अपना खास स्थान बना लिया है। लेकिन हमको अपने इतने से कार्य से संतोष नहीं है। अभी तक 'मण्डल' से, कुछ अपवादों छोड़कर, ऐसा साहित्य नहीं निकला जो बिलकुल जन-साधारण का साहित्य—लोक साहित्य कहा जासके। अभी तक आमतौर पर मध्यम श्रेणी के लोगों को सामने रखकर 'मण्डल' का प्रकाशन कार्य होता रहा है लेकिन अब हमको अनुभव हो रहा है कि हमें अपनी गति और दिशा बदलनी चाहिए और जनता का और जनता के लिए साहित्य प्रकाशित करने का खास तौर से आयोजन करना चाहिए।

इसी उपरोक्त विचार को सामने रखकर 'मण्डल' से हम 'लोक साहित्य माला' नाम की एक पुस्तक माला प्रकाशित करने की तजवीज कर रहे हैं। इस माला में डबल क्राउन सोलह पेजी आकार की दो-ढाई सौ पृष्ठों की लगभग दो सौ पुस्तकें देने का हमारा विचार है। पुस्तकें साधारणतः जन-साधारण की समझ में आने लायक सरल भाषा में, अपने विषयों के सुयोग्य विद्वानों द्वारा लिखाई जायँगी। पुस्तकों के विषयों में जनसाधारण से सम्बन्ध रखनेवाले तमाम विषयों—जैसे खेती, बागवानी,

ग्राम उद्योग, पशुपालन, सफाई, सामाजिक बुराइयाँ, विज्ञान, साहित्य, अर्थशास्त्र, राजनैतिक, सामान्य जानकारी देशभक्ती की कहानियाँ, महाभारत-रामायण की कहानियाँ, चरित्रबल बढ़ानेवाली कहानियाँ आदि का समावेश होगा। संक्षेप में हमारा इरादा यह है कि हम लगभग दो सौ पुस्तकों की एक ऐसी छोटी-सी लाइब्रेरी बना दें, जो साधारण पढ़े-लिखे लोगों के अन्दर वर्तमान काल के सारे विषयों को तथा उनको ऊँचा उठानेवाले युग परिवर्तनकारी विचारों को सरल-से-सरल भाषा में रख दें और उसके बाद उन्हें फिर किसी विषय की खोज में—उसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए—कहीं बाहर न जाना पड़े।

ऊपर लिखे अनुसार लगभग दो-ढ़ाई सौ पृष्ठों की पुस्तक माला की पुस्तकों का दाम हम सस्ते-से--सस्ता रखना चाहते हैं। आम तौर पर हिन्दी में उतने पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य १) या १।) रु० रखा जाता है लेकिन हम इस माला के स्थायी ग्राहकों के लिए छः आना और फुटकर ग्राहकों के लिए आठ आना रखना चाहते हैं। कागज छपाई आदि बहुत बढ़िया होगी।

पहले पहल हम निम्नलिखित पाँच पुस्तकें इस माला में निकालने का आयोजन कर रहे हैं:—

१. हमारे गाँवों की कहानी [स्वर्गीय रामदास गौड़]
२. महाभारत के पात्र (१) [आचार्य नानालाल भट]
३. लोक-जीवन [आचार्य काका कालेलकर]
४. संतवाणी [वियोगी हरि]
५. वर्ण-धर्म [महात्मा गांधी]

'मण्डल' की 'सर्वोदय साहित्य माला' के प्रकाशन

१—दिव्य-जीवन ।=)
२—जीवन-साहित्य १)
३—तामिलवेद ॥)
४—शैतान की लकड़ी अर्थात् भारत में व्यसन और व्यभिचार ॥।=)
५—सामाजिक कुरीतियाँ (जब्त : अप्राप्य) ॥।)
६—भारत के स्त्री-रत्न (तीन भाग) ३)
७—अनोखा (विक्टर ह्यूगो) १।=)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान ॥।=)
९—यूरोप का इतिहास २)
१०—समाज-विज्ञान १॥)
११—खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र ॥।≡)
१२—गोरों का प्रभुत्व ॥।=)
१३—चीन की आवाज(अप्राप्य)।-)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह १।)
१५—विजयी बारडोली २)
१६—अनीति की राह पर ॥=)
१७—सीता की अग्नि-परीक्षा ।-)
१८—कन्या-शिक्षा ।)
१९—कर्मयोग ।=)
२०—कलवार की करतूत =)
२१—व्यावहारिक सभ्यता ॥)
२२—अँधेरे में उजाला ॥)
२३—स्वामीजी का बलिदान (अप्राप्य) ।-)
२४—हमारे ज़माने की गुलामी (जब्त : अप्राप्य) ।)
२५—स्त्री और पुरुष ॥)
२६—घरों की सफ़ाई ।=)
२७—क्या करें ? (दो भाग) १॥=)
२८—हाथ की कताई-बुनाई (अप्राप्य) ॥=)
२९—आत्मोपदेश ।)
३०—यथार्थ आदर्श जीवन (अप्राप्य) ॥-)
३१—जब अंग्रेज नहीं आये थे— ।)
३२—गंगा गोविन्दसिंह (अप्राप्य) ॥=)
३३—श्रीरामचरित्र १।)

३४—आश्रम-हरिणी ।)

३५—हिन्दी-मराठी-कोष २)

३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)

३७—महान् मातृत्व की ओर ॥।=)

३८—शिवाजी की योग्यता ।=)

३९—तरंगित हृदय ॥)

४०—नरमेघ १॥)

४१—दुखी दुनिया ।=)

४२—ज़िन्दा लाश ॥)

४३—आत्म-कथा (गांधीजी) १॥)

४४—जब अंग्रेज़ आये (ज़ब्त) १।=)

४५—जीवन-विकास १) १॥)

४६—किसानों का बिगुल (ज़ब्त) =)

४७—फांसी ! ।=)

४८—अनासक्तियोग तथा गीता-बोध (श्लोक-सहित) ।=)

अनासक्तियोग =)

गीताबोध -)॥

४९—स्वर्ण-विहान (ज़ब्त) ।=)

५०—मराठों का उत्थान-पतन २॥)

५१—भाई के पत्र १॥) २)

५२—स्वगत ।=)

५३—युग-धर्म (ज़ब्त : अप्राप्य) १=)

५४—स्त्री-समस्या १॥)

५५—विदेशी कपड़े का मुक़ाबिला ॥=)

५६—चित्रपट ।=)

५७—राष्ट्रवाणी (अप्राप्य) ॥=)

५८—इंग्लैण्ड में महात्माजी १)

५९—रोटी का सवाल १)

६०—दैवी सम्पद् ।=)

६१—जीवन-सूत्र ॥)

६२—हमारा कलंक ॥=)

६३—बुद्बुद ॥)

६४—संघर्ष या सहयोग ? १॥)

६५—गांधी-विचार-दोहन ॥)

६६—एशिया की क्रान्ति (ज़ब्त) १॥।)

६७—हमारे राष्ट्र-निर्माता २॥)

६८—स्वतंत्रता की ओर— १॥)

६९—आगे बढ़ो ! ॥)

७०—बुद्ध-वाणी ॥=)

७१—कांग्रेस का इतिहास २॥)

७२—हमारे राष्ट्रपति १)

७३—मेरी कहानी (ज० नेहरू) ४)

७४—विश्व-इतिहास की झलक (ज० नेहरू) ८)